भारतीय संविधान तथा नागरिक जीवन

उत्तर प्रदेश, राजस्थान, दिल्ली, आदि राज्यों द्वारा इन्टरमीडिएट
कक्षाओं के लिए स्वीकृत

<C>

लेखक
राजनारायण गुप्त एम० ए० (राजनीति व अर्थशास्त्र)
रचयिता 'नागरिक शास्त्र के सिद्धान्त,' 'आदर्श नागरिकता,'
'हमारा नया विधान,' 'भारतीय नागरिकता' इत्यादि

कि ता ब म ह ल
इ ला हा बा द

प्रथम संस्करण, १९५०
द्वितीय संस्करण, १९५१
तृतीय संस्करण, १९५२
चतुर्थ संस्करण, १९५३

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, जीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ जीरो रोड, इलाहाबाद।
C—E—E—E

चतुर्थ संस्करण की प्रस्तावना

सन् १९५० में हमारे नवीन संविधान के लागू हो जाने के पश्चात् से, उसमें इतना अधिक विस्तार तथा कई दिशाओं में संशोधन हुआ है, कि जब तक संविधान सम्बन्धी किसी पुस्तक का प्रतिवर्ष नया संस्करण न छापा जाय, उसके सम्बन्ध में विद्यार्थियों को ठीक प्रकार से जानकारी नहीं कराई जा सकती। सौभाग्यवश मेरी प्रस्तुत पुस्तक का नवीन संस्करण प्रायः प्रतिवर्ष ही प्रकाशित होता रहा है। इससे पुस्तक को सामयिक तथा नवीन बातों से पूर्ण रखने में मुझे भारी सहायता मिली है।

आम चुनावों के पश्चात् भारतीय संसद, राज्यीय विधान मंडलों तथा देश के राजनीतिक दलों की स्थिति का पूर्ण रूप से ज्ञान कराने के लिए मैंने पुस्तक के तृतीय संस्करण में बहुत से परिवर्तन कर दिये थे। इसके अध्यायों की संख्या भी बढ़ा कर १६ से २३ कर दी गई थी। चतुर्थ संस्करण में और बहुत सी नई सामग्री जोड़ दी गई है। उदाहरणार्थ—

(१) सन् १९५१ की जनगणना के पश्चात्, हमारे देश की संसद् तथा राज्य की विधान सभाओं के संगठन में जो परिवर्तन करने निश्चित किये गये हैं, उनका पूर्ण विवरण पुस्तक के ७वें तथा ९वें अध्याय में दे दिया गया है।

(२) फरवरी सन् १९५३ में राजस्व कमीशन की रिपोर्ट के प्रकाशित होने से संघ तथा राज्यीय सरकारों की आय के साधनों में जो परिवर्तन हो गये हैं, उनका पूर्ण विवरण ११वें अध्याय में दे दिया गया है।

(३) म्यूनिसिपैलिटीज तथा कार्पोरेशन सम्बन्धी नवीन कानून के पास होने से, उत्तर प्रदेश की नगरपालिकाओं में जो परिवर्तन हुए हैं, उनका पूरा वृत्तान्त पुस्तक के १७वें अध्याय में दे दिया गया है।

(४) अनेक उप निर्वाचनों के कारण, विधान मंडलों के विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति में जो अन्तर पड़ा है, उसका पूरा वृत्तान्त यथा स्थान दे दिया गया है।

(५) राजनीतिक दलों में जो फेर बदल हुई है उसका पूरा विवरण २१वें अध्याय में दे दिया गया है।

इन सबके अतिरिक्त स्थान स्थान पर दिये गये तथ्य तथा आँकड़ों को सामयिक कर दिया गया है। सन् १९५३ में पूछे गये प्रश्नों को भी प्रत्येक अध्याय के अन्त में जोड़ दिया गया है।

आशा है उपरोक्त सभी कारणों से पाठक पुस्तक के प्रस्तुत संस्करण को पहले से कहीं अधिक उपयोगी पायेंगे।

ता० १०।८।५३ राजनारायण गुप्त

अध्याय १

भारतीय विधान का ऐतिहासिक विकास

ईस्ट इन्डिया कम्पनी की स्थापना

भारतवर्ष में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना का इतिहास ही इस देश में वैधानिक साधनों का विकास है। ब्रिटेन निवासी हमारे देश की अतुल धन-सम्पत्ति की चर्चाओं से आकर्षित होकर १६०० ईस्वी के पहले ही भारत में आ चुके थे। वह यहाँ के नागरिकों से व्यापारिक नाता जोड़ना चाहते थे। शताब्दियों से भारतवर्ष की अति कोमल तथा सुन्दर वस्तुओं जैसे दरेस, महीन कपड़े, रत्न जवाहिरात, कसीदे और जरदोजी के काम, ऊनी और रेशमी वस्त्र, धातु के बर्तन, हाथी दाँत की बनी हुई वस्तुएँ, इत्र, फुलेल, रंगों की सामग्री तथा इसी प्रकार की न जाने कितनी चीजों ने लन्दन, पेरिस, रोम तथा योरोपियन देशों की दूसरी राजधानियों में तहलका मचाया हुआ था। योरोप की विभिन्न जातियाँ इन भारतीय वस्तुओं का लेन देन करने और मुगल सम्राटों से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए अत्यन्त इच्छुक थीं। वह एक दूसरे के विरुद्ध आपस में लड़ती थीं और भारतीय राजाओं से प्रार्थना करती थीं कि उन्हीं को उनके देश से व्यापार करने की सुविधाएँ प्रदान की जायें। इसी उद्देश्य को सामने रखते हुए सन् १६०० ई० में महारानी एलिजाबेथ के काल में एक रॉयल चार्टर के अधीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी का जन्म हुआ। कम्पनी के सञ्चालन के लिए २ गवर्नर तथा २४ सञ्चालकों का चुनाव कम्पनी के हिस्सेदारों द्वारा इंगलैंड में ही किया जाता था। इस कम्पनी को पार्लियामेंट द्वारा पूर्व में व्यापार करने की आज्ञा दे दी गई। इसके बदले में कम्पनी को अपने लाभ का एक भाग सरकार को देना पड़ता था।

कम्पनी की शक्ति में वृद्धि

आरम्भ में तो कम्पनी के प्रयत्न केवल व्यापार को बढ़ाने में ही लगे, उस समय उसे कोई राजनीतिक लालसा न थी। उसका उद्देश्य केवल व्यापार को बढ़ाना और भारत में फैक्टरियाँ और कोठी स्थापित करना ही था। उसने पहली फैक्टरी सूरत में सन् १६०० में, दूसरी मछलीपट्टम में सन् १६१६ में, और तीसरी और चौथी, मद्रास और कलकत्ते में क्रमशः सन् १६६० और १६६० में स्थापित कीं। प्रारम्भ में कंपनी को डच, पुर्तगाली तथा फ्रांसीसी कम्पनियों का कड़ा सामना करना पड़ा। परन्तु इसने उन सब को परास्त कर दिया और अन्त में कर्नाटक के युद्ध के फलस्वरूप फ्रांसीसी कम्पनी का भी अन्त हो गया।

कम्पनी ने अब तक राजनीतिक मामलों में केवल तटस्थ नीति का ही पालन किया था। उसने सन् १७०७ तक, जब भारत में सम्राट औरंगजेब के शासन का अन्त हुआ, भारतीय राजनीति में कोई भाग नहीं लिया था। परन्तु इस महान् सम्राट की मृत्यु के साथ ही साथ मुगल साम्राज्य पर मानों वाज टूट पड़ा। उसके अनेक टुकड़े हो गये और मुगल सत्ता का वह महान् भवन जिसका निर्माण करने के लिए ४०० वर्षों का निरन्तर प्रयत्न करना पड़ा था, ताश के पत्तों की भाँति गिरने लगा। भीतरी कलह और बाहरी आक्रमणों ने उसकी जड़ें हिला दीं। अधीन नवाबों और सरदारों ने इस राजनीतिक हलचल से लाभ उठा कर अपनी स्वाधीनता की घोषणा कर दी और इस प्रकार सम्राट के प्रति राजभक्ति से मुँह मोड़ लिया। दक्षिण में मरहठों ने अपनी सीमा को बढ़ाना प्रारम्भ कर दिया और अनेक हिन्दू राजाओं ने अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता फिर से प्राप्त कर ली। विरोधी दलों में मुठभेड़ होने लगी और देश में खून की नदियाँ बहने लगीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इस समय तक भारत के लोगों को ही अपने अधीन नौकर रख कर तथा उन्हें सैनिक शिक्षा प्रदान कर के एक बड़ी सुसगठित तथा सशस्त्र सेना का, अपनी फैक्टरियों तथा दूसरी सम्पत्ति की रक्षा के लिए, निर्माण कर लिया था। भारतीय राजनीति के विरोधी दलों ने इस विदेशी सेना के पास सहायता के लिए पहुँचना प्रारम्भ कर दिया। इसके बदले में उन्होंने कम्पनी को सेना में जमीन, अधिकार और बहुत-सी व्यापारिक सुविधाएँ देने का वचन दिया। कम्पनी ने इस स्थिति का पूरा लाभ उठाया और इस प्रकार वह साम्राज्य स्थापना के मधुर स्वप्न देखने लगी। उसने कभी एक राजा को सहायता दी तो कभी दूसरे को। वह सदा उस ओर का ही पक्ष लेती थी जिधर उसे जीत की आशा होती और इस प्रकार उसे धीरे-धीरे विजेता राजाओं द्वारा अनेक गाँव तथा नगरों का अधिकार मिल गया। इस योजना के अधीन उसका अधिकार-क्षेत्र इतना बढ़ा कि सन् १७५६ की प्लासी की लड़ाई के पश्चात् वह पूरे बंगाल की ही स्वामिनी बन गई। सन् १७६५ ई० में इलाहाबाद की सन्धि के फलस्वरूप उसे दीवानी का हक भी मिल गया। वैलेजली की सहायता-सन्धि की नीति से उसका अधिकार क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो गया। लार्ड हेस्टिंग्ज ने इस काम को और आगे बढ़ाया और लार्ड डलहौजी ने तो इसे अन्तिम सीमा तक पहुँचा दिया। १८५७ ई० के भारतीय विद्रोह ने मुगल सम्राट की सत्ता को सदा के लिए भारत से लुप्त कर दिया और उसके स्थान पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत की भाग्य विधात्री बन गई। कम्पनी के व्यापारी अब हमारे देश के शासक बन गये। पर ब्रिटिश सरकार ने इसके पश्चात् कम्पनी के हाथों में भारतीय शासन की बागडोर सौंपना ठीक न समझा और उसने स्वयं कम्पनी के नौकरों को विदा कर अपने हाथों में ही हमारे देश का शासन सँभाल लिया।

पार्लियामेंट का कम्पनी के कार्य में हस्तक्षेप

जिस समय धीरे-धीरे ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व भारतीय शासन पर निरन्तर बढ़ता जा रहा था तो आरम्भ में, बहुत काल तक ब्रिटिश सरकार ने उसके काम में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप करना उचित न समझा। कंपनी का संचालक बोर्ड भारत का शासन प्रबन्ध करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र था। वह जैसे भी चाहता, शासन का कार्य चलाता था; परन्तु जिस समय कंपनी का अधिकार-क्षेत्र बहुत अधिक बढ़ गया और कंपनी के व्यापारियों ने शासन के कार्य को भी एक व्यापार का ही रूप दे दिया, लूट यहाँ की जनता का शोषण किया, दिन दहाड़े लोगों को लूटा, उनसे दिल खोलकर रिश्वत ली, लूट अपने खजानों को भरा, सरकारी नौकरी के साथ साथ स्वतन्त्र व्यापार किया, व्यापारियों से चीजें खरीदीं; परन्तु उनको उनका मूल्य नहीं दिया, कारीगरों से अच्छी-अच्छी चीजें बनवाईं, परन्तु उन्हें वेतन नहीं दिया, और इस जुल्म, दमन तथा निर्लज्ज व्यवहार की कहानियाँ ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्यों तक पहुँचीं तो उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के काम में हस्तक्षेप करने की ठानी। एक ओर तो कंपनी के नौकर बेईमानी, लूट, रिश्वत तथा व्यापार से अपने घर का खजाना भर रहे थे और इंगलैंड लौट कर बड़े बड़े आलीशान महल तथा सम्पत्ति खरीद कर अपने प्रतिद्वन्द्वियों के हृदय में जलन तथा ईर्ष्या की ज्वाला को भड़का रहे थे, दूसरी ओर ईस्ट इंडिया कंपनी का स्वयं का दिवाला निकला जा रहा था और सन् १७७० में वह पार्लियामेंट से कह रही थी कि उसकी गिरती हुई आर्थिक स्थिति को सँभालने के लिए उसे कर्ज दिया जाय। पार्लियामेंट ने यह सारे वृत्तान्त सुन कर कंपनी की हालत का सही पता लगाने के लिए एक गुप्त कमेटी की नियुक्ति की। इस कमेटी ने बतलाया कि कम्पनी के नौकर्र के हाथ किस प्रकार जुल्म, बेईमानी, रिश्वत तथा लूट के रंग में रँगे थे और किस प्रकार सम्य संसार में अँगरेज शासकों तथा ब्रिटिश पार्लियामेंट का नाम बदनाम हो रहा था। इस वृत्तान्त को सुन कर तथा ब्रिटेन की जनता के स्वयं कंपनी के विरुद्ध आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश पार्लियामेंट ने सन् १७७४ में ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रबन्ध को सुधारने के लिए "रैग्यूलेटिंग ऐक्ट" (Regulating Act) पास करने का निश्चय किया।

१. १७७४ का रैग्यूलेटिंग ऐक्ट

भारत के वैधानिक इतिहास में इस ऐक्ट का पास करना एक बड़े महत्त्व की बात थी, क्योंकि यह प्रथम अवसर था जब ग्रेट ब्रिटेन की सरकार ने भारत की सरकार की योजना की। भारतीय शासन में पार्लियामेंट के सीधे हस्तक्षेप का यह पहला ही उदाहरण था।

इस ऐक्ट के द्वारा भारतवर्ष में एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई। व्यापारिक

तथा आर्थिक क्षेत्र में कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को ही सारा काम सौंपा गया; परन्तु शासन की बागडोर बङ्गाल के गवर्नर जनरल तथा ब्रिटिश सरकार द्वारा चुने हुए चार ऐक्जीक्यूटिव कौंसिलरों के हाथ में दे दी गई। अब तक बम्बई और मद्रास के प्रान्त वहाँ के गवर्नरों तथा उनकी काउंसिल द्वारा शासित होते थे। इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात् वह बङ्गाल के गवर्नर-जनरल के अधीन कर दिये गये। इन गवर्नरों से गवर्नर-जनरल के पूछे बिना किसी राज्य के विरुद्ध लड़ाई की घोषणा करने अथवा किसी राज्य से सधि आदि करने का अधिकार भी ले लिया गया। इस ऐक्ट के द्वारा एक प्रधान न्यायालय स्थापित करने का आयोजन भी किया गया, जिसमें एक मुख्य न्यायाधीश, और चार सहायक न्यायाधीशों की नियुक्ति की गई। इस न्यायालय का अधिवेशन कलकत्ते के फोर्ट विलियम किले में होता था। ऐक्ट के अधीन प्रथम गवर्नर-जनरल वारेनहेस्टिंग्ज को बनाया गया।

रैग्यूलेटिंग ऐक्ट के दोष—रैग्यूलेटिंग ऐक्ट की धाराएँ सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुईं। कारण, इसके अधीन एक दोहरी सरकार की स्थापना की गई थी और गवर्नर-जनरल तथा बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स के अलग अलग अधिकारों का स्पष्ट रूप से वर्णन नहीं किया गया था। इस प्रकार इन दोनों अधिकारियों में संघर्ष रहने लगा। मुख्य न्यायालय के अधिकारों की सीमा भी ठीक-ठीक नहीं बतलायी गई थी। ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा गवर्नर-जनरल और उसकी काउंसिल के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार भी अपर्याप्त समझा गया। इन दोषों को दूर करने के लिए पार्लियामेंट ने एक और ऐक्ट पास किया जिसे 'पिट्स इण्डिया ऐक्ट' कहते हैं।

२. १७८४ का पिट का इंडिया ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा गवर्नर-जनरल की नियुक्ति का अधिकार पार्लियामेंट के हाथों से लेकर एक बार फिर, पहले की भाँति बोर्ड के सचालकों के हाथ में ही सौंप दिया गया। लंदन में एक 'बोर्ड आफ कन्ट्रोल' की नियुक्ति की गई जिसके तीन सदस्य थे। इस बोर्ड का सभापति आगे चलकर 'भारत मन्त्री' कहलाया। इस ऐक्ट के अधीन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सब कार्य बोर्ड के निरीक्षण में होने लगे। बोर्ड आफ कन्ट्रोल की एक विशेष गुप्त कमेटी बनायी गई जो भारत से सम्बन्ध रखने वाले सब कार्यों की देख-भाल करती थी। कम्पनी के बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स को आज्ञा दी गई कि वे अपने कार्य-क्रम का ब्यौरा इस गुप्त कमेटी के द्वारा भेजा करें। इसी ऐक्ट के अधीन गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों की संख्या ४ से घट कर ३ कर दी गयी।

शासन की यह प्रणाली पहले से अधिक सफल हुई और छोटे-मोटे परिवर्तनों को छोड़कर १६वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत का शासन इसी प्रकार चलता रहा। सन् १७८५ ई० में जब लार्ड कार्नवालिस भारत में गवर्नर-जनरल होकर आये तो उन्होंने

ब्रिटिश सरकार से अपनी काउंसिल के निर्णयों को रद्द करने की शक्ति अपने हाथ में माँगी। यह शक्ति उन्हें दे दी गयी।

३. १७६३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट के अधीन भारत में कम्पनी के कार्यकाल की अवधि और बढ़ा दी गई। साथ ही भारत में प्रथम बार इंडियन सिविल सर्विस का आयोजन किया गया।

४. १८१३ का चार्टर ऐक्ट

सन् १६०० ई० में इंडिया कम्पनी को पूर्वी देशों में व्यापार करने का जो एकाधिपत्य दिया गया था उस पर अब ब्रिटिश पत्रों में कड़ी आलोचना होने लगी। जनता ने कहा कि स्वतन्त्र व्यापार के क्षेत्र में एकाधिपत्यिक (Monopolistic) व्यापार का अधिकार दिया जाना उचित नहीं। सन् १८१३ के चार्टर ऐक्ट ने इसलिए कम्पनी से चाय को छोड़कर और सब चीजों में व्यापार करने का एकाधिपत्य छीन लिया। इसी ऐक्ट के अधीन, कम्पनी को प्रथम बार अधिकार दिया गया कि वह भारतीयों की शिक्षा पर एक लाख रुपया व्यय कर सके।

५. १८३३ का चार्टर ऐक्ट

इस ऐक्ट ने कम्पनी के व्यापारिक कार्यों की इतिश्री कर दी और उसे केवल एक राजनीतिक संस्था का स्वरूप प्रदान कर दिया। इस ऐक्ट के अधीन बंगाल का गवर्नर भारत का गवर्नर-जनरल बना दिया गया और सन् १८५४ में बंगाल प्रान्त के लिए एक अलग गवर्नर की नियुक्ति कर दी गई। गवर्नर-जनरल का कार्य अब सब प्रान्तों के शासन की देख-भाल करना रह गया। उसे अपने काउन्सिल के साथ सारे प्रान्तों की सरकार के लिए कानून बनाने का अधिकार भी दे दिया गया। बम्बई और मद्रास प्रान्तों के गवर्नरों की कौंसिल के हाथ से अपने प्रान्त के शासन के लिए भी कानून बनाने का अधिकार छीन लिया गया। इसके अतिरिक्त एक और सदस्य (लॉ मैंबर) गवर्नर-जनरल की कौंसिल में बढ़ा दिया गया। आरम्भ में इस नये सदस्य को कौंसिल के निर्णयों में, दूसरे सदस्यों की भाँति, राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। वह केवल कानून सम्बन्धी मामलों में ही राय दे सकता था। भारत की कौंसिल का प्रथम कानूनी सदस्य लार्ड मैकॉले को बनाया गया। उसी की प्रधानता प्रथम बार सारे भारत के लिए एक-से कानून बनाने के लिए एक लॉ कमीशन की नियुक्ति की गई।

६. सन् १८५३ का चार्टर ऐक्ट

कम्पनी का चार्टर जब सन् १८५३ में फिर एक बार पार्लियामेंट के सम्मुख मंजूरी के लिए आया तो ब्रिटिश सरकार ने उसे दस वर्ष के लिए स्वीकार नहीं किया वरन् यह कहा कि उसका कार्यकाल केवल उस समय तक रहेगा जब तक पार्लियामेंट उसके विरुद्ध कानून न बनाये। इस ऐक्ट के अधीन और भी बहुत से परिवर्तन किये गये,

उदाहरणार्थ; कम्पनी के सचालकों के हाथ से उच्च सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति का अधिकार छीन लिया गया। 'इंडियन सिविल' सर्विस' की भर्ती प्रतियोगिता के आधार पर कर दी गई। गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल के शासन तथा कानून सम्बन्धी कामों में भेद कर दिया गया। अब तक यह दोनों काम एक ही सभा द्वारा किये जाते थे। नये ऐक्ट के अधीन कानून बनाने का कार्य करने के लिए गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में ६ और सदस्य जोड़ दिये गये, साथ ही लॉ मेम्बर को ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का, दूसरे सदस्यों की भाँति, साधारण सदस्य भी घोषित कर दिया गया।

सन् १८५७ में भारत की स्वाधीनता का प्रथम युद्ध प्रारम्भ हुआ। भारतीय जनता के इस विद्रोह की सारी जिम्मेदारी कम्पनी के दूषित प्रबन्ध पर लगाई गई। इस विद्रोह ने कम्पनी के भाग्य पर सदा के लिए ताला डाल दिया। भारतीय जनता ही नहीं, अंग्रेजी जनता ने भी इस विद्रोह के पश्चात् कम्पनी को उठा लेने के लिए भारी आंदोलन किया और पार्लियामेंट को जनता की पुकार के सामने झुकना पड़ा। अतः सन् १८५८ में सम्पूर्ण भारत ब्रिटिश सरकार के अधीन हो गया।

७. १८५८ का ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा भारतवर्ष की सरकार का सारा शासन-प्रबन्ध सीधा ब्रिटिश पार्लियामेंट को सौंप दिया गया। ब्रिटिश पार्लियामेंट के एक मन्त्री 'सेक्रेटरी आफ स्टेट' को वह सभी अधिकार सौंप दिये गये जो अब तक बोर्ड आफ कन्ट्रोल के हाथ में थे। सेक्रेटरी आफ स्टेट की सहायता के लिए एक १५ सदस्यों की कौंसिल बना दी गई जिसमें कम से कम ६ सदस्य ऐसे होते थे जो दस वर्ष तक भारत में रह चुके हों अथवा नौकरी कर चुके हों। इन सदस्यों को पार्लियामेंट में बैठने अथवा राय देने का अधिकार नहीं दिया गया। 'भारत मन्त्री' अपनी कौंसिल का सभापति होता था। कौंसिल की राय को मानना उसके लिए अनिवार्य न था। वह केवल उन्हीं मामलों में अपनी कौंसिल की राय पर चलता था जिसमें भारतीय खजाने से रुपया खर्च करने का प्रश्न हो या इंडियन सिविल सर्विस सम्बन्धित कोई विषय हो। बाकी सभी मामलों में कौंसिल की राय उसके लिए बाध्य नहीं थी। इस प्रकार १८५८ के ऐक्ट ने भारत के शासन में कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया।

८. महारानी विक्टोरिया की घोषणा

इस ऐक्ट के पास होने के पश्चात् महारानी विक्टोरिया की ओर से एक घोषणा की गई, जिसमें ब्रिटिश सरकार की नीति के आवश्यक सिद्धान्तों को खोल कर समझाया गया और भारत की जनता और राजाओं को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न किया गया।

इस घोषणा में कहा गया कि "ईश्वर के आशीर्वाद से जब देश में आन्तरिक शांति

स्थापित हो जायगी तो हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत की सर्वोन्मुखी उन्नति के लिए फिर से प्रयत्न किया जाय। जनता के हित के लिए सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान की जायँ। सरकार का प्रबन्ध सारी जनता के हित की भावना से किया जाये। जनता का हित ही हमारा हित हो, उसकी सन्तुष्टि में ही हम अपनी सुरक्षा और उसकी कृतज्ञता में ही हम अपना गौरव अनुभव करें। हमारी यह भी इच्छा है कि जहाँ तक हो हमारी सारी प्रजा चाहे वह किसी भी वर्ग अथवा धर्म से सम्बन्ध रखती हो, बिना किसी भेद-भाव के हर प्रकार की सरकारी नौकरी अपनी शिक्षा तथा योग्यता के अनुसार प्राप्त कर सके। हमारे सारे सरकारी कर्मचारियों को कड़ी आज्ञा है कि वह हमारी प्रजा के धार्मिक विचारों अथवा विश्वास में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें। हमारी यह इच्छा नहीं है कि हम अपने साम्राज्य की और अधिक सीमा बढ़ावें। हम देशी राजाओं की मान मर्यादा का उतना ही आदर करेंगे जितना अपना।"

महारानी की यह घोषणा एक बहुत बड़ा महत्त्व रखती थी। इसमें केवल एक ही दोष था और वह यह कि भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार प्रदान करने की घोषणा नहीं की गई और न उन्हें देश के शासन में कोई उत्तरदायी भाग ही दिया गया। भारतीय जनता में शनैः-शनैः राजनीतिक जागृति फैल रही थी। वह साधारण मन बहलाव की सुविधाओं से सन्तुष्ट नहीं हो सकती थी। वह चाहती थी कि उसे कुछ ठोस राजनीतिक अधिकार प्रदान किये जायँ। इसीलिये जब १८६१ में प्रथम कौंसिल ऐक्ट बना जिसका वर्णन आगे किया जायगा और उसमें केवल मुट्ठी भर भारतवासियों को कौंसिल में बैठकर प्रश्न आदि पूछने की सुविधा प्रदान की गई, तो इससे जनता को किसी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ। अनेक कारणों से भारतीय जनता में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लहर दौड़ रही थी। इन कारणों में भारतीय एकता की स्थापना, पश्चिमी शिक्षा प्रणाली, यूरोप के देशों के इतिहास का ज्ञान, स्वतंत्रता और प्रजातन्त्र के नये आदर्शों का मान, तथा सन् १८८५ में इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना मुख्य थीं।

६. १८६१ का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट

भारत में ब्रिटिश राज्य के इतिहास में १८६१ का वर्ष बड़े महत्त्व का है। इस वर्ष में ही भारतवासियों को प्रथम कौंसिल के कार्यक्रम में भाग लेने की आज्ञा दी गई। १८६१ के ऐक्ट का उद्देश्य १८५३ के चार्टर ऐक्ट के दोषों को दूर करना था, जिसके द्वारा प्रान्तीय विधान सभाओं को तोड़कर केन्द्र में मिला दिया गया था।

इस ऐक्ट के द्वारा १८६१ में बम्बई और मद्रास में, १८६२ में बंगाल में, और १८८६ और १८९७ में क्रमशः पश्चिमोत्तर प्रान्त और पंजाब के लिए स्थानीय विधान सभाएँ बना दी गईं। इन विधान सभाओं में चार से आठ तक सदस्य थे जिनमें कम से कम आधे गैरसरकारी भारतीय होते थे, जिनकी नियुक्ति गवर्नर महोदय द्वारा की

जाती थी। स्थानीय विधान सभाओं को ऐसे विषयों पर कानून बनाने का अधिकार नहीं था जिन पर सारे भारतवर्ष के लिए एक-सी ही व्यवस्था की आवश्यकता थी जैसे कर लगाना, सिक्का चलाना, दण्ड विधान बनाना आदि। प्रान्तीय सभा में कोई भी बिल प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर-जनरल की 'पूर्व' आज्ञा आवश्यक थी। इसके पश्चात् बिल पास हो जाने के पश्चात् भी वह उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकता था जब तक गवर्नर-जनरल उस पर हस्ताक्षर न कर दे। इस प्रकार १८६१ के ऐक्ट के अनुसार स्थानीय विधान सभाओं को कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये, उन्हें केवल शासन के कार्य का अनुभव प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया गया।

इसी ऐक्ट के अधीन केन्द्र में एक पाँचवाँ अर्थ सदस्य गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में बढ़ा दिया गया। व्यवस्थापिका सभा में भी कुछ और सदस्य बढ़ाये गये। ऐक्ट में कहा गया कि जिस समय गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल कानून बनाये तो उसमें कम से कम ६ और अधिक से अधिक १२ और सदस्य जोड़े जायँ। इन सदस्यों में कम से कम आधे ऐसे होने चाहिये जो गैर-सरकारी सदस्य हों। गैर-सरकारी सदस्यों में कुछ सदस्यों का भारतीय होना भी आवश्यक कर दिया गया। ऐसे सभी सदस्यों को जो गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल में कानून बनाने के कार्य में सहायता देते थे, दो वर्ष के लिए नियुक्त किया जाता था। सभी कानूनों के लिए गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक रक्खी गई। भारत मन्त्री को भी अधिकार दिया गया कि वह यदि चाहें तो गवर्नर-जनरल द्वारा स्वीकृत कानूनों को रद्द कर सकते हैं।

आलोचना—इस ऐक्ट की धाराओं को ध्यान से समझने पर प्रतीत होता है कि भारतवासियों के हाथ में कोई महत्त्वपूर्ण अधिकार नहीं दिये गये। व्यवस्थापिका सभा कोई अलग संस्था नहीं बनाई गई, गवर्नर-जनरल की एक्जीक्यूटिव कौंसिल में ही कुछ थोड़े से मनोनीत सदस्यों को जोड़कर, जिनमें अधिकतर अभारतीय थे, यह संस्था बना दी गई। इस सभा में एक भी निर्वाचित भारतवासी न था और इसलिए वह सरकार की मनमानी कार्यवाही पर किसी भी प्रकार की रोक नहीं लगा सकती थी।

१८६१ के सुधारों ने भारतीयों के किसी भी वर्ग को सन्तुष्ट नहीं किया। अतः इस के पश्चात् समस्त भारतीय जनता द्वारा अंग्रेजों के हाथों से अधिकार प्राप्त करने के लिए व्यवस्थित आंदोलन किया गया। इस आन्दोलन में बहुत सी हिन्दुस्तानी संस्थाओं, जैसे ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन, बंगाल नेशनल लीग, बम्बई प्रेसीडेंसी एसोसियेशन इत्यादि ने भाग लिया। सन् १८८५ में 'इंडियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना भी कर दी गई। इन अलग-अलग संस्थाओं के आन्दोलन के फलस्वरूप सन् १८९२ में एक नया ऐक्ट पास किया गया। जिसका नाम लार्ड क्रास का इंडियन कौंसिल ऐक्ट आफ १८९२ (Lord Cross's Indian Council Act of 1892) था।

१०. १८६२ का इण्डियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट के द्वारा इंपीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता और बढ़ा दी गई। सन् १८६१ के ऐक्ट के मातहत इस कौंसिल में नामजद प्रतिनिधियों की अधिक से अधिक संख्या १२ थी। यह संख्या अब बढ़ाकर १६ कर दी गई। स्थानीय विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या भी बढ़ा दी गई। बम्बई और मद्रास प्रांतों में सदस्यों की संख्या २०, संयुक्त प्रांत में १५ और पञ्जाब और बर्मा में ६ कर दी गई। इस ऐक्ट ने गैरसरकारी सदस्यों के सरकार की आलोचना करने के अधिकारों में बढ़ोत्तरी कर दी। उन्हें कौंसिल में प्रश्न पूछने का अधिकार दे दिया गया। वार्षिक बजट भी कौंसिल के सामने रक्खा जाने लगा। परन्तु, गैरसरकारी सदस्य उस पर केवल अपनी सम्मति ही प्रकट कर सकते थे, उसमें न किसी प्रकार की घटत बढ़त ही कर सकते थे और न वोट ही दे सकते थे। 'काम रोको प्रस्ताव' प्रस्तुत करने का अधिकार भी सदस्यों को नहीं दिया गया। चुनाव की प्रणाली इस ऐक्ट के अधीन भी स्वीकार नहीं की गई। केन्द्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं—दोनों में ही, सदस्यों को विभिन्न संस्थाओं जैसे चैंबर्स आफ कामर्स, कारपोरेशन, ज़िला बोर्ड, विश्वविद्यालय, जमींदारी सभा, इत्यादि की सिफ़ारिश पर नामजद किया जाता था। यह सिफ़ारिशें भी गवर्नर-जनरल मानने के लिए बाध्य नहीं था। वह उनके विरुद्ध भी सदस्यों को नामजद कर सकता था।

आलोचना—व्यवस्थापिका सभाओं के ये मनोनीत सदस्य जिनके हाथ में किसी भी प्रकार के वास्तविक अधिकार नहीं थे, भारत की जनता के किसी भी भाग को संतुष्ट नहीं कर सके। अतः ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता में असन्तोष बढ़ने लगा। इस समय तक कांग्रेस भी पूरी शक्ति के साथ काम करने लगी थी। लार्ड करजन द्वारा किये गये बंगाल विभाजन ने असन्तोष की आग को और भी भड़का दिया। ब्रिटिश सरकार ने इस असन्तोष को गोली, बन्दूक और बर्बरतापूर्ण व्यवहार से दबाना चाहा; परन्तु इसका फल विपरीत ही हुआ। स्थान स्थान पर आतंककारी घटनाएँ घटने लगीं। बम और पिस्तौल की संस्थाओं ने जन्म लिया। जब स्थिति नियंत्रण में न आयी तो ब्रिटिश सरकार ने सोचा कि भारतवर्ष के उदार दलों को संतुष्ट करने के लिए उन्हें थोड़े से सुधार दे दिये जायँ। इसी समय भारतवर्ष के सौभाग्य से सन् १६०५ के अन्त में इंगलैण्ड की सरकार में एक परिवर्तन हुआ जिसमें टोरियों के स्थान पर उदार-दलीय (Liberal) सरकार की स्थापना हो गई। इस सरकार में लार्ड मोर्ले भारत मंत्री बने। वायसराय भी बदल दिये गये, उनके स्थान पर लार्ड मिंटो को गवर्नर-जनरल नियुक्त किया गया। यह एक वयोवृद्ध, उदार हृदय राजनीतिज्ञ थे। इनके शासन में एक कमेटी बैठाई गई जिसको भारतीय शासन में सुधार पेश करने का काम

सौंपा गया। इस कमेटी की सिफारिशों पर भारत में मिंटो-मोर्ले सुधारों (Minto-Morley Reforms) की घोषणा की गई।

११. १९०९ का इन्डियन कौंसिल ऐक्ट

इस ऐक्ट ने केंद्रीय और प्रांतीय विधान सभाओं का पुनर्संङ्गठन किया और उनमें गैरसरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी। इम्पीरियल कौंसिल के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० कर दी गई जिसमें ३३ मनोनीत और २७ निर्वाचित रक्खे गये। मनोनीत सदस्यों में २८ सरकारी और ५ गैरसरकारी थे। निर्वाचन प्रणाली प्रत्यक्ष नहीं वरन् अप्रत्यक्ष (Indirect) रक्खी गई। बम्बई, बंगाल तथा मद्रास के बड़े प्रांतों की विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या ५० और शेष सब की ३० नियत कर दी गई। केंद्रीय विधान सभा की भाँति प्रांतों की विधान सभाओं में सरकारी सदस्यों का बहुमत नहीं रक्खा गया। गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल तथा बंगाल, मद्रास, और बम्बई की गवर्नर की कौंसिल में एक भारतवासी को नियुक्त करने की अनुमति दे दी गई। गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी समिति के सबसे पहले भारतीय सदस्य, लार्ड सिनहा नियुक्त किये गये। दो भारतवासियों को भारत मंत्री की कौंसिल का भी सदस्य नियुक्त किया गया।

इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के अधिकारों की सीमा बढ़ा दी गई। उसे बजट पर बहस करने का अधिकार दे दिया गया। सदस्यों को पूरक प्रश्न करने की भी अनुमति प्रदान कर दी गई। जनता के हित की बातों पर पूरे विचार विमर्श की भी आज्ञा दे दी गई।

आलोचना—परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो इस ऐक्ट के द्वारा भी कोई वास्तविक शक्ति भारतवासियों के हाथ में नहीं दी गई। गवर्नर-जनरल की ऐक्जीक्यूटिव कौंसिल का विधान सभा पर अब भी पहले जैसा ही नियन्त्रण था। इसके अतिरिक्त इस ऐक्ट द्वारा भारत में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली की वह दूषित प्रथा लागू कर दी गई जिसके कारण भारत के दो टुकड़े हुए और सारे देश का सामाजिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया।

१२. महायुद्ध और मौन्टेग्यू की घोषणा

सन् १९१४ में प्रथम महायुद्ध छिड़ गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की कि वह प्रजातंत्र, न्याय, आत्मनिर्णय के सिद्धान्त तथा स्वतंत्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रही है। इस समय भारतवासियों ने कहा, "इस महायुद्ध में हम भी अपना बहुमूल्य रक्त बहा रहे हैं, हमारे देश में भी वही सिद्धान्त लागू किये जायँ जिनके लिए युद्ध लड़ा जा रहा है, अर्थात् हमें स्वतन्त्रता का अधिकार प्राप्त हो।" भारतवासियों की इस माँग को ध्यान में रखकर और साथ ही भारतीय जनता के उस बलिदान को देखते

हुए जो इसने महायुद्ध में दिया था, तत्कालीन भारत मंत्री ने २० अगस्त, १६१७ को हाउस ऑफ कॉमन्स में, ब्रिटिश सरकार की ओर से एक वक्तव्य दिया जिसमें उन्होंने भारत के प्रति अंग्रेज़ी शासन की नीति को स्पष्ट करके बतलाया। यह घोषणा इस प्रकार थी :—

'ब्रिटिश सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि भारतवासियों को शासन के हर एक विभाग में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ भाग दिया जाय, और ऐसी संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाय जो स्वायत्त शासन के मार्ग में लगी हुई हैं, जिससे भारत में शनैः शनैः एक उत्तरदायित्वपूर्ण शासन की नींव रक्खी जा सके और यह ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत रहकर स्वतंत्र रूप से काम कर सके।"

इस घोषणा को देखने से प्रतीत होगा कि यद्यपि यह घोषणा ब्रिटिश सरकार के दृष्टिकोण में एक भारी परिवर्तन की परिचायक थी; परन्तु फिर भी इससे भारत के शासन में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। कारण, इस घोषणा में केवल ब्रिटिश सरकार का भारत के प्रति क्या ध्येय है यह बतलाया गया था, और इस ध्येय की पूर्ति में कितना समय लगेगा, यह कुछ नहीं कहा गया। इस घोषणा के फलस्वरूप भारतीय विधान में कुछ सुधारों की घोषणा तो अवश्य की गई; परन्तु यह सुधार जनता की दृष्टि में पूर्ण रूप से अपर्याप्त थे।

सन् १६१७ के शीतकाल में मौन्टेग्यू भारत में आये और उन्होंने लार्ड चैम्सफोर्ड के साथ मिलकर समस्त भारत का भ्रमण किया। उनसे बहुत से शिष्टमंडलों ने भेंट की और उन्हें बहुत से मानपत्र दिये गये। सन् १६१८ ई० में उन्होंने मिलकर ब्रिटिश पार्लियामेंट को एक रिपोर्ट पेश की जिसका नाम "मौन्ट फोर्ड रिपोर्ट" पड़ा, और इसी के आधार पर सन् १६१६ का गवर्नमेंट आफ इंडिया ऐक्ट पास किया गया।

१३. सन् १६१६ का गवर्नमेंट आफ इण्डिया ऐक्ट

इस ऐक्ट द्वारा केन्द्रीय सरकार की आकृति बिलकुल बदल दी गई, और प्रान्तों में द्वैध शासन प्रणाली (*Dyarchy*) का आरम्भ किया गया। इस कानून के मुख्य अंगों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

(१) गृह सरकार (Home Government)—लन्दन स्थित भारत मंत्री (Secretary of State for India) का वेतन अभी तक भारत के कोष से दिया जाता था, परन्तु इस ऐक्ट के द्वारा वह भार अब इंगलैंड के कोष पर डाल दिया गया। उसकी परिषद् (Council) के सदस्यों की संख्या ८ से लेकर १२ तक कर दी गई। भारत सरकार पर उसके शासनाधिकार वैसे ही रहे, परन्तु उसे अपने अधिकार केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के हवाले करने की शक्ति दे दी गई।

(२) भारत के हाई कमिश्नर का एक नया कार्यालय लन्दन में खोल दिया गया और उसका वेतन तथा व्यय भारत सरकार पर डाला गया।

(३) *केन्द्रीय शासन*—केन्द्र में एक सदन वाली इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के स्थान पर द्विसदनीय व्यवस्थापिका सभा बना दी गई। उच्च सदन का नाम राज्य परिषद् (Council of State) और निम्न सदन का नाम विधान सभा (Legislative Assembly) रक्खा गया। परिषद् के ६० और विधान सभा के १४५ सदस्य नियत किये गये। इन सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये। उन्हें कानून बनाने, प्रश्न करने तथा प्रस्ताव पास करने की शक्ति दे दी गई। कुछ प्रतिबन्धों के अधीन उन्हें बजट के कुछ अंशों पर भी मत देने का अधिकार दे दिया गया, यद्यपि राजस्व सम्बन्धी अन्तिम शक्ति गवर्नर जनरल के हाथ में ही रही। विधान सभा की अवधि ३ वर्ष और राज्य परिषद् की ५ वर्ष रक्खी गई।

(४) गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ८ कर दी गई। इनमें से ३ सदस्य भारतीय और ३ सदस्य ऐसे रक्खे गये जो कम से कम १० वर्ष तक किसी उच्च सरकारी पद पर काम कर चुके हों और एक सदस्य इंगलैंड या भारत के हाईकोर्ट का बैरिस्टर रह चुका हो।

गवर्नर जनरल को अधिकार दिया गया कि विशेष परिस्थितियों में वह अपने विशेषाधिकारों से कार्यकारिणी के सदस्यों की सम्मति को अस्वीकार कर सके। गवर्नर-जनरल की कौंसिल के सदस्यों में कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया :

(१) राजनीतिक सदस्य (गवर्नर-जनरल), (२) रक्षा सदस्य (सेनापति), (३) राजस्व सदस्य, (४) व्यापार सदस्य, (५) कानून (लॉ) सदस्य, (६) उद्योग तथा श्रम सदस्य, (७) यातायात सदस्य, तथा (८) शिक्षा और स्वास्थ्य सदस्य।

(५) *प्रान्तीय शासन*—प्रान्तीय विधान सभाओं में भी सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और यह निश्चित किया गया कि कम से कम ७० प्रतिशत सदस्य निर्वाचित हों। उत्तर प्रदेश (यू० पी०) में १२३ सदस्य नियुक्त किये गये जिनमें से १०० चुनाव द्वारा और २३ गवर्नर द्वारा नामजद होते थे। विधान सभाओं के अधिकार भी बढ़ा दिये गये और मतदाताओं की संख्या भी।

(६) गवर्नर की कार्यकारिणी (Executive) में आंशिक उत्तरदायी शासन अर्थात् द्वैध शासन (Dyarchy) प्रारम्भ किया गया। इसके अनुसार प्रशासन के दो भाग किये गये : (१) रक्षित (Reserved) विभाग और (२) हस्तान्तरित (Transferred) विभाग। रक्षित विभागों का शासन तो राज्यपाल (गवर्नर) अपनी कार्यकारिणी की सहायता से करते रहे। उस विभाग में राजस्व (Revenue), न्याय (Justice), कारावास (Jail), नहर (Irrigation) तथा अकाल

(Forest) सम्बन्धी महकमे थे। हस्तान्तरित विभाग में शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय स्वशासन, ग्राम सुधार, कृषि आदि का प्रबंध मन्त्रिमंडल के अधीन कर दिया गया। वह मन्त्री निर्वाचित सदस्यों में से लिये जाते थे। रक्षित विभागों में भी आधे के लगभग सदस्य भारतीय ही रक्खे जाते थे।

स्थानीय स्वशासन—नगरपालिकाओं (Municipalities) और जिला मंडलियों (District Boards) को अधिक अधिकार दे दिये गये। उनमें भी निर्वाचित सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई और प्रधान भी निर्वाचित नियत किये गये। *मतदाताओं की भी संख्या बढ़ा दी गई।*

विधान की आलोचना—मान्ट फोर्ड के सुधारों को समस्त भारतवासियों ने असंतोषजनक और अपर्याप्त पाया। युद्ध में सहायता के बदले जो भारतवासी अँग्रेजों से बहुत कुछ अधिकार पाने की आशा लगाये बैठे थे उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। क्षोभ और क्रोध की ज्वाला रौलट ऐक्ट पास होने और जलियाँवाला बाग की हत्याओं से और भी भड़क उठी। पंजाब में मार्शल लॉ और खिलाफत आन्दोलन ने जलती आग पर तेल का काम किया। इस प्रकार कांग्रेस ने व्यवस्थापिका सभाओं का बहिष्कार करके देशव्यापी 'असहयोग आन्दोलन' आरम्भ कर दिया। इसके शान्त होने पर श्री मोतीलाल नेहरू और चितरंजन दास की अध्यक्षता में स्वराज्य पार्टी बनाई गई जिससे व्यवस्थापिका सभाओं के अन्दर से भी विरोध की नीति पर काम किया जा सके। तदनन्तर स्वतन्त्र उपनिवेश (Dominion Status) की माँग की गई।

१४. साइमन कमीशन

सन् १९१९ के ऐक्ट में १० वर्ष के पश्चात् एक शाही कमीशन की नियुक्ति का आयोजन किया गया था जो कि भारत जाकर नये शासन के हानि लाभ की जाँच करता और शासन विधान में परिवर्तन के साधन रखता। सन् १९२७ में अर्थात् निश्चित समय से दो वर्ष पहले ही सर जान साइमन की अध्यक्षता में यह कमीशन भेजा गया। परन्तु, इस कमीशन का कोई भी सदस्य भारतीय नहीं था, इसलिए भारतवासियों ने इसका पूर्ण रूप से बहिष्कार किया।

१५. प्रथम गोलमेज सम्मेलन (१२ नवम्बर १९३० से जनवरी सन् १९३१ तक)

इसी समय इंगलैंड के शासक मंडल में परिवर्तन हुआ। अनुदार पार्टी (Conservative) के स्थान पर मजदूर (Labour) दल के हाथ में राज्य सत्ता आ गई। उसने भारतीयों से विचार-विनिमय करने के लिए लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन बुलाया। परन्तु सम्मेलन बुलाते समय यह घोषणा नहीं की गई कि भारत को स्वतन्त्र उपनिवेश बना दिया जायगा। इसलिए कांग्रेस ने इसका बहिष्कार करके देश व्यापी असहयोग आन्दोलन आरम्भ कर दिया।

यह आन्दोलन बड़ा सफल हुआ और सहस्रों सत्याग्रही जेलों में गये। तो भी लंदन में नवम्बर १९३० में सम्मेलन हुआ जिसमें १३ प्रतिनिधि रजवाड़ों के और ५७ ब्रिटिश भारत के सम्मिलित हुए। कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि इस सम्मेलन में शामिल नहीं हुआ। सम्मेलन ने निर्णय किया कि भारत में संघ शासन (Federation) बनाया जाय और विशेष प्रतिबन्धों के साथ केन्द्र में उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय।

सम्मेलन के अनन्तर, श्री जयकर और सर तेज बहादुर सप्रू के प्रयास से कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार के बीच एक संधि कराई गई जिसे 'गांधी इरविन समझौता' कहते हैं। इस संधि द्वारा सब सत्याग्रही जेल से मुक्त कर दिये गये और गांधी जी ने सितम्बर सन् १९३१ में दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने का निश्चय किया।

१६. दूसरा गोलमेज सम्मेलन (७ सितम्बर से १८ दिसम्बर १९३१ तक)

जब दूसरा सम्मेलन हुआ तो इंगलैंड में मजदूर दल की सरकार के स्थान पर एक मिली-जुली सरकार बन गई थी जिसमें प्रधान मन्त्री तो पूर्ववत् रैमजे मैकडानल्ड ही थे परन्तु मन्त्रियों की अधिकतर संख्या अनुदार (Conservative) दल के सदस्यों की थी। भारत सचिव के पद पर भी उदार दलीय सर वैजवुड बैन के स्थान पर एक कट्टरपंथी अनुदार दलीय सर सैमुएल होर नियुक्त हो गये थे। महात्मा गांधी के उपस्थित होने पर भी यह सम्मेलन सफल न हो सका; कारण, चालाक अँग्रेजों ने अपने मनमाने चुने हुए भारतीय प्रतिनिधियों के सम्मुख साम्प्रदायिक समस्या रख दी और उनसे कहा कि पहिले तुम इसे सुलझा लो, फिर और बातों पर विचार होगा। फल यह हुआ कि साम्प्रदायिक नेता अँग्रेजों की पट्टी पढ़कर किसी भी समझौते पर न पहुँच सके और सम्मेलन असफल रहा।

महात्मा गांधी अति निराश होकर भारत लौटे। वहाँ उन्होंने देखा कि समस्त भारत में लार्ड विलिंगडन की पुलिस, फौज और गोलियों का शासन चल रहा है और हजारों देशभक्त जेलों में ठूँस दिये गये हैं। कुछ काल पश्चात् महात्मा गांधी को स्वयं भी कारागार में ढकेल दिया गया।

१७. साम्प्रदायिक निर्णय (अगस्त १९३२)

जब गोलमेज सम्मेलनों में साम्प्रदायिक नेता आपस में किसी प्रकार का समझौता न कर सके तो प्रधान मन्त्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने साम्प्रदायिक पंचाट की घोषणा करने का कार्य स्वयं सँभाला। श्री मसानी ने लिखा है कि "इस निर्णय को पंचाट (Award) कहना अशुद्ध है। पंचाट तो पंचायत के फैसले को कहते हैं और वह भी तब जब झगड़े वाले दल स्वयं पंचायत का निर्माण करें। इस मामले में तो झगड़े का निर्णायक अँग्रेजी प्रधान मंत्री को किसी ने बनाया ही नहीं था और, न गोलमेज सभा के

साम्प्रदायिक नेता ही सम्प्रदायों के चुने हुए प्रतिनिधि थे। वह तो ब्रिटिश सरकार द्वारा ही चुने हुए उनके पिट्ठू थे। इसलिए यदि कोई सरपच-नामा प्रधान मन्त्री के नाम लिख देते तो भी उसका निर्णय भारत को मान्य न होता। परन्तु यहाँ तो ऐसा भी कोई सरपचनामा रैमजे मैकडानल्ड के लिए नहीं लिखा गया था।"

साम्प्रदायिक पञ्चाट ने भारतीयों को मतों के आधार पर विभक्त करके आपस में लड़ने-भिड़ने को प्रोत्साहित किया और धर्मान्धता तथा मिथ्या जातीयता के प्रदर्शन को भारी उत्तेजना दी।

पचाट द्वारा विधान सभाओं में सीटों का विभाजन इस प्रकार किया गया :

साधारण ७०५, हरिजन ७१, पिछड़े हुए क्षेत्र ७०, सिख ३५, मुसलमान ४८६, ईसाई २१, एग्लो इडियन १२, योरोपियन २५, व्यापार व उद्योग के प्रतिनिधि ४५, जमींदार ३५, विश्वविद्यालय ८ तथा श्रमिक ३८।

१८. पूना का समझौता (१९३२)

साम्प्रदायिक पंचाट ने अछूतों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार देकर उन्हें हिन्दू समाज से विभक्त कर दिया था। महात्मा गाधी ने इस अन्याय का मुकाबला करने के लिए आमरण व्रत धारण करने का निश्चय किया। व्रत धारण करने के पश्चात् जब उनकी दशा अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई तो हिन्दू और अछूत नेताओं ने मिलकर पूना में एक समझौता किया जिसके द्वारा अछूतों को ७१ स्थानों के बजाय १४८ स्थान दे दिये गये परन्तु उनको हिन्दुओं से अलग रहकर नहीं उनके साथ मिलकर राय देने का अधिकार दिया गया।

इस समझौते से अछूतों के स्थान दुगुने से भी अधिक हो गये; परन्तु बंगाल के हिन्दुओं के साथ इससे बड़ा अन्याय हुआ। वहाँ हिन्दुओं की समस्त सीटें ८० थीं। इनमें से ३० अछूतों के लिए सुरक्षित हो गयीं और शेष के लिए भी निर्वाचन लड़ने का अधिकार उन्हें दे दिया गया। इस प्रकार विधान सभा के २५० स्थानों में से हिंदुओं को केवल ५० से भी कम सीटें प्राप्त हुईं, अर्थात् १६ प्रतिशत, जब कि उनकी जन-सख्या ४० प्रतिशत थी और वह ८० प्रतिशत कर देते थे।

१९. तीसरा गोलमेज सम्मेलन (१६ नवम्बर से २४ दिसम्बर १९३२ तक)

साम्प्रदायिक पंचाट के घोषित होने के पश्चात् लदन में तीसरी गोलमेज कान्फ्रेंस हुई। इसमें भी कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुआ। पहले सम्मेलनों की अपेक्षा यह एक छोटी सी बैठक थी जिसमें कि पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार कुछ काम किया गया।

श्वेत-पत्र (White Paper) *१८ मार्च १९३३*—तीसरे गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति पर भारत में वैधानिक सुधारों के विषय में ब्रिटिश सरकार ने मार्च सन् १९३३

में एक 'श्वेत पत्र' प्रकाशित किया। इसमें वर्णित योजनाओं ने देश भर में क्षोभ की लहर दौड़ा दी और सब पक्षों ने निश्चय किया कि वह इस योजना को स्वीकार नहीं करेंगे।

२०. संयुक्त पार्लियामेंटरी कमेटी और १९३५ का विधान

श्वेत पत्र एक बिल के रूप में ब्रिटिश पार्लियामेंट के सम्मुख रक्खा गया और उसकी जाँच के लिए सब ब्रिटिश पार्टियों की ओर से एक संयुक्त समिति बना दी गई। इस कमेटी के सम्मुख राय देने तथा अपने सुझाव पेश करने के लिए कुछ भारतीय भी नियुक्त किये गये। इन भारतीय सदस्यों ने एक मैमोरैंडम में कमेटी के सम्मुख कुछ न्यूनतम माँगें रक्खीं जिनसे कि भारतवासियों को कुछ सन्तोष हो सकता था। परन्तु भारत के गोरे शासकों को यह माँगें भी स्वीकार न हुईं और अपने अन्तिम रूप में बिल और भी कलुषित बना दिया गया। २ अगस्त, सन् १९३५ को पार्लियामेंट ने भारतीय विधान पास कर दिया। इसमें विशेष बात यही थी कि कहीं भी इस विधान में भारत को स्वतन्त्र उपनिवेश (Dominion Status) बनाने का ज़िक्र तक न किया गया था।

इस विधान में ४७८ धाराएँ तथा १६ परिशिष्ट थे। ४५५ पृष्ठों पर छपे हुए इस विधान की मुख्य मुख्य बातें यह थीं :—

(१) *गृह-सरकार*—इंगलैंड में स्थित गृह सरकार के स्वरूप में इस विधान के अन्तर्गत समुचित परिवर्तन किया गया। भारत मन्त्री की कौंसिल तोड़ दी गई और उसके स्थान पर एक परामर्शदाताओं की सभा बना दी गई। भारत मन्त्री के अधिकारों में भी काफ़ी कमी कर दी गई जिससे नये विधान के अन्तर्गत प्रान्तों में पूर्ण उत्तरदायित्व-पूर्ण और केन्द्र में आंशिक उत्तरदायी शासन का आरंभ हो सके।

(२) *संघ विधान*—ऐक्ट के अन्तर्गत सारे सूबों तथा रियासतों को मिला कर एक संघ स्थापित करने की योजना रक्खी गई। इस योजना के अधीन केन्द्रीय सरकार को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए प्रान्तों तथा केन्द्र के अधीन कार्य का विभाजन इस प्रकार किया गया कि ५९ विषयों पर केंद्रीय सरकार को कानून बनाने का अधिकार दिया गया, ५४ विषयों पर प्रान्तीय सरकार को और ३६ विषय समवर्ती (concurrent) रक्खे गये जिन पर दोनों प्रान्तीय तथा केंद्रीय सरकारें कानून बना सकती थीं, परंतु विरोध की दशा में केंद्रीय कानून ही सर्वोपरि माना जाता था। बचे हुए अधिकार (Residuary powers) केन्द्र के अधीन ही रक्खे गये।

(३) *केन्द्रीय शासन*—केंद्रीय सरकार के अधीन एक द्वैध शासन प्रणाली (dyarchy) के आरम्भ की योजना रक्खी गई। रक्षा, विदेशों से सम्बन्ध, कबाइली इलाके तथा ईसाइयों के धर्म सबन्धी विषय रक्षित (Reserved) रक्खे गये। शेष अधिकार मन्त्रियों के हाथ में सौंपे जाते थे। परंतु इन हस्तान्तरित (Transferred)

विभागों में भी गवर्नर जनरल को मन्त्रियों के काम में हस्तक्षेप करने के विशेष अधिकार प्रदान किये गये।

(४) *प्रान्तीय शासन*—सूबों में द्वैध शासन प्रणाली का अन्त करके पूर्ण उत्तरदायी शासन की नींव रक्खी गई। सब अधिकार मन्त्रियों के हाथ में सौंप दिये गये। परन्तु केन्द्र की भाँति प्रान्तों में भी गवर्नरों के हाथ में विशेष अधिकार दिये गये जिससे वह मंत्रियों के काम में मनमाना हस्तक्षेप कर सकें। कुछ प्रान्तों मे इस ऐक्ट के अधीन दो भवन बना दिये गये। नामजद सदस्यों की सख्या बहुत कम कर दी गई।

(५) *मताधिकार*—१६१६ के विधान में भारत की केवल ३% जनता को मत देने का अधिकार दिया गया था। नये विधान में यह संख्या बढ़ा कर १३% कर दी गई और बहुत सी स्त्रियों को राय देन का अधिकार दे दिया गया।

(६) *नये प्रान्त*—ऐक्ट के अधीन बर्मा भारत से अलग कर दिया गया। सिंध तथा उड़ीसा के दो नये सूबे बना दिये गये और कुल प्रान्तों की संख्या ११ निश्चित कर दी गई।

(७) *फेडरल कोर्ट तथा रिजर्व बैंक की स्थापना*—सघ शासन होने के कारण नये विधान के अन्तर्गत भारत में एक सघीय न्यायालय तथा रिजर्व बैंक की स्थापना की गई। इन दोनों सस्थाओं का एकसंघीय विधान के अन्तर्गत होना नितान्त आवश्यक है।

२१. १६३५ के सविधान पर कार्य

नये सविधान के अन्तर्गत सन् १६३७ में प्रान्तों मे चुनाव हुए। इन चुनावों में भारत के ७ प्रान्तों में कांग्रेस को बहुमत प्राप्त हुआ। कांग्रेस १६३५ के विधान से बिलकुल असन्तुष्ट थी और वह किसी भी दशा में उसे स्वीकार करना न चाहती थी; परन्तु विरोधी दलों को सरकार की सत्ता हड़प करने से रोकने के लिए उसने चुनावों में भाग लिया और फिर प्रांतों के गवर्नरों के आश्वासन देने पर कि वह मन्त्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने ८ प्रांतों में अपने मन्त्रि मंडल बनाये। शेष प्रांतों में स्वतन्त्र दलों की सरकारें बन गईं। इस प्रकार १६३५ के विधान का प्रान्तीय भाग कार्यान्वित हो गया परन्तु सघीय भाग चालू न हो सका। इसके दो मुख्य कारण थे—एक तो यह कि केन्द्रीय शासन व्यवस्था इतनी असन्तोषजनक थी, और उसके अन्तर्गत मंत्रियों को इतने कम अधिकार सौंपे गये थे, कि भारत की प्रत्येक राजनीतिक पार्टी ने उसका विरोध किया और उसे स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, और दूसरे यह कि रियासतों ने भी सघीय शासन में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया। प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रिमंडलों ने बहुत प्रशसनीय कार्य किया। उन्होंने किसानों की अवस्था सुधारने, कृषि में उन्नति करने, उद्योग धंधों को सहायता देने, शिक्षा-प्रसार तथा मादक

२

वस्तुओं की बिक्री को रोकने के लिए अनेक योजनाएँ बनाईं। उनका कार्य इतना अच्छा रहा कि न केवल भारतीय ने वरन् बहुत से इङ्गलैंड और दूसरे देश के राजनीतिक नेताओं ने उनके कार्य की भूरिभूरि प्रशंसा की।

२२ दूसरा महायुद्ध और भारत का स्वतन्त्रता संग्राम

सन् १९३९ में दूसरा योरोपीय युद्ध छिड़ा। ब्रिटिश सरकार ने भारत में केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों की राय लिये बिना ही हमारे देश को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस समय कांग्रेस ने कहा कि वह युद्ध में उस समय तक सम्मिलित होना नहीं चाहती जब तक वही सिद्धान्त जिनके लिए युद्ध लड़ा जा रहा है भारत में भी लागू न किये जावें अर्थात् देश को स्वतन्त्र न किया जाय। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की यह माँग स्वीकार नहीं की। फलतः कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने सब प्रान्त में त्यागपत्र दे दिया और केवल पंजाब, बगाल और सिंध में ही दूसरे दलों के मन्त्रिमण्डल काम करते रहे। शेष प्रान्तों में गवर्नरों ने वैधानिक संकट की घोषणा करके शासनकार्य अपने हाथ में सम्भाल लिया। उसके कुछ दिन पश्चात् कांग्रेस ने वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ किया।

२३. ब्रिटिश सरकार की अगस्त सन् १९४० की घोषणा

इस आन्दोलन से प्रभावित होकर ब्रिटिश सरकार ने अगस्त १९४० में एक घोषणा की जिसमें कहा गया कि 'ब्रिटिश सरकार का ध्येय भारत में युद्ध के पश्चात् शीघ्रातिशीघ्र स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्वराज्य कायम करना है। भारत का विधान भारतीयों द्वारा ही बनाया जायगा परन्तु यह विधान बनाते समय भारत सरकार की वह समस्याएँ ध्यान में रखनी पड़ेंगी जो भारत के इङ्गलैंड से एक दीर्घकालीन सम्बन्ध के कारण उत्पन्न हो गई हैं।" इस घोषणा के साथ गवर्नर जनरल ने एलान किया कि वह अपनी कार्यकारिणी में ऐसे नये सदस्यों की नियुक्ति करने के लिए तैयार हैं जो भारतीय हितों का प्रतिनिधित्व कर सकें।

आलोचना—इस घोषणा से भारतवासियों को किसी प्रकार का भी सन्तोष नहीं हुआ, कारण गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में कुछ सदस्यों की नियुक्ति के अतिरिक्त उन्हें वर्तमान में कोई और अधिकार सौंपने की योजना नहीं रक्खी गई थी। स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्वराज्य देने का वचन युद्ध के पश्चात् दिया गया था। सब राजनीतिक दलों ने इसलिए गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में अपने प्रतिनिधि भेजने से इन्कार कर दिया। परन्तु, जुलाई सन् १९४१ में ब्रिटिश सरकार ने स्वयं युद्ध से बढ़े हुए कार्य को चलाने के लिए गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में ५ और सदस्यों की नियुक्ति कर दी। यह सदस्य किसी राजनीतिक दल का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे और उनकी नियुक्ति से जनता को किसी भी प्रकार का सन्तोष नहीं हुआ।

२४. क्रिप्स योजना

नवम्बर सन् १६४१ में जापान महायुद्ध में शरीक हो गया। इससे युद्ध-सचालन की दृष्टि से भारत की स्थिति में एक बड़ा भारी अन्तर उत्पन्न हुआ। भारतीय जनता के सहयोग के बिना अब जापान के विरुद्ध बलपूर्वक युद्ध नहीं लड़ा जा सकता था। जापानियों ने बहुत शीघ्र बर्मा और सिंगापुर पर अधिकार जमा लिया और वह भारत पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। ब्रिटिश सरकार ने इस युद्ध म भारतीय जनता का सहयोग प्राप्त करने के लिए मार्च सन् १६४२ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स को कुछ योजनाओं के साथ भारत भेजा। सर स्टैफर्ड क्रिप्स जिस योजना को भारत में लाये उसके मुख्य रूप से दो भाग थे :—

(१) *युद्धोत्तरयोजना*—इस योजना के अधीन भारतवासियों से कहा गया कि युद्ध के पश्चात् उन्हें अपना विधान स्वय अपनी ही चुनी हुई सविधान सभा द्वारा बनाने की आज्ञा दे दी जायगी। इस सविधान सभा में प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा सदस्य चुने जायँगे जिनकी सख्या प्रान्तीय विधान सभा की कुल सख्या का $\frac{1}{10}$ भाग होगी। रियासतों को भी इस सविधान सभा में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया *जायगा, जिनकी सख्या उनकी जनसख्या के अनुपात से उतनी ही होगी जितनी* प्रान्तों की। इस सविधान सभा को भारत के लिए मनचाहा विधान बनाने की स्वतन्त्रता होगी। केवल उसमें अल्पसख्यकों के हितों की रक्षा तथा ब्रिटिश सरकार से एक प्रकार के समझौते का आयोजन होगा। इस योजना में यह भी कहा गया कि यदि कोई सूबे या देशी रियासतें सविधान सभा में भाग लेने के पश्चात् यह अनुभव करेंगी कि उन्हें प्रस्तावित विधान स्वीकार नहीं है तो उन्हें इस बात की स्वतन्त्रता होगी कि *वह भारतीय यूनियन से अलग रहकर अपना एक अलग स्वतत्र उपनिवेश बना सकें।* इस प्रकार प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग से प्रभावित होकर अपनी योजना में मुसलमानों को खुश करने के लिए भारत के टुकड़े किये जाने के लिए अपनी स्वीकृति प्रकट की।

अल्पकालीन योजना—उपरोक्त योजना पर केवल युद्ध के उपरान्त कार्य होना था। वर्तमान भारत सरकार में परिवर्तन करने के लिए क्रिप्स योजना में केवल इतना कहा गया कि गवर्नर-जनरल स्वयं अपनी कार्यकारिणी के कार्य में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। कांग्रेस चाहती थी कि कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में काम करे और गवर्नर-जनरल कार्यकारिणी के केवल एक वैधानिक अध्यक्ष हों। वह देश की रक्षा सम्बन्धी समस्याओं में भी समुचित भाग चाहती थी।

कांग्रेस की यह दोनों माँगें सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने स्वीकार नहीं कीं। फलत: समझौते की बातें भग हो गईं और सर स्टैफर्ड क्रिप्स इगलैंड वापस चले गये।

कांग्रेस ने अपनी ओर से राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए क्रिप्स योजना के युद्धोत्तर भाग के अत्यन्त असंतोषजनक होने पर भी उसे स्वीकार करने का प्रयत्न किया और केवल यह माँग ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रखी कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी एक कैबिनेट के रूप में कार्य करे। आरम्भ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स ने इस प्रकार का आश्वासन दे दिया। परन्तु, फिर न जाने किन कारणों से, ब्रिटिश प्रधान मंत्री मि० चर्चिल की कोई आज्ञा न मिलने से, या किसी और कारण, वह अपने वचन से फिर गये। युद्धोत्तर योजना में भारतीय रियासतों की जनता को विधान परिषद् में अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नहीं दिया गया था। यह अधिकार केवल रियासतों के राजाओं को दिया गया था जो ब्रिटिश सरकार के पिट्ठू थे और स्वतन्त्र इच्छा से कार्य न कर सकते थे। युद्धोत्तर योजना का दूसरा सबसे बड़ा दोष यह था कि इसके द्वारा असंतुष्ट प्रान्तों तथा रियासतों को भारत के टुकड़े करने की आज्ञा दे दी गई। इतना होने पर भी कांग्रेस ने प्रयत्न किया कि ब्रिटिश सरकार से किसी प्रकार का समझौता हो जाय। परन्तु, मि० चर्चिल की अनुदार दलीय सरकार भारतीयों को किसी प्रकार के अधिकार देना नहीं चाहती थी। उसने तो केवल संसार की जनता की आँखों में धूल झोंकने और यह बतलाने के लिए कि वह तो भारतवासियों को सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए तैयार है; परन्तु भारतवासी स्वयं इतने निकम्मे हैं कि वह आपस में किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सकते, सर स्टैफर्ड क्रिप्स को भारत भेजा था। इस समझौते की बातें टूटने का फल यह हुआ कि भारत में राजनीतिक क्षोभ दिन प्रति दिन बढ़ता गया और अन्त में अगस्त सन् १९४२ में भारत में प्रसिद्ध राजनीतिक क्रांति हुई।

२५. 'भारत छोड़ो' आन्दोलन

८ अगस्त सन् १९४२ को 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी' ने अपने बम्बई के अधिवेशन में प्रसिद्ध 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। इसके पश्चात् देश में पाशविक अत्याचार, दमन तथा हिंसा का सरकार की ओर से वह ताडव नृत्य रचा गया जिसके कारण प्रस्ताव पास होने के तुरन्त पश्चात् लाखों देशभक्त नर और नारी, जेल की कालकोठरियों में ठूँस दिये गये और हजारों नवयुवकों को गोलियों का शिकार बनाकर मौत के घाट उतार दिया गया। अपने ८ अगस्त के प्रस्ताव में कांग्रेस ने सरकार के विरुद्ध अवज्ञा आन्दोलन की घोषणा नहीं की थी, वरन् प्रस्ताव में कहा गया था कि महात्मा गांधी पहले वायसराय से मिलकर समझौते की बातचीत करेंगे। इस बातचीत के असफल होने पर ही अवज्ञा आन्दोलन आरम्भ होना था। परन्तु सरकार ने गांधी जी की मुलाकात की प्रतीक्षा किये बिना ही देश भर में पुलिस और फौज की गोलियों का राज्य कायम कर दिया। जनता ने भी उत्तेजित होकर सरकार की दमन नीति का

हिंसा से मुकाबिला किया और हजारों पुलिस के थाने, रेलवे स्टेशन, डाक व तारघर तथा सरकारी इमारतें आग की भेंट हो गईं।

२६. महात्मा गांधी का ऐतिहासिक व्रत

ब्रिटिश सरकार ने इन उपद्रवों की सारी जिम्मेदारी कांग्रेस के मत्थे मढ़नी चाही और एक पुस्तक निकाल कर उसने कांग्रेस के उच्च नेताओं के विरुद्ध अनेक हिंसा सम्बन्धी आरोप लगाये। महात्मा गांधी को जिस समय जेल के अन्दर इस हिंसा के नग्न दृश्य का पता चला तो उन्होंने १० फरवरी सन् १९४३ से सरकार की हिंसक नीति में परिवर्तन लाने के लिये २१ दिन तक व्रत रखने का निश्चय किया। इस समाचार ने देश के अन्दर फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर फूँक दी और देश के कोने-कोने में सभाओं, जुलूसों तथा प्रस्तावों द्वारा सरकार से प्रार्थना की जाने लगी कि वह महात्मा गांधी को तुरन्त जेल से मुक्त कर दे। जिस समय महात्मा गांधी ने पूना की आगा खाँ जेल में अपने जीवन का चौदहवाँ व्रत धारण किया था उनकी आयु ७३ वर्ष की थी और उनके कमजोर स्वास्थ्य को देखते हुए किसी को भी यह आशा न थी कि वह २१ दिन की घोर तपस्या से निकल कर जीवित रह सकेंगे। इसीलिए सरकार पर दबाव डालने के लिए न केवल जनता ने ही आन्दोलन किया वरन् वायसराय की कार्यकारिणी के ३ सदस्यों ने भी अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। परन्तु इन सब आन्दोलनों से सरकार के सर पर जूँ तक न रेंगी। वह तो चाहती थी कि गांधीजी परलोक सिधार जाँय और सदा के लिए उसकी मुसीबत का अन्त हो जाय। परन्तु ईश्वर की कुछ और ही इच्छा थी। महात्मा गांधी इस अग्नि परीक्षा में पूरे उतरे और ३ मार्च सन् १९४३ को उनका व्रत सफलतापूर्वक समाप्त हो गया।

२७. गांधी जी की जेल से रिहाई

मई सन् १९४४ में महात्मा गांधी आगा खाँ जेल में सख्त बीमार पड़े। इस डर से कि कहीं इस बीमारी से गांधीजी के उसी प्रकार प्राणान्त न हो जायँ, जिस प्रकार उनकी धर्मपत्नी श्रीमती कस्तूरबा गांधी और महादेव भाई उसी जेल में मर गये थे सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त कर दिया। अगस्त सन् १९४४ में भारत के गवर्नर-जनरल लार्ड लिनलिथगो इंगलैंड वापस चले गये और उनके स्थान पर लार्ड वेवल की नियुक्ति की गई। इस सैनिक राजनीतिज्ञ ने भारत आकर तुरन्त बिगड़ी हुई स्थिति को सुधारने के लिए कदम उठाया और १४ जून सन् १९४५ को उसने ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने के पश्चात् देश के राजनीतिक नेताओं के सम्मुख एक सुझाव रखा जो 'वेवल सुझाव' के नाम से प्रसिद्ध है।

२८. वेवल सुझाव (Wavell Offer)

लार्ड वेवल ने इस योजना में अपनी कार्यकारिणी के पुनर्संगठन की बात कही।

उन्होंने कहा कि वह अपनी कार्यकारिणी में सेनापति को छोड़ कर शेष सभी सदस्य भारतीय रखने को तैयार हैं और वह भी ऐसे भारतीय जो राजनीतिक दलों के नुमाइन्दे हों और जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व कर सकें। इस प्रकार उन्होंने कहा कि प्रथम बार भारतीयों को राजस्व, रक्षा तथा विदेशी नीति सम्बन्धी मामलों पर अधिकार प्राप्त हो सकेगा और वायसराय की कार्यकारिणी एक मन्त्रिमण्डल के समान कार्य कर सकेगी। परन्तु इन सुझावों में कई दोष थे :—

(१) प्रथम यह कि इस योजना के अधीन यह कहा गया था कि सवर्ण हिंदुओं तथा मुसलमानों को गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में बराबरी के स्थान दिये जायेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि ७० प्रतिशत हिन्दुओं को देश के शासन में उतना ही भाग मिलता था जितना कि २६ प्रतिशत मुसलमानों को।

(२) दूसरे, लार्ड वेवल ने कहा कि उनकी कार्यकारिणी व्यवस्थापिका सभा के प्रति नहीं वरन् उनके स्वयं के प्रति उत्तरदायी होगी। वह स्वयं कार्यकारिणी के प्रधान रहेंगे, और यद्यपि दिन प्रति दिन के काम में कार्यकारिणी के निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, परन्तु विशेष परिस्थितियों में ऐसा करने का उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

(३) तीसरे, कार्यकारिणी के सदस्यों की नियुक्ति किसी एक राजनीतिक दल के नेता द्वारा नहीं वरन् गवर्नर-जनरल द्वारा स्वयं की जाती थी। ऐसी दशा में कार्यकारिणी एक संयुक्त मन्त्रिमण्डल की भाँति कार्य नहीं कर सकती थी।

इन दोषों के होते हुए भी कांग्रेस ने अपनी ओर से इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि वह मुस्लिम लीग के साथ मिल कर वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जाय। परन्तु मुस्लिम लीग चाहती थी कि वायसराय की कौंसिल में केवल वही मुस्लिम सदस्य शामिल किये जाएँ जो लीग के सदस्य हों। कांग्रेस इस बात के लिए तो तैयार हो गयी कि मुस्लिम लीग अपनी ओर से कौंसिल के १४ सदस्यों में से अपने हिस्से के पाँच सदस्य मुस्लिम लीगी ही चुन ले, परन्तु उसने यह बात नहीं मानी कि वह अपने हिस्से में से भी किसी राष्ट्रीय मुसलमान को सरकार में प्रतिनिधित्व दे। कांग्रेस केवल हिन्दुओं की ही जमात नहीं थी। उसमें हजारों मुसलमान, ईसाई तथा पारसी भी थे जिन्होंने उसके साथ मिलकर स्वतन्त्रता संग्राम में पूर्ण रूप से भाग लिया था और उसके प्रतीक रूप मौलाना आजाद उसके प्रधान थे। मुस्लिम लीग ने कांग्रेस की यह बात नहीं मानी और अन्त में समझौते की बातें भंग हो गईं।

२६. आम चुनाव

शिमला सम्मेलन की असफलता के पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने केन्द्रीय तथा प्रांतीय विधान सभाओं के लिए आम चुनाव करने की घोषणा की। इन चुनावों के पीछे ब्रिटिश सरकार का यह आशय था कि उसे मालूम हो सके कि देश में कांग्रेस, मुस्लिम

लीग तथा दूसरे राजनीतिक दलों की कितनी मान्यता है। चुनावों में कांग्रेस को प्रायः सभी हिन्दू सीटों पर विजय प्राप्त हुई। मुस्लिम सीटें, सीमा प्रांत तथा पंजाब को छोड़कर, अधिकतर लीग के हाथ लगीं।

इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् कांग्रेस ने आठ प्रान्तों में अपने मन्त्रिमंडल बनाये। मुस्लिम लीग केवल बङ्गाल और सिंध में लीगी मन्त्रिमंडल बना सकी। पंजाब में सर खिजर हयात खाँ तिवाना की प्रधानता में एक मिले जुले मन्त्रिमंडल का निर्माण हुआ।

३०. भारत में ब्रिटिश शिष्ट-मंडल का आगमन

जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इङ्गलैंड में भी पार्लियामेंट के लिए नये चुनावों की घोषणा की गई। इन चुनावों में मि० चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और उसके स्थान पर मि० एटली ने एक मजदूर दलीय सरकार बनाई। मजदूर दल के नेता भारत के स्वतन्त्रता संग्राम का सदा से पक्ष लेते आये थे। वह चाहते थे कि भारत स्वतन्त्र हो जाय। इसलिए मि० एटली ने सरकार का कार्य-भार सँभालने के थोड़े ही दिन पश्चात् ६ दिसम्बर सन् १९४५ को पार्लियामेंटरी सदस्यों का एक शिष्टमंडल भारत भेजा। इस मंडल के सदस्यों में मि० सौरेन्सन और मेजर व्याट भी थे जो पार्लियामेंट में भारत सम्बन्धी प्रश्नों पर विशेष रूप से रुचि लेते थे। डेढ़ महीने तक सारे भारत का दौरा करने के पश्चात्, आरम्भ फरवरी सन् १९४६ में, शिष्टमंडल वापस इङ्गलैंड पहुँचा। वहाँ उसने पार्लियामेंट के सम्मुख अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्ट के फलस्वरूप मि० एटली ने १९ फरवरी सन् १९४६ को घोषणा की कि वह एक कैबिनेट-मिशन, जिसके सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफर्ड क्रिप्स तथा मि० एलेक्जेंडर होंगे, भारत भेजेंगे। इस मिशन का कार्य यह होगा कि वह भारत के राजनीतिक नेताओं से बातचीत करके भारतीय समस्या का कोई सन्तोषजनक हल निकाले।

३१ मि० एटली की घोषणा

जिस समय मि० एटली ने एक कैबिनेट मिशन भारत भेजने की घोषणा की तो उन्होंने दो और महत्त्वपूर्ण बयान भी पार्लियामेंट के सम्मुख दिये।

इनमें से पहले बयान में उन्होंने कहा कि "ब्रिटिश सरकार भारतवासियों की पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग स्वीकार करती है। जहाँ तक राष्ट्रमंडल की सदस्यता का प्रश्न है भारतवासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे उसका सदस्य रहना स्वीकार करें अथवा नहीं।"

दूसरे बयान में ब्रिटिश प्रधान मंत्री ने कहा कि 'किसी अल्पसंख्यक जाति को बहुसंख्यक जाति की राजनीतिक माँग पर अनियमित काल तक पानी फेरने का अधिकार

नहीं दिया जा सकता।" इन दोनों बयानों से भारत के राजनीतिक क्षेत्रों को अत्यन्त सान्त्वना मिली और वह समझने लगे कि अब वास्तव में ब्रिटिश सरकार भारतवासियों के हाथों में राज्य-सत्ता सौंपने के लिए तत्पर है।

२२. कैबिनेट मिशन (मंत्री प्रतिनिधि-मंडल का भारत में आगमन)

२ मार्च सन् १९४६ को कैबिनेट मिशन के सदस्य भारत पहुँचे और उसके तुरन्त पश्चात् उन्होंने राजनीतिक दलों के नेताओं से बातचीत का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। ५ मई सन् १९४६ को उन्होंने काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के चार-चार प्रतिनिधियों का एक संयुक्त सम्मेलन शिमले में बुलाया। इस सम्मेलन में दोनों दलों के बीच किसी प्रकार का समझौता न हो सका। अन्त में १६ मई सन् १९४६ को कैबिनेट-मिशन ने स्वयं अपनी ओर से भारतीय राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए कुछ सुझाव रखे। इन सुझावों का संक्षिप्त विवरण नीचे दिया जाता है :—

२३. *ब्रिटिश मंत्री प्रतिनिधि-मंडल की अखिल भारतीय संघ के लिए योजनायें*

प्रतिनिधि मंडल ने सर्वप्रथम इस बात का प्रयत्न किया कि काँग्रेस तथा मुस्लिम लीग के बीच भारत के भावी शासन प्रबन्ध की रूपरेखा के सम्बन्ध में कोई समझौता हो जाय। इस उद्देश्य से उसने मुस्लिम लीग की भारत विभाजन सम्बन्धी माँग पर निष्पक्ष रूप से विचार किया।

'मंत्री प्रतिनिधि मंडल' ने पाया कि यदि मुस्लिम लीग की माँग के अनुसार भारत में पाकिस्तान राज्य की स्थापना की जाय, तो उसके दो भाग होंगे—एक उत्तर-पश्चिम में, जिसमें पंजाब, सिंध, सीमाप्रांत तथा बिलोचिस्तान होंगे, और दूसरा उत्तर-पूर्व में जिसमें बंगाल और आसाम रहेंगे। इस प्रबन्ध के अधीन पाकिस्तान के उत्तरी भाग में ६२ प्रतिशत मुसलमान और ३८ प्रतिशत हिन्दू रहेंगे और पूर्वी भाग में ५१·७ प्रतिशत मुसलमान और ४८·३ प्रतिशत हिन्दू रहेंगे। शेष भागों में मुसलमानों की संख्या १४ प्रतिशत होगी। मंत्री प्रतिनिधि-मंडल ने कहा कि इस प्रकार का राज्य बनाने से भारत की साम्प्रदायिक समस्या का हल नहीं होता; न आर्थिक, शासनिक एवं सैनिक दृष्टि से ही पाकिस्तान राज्य की स्थापना व्यावहारिक ही होगी।

इसलिए उसने मुस्लिम लीग की माँग को ठुकरा दिया और भारतीय समस्या का निवारण करने के लिए अपनी ओर से निम्न सुझाव राजनीतिक दलों के सम्मुख रक्खे :—

(१) भारत में एक अखिल भारतीय संयुक्त-राष्ट्र संघ की स्थापना हो, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों सम्मिलित हों और उसके अधीन ये विषय रक्खे जायँ : विदेशी मामले, रक्षा और यातायात। इस भारतीय संयुक्त राष्ट्र को अपने विषयों के व्यय के लिए आवश्यक धन उगाहने का भी अधिकार हो।

(२) भारतीय संयुक्त राष्ट्र में एक राज्य परिषद् तथा एक विधान सभा हो जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों के प्रतिनिधि रहें। विधान सभा में कोई महत्त्वपूर्ण साम्प्रदायिक मामला प्रस्तुत होने पर उसके निर्णय के लिए दोनों प्रमुख वर्गों के जो प्रतिनिधि उपस्थित हों उनका पृथक्-पृथक् तथा समस्त उपस्थित सदस्यों का बहुमत आवश्यक हो।

(३) केन्द्रीय संगठन के लिए निर्धारित विषयों को छोड़कर अन्य समस्त विषय तथा समस्त अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को प्राप्त हों।

(४) देशी राज्य उन सब विषयों और अधिकारों को अपने अधीन रखें जिन्हें वे केन्द्र को सुपुर्द नहीं कर दें।

(५) प्रान्तों को अपने पृथक् समूह बनाने का अधिकार हो जिनकी अलग राज्य परिषद् तथा धारा सभा हो। प्रत्येक प्रान्त समूह यह तय करे कि कौन कौन से विषय समान रूप से सामूहिक शासन में रहें।

(६) भारतीय राष्ट्र तथा प्रान्त समूहों के विधानों में इस प्रकार की धारा हो जिसके द्वारा कोई भी प्रान्त अपनी धारा सभा के बहुमत से प्रथम १० वर्ष बाद और फिर प्रति दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार करने का प्रस्ताव प्रस्तुत कर सके।

उपरोक्त आधार पर भारत का संविधान बनाने के लिए मंत्री प्रतिनिधि मंडल ने यह सुझाव रक्खा कि एक संविधान सभा का निर्माण किया जाय। इस 'सभा' में १० लाख व्यक्तियों के पीछे, प्रान्तीय धारा सभाओं को निर्वाचन क्षेत्र मान कर साम्प्रदायिक आधार पर, सदस्य चुने जायँ। भिन्न भिन्न प्रान्तों से संविधान सभा में चुने जाने वाले सदस्यों की संख्या इस प्रकार हो :—

क—विभाग

प्रांत	जनरल	मुस्लिम	योग
मद्रास	४५	२	४७
बम्बई	१६	४	२३
संयुक्त प्रांत	४७	८	५५
बिहार	३१	५	३६
मध्य प्रांत	१६	१	१७
उड़ीसा	६	०	६
	१६७	२०	१८७

ख—विभाग

प्रांत	जनरल	मुस्लिम	सिक्ख	योग
पंजाब	८	१६	४	२८
उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत	०	३	०	३
सिंध	१	३	०	४
योग	९	२२	४	३५

ग—विभाग

प्रान्त	जनरल	मुस्लिम	योग
बंगाल	२७	३३	६०
आसाम	७	७	१४
योग	३४	४०	७४
ब्रिटिश भारत का योग			२९२
देशी रियासतों की अधिक से अधिक संख्या			९३

कुल योग ३८५

इस संविधान सभा को, भारत का नया संविधान बनाने का पूरा अधिकार हो। उस पर केवल इतनी ही रोक लगाई जाय कि वह मंत्री प्रतिनिधि मंडल की योजना के अधीन रहकर कार्य करे।

प्रतिनिधि मंडल ने यह भी सुझाव रक्खा कि अंतरिम काल में, जब तक भारत का नया संविधान तैयार हो, तब तक सरकार का काम चलाने के लिए एक राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाय जिसमें कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग—दोनों दल—मिलकर कार्य करें।

राष्ट्र मंडल की सदस्यता के सम्बन्ध में मंत्री मंडल ने निश्चय किया कि इस सबंध में भारत को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। संविधान सभा चाहे तो यह निश्चय कर सकेगी कि भारत राष्ट्र मंडल से अलग रह कर एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में कार्य करेगा।

३४. कैबिनेट-मिशन के सुझावों का संक्षिप्त विवरण

ऊपर कैबिनेट-मिशन के सुझावों का जो विवरण दिया गया है संक्षेप में हम उसे दो

भागों में विभक्त कर सकते हैं :—(१) दीर्घकालीन योजना और (२) अल्पकालीन योजना।

दीर्घकालीन योजना के अतर्गत भारत में एक ऐसे सघ की स्थापना करने का प्रस्ताव रक्खा गया जिसमें केवल तीन विषय अर्थात् रक्षा, विदेशों से सबध तथा आने जाने के साधन, केन्द्रीय सरकार को सौंपे जायँ और बाकी सभी विषय प्रान्तों के अधीन रहें। प्रांतों को इस बात की भी स्वतत्रता दी गई कि यदि वे चाहें तो आपस में मिलकर अपने अलग अलग विभाग बना लें जैसे एक विभाग सिंध, पजाब, सीमात और बिलोचिस्तान का, दूसरा विभाग बगाल तथा आसाम का और तीसरा विभाग दूसरे प्रांतों का। अल्पकालीन योजना के अतर्गत कैबिनेट मिशन ने उस समय तक के लिए जब तक भारत का नया विधान बने, एक अतरिम सरकार बनाने की योजना रक्खी।

योजना का गुण और दोष

कैबिनेट मिशन योजना को ध्यान से पढने पर मालूम पड़ता है कि इस योजना में कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग की परस्पर विरोधी माँगों के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया गया था। इसलिए इस योजना में वह सभी दोष तथा गुण विद्यमान थे जो इस प्रकार के समझौते में हुआ करते हैं।

गुण—(१) योजना का सबसे बड़ा गुण यह था कि इसमें पाकिस्तान की माँग को एकदम अव्यावहारिक तथा अस्वीकृत घोषित कर दिया गया था।

(२) इस योजना के अधीन अल्पसख्यक जातियों को अधिक प्रतिनिधित्व देने की बात नहीं मानी गई थी। इस प्रकार सभी जातियों को बराबर अधिकार दिया गया था।

(३) योजना में प्रातों तथा रियासतों को मिला कर एक सघ बनाने का निश्चय भी प्रशसनीय था।

(४) एक और विशेषता इस योजना में यह थी कि सविधान सभा में रियासतों के प्रतिनिधियों का राजाओं द्वारा चुना जाना आवश्यक नहीं ठहराया गया। इसमें कहा गया था कि प्रातों तथा रियासतों के प्रतिनिधियों की एक कमेटी आपस में मिल कर इसका निश्चय करेगी।

(५) अत में अग्रेजों को सविधान सभा में किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया।

दोष—योजना में उपरोक्त गुणों के होने पर भी अनेक दोष विद्यमान थे। इनका सक्षिप्त वर्णन हम नीचे देते हैं :—

(१) सर्व प्रथम, सिखों के साथ योजना में घोर अन्याय किया गया था। उनके अधिकारों की रक्षा के लिए किसी प्रकार का प्रबध नहीं किया गया।

(२) विभागों के बनाने की बात और फिर विभागों द्वारा उनके अंतर्गत प्रांतों के विधान का निश्चय इस योजना की सबसे बड़ी खराबी थी। प्रांतों को अपने विधान स्वयं बनाने की आज्ञा न देना प्रांतीय स्वशासन के सिद्धान्त के विरुद्ध था।

(३) योजना के अधीन केन्द्रीय सत्ता को बहुत ही शक्तिहीन बना दिया गया था और उसे तीन विषयों को छोड़ कर और किसी विषय पर अधिकार प्रदान नहीं किया गया था।

(४) अंत में योजना में कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार केवल उस दशा में विधान सभा द्वारा प्रस्तावित विधान को स्वीकार करेगी जब विधान सभा में सारे दल भाग लें। इस बात से मुस्लिम लीग को अवसर मिला कि वह विधान सभा के कार्य में भाग न ले और अपनी पाकिस्तान की माँग पर अड़ी रहे।

२५. मिशन का १६ जून का बयान

मिशन ने अपनी योजना के तीसरे भाग में कहा था कि वह भारत में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के स्थान पर एक अन्तरिम सरकार की स्थापना करना पसन्द करेगी। इस घोषणा को कार्यान्वित करने के लिए मिशन के सदस्यों ने १६ जून १९४६ को एक दूसरी घोषणा की जिसके द्वारा उन्होंने कांग्रेस के ६, मुस्लिम लीग के ५ तथा अल्पसंख्यक जातियों के ३ सदस्यों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का न्यौता दिया। मिशन ने कहा कि केवल उन्हीं दलों को अन्तरिम सरकार में सम्मिलित होने का अवसर दिया जायगा जो २६ जून से पहले मिशन की योजना के दोनों दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन भागों को स्वीकार कर लेंगे। इस घोषणा के पश्चात् कांग्रेस तथा 'लीग' दोनों ही दलों ने अपनी-अपनी सभाएँ कीं। लीग ने योजना मान ली। कांग्रेस ने योजना के दीर्घकालीन भाग को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसने अल्पकालीन योजना को मानने से इंकार कर दिया। कारण, वह चाहती थी कि राष्ट्रीय मुसलमानों को भी सरकार में कुछ प्रतिनिधित्व मिल सके और मुस्लिम लीग इस बात के लिए राजी न होती थी। जब कैबिनेट मिशन को यह ज्ञात हुआ कि कांग्रेस और लीग दोनों ही मिशन की दीर्घकालीन योजना को स्वीकार करते हैं परन्तु, अल्पकालीन योजना की स्वीकृति के विषय में उनमें मतभेद है तो उसने केवल मुस्लिम लीग के सहयोग से अन्तरिम सरकार बनाने से इंकार कर दिया।

मि० जिन्ना कैबिनेट मिशन के इस रवैये से आगबबूला हो गये। उन्होंने तो कैबिनेट मिशन की योजना को केवल इसलिए स्वीकार किया था कि उन्हें अन्तरिम सरकार बनाने का अवसर मिल सके। परन्तु जब, उनकी यह आशा पूर्ण न हुई तो उन्होंने कैबिनेट मिशन के सदस्यों को बुरा भला कहना आरम्भ किया और २९ जुलाई सन् १९४६ को एक सभा बुलाकर मिशन की योजना को पूर्ण रूप से अस्वीकृत ठहरा

दिया। लीग के इसी अधिवेशन में मि० जिन्ना ने सत्याग्रह (Direct action) की बात भी कही।

३६. सविधान सभा के लिए चुनाव

इस बीच १६ जून के बयान के पश्चात् वाइसराय ने सब प्रान्तों की सरकारों को आदेश दिया कि वह सविधान सभा के लिए चुनाव करें। यह चुनाव जुलाई सन् १६४६ तक समाप्त हो गये। इन चुनावों में कुल ३८६ सीटें में से, कांग्रेस को २०५, तथा मुस्लिम लीग को ७३ सीटें प्राप्त हुईं, १८ सीटें स्वतन्त्र उम्मीदवारों को मिलीं जिनमें ११ हिन्दू, ३ मुसलमान तथा ४ सिख थे। ६३ सीटों के लिए जो रियासतों के लिए सुरक्षित रक्खी गई थीं चुनाव नहीं किये गये। इस प्रकार हम, कह सकते हैं कि वास्तव में २६६ सीटों में से कांग्रेस को २०५ सीटें प्राप्त हुईं।

३७. अन्तरिम सरकार की स्थापना

चुनावों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस ही देश की सबसे शक्तिशाली राजनीतिक संस्था है। इसलिए अगस्त सन् १६४६ में लार्ड वेवल ने कांग्रेस के प्रधान प० नेहरू से प्रार्थना की कि वह अंतरिम सरकार बनाने में सहायता करें। २ सितम्बर सन् १६४६ को पं० नेहरू ने यह सरकार बना ली। इस सरकार में उन्होंने कुल १२ सदस्य शामिल किये जिनमें से ५ हिन्दू, ३ मुसलमान, १ हरिजन, १ सिख, १ पारसी तथा १ ईसाई थे। अक्टूबर १६४६ तक यह सरकार अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य करती रही। परन्तु कांग्रेस द्वारा अंतरिम सरकार बना लिये जाने से मि० जिन्ना के तन बदन में आग लग गई। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर दबाव डाला कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को भी अतरिम सरकार में शामिल किया जाय। इधर लार्ड वेवल भी यह अनुभव करने लगे थे कि कांग्रेस द्वारा सरकार बना लिये जाने से उनकी स्थिति एक वैधानिक अध्यक्ष की-सी रह गई थी। उन्होंने इसीलिए इसी में अपना भला समझा कि मुस्लिम लीग के सदस्यों को अतरिम सरकार में शामिल कर लिया जाय। अक्टूबर के अतिम सप्ताह में कांग्रेस के तीन सदस्य वायसराय की कार्यकारिणी से अलग हो गये और उनके स्थान पर ५ मुस्लिम लीग के सदस्य सरकार में शामिल कर लिये गये। इन पाँच सदस्यों में मि० लियाकतअली खाँ, गजनफरअली खाँ, सरदार अब्दुल रब नश्तर, मि० चुन्द्रीगर तथा मि० मडल थे।

अतरिम सरकार में सम्मिलित होने के पश्चात् मुस्लिम लीग के सदस्यों ने कांग्रेस के साथ सहयोग की नीति का अवलम्बन नहीं किया वरन् वह अपने आपको एक अलग दल का सदस्य समझने लगे। यह सरकार के प्रत्येक काम में अड़चन डालते रहे। उन्होंने विधान सभा के कार्य में भी भाग लेने से इकार कर दिया।

३८. ६ दिसम्बर की घोषणा

मुस्लिम लीग ने संविधान सभा की बैठकों में सम्मिलित होने से यह कह कर इंकार किया कि कांग्रेस ने कैबिनेट मिशन योजना के विभाग सम्बन्धी भाग का ठीक अर्थ नहीं निकाला है। कांग्रेस का कहना था कि प्रान्तों को विभागों में सम्मिलित होने तथा अपना संविधान बनाने की स्वतन्त्रता होगी। मुस्लिम लीग का कहना था कि प्रान्त स्वतन्त्र नहीं होंगे। उनके संविधान का निश्चय सब विभाग के सदस्यों द्वारा किया जायगा। कांग्रेस और लीग के बीच यह मतभेद ब्रिटिश सरकार के फैसले के लिए पेश किया गया। ६ दिसम्बर, सन् १९४६ को ब्रिटिश सरकार ने अपना फैसला मुस्लिम लीग के हक में दे दिया। साथ ही कांग्रेस पर दबाव डालने के लिए ब्रिटिश सरकार ने कहा कि यदि कोई राजनीतिक दल विधान सभा में भाग नहीं लेगा तो जो विधान विधान-सभा बनायेगी उसको मानने के लिए सभा में भाग न लेने वाला दल बाध्य नहीं होगा।

ब्रिटिश सरकार की घोषणा से कांग्रेस को अत्यन्त क्षोभ हुआ। परंतु फिर भी मुस्लिम लीग का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के फैसले को स्वीकार कर लिया। पर जिन्ना साहब को खुश करना तो देवताओं के वश की भी बात न थी। कांग्रेस के इतना करने पर भी मुस्लिम लीग ने विधान सभा में सम्मिलित होना उचित न समझा। उसका कहना था कि मुस्लिम जाति किसी भी दशा में एक विधान सभा में भाग न लेगी। उसने यह माँग रक्खी कि पाकिस्तान तथा हिन्दुस्तान के भागों के लिए अलग-अलग दो विधान परिषदें बुलाई जायें।

इधर केन्द्रीय शासन का कार्य मुस्लिम लीग की विरोधी नीति के कारण इतना कठिन होता जा रहा था कि पं० जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड वेवल से प्रार्थना की कि वह या तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को सरकार से निकाल दें अथवा उन्हें विधान सभा में भाग लेने तथा केन्द्रीय सरकार के काम में सहयोग देने को कहें। परन्तु लार्ड वेवल तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को केन्द्रीय सरकार में इसीलिए लाये थे, जिससे कांग्रेस के काम में बाधा पड़े और भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति का स्वप्न शीघ्र पूरा न हो सके। इसीलिए उन्होंने पं० नेहरू की इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया।

३९. २० फरवरी का बयान

इधर २० फरवरी सन् १९४६ को ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने एक और घोषणा की जिसका आशय यह था कि अंग्रेज सन् १९४८ तक भारत छोड़ देंगे। यह घोषणा इस आशय से की गई थी जिससे कांग्रेस और लीग के सदस्य स्थिति को समझें और आपस में समझौता करने के लिए कोई व्यावहारिक कदम उठायें। इस घोषणा के

साथ ही लार्ड वेवल के स्थान पर लार्ड माउंटबैटन के वायसराय नियुक्त किये जाने का एलान किया गया।

४०. लार्ड माउंटबैटन का भारत में आगमन

लार्ड माउन्टबैटन ने भारत आकर मुस्लिम लीग के नेताओं को सलाह दी कि वह कैबिनेट मिशन की १६ जून वाली घोषणा को स्वीकार कर लें। परन्तु इसका कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में लार्ड माउन्टबैटन ने बंगाल और पंजाब के विभाजन की बात कही। उन्होंने मुस्लिम लीग के नेताओं से कहा कि यदि वह पाकिस्तान बनाना चाहते हैं तो उन्हें उन इलाकों की जनता को जिनमें हिन्दू बहुमत में हैं हिन्दुस्तान के साथ रहने की स्वतन्त्रता देनी होगी। मुस्लिम लीग को यह बात स्वीकार करनी पड़ी। अन्त में कांग्रेस ने भी यह समझ कर कि आये दिन के झगड़ों से देश का विभाजन अच्छा है, विभाजन की बात मान ली। दोनों राजनीतिक दलों की इस प्रकार सम्मति प्राप्त कर के लार्ड माउन्टबैटन अपनी भारत विभाजन योजना के प्रति ब्रिटिश सरकार की सहमति प्राप्त करने के लिए इंगलैंड गये।

४१. लार्ड माउन्टबैटन की भारत के विभाजन के लिए योजना

पहली जून को वह भारत वापस आ गये और ३ जून सन् १९४६ को उन्होंने आल इण्डिया रेडियो के दिल्ली स्टेशन से वह ऐतिहासिक भाषण प्रसारित किया जिसमें उन्होंने भारत को दो स्वतन्त्र राज्यों में बाँट देने की योजना जनता के सम्मुख रक्खी। इस योजना की मोटी-मोटी बातें यह थीं :—

(१) बंगाल और पंजाब के प्रान्तों को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय—एक भाग जिसमें मुसलमानों का बहुमत हो, दूसरा भाग जिसमें हिन्दू बहुमत में हों। १९४१ की जन गणना के आधार पर पंजाब में निम्न जिले मुसलिम बहुमत जिले घोषित किये गये :—

लाहौर डिवीजन—गुजरांवाला, गुरदासपुर, लाहौर, शेखूपुरा और स्यालकोट।

रावलपिंडी डिवीजन—अटक, गुजरात, जेहलम, मियाँवाली, रावलपिंडी और शाहपुर।

मुल्तान डिवीजन—डेरागाजी खाँ, झंग, लायलपुर, मिंटगुमरी, मुल्तान, मुजफ्फरगढ़।

इसी प्रकार बंगाल में निम्न जिले मुसलिम बहुमत जिले घोषित किये गये :—

चटगाँव डिवीजन—चटगाँव, नोआखाली, तिपरा।

ढाका डिवीजन—बाकरगंज, ढाका, फरीदपुर, मैमनसिंह।

प्रेसीडेंसी डिवीजन—जैसोर, मुर्शिदाबाद, नदिया।

राजशाही डिवीज़न—बोगरा, दीनाजपुर, माल्दा, पबना, राजशाही और रंगपुर। शेष जिले हिन्दू बहुमत जिले घोषित कर दिये गये।

योजना के अधीन इन जिलों के प्रान्तीय धारा सभा के सदस्यों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह इस बात का फैसला करें कि प्रान्त का विभाजन हो अथवा नहीं और यदि नहीं तो वह हिन्दुस्तान व पाकिस्तान में से कौन से देश की संविधान सभा में सम्मिलित होना स्वीकार करेंगे।

(२) विभाजन की दशा में राज्यों की सीमा का अंतिम निश्चय करने के लिए एक सीमा निर्धारण कमीशन की नियुक्ति का फैसला किया गया।

(३) सीमा प्रान्त में चूँकि कांग्रेस का बहुमत था, इसलिए उस प्रान्त की जनता को एक बार फिर यह अवसर प्रदान किया गया कि वह यह बतलाये कि वह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान—दोनों में से किसके साथ शामिल होना चाहती है।

(४) आसाम में सिलहट जिले के लोगों का मत जानने के लिए कि वह विभाजन की दशा में पूर्वी बंगाल के साथ रहना पसन्द करेंगे या पश्चिम बंगाल के साथ, सहमत लेने का निश्चय किया गया।

(५) जून १६४८ के स्थान पर फैसला किया गया कि भारत को सत्ता का तात्कालिक हस्तान्तरण कर दिया जाय।

४२ माउन्टबैटन योजना की स्वीकृति

वायसराय के रेडियो भाषण के पश्चात् पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस की ओर से, मि० जिन्ना ने मुस्लिम लीग की ओर से तथा सरदार बलदेवसिंह ने सिक्खों की ओर से रेडियो पर भाषण दिये। इन तीनों नेताओं ने अपने भाषण में कहा कि उन्हें लार्ड माउन्टबैटन की योजना स्वीकार है। इसके पश्चात् कांग्रेस तथा मुस्लिम लीग के सदस्यों ने अपने नेताओं के फैसलों का अनुमोदन किया। मुस्लिम लीग की आल इंडिया कौंसिल का एक अधिवेशन ६ जून, सन् १६४७ को दिल्ली में हुआ, इस अधिवेशन में ८ के विरुद्ध ४०० रायों से लीग ने विभाजन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कांग्रेस ने भी १४ जून को आखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन दिल्ली में ही बुलाया और उसमें २० के विरुद्ध १५७ रायों के बहुमत से विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दोनों राजनीतिक दलों की स्वीकृति प्राप्त करने के पश्चात् लार्ड माउन्टबैटन ने विभाजन के कार्य को पूरे वेग के साथ सम्पन्न करने के लिए कदम उठाया। उन्होंने प्रान्तों की विधान सभाओं से कहा कि वह तुरन्त भारत या पाकिस्तान के साथ मिलने का अपना निश्चय प्रकट करें। २० जून को बंगाल और २३ जून को पंजाब की विधान सभाओं ने बँटवारे का निश्चय कर लिया और मुस्लिम बहुमत जिले पाकिस्तान में मिल गये। इसके कुछ दिन पश्चात् सिंध तथा बिलोचिस्तान के सूबों

ने भी पाकिस्तान के साथ रहने की इच्छा प्रकट की। सीमा प्रान्त में भारत व पाकिस्तान के साथ मिलने के प्रश्न पर जनमत लिया गया। कांग्रेस तथा खुदाई खिदमतगार दलों ने इसका बहिष्कार किया। कारण, वह चाहते थे कि सीमाप्रान्त में एक स्वतन्त्र पख्तून सरकार बनाई जाय। मतगणना का परिणाम इस प्रकार रहा कि पाकिस्तान के हक में २,८८,२४४ मत आये, हिन्दुस्तान के पक्ष में २,८७४ और २,८०,६८० मतदाता तटस्थ रहे। इसके कुछ दिन पश्चात् आसाम प्रान्त के सिलहट जिले में भी मत लिये गये। इस मतगणना में, २,३९,६१९ मतदाताओं ने पूर्वी बंगाल के साथ मिलने के पक्ष में राय दी और १,८४,०४१ मतदाताओं ने आसाम के साथ रहने की इच्छा प्रकट की। दोनों मतगणनाओं के परिणाम के फलस्वरूप सीमाप्रान्त और सिहलट पाकिस्तान में मिला दिये गये।

४३ १९४७ का भारतीय स्वाधीनता का कानून

४ जुलाई १९४७ को लार्ड माउन्टबैटन की भारत विभाजन की योजना को कार्यान्वित करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेंट में एक बिल पेश किया गया जिसे भारत की स्वाधीनता का बिल कहते हैं। इस बिल द्वारा भारत को दो स्वतन्त्र उपनिवेशों में विभक्त कर दिया गया—एक भाग का नाम पाकिस्तान रक्खा गया और दूसरे का नाम इंडिया। वह बिल १५ जुलाई को पास हो गया।

इस कानून के पास होने के पश्चात् १५ अगस्त सन् १९४७ को भारत के दो टुकड़े कर दिये गये। सरकार की सारी सम्पत्ति रेल, कारखाने, डाकखाने, तारघर, फौज का सामान, तथा रिजर्व बैंक का समस्त धन दो हिस्सों में बाँट दिया गया और १५ अगस्त से ही दो स्वतन्त्र सरकारें, एक दिल्ली में और दूसरी कराची में, कार्य करने लगीं। इतना शीघ्र सारा कार्य सम्पन्न करने का सारा श्रेय लार्ड माउन्टबैटन को ही प्राप्त है। विभाजन के पश्चात् भारत को अच्छे दिन देखने नसीब नहीं हुए। कुछ ही दिनों पश्चात् भारत के लाखों नर और नारियों को साम्प्रदायिकता की भीषण ज्वाला का शिकार होना पड़ा। लाखों हिन्दू और मुसलमानों को अपना घर-बार छोड़कर दूसरे स्थानों की शरण लेनी पड़ी और ३० जनवरी सन् १९४८ को भारत को वह दिन भी देखना पड़ा जब शान्ति के देवता, युग पुरुष, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को अपनी ही कौम के एक कातिल ने गोली का शिकार बना डाला। फिर भी इन मुसीबतों का सामना करती हुई हमारी संविधान सभा अपना कार्य बराबर करती रही और अंत में २६ नवम्बर सन् १९४९ को भारत का एक आदर्श विधान पास करके उसने अपना काम समाप्त कर दिया।

४४. हमारा नया विधान

हमारे इस नये विधान के सम्बन्ध में कुछ तथ्य और आँकड़े नीचे दिये जाते हैं :—

अध्याय २

भारत के नये संविधान की कुछ विशेषताएँ

हमारे विधान निर्माताओं ने गण राज्य भारत के लिए जिस संविधान की रचना की है वह संसार में अनूठा है। यह एक ऐसा संविधान है जिस पर आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी, जिसे स्वयं इतिहास गर्व की दृष्टि से देखेगा। यह संविधान एक युग का पटाक्षेप तथा दूसरे युग का आरम्भ है। भारत से असमानता, साम्प्रदायिकता, दमन, अत्याचार तथा अनेक सामाजिक कुरीतियों को दूर कर इस संविधान ने हमारे गौरव-सम्पन्न देश में स्वतन्त्रता समानता, बन्धुत्व तथा न्याय के आदर्शों की नींव रक्खी है। संसार के दूसरे देश अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, इगलैंड तथा आयरलैंड के संविधानों से उनके सर्वोच्च गुण ग्रहण कर, हमारे संविधान ने संसार के राजनीतिक इतिहास में एक नई परिपाटी को जन्म दिया है।

इङ्गलैंड के संविधान से मन्त्रिमण्डलात्मक शासन प्रणाली को अपना कर, अमरीका के विधान से नागरिकों के मौलिक अधिकार, उच्चतम न्यायालय तथा उप राष्ट्रपति की पद्धति ग्रहण कर, आयरलैंड के संविधान से राज्य के निर्देशक सिद्धान्त तथा उच्च भवन का स्वरूप अपना कर, आस्ट्रेलिया के संविधान से समवर्ती विषयों को ग्रहण कर, तथा कनाडा के संविधान से केन्द्रीयकरण की भावना को अपना कर हमारा नया संविधान संसार के सभी विधानों के गुणों की खान बन गया और इतना होने पर भी वह अपना एक अलग अस्तित्व रखता है। संघात्मक होते हुए भी यह विधान संघ शासनों की जटिलता तथा उनके अवगुणों से बचा हुआ है। भारत की विशेष परिस्थितियों का विचार करके यह विधान एक विशेष साँचे में ढाला गया है। यह हमारे ऋषियों की प्राचीन थाती "न्याय" के सिद्धान्त को पुनर्जीवित कर भारत में एक आदर्श लोकतंत्रात्मक समाज की स्थापना करता है। नीचे हम इस संविधान की कुछ मुख्य विशेषताओं का वर्णन करते हैं :—

१. जनता का अपना विधान

हम केवल एक ऐसे विधान को अच्छा कहते हैं जो प्रजातंत्रवाद के सिद्धान्त पर 'जनता का, जनता द्वारा, तथा जनता के हित के लिए' विधान हो। जो विधान केवल कुछ थोड़े से उच्च श्रेणी के धनिक लोगों द्वारा बनाया जाता है, उस विधान में जनता के हित का कुछ भी ध्यान नहीं रक्खा जाता और विधान निर्माता इस बात का ही प्रयत्न

व्यवस्था हो। हर्षवर्धन, अशोक, गुप्त वंश तथा अकबर के काल में पहले भी भारत के साम्राज्य का विस्तार चाहे इतना बड़ा रहा हो परन्तु इन राज्यों में विभिन्न प्रांत और रियासतें अपनी किसी भी प्रकार की शासन व्यवस्था रखने के लिए स्वतन्त्र थीं और केन्द्रीय सत्ता का इस विषय में उन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था। विभिन्न प्रांतों में राजाओं के अच्छे या बुरे होने पर जनता की भलाई तथा उनके अधिकार अवलम्बित थे। परन्तु सन् १९५० में प्रथम बार भारत में एक ऐसे शासन की नींव रक्खी गई जिसके अन्तर्गत काश्मीर से लेकर कन्याकुमारी और आसाम से लेकर द्वारिका तक प्रत्येक नागरिक को एक ही प्रकार के अधिकार प्राप्त हुए और वह केवल एक ही अविच्छिन्न तथा सुसङ्गठित भारत के अङ्ग बने।

३ देश की अखंड एकता का द्योतक

अगस्त सन् १९४७ में अंग्रेजी सत्ता समाप्त होने से पहले हमारे देश में ५६२ स्वतंत्र रियासतें थीं। उनके राजा मनमाने तरीके से अपनी प्रजा पर शासन करते थे। स्वतन्त्र रूप से विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करके, वह जनता का निर्दयतापूर्वक शोषण करते थे। उनके राज्य में जनता को किसी भी प्रकार के नागरिक या राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। हमारे नये संविधान में भारत की इन ५६२ स्वतन्त्र रियासतों को प्रांतों में विलीन कर दिया गया है, या उनके संघ बना दिये गये हैं या उन्हें केन्द्रीय सरकार के अंतर्गत चीफ कमीश्नर के सूबों में बाँट दिया गया है। इस प्रकार नये विधान के अंतर्गत सारे भारत का एकीकरण कर दिया गया है।

४ साम्प्रदायिकता का शत्रु

अंग्रेजों के काल में हिन्दू और मुसलमानों में लड़ाई कराना, उन्हें एक दूसरे से अलग रखना, तथा उनके लिए धारा सभा तथा सरकारी नौकरियों में अलग अलग स्थान सुरक्षित रखना, सरकार की नीति का एक अङ्ग था। उस काल में हिंदू और मुसलमानों के चुनाव के लिए अलग अलग निर्वाचन क्षेत्र बनाये जाते थे। हिंदू हिंदुओं को और मुसलमान मुसलमानों को राय देते थे। इस प्रथा के कारण हमारे देश में सदा हिंदू और मुसलमानों का झगड़ा चला आता था। वह प्रत्येक प्रश्न पर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से विचार करते थे। इसी विषैली भावना के कारण ही हमारे देश के दो टुकड़े हुए। नये संविधान के अन्तर्गत पृथक् निर्वाचन प्रणाली तथा सुरक्षित स्थानों की प्रथा का अन्त कर दिया गया है। अब हिंदू और मुसलमान सब मिल कर एक दूसरे को राय देते हैं, एक दूसरे के सहयोग, विश्वास तथा प्रेम के कारण ही वह धारा सभाओं में चुने जाते हैं। मुसलमानों के लिए कोई सीटें सुरक्षित नहीं हैं। इस उपाय से आशा है कि भारत से कुछ काल के पश्चात् साम्प्रदायिक भावना का पूर्ण रूप से अन्त हो जायगा।

हरिजनों तथा कुछ पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिनमें मजहबी, रामदासी, कबीरपंथी सिक्ख शामिल हैं, बाकी सभी जनता के लिए नये संविधान में एक से ही निर्वाचन क्षेत्र रक्खे गये हैं। किसी अल्पसंख्यक जाति के लिए धारा सभा या सरकारी नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। हिंदू और मुसल्मान, सिक्ख और ईसाई, ऐंग्लो इण्डियन और पारसी सब मिल कर एक दूसरे को राय देते हैं। यह सब उपाय भारत में एक संगठित, दृढ़ तथा शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करने के लिए अत्यन्त आवश्यक थे।

५. सामाजिक जनतंत्र का हामी

नये विधान में छूत छात तथा ऊँच-नीच के भेद-भाव को भी मिटा दिया गया है। विधान के अन्तर्गत अस्पृश्यता को एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया है। अब कोई भी मनुष्य छुआ छूत के आधार पर किसी दूसरे व्यक्ति पर रोक नहीं लगा सकता। वह हरिजनों को किसी दुकान, सार्वजनिक रेस्ट्राँ, होटल, सिनेमा, तालाब, कुओं या सड़क का उपयोग करने या उनके किसी भी प्रकार का स्वतन्त्र व्यवसाय, व व्यापार करने में बाधा नहीं डाल सकता। इस प्रकार हम देखते हैं कि अस्पृश्यता के उस भूत का जिसे नष्ट करने के लिए हमारे देश के समाज सुधारकों ने सदियों से प्रयत्न किये तथा जिसका अन्त करने के लिए, हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कई बार अपने प्राणों की बाजी लगाई, नये संविधान के अन्तर्गत वह मूल से अन्त कर दिया गया है।

६. स्त्री और पुरुषों की समानता का पोषक

नये विधान के अन्तर्गत सदियों से शोषित तथा अधिकारहीन स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। उन्हें समान कार्य के लिए समान वेतन तथा चुनावों में पुरुषों के समान ही राय देने का अधिकार दिया गया है। विधान में कहा गया है कि सरकारी नौकरियों के क्षेत्र में भी पुरुषों और स्त्रियों में भेद-भाव नहीं बरता जायगा।

७ राजनीतिक लोकतन्त्र का पालक

इसके अतिरिक्त विधान में प्रत्येक वयस्क स्त्री और पुरुष को राय देने का अधिकार दे दिया गया है। इस प्रबन्ध से भारत की लगभग १८ करोड़ जनता को सरकार के चुनाव में भाग लेने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इतनी बड़ी जनसंख्या को भारत में पहले कभी राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। इस कानून के अन्तर्गत हमारी उन रियासतों की प्रजा को विशेष लाभ हुआ है जो अंग्रेजों के काल में एक दोहरी गुलामी की शिकार थी—एक रियासती राजाओं की और दूसरी अंग्रेजी सरकार की।

कुछ लोगों का विचार है कि वयस्क मताधिकार का अधिकार देकर सरकार ने अच्छा नहीं किया, क्योंकि भारत की अशिक्षित जनता अपने मत का उचित उपयोग नहीं कर सकती। परन्तु जो लोग ऐसा कहते हैं उनका प्रजातन्त्र शासन व्यवस्था में पूर्ण विश्वास नहीं है। जनता को राजनीतिक शिक्षा प्रदान करने के लिए मताधिकार सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसके अतिरिक्त पिछले आम चुनावों का अनुभव हमें बतलाता है कि भारतीय जनता में इतनी सामान्य बुद्धि अवश्य है कि वह अपना भला बुरा अच्छी प्रकार समझ सके। उसने इन चुनावों में उन्हीं व्यक्तियों को राय दी है जो प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे।

८ जनता के मौलिक अधिकारों का रक्षक

हमारे नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति के मौलिक अधिकारों की रक्षा की गई है। इन अधिकारों में वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अधिकार, समानता का अधिकार, धार्मिक विश्वास का अधिकार, सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, भाषण देने, सभा करने, सङ्घ बनाने तथा समाचार पत्र प्रकाशित करने के अधिकार सम्मिलित हैं। इन अधिकारों पर केवल वही रोक लगाई गई है जिसके द्वारा नागरिक अपने अधिकारों का दुरुपयोग न कर सकें। ऐसी रोक संसार के प्रत्येक देश में ही लगाई जाती है। कारण, अधिकारों का अर्थ होता है 'अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए कुछ विशेष सुविधाओं की प्राप्ति।' भारत के नये संविधान में यह सभी सुविधाएँ प्रत्येक नागरिक को प्रदान की गई हैं। विधान में यह भी कहा गया है कि यदि राज्य का कोई विशेष कानून नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करेगा, तो ऐसा कानून रद्द समझा जायगा। प्रत्येक नागरिक को इस बात का भी अधिकार प्रदान किया गया है कि यदि वह चाहे तो मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सङ्घ की सर्वोच्च अदालत अर्थात् सुप्रीम कोर्ट में प्रार्थना पत्र दे सकता है।

९. अल्प संख्यकों के अधिकार का समर्थक

नये विधान में केवल बहुसंख्यक जातियों के अधिकारों की ही रक्षा नहीं की गई, वरन् प्रत्येक अल्प संख्यक जाति के धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, तथा राजनीतिक अधिकारों की रक्षा भी की गई है। संविधान में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक को धर्म, जाति, वर्ण, मत, लिंग के विचार के बिना बराबर के अधिकार प्रदान किये जायँगे। प्रत्येक नागरिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी धर्म में विश्वास रखने की स्वतन्त्रता होगी। सरकार धार्मिक आधार पर किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगी। अल्प संख्यक जातियों के सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकारों की रक्षा करना उसका परम धर्म होगा।

कि इस प्रकार के राज्य में धर्म या विश्वास के आधार पर किसी एक और दूसरे नागरिक में भेद भाव नहीं बरता जाता।

पाकिस्तान को हम लौकिक राज्य न कह कर धर्मतंत्र राज्य या इस्लामी राज्य कहते हैं। यह केवल इसलिए कि उस राज्य के अन्तर्गत हिंदुओं के साथ भेद-भाव की नीति बरती जाती है। पाकिस्तान रेडियो पर प्रतिदिन कुरान की तिलावत होती है, परन्तु हिन्दुओं के लिए वेदों या गीता का पाठ नहीं। मुसलमान जहाँ चाहें जमीन या जायदाद खरीद सकते हैं, परन्तु हिन्दुओं को उनकी अपनी जमीन या जायदाद से भी निकाल कर भगाया जा रहा है। सरकारी नौकरियों में भी हिन्दुओं के साथ भेद भाव किया जाता है। इसलिए हम उस राज्य को धर्मतंत्र राज्य कहते हैं। ऐसा राज्य संसार के प्रगतिशील देशों में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है और वह राष्ट्र कभी भी संसार के स्वतन्त्र तथा उच्चतम राष्ट्रों की श्रेणी में सम्मान नहीं पाता। तगदिली, संकुचित विचार, छोटी बातें, भेद-भाव, द्वेष की भावना और धार्मिक असहिष्णुता किसी राष्ट्र के नागरिकों को ऊपर उठने से रोकती हैं। संसार में केवल वही देश उन्नति करते हैं जहाँ की जनता का हृदय विशाल हो, उनमें किसी भी प्रकार की क्षुद्र भावना न हो और प्रत्येक सार्वजनिक विषय पर उनमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करने की क्षमता हो।

११. एक राष्ट्र-भाषा का जन्मदाता

भारतीय विधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि प्रथम बार भारत की ३५ करोड़ जनता के लिए एक भाषा तथा एक लिपि का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। संसार के दूसरे देशों को देखने से पता चलता है कि आयरलैंड, कैनाडा तथा स्वीटजरलैंड जैसे छोटे देशों में भी एक नहीं वरन् दो दो और तीन-तीन भाषाएँ राज्यभाषा का कार्य करती हैं। हमारे देश में १४ प्रांतीय भाषाएँ हैं जो साहित्यिक दृष्टिकोण से पूर्ण रूपेण समुन्नत हैं। इनमें दक्षिण भारत की भाषाएँ भी हैं जो उत्तर प्रान्तों की भाषाओं से बिलकुल भिन्न हैं। ऐसी अवस्था में विधान सभा द्वारा सारे राष्ट्र के लिए एक ही भाषा की स्वीकृति, भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कदम है। भारत की प्राचीन संस्कृति के इतिहास में यह पहला ही अवसर होगा जब १५ वर्ष के पश्चात् हमारे देश की प्रत्येक प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार राष्ट्रभाषा हिन्दी में ही अपना कार्य करेगी।

१२. देश की नव-प्राप्त स्वतन्त्रता का प्रहरी

हमारे संविधान की एक और बड़ी विशेषता यह है कि उसका स्वरूप संघात्मक होने पर भी उसमें वह सारे गुण विद्यमान हैं जिनके द्वारा विशेष परिस्थितियों में केंद्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य कर सकेगी जैसा वह एकात्मक रूप रखने पर कर सकती थी। हमारा इतिहास हमें बतलाता है कि जब जब भारत में केंद्रीय सत्ता ढीली पड़ी तभी तब

भारत की स्वतंत्रता को विदेशियों के आक्रमण का सामना करना पड़ा। हमारे विधान निर्माताओं ने, हमारे नये विधान ने, संघीय तथा एकात्मक शासन की उन सभी अच्छाइयों का ग्रहण कर लिया है जिनसे चाहे हमारा विधान राजनीतिक विद्वानों की दृष्टि में एक नये प्रकार का विधान कहलाये, परन्तु भारत की वर्तमान राजनैतिक परिस्थिति में वह सबसे अधिक उपयुक्त विधान है। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतंत्रता को दृढ़ बनाने की है। हमारे देश में कितनी ही राष्ट्र विरोधी शक्तियाँ काम कर रही हैं। कभी संकुचित प्रांतीयता की भावना अपना सिर उठाती है तो कभी देशी रियासतों के राजा अपनी खोई हुई सत्ता को दोबारा प्राप्त करने की सोचते हैं। ऐसी दशा में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार ही हमारी नव-प्राप्त स्वतंत्रता की रक्षा कर सकती है और नये विधान में इसका पूर्ण रूप से प्रबन्ध कर दिया गया है।

१३. स्वतंत्र न्यायालय

भारतीय विधान की एक और विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत एक ऐसे स्वतंत्र न्यायालय के निर्माण का प्रबन्ध किया गया है जो केवल नागरिकों के अधिकारों की रक्षा ही न करेगा वरन् स्वयं विधान के संरक्षक का काम भी करेगा। प्रत्येक राजनीति का विद्यार्थी जानता है कि किसी देश में नागरिकों के अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक देश में एक स्वतंत्र न्यायालय की स्थापना न हो। भारत की संघीय अदालत को इस बात का पूर्ण अधिकार होगा कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए रिट आफ पेटिशन जारी कर सके तथा ऐसे कानूनों को विधान विरोधी घोषित कर दे जो नागरिकों के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हों। इसके अतिरिक्त विधान में प्रान्तों के अन्तर्गत कार्यकारिणी और न्याय विभाग की स्वतंत्रता के लिए भी आयोजन किया गया है।

१४. लचकीय संविधान

अन्त में भारतीय विधान अपरिवर्तनशील नहीं, वह समय की बदलती हुई परिस्थित के अनुसार बदला जा सकता है। इस विधान में लचकार, विकास तथा परिवर्तनशीलता के सभी गुण विद्यमान हैं। विधान की अधिकतर धाराएँ ऐसी हैं जिन्हें राष्ट्रपति, राज्य की सरकारें या केंद्रीय संसद् बहुमत या दो-तिहाई बहुमत से बदल सकेंगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि यदि हमारे भावी शासक, विधान की किन्हीं विशेष धाराओं से असन्तुष्ट हों तो वह उन्हें आसानी से बदल सकेंगे।

भारत के योग्य विधान निर्माताओं ने इस प्रकार हमारे देश में एक ऐसे विधान की नींव रक्खी है जिस पर संसार के राजनीतिक विशारद मुग्ध हो उठे हैं और जिसकी

सभी विद्वान् व्यक्तियों ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है। इस संविधान के अन्तर्गत कार्य करके हमारी आगे आने वाली सन्ततियाँ एक ऐसे राष्ट्र का निर्माण कर सकेंगी जो हर प्रकार से प्रगतिशील, प्रभावशाली तथा संसार के सर्वोत्तम राष्ट्रों में एक होगा।

योग्यता प्रश्न

१. भारत के नये संविधान के मुख्य गुण क्या हैं ? (यू० पी०, १६५१)

२. हमारा संविधान संसार के सब विधानों से उत्तम है। इस कथन की यथार्थता की परीक्षा कीजिये।

३. हमारे नवीन संविधान की क्या विशेषताएँ हैं ? (यू० पी०, १६५२)

४. धर्म निरपेक्ष राज्य किसे कहते हैं ? हमारे संविधान ने कहाँ तक ऐसे राज्य की स्थापना की है ? (यू० पी०, १६५३)

जो केवल कुछ ऐतिहासिक बन्धनों के कारण एक दूसरे के प्रति आत्मीयता का अनुभव करते हैं।

सन् १६३१ का वैस्ट मिनिस्टर स्टैच्यूट

सन् १६२६ तक राष्ट्र मंडल के सदस्य बहुत कुछ स्वतंत्र हो चुके थे। इस स्वतंत्रता को कानून का रूप देने के लिए उस वर्ष एक विशेष ऐक्ट पास किया गया जिसका, नाम, 'वैस्ट मिनिस्टर स्टैच्यूट' पड़ा। इस स्टैच्यूट में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि इंगलैंड और उससे सम्बन्धित दूसरे राष्ट्र मंडल के सदस्यों की सरकारें बराबर का स्थान रखती हैं। उनमें कोई एक दूसरे के अधीन नहीं प्रत्येक देश की सरकार जिस प्रकार का चाहे, अपने देश के लिए कानून बना सकती है। वह दूसरे देशों से स्वतन्त्र व्यापारिक सन्धि कर सकती है। वह अपना विधान स्वयं बदल सकती है। वह ब्रिटिश सरकार द्वारा पास किये गये कानूनों को रद्द कर सकती है। वह इंगलैंड के विरुद्ध होने वाली लड़ाई में तटस्थ रह सकती है। वह अपने राजदूत दूसरे देशों में भेज सकती है। वह प्रिवी कौंसिल में होने वाली अपीलों को समाप्त कर सकती है। वह अपनी अलग जल तथा वायु सेना रख सकती है और यदि वह चाहे तो ब्रिटिश साम्राज्य से भी अलग हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १६२६ के कानून के मातहत राष्ट्र मंडल के सदस्यों को इंगलैंड की सरकार के समान ही सब मामलों में बराबर का दर्जा दे दिया गया था। इंगलैंड तथा राष्ट्र-मंडल के सदस्यों में केवल इतना सम्बन्ध था कि वह सब इंगलैंड के सम्राट् को अपना सम्राट् मानते थे तथा उसके प्रति वफादारी का हलफ उठाते थे। सम्राट् का एक प्रतिनिधि गवर्नर जनरल के रूप में उनके देश में रहता था। परंतु उसकी नियुक्ति भी ब्रिटिश सम्राट् द्वारा नहीं वरन् स्वतन्त्र उपनिवेश के प्रधान मंत्री की सलाह से की जाती थी। ब्रिटिश सम्राट् की अधीनता इस प्रकार केवल नाम मात्र की ही थी।

भारत और राष्ट्र-मंडल (India and Commonwealth)

परन्तु भारतवर्ष ने ऐसे भी स्वतन्त्र उपनिवेश का सदस्य होना स्वीकार नहीं किया। कारण, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, सन् १६३० के पश्चात् से हमारे देश की राष्ट्रीय कांग्रेस सदा से इस बात को दुहराती रही थी कि भारतवर्ष किसी भी दशा में अंग्रेजों से पूर्ण स्वतन्त्रता लिये बिना समझौता नहीं करेगा। इसके अतिरिक्त दिसम्बर सन् १६४६ में संविधान सभा ने अपने उद्देश्यात्मक प्रस्ताव में कहा था कि भारत के अन्दर एक सम्पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त लोकतन्त्रात्मक गण राज्य की स्थापना करना ही उसका ध्येय होगा। इसलिए प० जवाहरलाल नेहरू ने अप्रैल सन् १६४६ के कामनवैल्थ अधिवेशन में भारत की ओर से यह माँग रक्खी कि उनका देश राष्ट्र मंडल का सदस्य रहना केवल उस दशा में स्वीकार करेगा जब उसे अपना गणतन्त्रीय स्वरूप (Repub-

lican form) कायम रखने का अधिकार मिले अर्थात् वह ब्रिटिश सम्राट् को अपना सम्राट् नहीं माने और उसके प्रति वफादारी का हलफ न उठाये। कामनवैल्थ राष्ट्रों ने भारत की यह माँग मान ली। इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहने के लिए भारत ने अपनी प्रतिज्ञा को नहीं बदला, वरन् राष्ट्र-मंडल ने ही भारत को अपना सदस्य बनाये रखने के लिए अपना स्वरूप बदल डाला और इस तरह कामनवैल्थ राष्ट्रों का एक और बन्धन जो ब्रिटिश सम्राट् के प्रति वफादारी के रूप में अब तक कायम था, वह भी टूट गया। नये विधान के अन्तर्गत इसलिए भारतीय सरकार का अध्यक्ष ब्रिटिश सम्राट् या उसका प्रतिनिधि गवर्नर-जनरल नहीं वरन् भारतीय जनता का अपना प्रतिनिधि "राष्ट्रपति" है।

इस प्रकार विदित है कि कांग्रेस ने राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके देश के साथ की गई किसी प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ा। राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहकर भी भारत प्रत्येक आन्तरिक तथा बाह्य मामलों में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है, उसकी सरकार को पूर्ण सत्ता प्राप्त है। वह अपनी विदेशी नीति स्वयं निश्चित करता है। वह किसी भी प्रकार इंगलैंड की सरकार के अधीन नहीं। हमारी सरकार ने कम्युनिस्ट चीन को इंगलैंड की सरकार से पहले मान्यता देकर, कोरिया की लड़ाई में स्वतंत्र नीति अपनाकर तथा अनेक दूसरी बातों से यह साबित कर दिया है कि भारत अपनी विदेशी नीति का स्वयं संचालन करता है और वह ब्रिटेन या दूसरे स्वतंत्र उपनिवेशों के साथ काम करने के लिए बाध्य नहीं।

जो लोग भारत के राष्ट्र मंडल का सदस्य होने के नाते कांग्रेस के लिए कहते हैं कि उसने देश के साथ गद्दारी की या अपनी पिछली प्रतिज्ञाओं को तोड़ा, वह यह भूल जाते हैं कि हमारे देश को राष्ट्र मंडल की सदस्यता से लाभ ही हुआ है, हानि नहीं। राष्ट्र-मंडल का सदस्य होना हमारे देश के लिए उस दशा में तो हानिकारक अवश्य था यदि उसके बदले में हमें अपनी पूर्ण-स्वतन्त्रता के साथ समझौता करना पड़ता या किसी प्रकार के आन्तरिक अथवा बाह्य विषयों में हम इंगलैंड की सरकार की बात मानने के लिए बाध्य हो जाते। परन्तु आज स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है। राष्ट्र मंडल एक ऐसे देशों का समूह है जो उसी सिद्धान्त में विश्वास रखते हैं जिसमें भारत। वह सब स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व, न्याय तथा प्रजातन्त्रवाद के उपासक हैं। वह सब संसार में शांति बनाये रखना चाहते हैं। आज इंगलैंड अपना साम्राज्यवादी स्वरूप छोड़ चुका है। धीरे-धीरे उसके अधीनस्थ सभी देश स्वतन्त्र होते जा रहे हैं। आज राष्ट्र-मंडल के सदस्यों में ८० प्रतिशत जनसंख्या उन लोगों की है जो एशिया के रहने वाले हैं। भारत, पाकिस्तान तथा लंका के राष्ट्र मंडल का सदस्य हो जाने से उसमें गोरी जाति के लोगों की प्रधानता कम हो गई है। राष्ट्र-मंडल का स्वरूप अब बिलकुल बदल गया है।

आज दुनियाँ में संसार का कोई भी देश दूसरे देशों से अलग रह कर उन्नति नहीं कर सकता। राष्ट्र-मण्डल के सभी देश एक ही भावना से प्रेरित हैं। इसलिए एक दूसरे के साथ मिल कर काम करने से उन सब की शक्ति बढ़ती है। वह संसार में एक ऐसी शक्ति का निर्माण कर सकते हैं जो आजकल के भयभीत तथा युद्ध की भावना से ओत प्रोत जगत में शांति स्थापित करने के कार्य में सहायक हो। आज रूस और अमरीका की बढ़ती हुई शक्ति संसार की शांति को खतरे में डाल सकती है। यदि राष्ट्र मंडल के सदस्य आपस में मिल कर एक ऐसी तीसरी शक्ति का निर्माण कर सकें जो इन दोनों शक्तियों से बड़ी हो तथा जो इन परस्पर विरोधी शक्तियों का मुकाबला कर सके तो संसार में शांति और सुख का वातावरण निर्माण हो सकता है।

राष्ट्र-मंडल के सदस्य एक उच्च नैतिक भावना से प्रेरित हैं। वह पूँजीवाद तथा साम्यवाद के बीच एक बड़ी खाई को पाटने का काम कर सकते हैं। वह संसार में एक ऐसी शक्ति को जन्म दे सकते हैं जो एक प्रलयकारी तीसरे महायुद्ध के भय को दूर कर सके। हमारे देश को एक ऐसे राष्ट्र संघ का सदस्य होने से लाभ ही है।

आर्थिक क्षेत्र में भी हम राष्ट्र मंडल के देशों के सहयोग से अधिक उन्नति कर सकते हैं। हमारे देश का ७५ प्रतिशत व्यापार राष्ट्र मंडल के देशों के साथ ही होता है। ऐसे देशों के साथ व्यापारिक सन्धि करके तथा आयात निर्यात कर सम्बन्धी सुविधाएँ देकर हम अपने व्यापार को कई गुना बढ़ा सकते हैं। हमारे देश में इंगलैंड की जनता का कई सौ करोड़ रुपया उद्योग धंधों में लगा हुआ है। अपनी वर्तमान आर्थिक दशा को सुधारने के लिए हम राष्ट्र मंडल के सदस्यों से और भी कई प्रकार की पूँजी तथा टैकनिकल सहायता सम्बन्धी सहूलियतें प्राप्त कर सकते हैं।

सैनिक दृष्टि से, राष्ट्र मंडल की सदस्यता के कारण हम विदेशी आक्रमणों का अपनी जल थल तथा हवाई सेना पर बहुत अधिक व्यय किये बिना आसानी से मुकाबला कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि राजनीतिक, आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से, राष्ट्र-मंडल का सदस्य रहना स्वीकार करके भारत सरकार ने बुद्धिमत्ता का ही कार्य किया है, मूर्खता का नहीं। लेकिन चीन के आक्रमण के समय इस प्रकार की कोई सहायता नहीं मिली, तब से ही भारत ने रक्षा प्राप्त करने के लिये सैनिक सामान बनाने की आवश्यकता हो गया।

योग्यता प्रश्न

१. राष्ट्र मंडल क्या है? भारत ने राष्ट्र मंडल का सदस्य रहना क्यों स्वीकार किया?

२. भारत एक सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त प्रजातन्त्र राज्य है। राष्ट्र मंडल की सदस्यता के साथ यह कथन कहाँ तक सच साबित होता है?

भारतीय सं॰

(क) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले गवर्नरों के प्रान्त कहलाते थे ।)	(ख) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले रियासतें कहलाती थीं ।)	(ग) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले चीफ कमिश्नर के प्रांत तथा रियासतें कहलाती थीं ।)	(घ) राज्य (जो संविधान पास होने से पहिले कालेपानी के नाम से पुकारा जाता था ।)
१. आसाम	१. जम्मू और काश्मीर	१. अजमेर	१. अंडमान और निकोबार द्वीप
२. उड़ीसा	२. ट्रावनकोर कोचीन	२. कच्छ	
३. पंजाब	३. पटियाला तथा पूर्वी पञ्जाब संघ	३. कूच बिहार (यह राज्य अब पश्चिमी बंगाल में मिला दिया गया है ।)	
४. पश्चिमी बंगाल	४. मध्य भारत	४. कुर्ग	
५. बिहार	५. मैसूर	५. त्रिपुरा	
६. मद्रास	६. राजस्थान	६ दिल्ली	
७. मध्य प्रदेश	७. सौराष्ट्र	७. बिलासपुर	
८. बम्बई	८. हैदराबाद	८. भोपाल	
९. उत्तर प्रदेश	९. विंध्य प्रदेश (संविधान पास होने के पश्चात् यह राज्य केन्द्रीय सरकार के अधीन ले लिया गया है ।)	९. मनीपुर	
		१०. हिमाचल प्रदेश	



राज्यों की सीमाओं का परिवर्तन संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा और संघ के सदस्य बहुमत से इस प्रकार का प्रस्ताव पास कर सकेंगे।

संविधान में इस प्रकार का प्रबन्ध इसी दृष्टि से किया गया है जिससे 'भाषा' अथवा 'शासन की सुविधा' के आधार पर प्रांतों का पुनर्संङ्गठन किया जा सके। आन्ध्र राज्य का सगठन भी इसी धारा के अधीन किया गया है।

अविच्छिन्न सङ्घ—हमारे नये संविधान के अन्तर्गत राज्यों को इस बात की स्वतन्त्रता नहीं होगी कि वह सङ्घ से अलग हो सकें। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए भारत का नाम (union of states) अर्थात् राज्यों का अविच्छिन्न सङ्घ रक्खा गया है। यह सङ्घ राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से केवल एक देश होगा; स्वतन्त्र देशों का समूह नहीं। इसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को नागरिकता का केवल इकहरा अधिकार प्राप्त होगा। दोहरा सङ्घ सरकार तथा राज्य की नागरिकता का अलग-अलग अधिकार नहीं, अमरीका के उदाहरण से प्रभावित होकर, जहाँ सङ्घ बनने के पश्चात् वहाँ के राज्यों ने सङ्घ सरकारों से सम्बन्ध विच्छेद करना चाहा और उन्हें ऐसा करने से रोकने के लिए वहाँ की सरकार को एक गृह-युद्ध करना पड़ा, भारतीय विधान में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि सङ्घ के अन्तर्गत राज्यों को अलग होने की स्वतन्त्रता नहीं होगी।

नया संविधान सघात्मक है अथवा नहीं

हमारे नये संविधान के बहुत से आलोचक यह कहकर विधान की टीका-टिप्पणी करते हैं कि नया संविधान सघात्मक नहीं है। उनका कहना है कि इस संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी कर दी गई है और उनको संघ-शासन-प्रणाली के अन्तर्गत दिये जाने वाले अधिकार नहीं सौंपे गये हैं।

इस आलोचना का प्रतिकार करने से पहले हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि सघात्मक शासनों के मुख्य लक्षण क्या होते हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक डाइसी ने सघ शासन के तीन मुख्य लक्षण बताये हैं:—

(१) लिखित और अपरिवर्तनशील संविधान (Written and rigid constitution);

(२) सघ तथा उसके अन्तर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का स्पष्ट विभाजन (*A clear demarcation of powers between the federation and the units*);

और (३) सघ और राज्यों के बीच होने वाले संवैधानिक गति अवरोध का निर्णय करने के लिए एक स्वतन्त्र तथा अधिकार-सम्पन्न उच्चतम न्यायालय की स्थापना (The existence of a competent and independent supreme

court to settle disputes between the federation and the constituent units)

॥—भारत के नये विधान में ये तीनों गुण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। हमारा नया विधान लिखित है तथा उसके वह मूलगत सिद्धान्त जिनके द्वारा राज्यों तथा सघ सरकार के बीच अधिकार विभाजन किया गया है, अपरिवर्तनशील (rigid) है। कारण, उनमें केवल उस समय परिवर्तन किया जा सकता है जब सघ ससद् के दो तिहाई सदस्य उसके विषय में प्रस्ताव पास करें तथा कुछ दशाओं में वह प्रस्ताव आधे से अधिक राज्यों की विधान सभाओं द्वारा स्वीकार कर लिया जाय। संघ शासन की दूसरी आवश्यक शर्त अर्थात् सङ्घ तथा राज्यों के बीच अधिकार का विभाजन भी हमारे नये संविधान में पूर्ण रूप से विद्यमान है। सविधान में कहा गया है कि राज्यों की सरकारों को ६६ विषयों पर तथा सङ्घ सरकार को ६७ विषयों पर कानून पास करने का अधिकार होगा। दोनों शक्तियों में से कोई भी एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप न कर सकेगी। राज्य सूची में वर्णित विषयों पर सङ्घ सरकार को उस समय तक कानून पास करने का अधिकार नहीं होगा, जब तक दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ उससे स्वयं ऐसा करने के लिए न कहें या किसी विपत्ति काल में, राष्ट्रपति सकट की घोषणा करके, यह अधिकार अपने हाथ में न ले लें। साधारण दशा में दोनों शक्तियाँ अपने अपने अधिकार क्षेत्र में काम करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होंगी।

अन्त में, सङ्घ सरकार की तीसरी आवश्यक शर्त की पूर्ति के लिए संविधान में एक उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है जिसका मुख्य कार्य सङ्घ तथा राज्यों के बीच उत्पन्न हुए सवैधानिक अवरोधों को दूर करना होगा। किसी भी राज्य की सरकार को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वह कोई भी ऐसा विषय उच्चतम न्यायालय के समक्ष उपस्थित कर सके जिसमें उसे सङ्घ सरकार के विरुद्ध उसके कार्य क्षेत्र में हस्तक्षेप करने की शिकायत हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा नया सविधान पूर्ण रूप से सङ्घात्मक है और उसमें संघ शासनों की वे सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं जो संसार के दूसरे विधानों में पाई जाती हैं।

भारतीय सघ सविधान की विचित्रता (Distinguishing Factors of the Indian Constitution)

परतु इतना होने पर भी हमारे विधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के सङ्घात्मक विधानों की दास वृत्ति से नकल नहीं की है। उन्होंने उन सविधानों की उन सभी अच्छाइयों को ग्रहण करने का प्रयत्न किया है जो भारतीय परिस्थिति के अनुकूल हैं तथा उनमें वह आवश्यक परिवर्तन कर दिये गये हैं जिनसे हम उनकी त्रुटियों से बचे रहें।

इसी दृष्टि से हमारा नया संविधान दूसरे संविधानों के समान संघात्मक होने पर भी अपना एक पृथक् अनेखापन रखता है। उदाहरणार्थ :—

(१) हमारे संविधान में भारत के नागरिकों को इकहरी नागरिकता के अधिकार प्रदान किये गये हैं, अमरीका के संविधान की भाँति दोहरी नागरिकता के अधिकार नहीं। संयुक्त राष्ट्र अमरीका में प्रत्येक राज्य की सरकार को यह अधिकार प्राप्त है कि वह अपनी अधिकार सीमा में रहने वाले नागरिकों के लिए दूसरे राज्यों से पृथक् इस प्रकार के कानून बना सके जिसके द्वारा उन्हें नौकरी, स्कूलों में भर्ती, चिकित्सालयों में प्रवेश, व्यापार तथा स्वतन्त्र व्यवसाय इत्यादि सम्बन्धी विशेष अधिकार दिये जा सकें। भारत में राज्यों की सरकार को यह अधिकार नहीं दिया गया है। नये संविधान के अन्तर्गत प्रत्येक भारतीय को चाहे वह किसी भी राज्य में रहे, समान अधिकार प्राप्त होंगे।

(२) संयुक्त राष्ट्र अमरीका में राज्यों को इस बात का अधिकार है कि वह जनतन्त्र सत्ता के अधीन जिस प्रकार का चाहें, अपने लिए विधान बनायें तथा उसमें जब चाहें, परिवर्तन कर सकें। भारत में इसके विपरीत प्रत्येक राज्य का विधान संविधान सभा द्वारा ही बनाया गया है। राज्यों की सरकारों को इस बात का अधिकार नहीं दिया गया है कि वह उस विधान में किसी प्रकार का परिवर्तन अथवा संशोधन कर सकें।

(३) संघ विधानों में प्रान्त. अधिकार विभाजन के साथ साथ देश में दोहरी धारा सभा, कार्यकारिणी, न्यायपालिका तथा सरकारी प्रबन्ध का संगठन होता है। इससे देश के शासन प्रबन्ध, न्याय तथा कानूनों में एक प्रकार का दोहरापन आ जाता है। यह सच है कि कुछ सीमा तक एक विशाल देश में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार शासन प्रबन्ध में कुछ विभिन्नता अवश्य रहनी चाहिये, परन्तु जहाँ तक मौलिक नियमों तथा कानूनों का सम्बन्ध है, वह सारे देश के लिए एक से ही होने चाहिये। यदि ऐसा न हो तो एक ही देश के नागरिकों को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में जाने, वहाँ पर बसने, व्यापार करने अथवा पढ़ने लिखने इत्यादि के कार्य में भारी असुविधा का सामना करना पड़े। *हमारे देश में शासन प्रबन्ध की यह एकता (१) समस्त देश के लिए एक उच्च न्यायालय, (२) एक प्रकार के मौलिक दीवानी व फौजदारी कानून तथा (३) एक प्रकार की एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस का संगठन कर के प्राप्त की गई है।*

हमारे संविधान में सारे देश के लिए न्यायपालिका का संगठन समान रूप है। देश के सर्वोच्च न्यायालय, सुप्रीम कोर्ट को सभी राज्यों के हाईकोर्टों तथा उनके नीचे काम करने वाली कचहरियों पर अधिकार प्राप्त है। सब हाईकोर्टों की अपीलें सुप्रीम कोर्ट के समक्ष पेश होती हैं। कानूनों की एकता बनाये रखने के लिए दीवानी व फौजदारी कानून समवर्ती विषयों की सूची में रक्खे गये हैं। इसके अतिरिक्त शासन की एक सूत्र

के लिए सभी राज्यों के लिए एक ही अखिल भारतीय सर्विस का आयोजन किया गया है। इस सर्विस के सदस्य सभी राज्यों में उच्च अधिकारी नियुक्त किये जायेंगे। इस प्रकार संसार के दूसरे देशों के संघ विधानों में उत्पन्न होने वाली शासन संबंधी विभिन्नता का हमारे नये संविधान में अंत करने का प्रयत्न किया गया है।

(४) संघीय विधानों का एक और बड़ा दोष कानूनीपन (Legalism) तथा जकड़बन्दी (Rigidity) होता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। कारण, संघ शासन के अन्तर्गत राज्यों तथा सरकार के बीच अधिकारों का विभाजन होता है। यदि वह विभाजन आसानी से बदला जा सके तो फिर उसकी महत्ता कायम नहीं रहती। परन्तु इस जकड़बन्दी से संघ सरकार एकात्मक शासनों की अपेक्षा कमजोर तथा बलहीन हो जाती है और राष्ट्रीय संकट अथवा देश पर किसी प्रकार की विपत्ति आ पड़ने के समय, वह पूरी शक्ति के साथ कार्य नहीं कर सकती। वैसे भी वर्तमान काल में आने-जाने के साधनों की सुविधा से स्थानीय विषय राष्ट्रीय और राष्ट्रीय विषय अंतर्राष्ट्रीय बनते जा रहे हैं। इस कारण, संघात्मक विधान आजकल अधिक पसन्द नहीं किये जाते। परंतु हमारे विधान निर्माताओं ने इस प्रकार का संविधान बनाया है कि वह इन दोनों ही दोषों से बचा रहे और शांति काल और संकट की परिस्थिति में आवश्यकतानुसार कार्य कर सके। हमारे संविधान का इसलिए सबसे बड़ा गुण यह है जिसके द्वारा विपत्ति काल में वह एकात्मक हो जाता है और शान्ति काल में संघात्मक ही रहता है। यदि राष्ट्रपति किसी समय संविधान की ३५२ धारा के अंतर्गत देश में संकट की घोषणा कर दें तो सारा देश एक ही केन्द्र से शासित होने लगता है। इस घोषणा के अधीन संघ सरकार सारे राज्यों के लिए स्वयं कानून बना सकती है, उनकी कार्यकारिणी को मनचाहा आदेश दे सकती है तथा संघ विधान के अर्थ सम्बन्धी भाग को स्थगित कर सकती है।

(५) संविधान को और भी अधिक नमनीय बनाने के लिए हमारे विधान निर्माताओंने आस्ट्रेलिया के संविधान से उदाहरण ग्रहण किया है। उन्होंने संघ तथा राज्य की सरकारों के बीच अधिकार का विभाजन इस प्रकार किया है कि संघ सरकार उन ९७ विषयों के अतिरिक्त जो उसकी अधिकार सीमा के अन्तर्गत रक्खे गये हैं, ४७ और ऐसे विषयों पर कानून बना सकती है जो संविधान की समवर्ती सूची में दिये गये हैं। इस योजना से यह लाभ हुआ है कि भारत की केन्द्रीय सरकार बहुत से राष्ट्रीय महत्ता के विषयों पर सारे देश के लिए समान कानून बना सकती है। आस्ट्रेलिया के विधान में तो संघ सरकार को केवल तीन विषयों पर ही कानून बनाने का अधिकार प्राप्त है परंतु भारत में संघ सरकार को यह अधिकार ९७ विषयों पर दिया गया है।

इसके अतिरिक्त, संविधान की २४९ धारा के अंतर्गत संघ सरकार को यह अधिकार भी प्रदान किया गया है कि यदि किसी समय राज्यपरिषद् यह अनुभव करे कि राज्य सूची में वर्णित स्थानीय विषय राष्ट्रीय महत्ता का विषय बन गया है तो वह दो तिहाई बहुमत से प्रस्ताव पास कर के विषय को संघ सरकार के अधिकार क्षेत्र में दे सकती है। इस प्रकार समय के परिवर्तन के साथ हमारे नये विधान में विकास व फैलाव के आवश्यक गुण विद्यमान हैं। जहाँ तक संकटकालीन स्थिति का सम्बन्ध है, यह हम पहिले ही देख चुके हैं कि *विधान की २५०वीं धारा के अन्तर्गत संघ सरकार के राज्यों के लिए* कानून बना सकती है।

एक तीसरी विधान की २५२ धारा के अन्तर्गत दो या दो से अधिक राज्यों की विधान सभाएँ संघ सरकार से प्रार्थना कर सकती हैं कि वह उनके लिए किन्हीं राज्य सूची के विषयों पर क़ानून बना दे। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारा नया विधान अत्यन्त नमनीय (Flexible) है और उसमें समय की परिस्थिति के अनुसार कार्य करने की शक्ति है।

(६) अन्त में, हमारे *संविधान* की एक और विशेषता यह है कि यह राज्यों तथा संघ सरकार के बीच अधिकार विभाजन के सिद्धान्त सम्बन्धी विषयों को छोड़कर और क्षेत्रों में *आसानी से बदला जा सकता है*। विधान में कहा गया है कि संघ संसद् मतदायक सदस्यों की उपस्थिति में दो-तिहाई बहुमत से विधान के ऐसे किसी भी भाग में परिवर्तन कर सकती है।

अत. हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने नये विधान को दूसरे सभी संघ शासनों के दोषों से बचाने का प्रयत्न किया है और भारत की विशेष परिस्थितियों का ध्यान रख कर देश में एक ऐसे संघ शासन की स्थापना की है जिसमें एकात्मक तथा संघात्मक दोनों ही शासनों के गुण विद्यमान हैं।

क्या भारत के लिए एकात्मक विधान अच्छा रहता ?

वैसे तो अधिकतर लोग हमारे संविधान के जन्मदाताओं की इसीलिये आलोचना करते हैं कि उन्होंने राज्यों का सरकारों को विशेष अधिकार प्रदान नहीं किये और उनके कार्य क्षेत्र पर जगह-जगह कुठाराघात किया है; परन्तु इस देश में ऐसी जनता की भी कमी नहीं है जो समझती है कि राष्ट्र की वर्तमान स्थिति में उसके लिए एकात्मक शासन विधान ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता। इन लोगों का कहना है कि (१) भारत की स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने, (२) देश का एकीकरण करने, (३) हमारे राष्ट्रीय जीवन में प्रान्तीयता, भाषावाद तथा साम्प्रदायिकता की पृथक्करण की भावनाओं का मुकाबिला करने तथा (४) राष्ट्र-विरोधी साम्यवादी शक्तियों को दबाने के लिए, हमारे देश में एक सर्वशक्ति सम्पन्न केन्द्रीय सरकार की आवश्यकता थी।

परन्तु फिर भी यदि हमारे विधान निर्माताओं ने एक संघ शासन की स्थापना की तो इसके मुख्य रूप से निम्न कारण थे :—

(१) देश की विशालता—१२ लाख वर्गमील के विस्तृत क्षेत्र के लिए एक ही केन्द्रीय सरकार की स्थापना शासन की कुशलता तथा सुविधा की दृष्टि से उचित न थी।

(२) सांस्कृतिक विकास तथा भाषा की उन्नति—हमारे देश के विभिन्न भागों में भाषा, साहित्य, रीति रिवाज, उत्सव, त्यौहार, सङ्गीत तथा दूसरी कलाओं की उन्नति तथा सांस्कृतिक विकास के लिए संघीय सरकार अधिक अपेक्षित थी।

(३) प्रजातन्त्रात्मक दृष्टिकोण—संघ सरकार के अन्तर्गत देश की जनता को शासन प्रबन्ध में भाग लेने का अधिक अवसर मिलता है। एकात्मक सरकार में इसके विपरीत निरंकुशात्मक शासन के अधिक अंश होते हैं।

(४) विकेन्द्रीयकरण योजना—हमारे राष्ट्र पिता गांधी विकेन्द्रीयकरण के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे। वह चाहते थे कि शासन की इकाइयाँ सारे देश में फैली रहें और राज्य की वास्तविक सत्ता ग्राम पंचायतों के हाथ में हो। यह आदर्श संघ शासन के अधीन अधिक आसानी से पूरा हो सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं के सम्मुख एकात्मक व संघीय विधानों की अच्छाइयों को अपनाने तथा उन दोनों शासन प्रथाओं के दोषों से बचने का कठिन उद्देश्य था। यह उद्देश्य अत्यन्त ही सफलता तथा सुन्दरता के साथ पूरा किया गया है। हमारे नये विधान में संकट के समय एकात्मक रूप से और साधारण शांति के वातावरण में संघात्मक रूप से कार्य कर सकने की अभूतपूर्व क्षमता है।

राष्ट्रभाषा का प्रश्न—राजभाषा हिंदी

नव संविधान के पास होने से बहुत समय पहले तक हमारे देश के नेताओं के सम्मुख यह जटिल समस्या थी कि भारत की राष्ट्रभाषा क्या हो? दक्षिण के लोग हिन्दी को राष्ट्र भाषा का स्वरूप दिये जाने के इसलिये विरुद्ध थे कि उन्हें डर था कि इस कदम से उत्तर प्रदेशी शासन व्यवस्था पर छा जायेंगे, और उनके बच्चों को अपनी मातृभाषा तथा अंग्रेजी के अतिरिक्त एक और अधिक भाषा सीखनी पड़ेगी। परन्तु हिंदी के अतिरिक्त हमारे देश में दूसरी कोई ऐसी भाषा नहीं थी जिसे भारत की अधिकांश जनता समझ सकती। संस्कृत के अधिक निकट होने के कारण भी इस भाषा के साथ जनता की धार्मिक भावनाएँ सन्निहित थीं। इसलिये बहुत वाद विवाद तथा विवेकशील अध्ययन के पश्चात् यही निश्चय किया गया कि हिंदी को ही भारत की राष्ट्र भाषा घोषित किया जाय। बहुत काल तक विधान सभा के गांधीवादी सदस्यों की यह राय भी रही कि हिन्दी के स्थान पर हिन्दुस्तानी को राष्ट्र भाषा माना जाय। गांधी जी के शब्दों में हिंदुस्तानी की परिभाषा वह भाषा थी, जिसे उत्तर भारत के रहने वाले साधारण

और वह अपनी ओर से इस प्रकार की आज्ञाएँ जारी करेंगे जिनसे सरकारी काम के लिए अधिकाधिक हिंदी का प्रयोग किया जा सके।"

प्रांतीय भाषाएँ

हिन्दी को राष्ट्र भाषा का पद प्रदान करके प्रान्तों की समुन्नत भाषाओं के साथ कोई अन्याय किया गया हो, ऐसी बात नहीं है। संविधान की ३४५वीं धारा में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि राज्य की सरकारों को इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी कि वह अपने आंतरिक शासन प्रबंध तथा बच्चों का अपनी मातृ भाषा में प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने के लिए किसी एक या एक से अधिक भाषाओं को राज्य भाषा घोषित कर दें। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रथम १५ वर्षों में उन्हें संघ सरकार के साथ अंग्रेज़ी भाषा में ही पत्र व्यवहार करना होगा, और इसके पश्चात् अंग्रेज़ी का स्थान हिंदी द्वारा ले लिया जायगा। आरम्भ के १५ वर्षों के लिए हाई कोर्टों तथा सुप्रीम कोर्ट की भाषा भी अंग्रेज़ी ही निश्चित की गई है।

जिन प्रान्तीय भाषाओं का संविधान में उल्लेख किया गया है तथा जिन्हें राज्य भाषा का पद प्रदान किया जा सकता है उनकी सूची इस प्रकार है :—

(१) आसामी, (२) बंगाली, (३) गुजराती, (४) हिन्दी, (५) कन्नड़, (६) कश्मीरी, (७) मलयालम, (८) मराठी, (९) उड़िया, (१०) पंजाबी, (११) संस्कृत, (१२) तामिल, (१३) तेलेगू, (१४) उर्दू।

भारतीय संविधान का संशोधन

भारतीय संविधान ने संशोधन के विषय में मध्यम मार्ग को अपनाया है। संशोधन की व्यवस्था न अमरीका जैसी कठिन है और न इंगलैंड जैसी सरल। अमरीका में कोई भी संवैधानिक परिवर्तन उस समय तक नहीं किया जा सकता जब तक कांग्रेस के दोनों भवन दो तिहाई बहुमत से उसे स्वीकार न करें तथा जब तक समस्त राज्यों में से तीन चौथाई उसके पक्ष में न हों। इंगलैंड में संवैधानिक तथा दूसरे कानूनों में किसी प्रकार का भेद नहीं है; वहाँ पर संविधान सम्बन्धी कोई भी कानून उसी आसानी से पास किया जा सकता है, जैसे कोई साधारण कानून। भारतवर्ष में संविधान के संशोधन के विषय में दो प्रकार का प्रबंध है।

(१) सर्वप्रथम भारतीय संविधान की कुछ धाराएँ ऐसी हैं, जिन धाराओं का प्रभाव राज्यीय अधिकारों तथा उनके संगठन पर नहीं पड़ता, कि वह सब संसद् के दोनों भवनों में उपस्थित सदस्यों के दो तिहाई बहुमत, तथा कुल सदस्य संख्या के बहुमत से बदली जा सकती हैं। संविधान में इस प्रकार का संशोधन किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकता है, परन्तु उसका दोनों ही सदनों द्वारा ⅔ बहुमत से पास होना आवश्यक है।

(२) संविधान की जिन धाराओं का प्रथम तथा द्वितीय अर्थात् ए० और बी०

श्रेणी के राज्यों के अधिकारों पर प्रभाव पड़ता है, वह धाराएँ उस समय तक नहीं बदली जा सकतीं जब तक संसद् के दोनों सदन ⅔ बहुमत से तथा आधे से अधिक राज्यों के विधान मंडल बहुमत से उसे स्वीकार न कर लें। ऐसी दशा में ही इस प्रकार का संशोधन राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में जिन विषयों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है, वे ये हैं :—

(१) राष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी संविधान की धाराएँ,

(२) संघ कार्यपालिका की शक्ति सम्बन्धी संविधान की धाराएँ,

(३) ए० श्रेणी के राज्यों की कार्यपालिका संविधान की धाराएँ,

(४) सी० श्रेणी के राज्यों की उच्च न्यायालय संविधान की धाराएँ,

(५) संघीय न्यायपालिका सम्बन्धी संविधान की धाराएँ,

(६) संघ और राज्यों के बीच अधिकार विभाजन सम्बन्धी संविधान की धाराएँ,

(७) संविधान में संशोधन सम्बन्धी की धाराएँ,

आस्ट्रेलिया और कैनेडा की भाँति भारतीय राज्यों को अपने आन्तरिक संविधानों में किसी भी प्रकार का परिवर्तन करने का अधिकार नहीं दिया गया है।

योग्यता प्रश्न

१. "भारतीय संविधान संघात्मक भी है और एकात्मक भी"। व्याख्या कीजिये (यू० पी० १९५३)

२. "भारतीय संविधान संसार में अनूठा है"। इस कथन में क्या सच्चाई है ?

३. नये संविधान में संघ सरकार को अधिक शक्ति क्यों प्रदान की गई है ? क्या भारत के लिए एकात्मक विधान अच्छा रहता ?

४. हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में संविधान में क्या प्रबन्ध किया गया है ? क्षेत्रीय भाषा किसे कहते हैं ?

५. भारतीय संविधान में संशोधन किस प्रकार किये जा सकते हैं ? समझाइये। क्या राज्य सरकारें अपना संविधान बदल सकती हैं ?

अध्याय ५

नागरिकता तथा मौलिक अधिकार

§ १. नागरिकता

जैसा पिछले अध्यायों में बतलाया गया है, भारत के नव संविधान के अन्तर्गत भारतवासियों को केवल इकहरी नागरिकता के अधिकार प्रदान किये गये हैं, संसार के दूसरे बहु संविधानों की भाँति दोहरी नागरिकता के अधिकार नहीं।

संविधान लागू होने के समय भारतीय नागरिकता का निश्चय

हमारा नया संविधान नागरिकता के सम्बन्ध में किसी विस्तृत कानून की व्याख्या नहीं करता। वह यह भी नहीं बताता कि भारतीय नागरिकता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है तथा उसका लोप किस प्रकार हो सकता है। वह केवल इस बात का निश्चय करता है कि संविधान लागू होने के समय किस प्रकार के व्यक्ति भारत के नागरिक माने गये। जहाँ तक नागरिकता सम्बन्धी विस्तृत कानून का सम्बन्ध है, वह भविष्य में संसद द्वारा पास किया जायगा। संविधान लागू होने के समय तीन प्रकार के व्यक्तियों को भारत का नागरिक माना गया :—

(१) इनमें सर्वप्रथम वे व्यक्ति हैं जो भारत के जन्मजात नागरिक हैं तथा जो देश के किसी भी भाग में जन्म से रहते हैं।

(२) दूसरे, उन शरणार्थियों को भारत का नागरिक माना गया जो देश के विभाजन के पश्चात् भारत में आकर बस गये।

(३) तीसरे, कुछ विशेष शर्तों के अधीन, उन व्यक्तियों को भी भारतीय नागरिकता का अधिकार प्रदान कर दिया गया जो भारतीय होते हुए, विदेशों में जाकर बस गये तथा वहीं पर व्यापार करने लगे।

उपरोक्त वर्णित इन तीन प्रकार से प्राप्त भारतीय नागरिकता के सम्बन्ध में जो संविधान में प्रबन्ध किया गया है उसका विस्तृत उल्लेख इस प्रकार है :—

(*१*) *जन्मजात नागरिक*—प्रथम श्रेणी के लोगों को भारतीय नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि संविधान के आरम्भ होते समय हर वह व्यक्ति जो भारत में जन्मा हो या जिसके माता पिता या दोनों में से कोई भारत में जन्मा हो, अथवा जो संविधान आरम्भ होने के कम से कम ५ वर्ष पूर्व से

भारत में रहता हो, परन्तु जिसने किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार न कर ली हो, भारत का नागरिक माना जायगा।

(२) *शरणार्थी नागरिक*—दूसरी श्रेणी अर्थात् पाकिस्तान छोड़कर भारत आने वाले हिंदू और सिखों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं या जिनके माता पिता या बाबा-दादी या नाना नानी या इनमें से कोई अविभाजित भारत में पैदा हुए हों और जो १ जुलाई, १९४८ से पूर्व पाकिस्तान से आकर भारत में बस गये हों, उन्हें भारत का नागरिक माना जायगा। जो लोग जुलाई, १९४८ के पश्चात् पाकिस्तान से भारत आये हैं उनके लिए विधान में कहा गया है कि वह केवल उस दशा में नागरिक समझे जायेंगे, जब वह भारत सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए अफसरों के सम्मुख आवेदन-पत्र देकर २६ जनवरी, १९५० से पहले, अपना नाम रजिस्टर करा लें; परन्तु ऐसे व्यक्तियों के नाम की रजिस्ट्री केवल उस दशा में हो सकेगी जब वह आवेदन-पत्र देने से पूर्व कम से कम ६ महीनों से भारत में रह रहे हों। जो व्यक्ति पहिली मार्च सन् १९४७ के पश्चात् भारत छोड़कर पाकिस्तान चले गये हैं, उन्हें भारत का नागरिक नहीं माना जायगा; परन्तु उन राष्ट्रवादी मुसलमानों की सुविधा के लिए जो स्वयं या जिनके परिवार के सदस्य साम्प्रदायिक दंगों के समय भय के कारण पाकिस्तान चले गये थे, परन्तु बाद में पक्का परमिट पाकर भारत लौट आये हैं उनको नागरिकता का अधिकार दे दिया गया है।

(३) *विदेशों में बसने वाले भारतीय*—अन्त में तीसरी श्रेणी के लोगों को नागरिकता का अधिकार प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि जो लोग आजकल विदेशों में रहते हैं परन्तु जिनका स्वयं या जिनके माता-पिता या बाबा दादी या नाना नानी में से किसी का जन्म अविभाजित भारत में हुआ था, वह लोग, यदि वह विदेशों में स्थित भारत के राजदूत के दफ्तर में प्रार्थना-पत्र देकर अपने नाम की रजिस्ट्री करा लेंगे तो उन्हें भारतीय नागरिकता का अधिकार दे दिया जायगा। साथ ही संविधान में कहा गया है कि जो व्यक्ति विदेशी नागरिकता ग्रहण करेंगे, उन्हें भारत का नागरिक बनने का अधिकार नहीं होगा।

नागरिकता के सम्बन्ध में जैसा पहिले बतलाया गया है, विधान की व्यवस्था अन्तिम नहीं है। भारतीय संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह इस विषय में एक विस्तृत कानून पास कर सके। ऐसा इसलिए किया गया है, जिससे समय की आवश्यकतानुसार भारत संसद् इस दशा में उचित कानून पास कर सके तथा ऐसा कानून संविधान का संशोधन न समझा जाय। संविधान में दी गई नागरिकता की परिभाषा पूर्ण नहीं है, उदाहरणार्थ उसमें विदेशियों के भारतीय नागरिकता प्राप्त करने के सम्बन्ध में कोई आयोजन नहीं है। पाकिस्तान से भारत आने वाले उन हिंदुओं के लिए

भी उचित व्यवस्था नहीं है जो २६ जनवरी सन् १९५० के पश्चात् पूर्वी बंगाल से भाग कर पश्चिमी बङ्गाल में आ रहे हैं। इन्हीं बातों का विचार रख कर, संविधान में, संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह बाद में इन कमियों को पूरा करने के लिए, हर प्रकार से पूर्ण, भारतीय नागरिकता सम्बन्धी कानून बना सके।

§२ मौलिक अधिकार

नये विधान के अन्तर्गत नागरिकों के मौलिक अधिकार

भारतीय संविधान की नागरिकों को सबसे बड़ी देन, उनके मौलिक अधिकार हैं। ये वे अधिकार हैं जो प्रत्येक भारतवासी को धर्म, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के भेद भाव के बिना समान रूप से दिये गये हैं। ये अधिकार राज्य की नींव हैं। ये वे गुण हैं जिनके कारण राष्ट्र की शक्ति में नैतिकता का समावेश होता है। यह इस अर्थ में प्राकृतिक अधिकार है कि वे जीवन की अच्छाई तथा व्यक्तित्व के विकास के लिए आवश्यक हैं। भारतवासियों को प्रथम बार यह अधिकार नये विधान के अंतर्गत प्रदान किये गये हैं। इससे पहले अङ्गरेजों के काल में उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं थी और सहस्रों की संख्या में उन्हें प्रति वर्ष बिना मुकदमे जेल की कोठरियों में बंद कर दिया जाता था। उन्हें न किसी प्रकार की भाषण देने की स्वतन्त्रता थी, न सङ्घ बनाने की और न समाचार पत्र प्रकाशित करने की। नये विधान के अंतर्गत नागरिकों को दो प्रकार के मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। एक वह, जिनके बारे में अदालत में कार्यवाही की जा सकती है। अँगरेजी में इन अधिकारों को (Justiciable) अधिकार कहा जाता है। दूसरे, वह अधिकार हैं जिन पर चलना सङ्घ तथा राज्यों की सरकार के लिए अनिवार्य होगा, परन्तु उनके सम्बन्ध में न्यायालयों में कार्यवाही न की जा सकेगी। इन अधिकारों का अँगरेजी में (non justiciable) अधिकार कहा जाता है।

नागरिकों के न्यायालयों द्वारा सुरक्षित मौलिक अधिकार

प्रथम श्रेणी में नागरिकों को जो मौलिक अधिकार प्राप्त होंगे उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है :—

(१) समानता का अधिकार, (२) स्वतन्त्रता का अधिकार, (३) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार, (४) संस्कृति तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार, (५) सम्पत्ति का अधिकार और (६) संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार।

१. समानता का अधिकार

संविधान में यह एक ऐसा अधिकार है जो नागरिकों को बिना किसी रोक टोक के प्रदान किया गया है। इस अधिकार के द्वारा किसी नागरिक के विरुद्ध धर्म, जाति,

लिंग तथा जन्म-स्थान के कारण भेद-भाव करना निषिद्ध ठहराया गया है। संविधान में कहा गया है कि सब नागरिकों को दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों, सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में, प्रवेश तथा उनके उपयोग का बराबर का अधिकार होगा। हरिजनों के साथ किसी प्रकार की छुआछूत नहीं बरती जायगी। राज्य की नौक-रियाँ प्राप्त करने का सब नागरिकों को समान अधिकार होगा; केवल धर्म, वंश, जाति अथवा लिंग के आधार पर किसी व्यक्ति को नौकरी प्राप्त करने के अवसर से वंचित नहीं रक्खा जायगा। केवल पिछड़ी हुई जातियों के सदस्यों के लिए जिन्हें अभी तक सरकारी नौकरियों में पर्याप्त स्थान प्राप्त नहीं है, कुछ स्थान सुरक्षित रक्खे जायेंगे।

सामाजिक समानता की ओर एक और महत्वपूर्ण कदम जो हमारे संविधान ने उठाया है, वह हर प्रकार के सरकारी खिताबों की प्रथा का मिटा देना है। गणतन्त्र भारत में किसी भी नागरिक को विश्वविद्यालयों की उपाधियों को छोड़कर और किसी प्रकार के रायसाहबी, रायबहादुरी या सर इत्यादि के खिताब नहीं दिये जायेंगे।

२. स्वतन्त्रता का अधिकार

इस शीर्षक के अन्तर्गत नागरिकों को भाषण की स्वतन्त्रता, शान्तिपूर्वक बिना हथियार इकट्ठा किये सभा करने की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता, भारत के किसी भी प्रान्त में स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, निवास करने या बस जाने की स्वतन्त्रता तथा व्यापार करने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। परन्तु इन अधिकारों पर, संविधान में कहा गया है कि सरकार सार्वजनिक हित, सुव्यवस्था, सदाचार तथा राज्य की सुरक्षा के विचार से कोई भी रोक लगा सकेगी। ऐसा इसीलिए किया गया है कि नागरिक इन अधिकारों का दुरुपयोग न करें। अधिकार केवल कर्तव्य की दुनियाँ में ही वांछित रह सकते हैं। किसी भी अधिकार का अर्थ स्वच्छन्दतापूर्वक कार्य करना नहीं होता। उदाहरणार्थ, भाषण की स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं कि किसी व्यक्ति के जो मन में आवे कहे, किसी का अपमान अथवा मानहानि करे या जनता को हिंसात्मक कार्य करने के लिए उकसावे। इस प्रकार के अनियन्त्रित अधिकार देने से अराजकता के अतिरिक्त दूसरा परिणाम नहीं निकलता।

इसलिये स्वतन्त्रता सम्बन्धी संविधान की १९वीं धारा के दूसरे अनुच्छेद में कहा गया है कि स्वतन्त्रता का आशय यह नहीं होगा कि कोई व्यक्ति *किसी की मानहानि* करे, या राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र कर सके। इस प्रकार की रोक संसार के प्रत्येक संविधान में ही लगाई जाती है।

संविधान का संशोधन—परन्तु, संविधान में वर्णित स्वतन्त्रता सम्बन्धी उपरोक्त रोक के होते हुए भी भारत के अनेक हाई कोर्टों द्वारा सन् १९५० में इस प्रकार के फैसले दिये गये जिनमें कहा गया कि भारत के नागरिकों का भाषण स्वतन्त्रता सम्बन्धी

मौलिक अधिकार इतना व्यापक है कि उसके अन्तर्गत उन्हें हत्या का प्रचार करने की भी आज्ञा है। संविधान से इस दोष को दूर करने के लिए १२ मई, १९५१ को पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय संसद् में संविधान सम्बन्धी प्रथम संशोधन पेश किया। इस संविधान में भाषण की स्वतन्त्रता के विषय में निम्न रोक लगाई गई है :—

(१) सरकार को अधिकार होगा कि राज्य की सुरक्षा एवं अन्य राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने के लिए स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार पर रोक लगा सके।

(२) सरकार को यह भी अधिकार होगा कि वह सार्वजनिक अव्यवस्था, व्यक्तिगत मानहानि तथा किसी अपराध के लिए उत्तेजना देने पर रोक लगाने के लिए कानून बना सके।

संविधान के इस संशोधन का जोरदार विरोध किया गया। विशेषकर समाचार पत्रों की ओर से कहा गया कि इस संशोधन के पास होने से राज्यों की सरकारों को यह अधिकार प्राप्त हो जायगा कि वह समाचार पत्रों के विरुद्ध सैन्सर सम्बन्धी तथा दूसरे दमनकारी कानून पास कर सकें। अखिल भारतीय समाचार पत्र संघ की ओर से इन संशोधनों को एकदम अनुचित बताया गया।

संसद् में प्रधान मन्त्री तथा गृह मन्त्री ने समाचार-पत्रों को आश्वासन भी दिया कि सरकार कभी स्वतन्त्रता छीनने के लिए किसी प्रकार का कानून नहीं बनायेगी। उन्होंने कहा कि संविधान का संशोधन केवल इसलिए किया जा रहा है कि समाज के शत्रु हिंसा, मारकाट और अराजकता का प्रचार न कर सकें, और गैरजिम्मेदार समाचार पत्र झूठे, अनैतिक तथा हिंसात्मक लेखों द्वारा सरकार के विरुद्ध मोरचा न बनायें। प्रस्तावित संशोधन में उन्होंने रोक शब्द से पहले उचित (Reasonable) शब्द जोड़ कर यह भी स्पष्ट कर दिया कि देश की सर्वोच्च अदालत को इस बात का अधिकार होगा कि वह किसी ऐसे कानून को अवैध घोषित कर दे जिसके अन्तर्गत समाचार पत्रों पर अनुचित रोक लगाई जाय।

संशोधन का सबसे अधिक विरोध यह कह कर किया जा रहा था कि उसके अधीन किसी भी व्यक्ति को अपराधी घोषित किया जा सकेगा जो लोगों को साधारण कानून तोड़ने के लिए भी उकसाये। विरोधियों का कहना था कि सरकार को केवल ऐसे ही कृत्य एवं भाषण अवैध घोषित करने चाहिये जिनसे हत्या का प्रचार किया जाय एवं जिनसे राज्य की सुरक्षा को किसी प्रकार का खतरा पैदा हो। श्री राजगोपालाचार्य ने जो उस समय भारत सरकार के गृहमन्त्री थे, इस दलील का जवाब देते हुए संसद् के सदस्यों को बताया कि प्रत्येक अवैध कार्य, चाहे उसके द्वारा हिंसा का प्रचार किया जाय अथवा दूसरे कानूनों को तोड़ने का आदेश दिया जाय, एक सा ही निंदनीय कार्य है।

उन्होंने पूछा कि क्या चोर-बाजारी करने के लिये लोगों को उकसाना या शराब-बन्दी का कानून तोड़ने के लिए लोगों को आवाहन देना, उतने ही निंदनीय कार्य नहीं हैं जितना हिंसा का प्रचार करना ! आगे चलकर उन्होंने समझाया कि संविधान का संशोधन किसी प्रकार का कानून पास किया जाना नहीं है। संशोधन से संसद् को केवल कानून पास करने का अधिकार प्राप्त होता है। यदि किसी समय उस संशोधन के अधीन संसद् कोई कानून पास करेगी तो सदस्यों को एक बार फिर अवसर मिलेगा कि वे कानून की अच्छाई और बुराइयों पर पूरी तरह से विचार कर सकें।

जमींदारी उन्मूलन के लिए संविधान का संशोधन

संविधान की १६ वीं धारा के अतिरिक्त, प्रस्तावित संशोधन में इस बात का प्रबन्ध भी किया गया कि जमींदारी प्रथा की समाप्ति के लिए विभिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा जो कानून बनाये गये हैं उन्हें सुप्रीम कोर्ट द्वारा, अवैध घोषित न कर दिया जाय। इसलिये १६वीं धारा के साथ साथ संविधान की ३१वीं धारा में भी संशोधन पेश किया गया। इस संशोधन में कहा गया कि बिहार, बम्बई, मद्रास, मध्य प्रदेश एवं उत्तर प्रदेश की सरकारों द्वारा जो जमींदारी उन्मूलन कानून पास किये गये हैं उन्हें मौलिक अधिकारों की आड़ में, सुप्रीम कोर्ट द्वारा, किसी भी दशा में, रद्द नहीं किया जायगा।

भारत सरकार को इस संशोधन की आवश्यकता इसलिये अनुभव हुई कि बिहार हाई कोर्ट द्वारा उस प्रान्त का जमींदारी उन्मूलन कानून अवैध घोषित कर दिया गया था। दूसरे प्रान्तों में भी सुप्रीम कोर्ट की सहायता से इन कानूनों को अवैध घोषित कराने का प्रयत्न किया जा रहा था और सरकार यह नहीं चाहती थी कि इस आवश्यक कानून को न्यायालयों की दया पर छोड़ दिया जाय।

विरोध होने पर भी, संसद् द्वारा संविधान का संशोधन स्वीकार कर लिया गया। २ जून सन् १९५१ को २० के विरुद्ध २२८ वोटों के बहुमत से भारतीय संविधान का पृथक् संशोधन विधेयक स्वीकार कर लिया गया।

स्वतन्त्रता और नियन्त्रण

भारतीय संविधान के अन्तर्गत स्वतन्त्रता सम्बन्धी नागरिकों का अधिकार इस प्रकार कोई स्वच्छन्द अधिकार नहीं है। यह एक ऐसा अधिकार है जिस पर विस्तृत जन-हित की दृष्टि से रोक लगाई गई है। संसार के प्रत्येक प्रजातन्त्र शासन में इस प्रकार की रोक लगाई जाती है। नियन्त्रण के अभाव में स्वतन्त्रता का अर्थ अराजकता होता है। नियन्त्रण के द्वारा ही सब नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा होती है।

इसी कारण स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकारों के अन्तर्गत ही यह भी प्रबन्ध किया गया है कि जहाँ व्यक्तियों को व्यवसाय की स्वतन्त्रता हो, वहाँ वह ऐसे व्यापार न करें जो नैतिकता से गिरे हुए हों या जिनके द्वारा समाज के शक्तिहीन वर्गों का शोषण हो।

उदाहरणार्थ, बच्चों या स्त्रियों का व्यापार निषिद्ध ठहराया गया है, साथ ही १४ वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए कारखानों में नौकरी करने की मनाही कर दी गई है। इसके आगे विधान में कहा गया है कि एक अपराध में किसी व्यक्ति को दो बार अभियोजित और दण्डित नहीं किया जायगा। कोई व्यक्ति अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए मजबूर नहीं किया जायगा। अपराध करते समय जो दण्ड निश्चित हो उससे अधिक दण्ड नहीं दिया जायगा, कोई कार्य जो प्रचलित कानून के अनुसार अपराध न हो, उसके करने पर किसी को दंड न दिया जायगा, किसी व्यक्ति को बिना अपराध गिरफ्तार नहीं किया जायगा, गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात् २४ घंटे के अन्दर उसे किसी मजिस्ट्रेट के सम्मुख पेश किया जायगा, प्रत्येक अपराधी मनुष्य को वकील करने तथा उसके द्वारा अपने मुकदमे की पैरवी कराने का अधिकार दिया जायगा।

निवारक निरोध (बिना मुकदमे नजरबन्दी का कानून (Preventive Detention Act)

नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगाने वाली विधान में एक और २२वीं धारा है जिसके द्वारा किसी भी व्यक्ति को तीन महीने के लिए बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द किया जा सकता है, परन्तु ऐसा करने के तुरन्त पश्चात् सरकार को बताना पड़ता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध क्या अभियोग है। इससे अधिक काल के लिए भी व्यक्तियों को नजरबन्द करने का विधान में आयोजन है। परन्तु ऐसा करने से पहले सरकार को कोई हाई कोर्ट के जजों की एक कमेटी के सम्मुख अपने कार्य का औचित्य समझाना पड़ता है। इसी धारा के अन्तर्गत भारतीय संसद् इस प्रकार का कानून बना सकती है, जिसके द्वारा वह निश्चित करे कि अधिक से अधिक कितने काल के लिए किसी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये जेल में रक्खा जा सकता है।

आलोचना—स्वभावतः संविधान की इस धारा की सबसे अधिक आलोचना की गई है। कुछ लोगों ने यहाँ तक कहा है कि इस धारा के द्वारा संविधान में नागरिकों को जो भी मौलिक अधिकार प्रदान किये गये हैं उन सब पर पानी फेर दिया गया है। कुछ आलोचकों ने सरकार के विरुद्ध फासिस्टवाद का आरोप लगाया है और कहा है कि इस धारा द्वारा सरकार राजनीतिक विरोधियों का दमन करेगी, परन्तु यदि हम भारत की वर्तमान स्थिति पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें और उन सभी राष्ट्र विरोधी एवं अराजकता फैलाने वाली शक्तियों की ओर ध्यान दें, जो आज भारत की नव प्राप्त स्वतन्त्रता को नष्ट करके समाज के जीवन को अस्तव्यस्त कर देना चाहती हैं, तो स्पष्ट हो जायगा कि हमारे विधान निर्माताओं ने संविधान में इस प्रकार की अप्रिय धारा क्यों बनाई है। जनतन्त्रात्मक शासन में कोई भी सरकार जनता को अनुचित उपायों से अधिक समय तक नहीं दबा सकती। यदि वह ऐसा करे तो जनता क्रान्ति का पथ अप-

जाती है। इसलिए यह कहना कि हमारे विधान निर्माताओं ने संविधान में ऐसी धारा राजनीतिक विरोधियों का दमन करने के लिए बनाई है, युक्तिसङ्गत नहीं। अमरीका के विधान में भी जहाँ नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसे फैसले दिये गये हैं जिनसे नागरिकों के अधिकारों पर वैसी ही रोक लग गई है जैसी वह भारत के विधान में लगाई गई है।

नजरबन्दी का कानून—संविधान की २२वीं धारा के अन्तर्गत २५ फरवरी, सन् १९५० को संसद् ने गृह मन्त्री सरदार पटेल के सुझाव पर एक वर्ष के लिए एक ऐसा कानून पास किया जिसके द्वारा भारत सरकार किसी भी व्यक्ति को राष्ट्र की सुरक्षा अथवा देश में आन्तरिक शान्ति बनाये रखने के लिए, बिना मुकदमे, १ वर्ष के लिए नजरबन्द कर सकती थी। परन्तु संविधान में दी गई आज्ञाओं का पालन करने के हेतु इस कानून में कहा गया था कि ऐसा कोई भी व्यक्ति उस समय तक नजरबन्द नहीं किया जायगा जब तक जिला या सब डिविजनल मजिस्ट्रेट या कमिश्नर पुलिस, ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात् राज्य की सरकार को यह न बताये कि उस व्यक्ति के विरुद्ध क्या अभियोग है! अभियुक्त को भी इसी प्रकार उसके विरुद्ध लगाये गये आरोपों से अवगत कराना होता था। इसके अतिरिक्त गिरफ्तारी के ६ सप्ताह के भीतर, ऐसे व्यक्ति का मामला एक ऐसी परामर्श समिति के सम्मुख पेश किया जाता था जिसके दो सदस्य हाई कोर्ट के जज होते थे, या जज रह चुके थे, अथवा जज नियुक्त किये जाने की योग्यता रखते थे। इस परामर्श समिति के सम्मुख अभियुक्त को भी लिखकर अपनी सफाई पेश करने का अधिकार दिया गया था।

इस प्रकार के कानून को इतने शीघ्र पास करने की आवश्यकता इसलिए अनुभव हुई कि २६ जनवरी के तुरन्त पश्चात् हमारे देश के हाई कोर्टों ने हैबियस कार्पस पैटिशन के आधार पर कम्यूनिस्ट नजरबन्दों को छोड़ना आरम्भ कर दिया था। इन हाई कोर्टों का कहना था कि नये संविधान के लागू होने के पश्चात् भारत सरकार के वह पुराने कानून मान्य नहीं ठहराये जा सकते जो जनता के मौलिक अधिकारों की अवहेलना करते हैं। इसीलिये संविधान में दी गई २२वीं धारा के आदेशानुसार संसद् को उपरोक्त कानून पास करना पड़ा।

उपरोक्त कानून केवल एक वर्ष के लिए पास किया गया था। इसलिए फरवरी सन् १९५१ में श्री सी० राजगोपालाचार्य ने संसद् से फिर प्रार्थना की कि वह 'नजरबन्दी कानून' को एक वर्ष के लिए और लागू करने का अधिकार दे दे। उन्होंने कहा कि भारत में आज भी तोड़-फोड़, हिंसा एवं साम्प्रदायिक वैमनस्य की भावना भड़काने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करने की आवश्यकता है। ऐसे लोगों को यह कहकर स्वतन्त्र नहीं छोड़ा जा सकता कि जिस समय कोई अपराध करेंगे तो उन्हें साधारण

कानून के मातहत गिरफ्तार कर लिया जायगा। उन्होंने बताया कि अपराध को उसके किये जाने से पहिले ही रोकने का प्रबन्ध होना चाहिये।

परन्तु यह देखने के लिए कि इस कानून की जकड़बन्दी में समाज के शांतिप्रिय तथा निरपराध व्यक्ति न आ जायँ उन्होंने 'बिना मुकदमे नजरबन्दी' कानून की धाराओं को और भी उदार बना दिया। उदाहरणार्थ नये संशोधित कानून में कहा गया है कि अभियुक्तों को वकील के सलाह लेने की सुविधा दे दी जायगी। साथ ही सरकारों को आदेश दिया गया कि वह गिरफ्तारी के तुरन्त पश्चात्, शीघ्र से शीघ्र अभियुक्त को उन कारणों से अवगत करावें जिनकी वजह से उसे गिरफ्तार किया गया है। दस सप्ताह से अधिक किसी भी व्यक्ति को बिना परामर्श समिति की आज्ञा के नजरबन्द नहीं रक्खा जा सकेगा। अभियुक्तों के पैरोल पर छोड़ने की व्यवस्था भी कर दी गई। आजकल भी यही कानून देश में लागू है।

सुप्रीम कोर्ट और नजरबन्दी का कानून

नजरबन्दी कानून के अधीन भारत की सर्वोच्च न्यायालय में अनेक ऐसे मुकदमे पेश किये गये जिनमें सुप्रीम कोर्ट से प्रार्थना की गई कि वह नजरबन्दी कानून को अवैध घोषित कर दे। परन्तु जुलाई १९५० में श्री गोपालन के मुकदमे का फैसला देते समय सुप्रीम कोर्ट ने ठहराया कि नजरबन्दी कानून वैध है; केवल उसकी वह धारा अवैध है जिसके मातहत राज्य की सरकारें न्यायालय को भी वह कारण बताने से मना कर सकती थीं जिनकी वजह से किसी अभियुक्त को बन्दी बनाया गया था।

हमारे देश के सुप्रीम कोर्ट ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करने के लिए अत्यन्त निष्पक्षता एवं दिलेरी से कार्य किया है। उसने कितने ही मुकदमों में सैकड़ों अभियुक्तों का यह कह कर छोड़ा है कि उनके विरुद्ध अभियोग स्पष्ट नहीं हैं।

२. धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार

भारत में हर व्यक्ति को अंतःकरण तथा धर्म की स्वतन्त्रता प्रदान करने के लिए संविधान की २५वीं धारा में प्रबन्ध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि सामाजिक कल्याण, सदाचार तथा स्वास्थ्य के नियमों का विचार रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को धर्म की स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। धार्मिक सम्प्रदायों को अपनी संस्थाएँ बनाने, धार्मिक प्रचार करने और चल और अचल सम्पत्ति रखने का पूर्ण अधिकार होगा। परन्तु, राज्य की नैतिकता कायम रखने के लिए किसी भी व्यक्ति को धर्म के नाम पर अनैतिक व्यवहार करने की आज्ञा नहीं दी जायगी और न व्यक्तियों को ऐसा कर देने के लिए बाध्य किया जायगा जिसकी आमदनी किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष की उन्नति में खर्च की जाय। सरकार द्वारा चलाई हुई शिक्षा संस्थाओं में भारत सरकार की धर्म निरपेक्षता

(लौकिकता) के कारण, धार्मिक शिक्षा देने की मनाही की गई है। सिखों को कृपाण बाँधने तथा ले जाने का अधिकार दिया गया है।

४. सांस्कृतिक तथा शिक्षा सम्बन्धी अधिकार

धार्मिक अधिकार केवल बहुसंख्यक जाति को ही प्राप्त नहीं होंगे। संविधान में कहा गया है कि अल्पसंख्यक जातियाँ अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा कर सकेंगी। वह अपनी इच्छानुसार शिक्षा संस्थाएँ चला सकेंगी और सरकार ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं करेगी। सरकार द्वारा संचालित शिक्षा संस्थाओं में हर धर्म, जाति व नस्ल के बच्चे बिना किसी रोक-टोक के शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।

५. सम्पत्ति अधिकार

सम्पत्ति प्राप्त करने, रखने तथा उसका क्रय-विक्रय करने का अधिकार भी नये संविधान में प्रत्येक व्यक्ति को दिया गया है। विधान में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को, विधि से प्राप्त अधिकार बिना, उसकी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायगा। सरकार किसी चल या अचल सम्पत्ति पर केवल उस समय अधिकार कर सकेगी जब उसे प्राप्त करने के लिए उचित मुआवजा दे दिया जाय। मुआवजा उचित है या नहीं इसका निर्णय अदालतें कर सकेंगी, परन्तु उत्तर प्रदेश, बिहार और मद्रास के जमींदारी उन्मूलन कानूनों की वैधानिकता के सम्बन्ध में कहीं अड़चन न पड़े, इसलिये संविधान में कहा गया है कि इन विशेष कानूनों के क्षेत्र में अदालतों को किसी प्रकार का दखल नहीं होगा। ऐसा इसलिए किया गया है कि जिससे उन प्रान्तों में जहाँ जमींदारी उन्मूलन कानून पास हो चुके हैं या विधान सभाओं के विचाराधीन हैं, मुकदमों द्वारा उन कानूनों को कार्यान्वित करना असम्भव न बना दिया जाय।

६. संवैधानिक प्रतिकार सम्बन्धी अधिकार

अधिकारों का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक उनको लागू करने तथा उनकी रक्षा करने के लिए संवैधानिक उपाय न हों। हमारे नये संविधान में इसलिये प्रत्येक नागरिक को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए देश के सर्वोच्च न्यायालय में मामला पेश कर सकेगा। इस अदालत को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिए "हेबियस कारपस" तथा "मैन्डेमस" इत्यादि प्रयोगों को काम में ला सकेगी। आजकल सुप्रीम कोर्ट में अनेक ऐसे मुकदमे विचाराधीन हैं जिनमें बहुत से नागरिकों ने अपने मूल अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में उस अदालत में प्रार्थना-पत्र दिये हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नये संविधान में नागरिकों को वह उन्नी सम्पा-

जिक, वैयक्तिक तथा सांस्कृतिक तथा धार्मिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं जिनके द्वारा ही कोई मनुष्य अपने जीवन में उन्नति कर सकता है।

नागरिकों के मौलिक अधिकार जो न्यायालयों द्वारा रक्षित नहीं किये जा सकते (Not Justiciable Rights)

ऊपर, नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों की हमने चर्चा की है उनको अदालत द्वारा मनवाया जा सकता है। परन्तु अब हम व्यक्तियों के कुछ ऐसे अधिकारों का वर्णन करेंगे जो अदालत द्वारा तो नहीं मनवाये जा सकते, किन्तु जो राज्य की नींव हैं और जिनके अनुसार राज्य का कार्य चलना चाहिये। नागरिकों के इन अधिकारों की चर्चा संविधान के उन नियामक सिद्धान्तों में की गई है जिनका वर्णन संविधान की ३६ से लेकर ५१वीं धारा में है। आयरलैंड को छोड़ कर संसार के किसी और देश में इस प्रकार के सिद्धान्तों की घोषणा नहीं की गई है। इस प्रकार यह सिद्धान्त हमारे नये संविधान की बहुत सुन्दर विशेषता है। बहुत से लोग कहते हैं कि ऐसे सिद्धान्तों का वर्णन करने से क्या लाभ जिनका पालन करने के लिए सरकार बाध्य नहीं। इस आक्षेप का उत्तर यही है कि नियामक सिद्धान्त राज्य की कार्यकारिणी तथा विधान मण्डल के नाम संविधान सभा का एक प्रकार का आदेश है कि वे अपने अधिकारों तथा शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करें कि नागरिकों के इन सिद्धान्तों में वर्णित अधिकारों की रक्षा हो सके। यह ऐसे नियम हैं जिन पर चलना संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों को अनिवार्य होगा। इन पर चल कर ही हमारे देश में एक ऐसे आर्थिक तथा राजनीतिक लोकतन्त्र की स्थापना हो सकेगी जिसके बिना स्वतन्त्रता-प्राप्ति व्यर्थ है और साधारण मनुष्य के लिए स्वाधीनता का कोई अर्थ नहीं होता।

राज्य के निदेशक सिद्धान्त (Directive Principles of State Activity)

राज्य के निदेशित सिद्धान्त इस प्रकार हैं :

(१) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिसमें प्रत्येक नर और नारी को समान रूप से जीविका का साधन प्राप्त हो।

(२) राज्य सम्पत्ति का स्वामित्व व नियन्त्रण इस प्रकार करेगा जिससे सामूहिक हित में अधिक से अधिक वृद्धि हो।

(३) राज्य ऐसी व्यवस्था करेगा जिससे धन व उत्पादन के साधन थोड़े से आदमियों के हाथ में इकट्ठे न हों।

(४) सब व्यक्तियों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिल सके।

(५) बालक व वयस्क मजदूरों की शोषण से रक्षा हो सके।

(६) ग्राम पंचायतों का संगठन हो तथा उन्हें वह सभी अधिकार प्रदान किये जायँ जो पहिले कभी उन्हें प्राप्त थे।

(७) राज्य की ओर से यथाशक्ति बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी तथा अभाव की दशा में सार्वजनिक सहायता देने का प्रबन्ध हो।

(८) प्रत्येक व्यक्ति को इतनी मजदूरी मिले कि उसकी जीविका चल सके।

(९) घरेलू उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन दिया जाय।

(१०) १० वर्ष के भीतर १४ साल की आयु तक के बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध हो।

(११) जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा करने के लिए पौष्टिक भोजन का प्रबन्ध और स्वास्थ्य-सुधार के नियमों का पालन किया जाय।

(१२) कृषि और पशु-पालन का आधुनिक ढंग से संगठन हो, विशेषकर गायों, बछड़ों और दूध देने वाले पशुओं की रक्षा की जाय।

(१३) कलात्मक और ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा की जाय।

(१४) कार्यकारिणी और न्याय सम्बन्धी विभाग को अलग अलग किया जाय।

(१५) विश्व-शान्ति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय कानून का सम्मान, परस्पर सहयोग तथा झगड़ों का पंचों द्वारा निर्णय कराया जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निदेशक सिद्धान्तों में उन सभी आदर्शों को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया गया है जो किसी भी राष्ट्र की जनता को प्रिय हो सकते हैं तथा जिनके पूरा होने पर समाज में स्वर्गीय आनन्द की स्थापना हो सकती है।

जनता का कर्त्तव्य

संविधान में मौलिक अधिकारों व निदेशक सिद्धान्तों के उल्लेख मात्र से जनता का कुछ अधिक भला नहीं होता। उनसे केवल उस दशा में लाभ हो सकता है जब वह कार्यान्वित किये जायँ। ऐसा केवल उस दशा में हो सकता है जब जनता अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो। संस्कृत में एक कहावत है "राष्ट्रे जागृयाम वयम्" अर्थात् हम राष्ट्र में जागते रहें। इस एक सूत्र के अन्तर्गत जनता का अपने संविधान के प्रति सारा कर्त्तव्य निहित है। स्वतन्त्र कौमें केवल उस दशा में उन्नति के पथ पर अग्रसर होती हैं जब वह जागरण और सुचेतना द्वारा अपनी स्वाधीनता का मूल्य चुकायें। यदि आज भारतवासियों ने यह मूल्य चुकाने में आनाकानी की तो हमारे सभी मौलिक अधिकार नष्ट हो जायेंगे।

हमारे संविधान ने नागरिकों के अधिकारों की रक्षा के लिये पूरा प्रबन्ध कर दिया है। संविधान में अधिकारों का पूरा उल्लेख है। उनकी रक्षा के लिए देश की सर्वोच्च अदालत सुप्रीम कोर्ट को भी अधिकार दिया गया है। शेष प्रश्न रह जाता है नागरिकों

की जागृति एवं चेतनता का। यह भावनाएँ राज्य या कानून द्वारा पैदा नहीं की जा सकतीं। यह उत्पन्न की जा सकती हैं, एक जागृत लोकमत द्वारा। इसलिए हममें से प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि वह समाज में इस प्रकार की भावना को जन्म देने के लिए स्वयं कार्य करे तथा उसका दूसरों में भी प्रचार करे।

योग्यता प्रश्न

१. हमारे नये संविधान में नागरिकता के अधिकार किन व्यक्तियों को प्रदान किये गये हैं? शरणार्थी भाइयों के लिए नागरिकता के अधिकार कैसे प्रदान किये जायेंगे?

२. मूल अधिकारों का नये संविधान के अनुसार क्या अर्थ है? भारतीय नागरिकों के क्या मूल अधिकार हैं? (यू० पी० १६५१)

३. राज्य के निदेशक सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिये। संविधान में इनका क्या महत्व है? (यू० पी० १६५२)

अध्याय ६

संघ कार्यपालिका

संघ कार्यपालिका का स्वरूप

हमारे संविधान के अन्तर्गत भारत में एक मन्त्रिमंडलात्मक शासन की व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत देश की कार्यकारिणी व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से अपने सारे कृत्यों, फैसलों तथा कार्यों के लिए विधान मंडल के प्रति उत्तरदायी है। विधान मंडल जब चाहे कार्यकारिणी को उसके द्वारा प्रस्तावित कानूनों को रद्द करके या उसके विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके या बजट को अस्वीकार करके उसे पद से अलग कर सकता है। आम चुनावों के समय जनता को यह अवसर मिलता है कि वह विधान मंडल में जिस विचारधारा के भी चाहे, सदस्यों को चुन कर भेजे। जिस राजनीतिक दल के सदस्य विधान सभा में बहुसंख्या में निर्वाचित होते हैं उसके नेता को ही मन्त्रिमंडल बनाने का सुअवसर दिया जाता है। इस प्रकार मन्त्रिमंडलात्मक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य की अंतिम सत्ता निर्वाचकों के हाथ में रहती है।

शासन की यह पद्धति अमरीका की अध्यक्षात्मक प्रणाली से बिल्कुल भिन्न है। वहाँ कार्यकारिणी का अध्यक्ष राष्ट्रपति विधान सभा के बहुमत दल का नेता नहीं होता। उसका अलग जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से चुनाव किया जाता है। वह कार्यपालिका का वास्तविक अध्यक्ष होता है। उसे अपने मन्त्रियों को स्वयं चुनने तथा अलग करने का अधिकार होता है। वह विधान सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होता; न ही वह विधान सभा की बैठकों में भाग लेता है। उसके कार्यकाल के अन्त होने तक कोई शक्ति उसे उसके पद से नहीं हटा सकती। चार वर्ष के लिए वह राष्ट्र का सर्वेसर्वा होता है।

अमरीका और भारत के राष्ट्रपति में अन्तर—हमारे संविधान में राष्ट्रपति कार्यकारिणी का अध्यक्ष अवश्य है परन्तु अमरीका के राष्ट्रपति की भाँति उसे अधिकार प्राप्त नहीं हैं। वह इंगलैंड के सम्राट की भाँति राज्य का नाममात्र का अध्यक्ष है। वह राष्ट्र का प्रतिनिधित्व तो करता है, परन्तु राष्ट्र का शासन नहीं करता। वह इंगलैंड के सम्राट् की भाँति प्रत्येक कार्य प्रधान मन्त्री की सलाह से ही करता है। कहने को राष्ट्र की सारी शक्ति उसके हाथ में निहित है; राष्ट्र के सारे काम उसके नाम पर किये जाते हैं; परन्तु वास्तव में देश का असली शासक प्रधान मन्त्री है। बाहर से देखने पर हमारे राष्ट्रपति के भी वही ठाट-बाट हैं जो इंगलैंड के सम्राट् के। रहने के लिए विशाल महल,

सवारी के लिए शाही गाड़ियाँ, रक्षा के लिए सेना और अंग-रक्षक, तोपों की सलामी, सुनहरी पेटियों वाले चपरासी और प्यादे, दावतें और स्वागत समारोह और सभी कुछ, परन्तु वास्तव में उसके हाथों में शासन की कोई विशेष शक्ति नहीं। यह सच है कि संविधान में राष्ट्रपति के हाथ में, विशेषकर सङ्कटकालीन स्थिति में कार्य करने के लिए बहुत से महत्वपूर्ण अधिकार सौंप गये हैं और कहीं पर यह नहीं कहा गया है कि वह अपने मंत्रियों की आज्ञा मानने के लिए बाध्य होंगे, परन्तु आशा है कि इस दिशा में वही सब रीति रिवाज चालू हो जायँगे जो इंगलैंड में लागू हैं और जिनके कारण ब्रिटिश सम्राट् मन्त्रिमंडल के हाथ में एक कठपुतली के समान कार्य करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नामों में समानता होने पर भी भारत और अमरीका के राष्ट्रपति के अधिकार एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं : (१) एक कार्यकारिणी का सर्वेसर्वा है, दूसरा उसका नाममात्र का अध्यक्ष। (२) एक सारे मंत्रियों को स्वयं चुनता है तथा उन्हें जब चाहे अलग कर सकता है, दूसरा केवल प्रधान मंत्री का चुनाव करता है और वह भी एक विशेष पद्धति के अनुसार, लोक सदन में बहुमत दल के नेता को। (३) एक बड़े बड़े सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति स्वयं करता है, दूसरा ऐसा प्रधान मन्त्री की सलाह से करता है।

भारत में मन्त्रिमंडलात्मक शासन पद्धति चुने जाने के कारण—यहाँ प्रश्न यह उठता है कि भारत ने मन्त्रिमंडलात्मक शासन पद्धति का क्यों अवलम्बन किया और अध्यक्षात्मक सरकार की स्थापना क्यों नहीं की? इसके निम्न कारण हैं :—सर्व प्रथम, इस पद्धति के अधीन पिछले १३ वर्षों से हमारे प्रान्तों की सरकारें व्यवस्थित हो रही थीं। केन्द्रीय शासन में भी अन्तरिम सरकार की स्थापना के पश्चात् से यही पद्धति लागू थी। इस प्रकार भारतवासियों को इस व्यवस्था का समुचित अनुभव प्राप्त था। इस अनुभव ने उन्हें बताया कि मन्त्रिमंडलात्मक सरकार के अधीन विधान मंडल तथा कार्यकारिणी के बीच कार्य बहुत सुगमता तथा सुन्दरता से चलता है। मन्त्री उस नीति को आसानी से कार्यान्वित कर सकते हैं जिसके आधार पर वे विधान सभा में चुने जाते हैं। वह विधान मंडल द्वारा उन सभी कानूनों को आसानी से पास करा सकते हैं जिन्हें वह शासन कार्य चलाने के लिए उचित समझते हैं।

अन्त में, यह शासन प्रणाली भारत में ही नहीं संसार के सभी देशों में लोकप्रिय बन गई है। कारण इस व्यवस्था के अधीन कार्यकारिणी और विधान मंडल में राजनीतिक अवरोध उत्पन्न नहीं होते। इसमें परिस्थिति के अनुसार बदलने और कार्य करने की शक्ति होती है। यह प्रणाली अधिक जनतन्त्रात्मक भी मानी जाती है।

इन सभी लाभों को देखकर हमारे विधान निर्माताओं ने खूब सोच विचार करने के पश्चात् मन्त्रिमंडलात्मक शासन प्रणाली का ही अवलम्बन किया।

राष्ट्रपति

जैसा पहले बताया जा चुका है, हमारे देश की कार्यकारिणी का अध्यक्ष एक राष्ट्रपति है। आजकल इस पद पर डा० राजेन्द्र प्रसाद सुशोभित हैं। संविधान में कहा गया थां कि जब तक संविधान लागू होने के पश्चात् नये चुनाव न हो जायें, संविधान सभा का स्वयं राष्ट्रपति निर्वाचित करने का अधिकार होगा। इस धारा के अन्तर्गत संविधान सभा की एक विशेष बैठक जनवरी २४, १९५० को की गई। इस बैठक में सर्वसम्मति से देशरत्न राजेन्द्र बाबू को राष्ट्रपति चुन लिया गया। अगले दिन गवर्नमेंट हाउस के दरबार हॉल में एक विशेष समारोह के बीच उन्होंने अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली।

आम चुनाव के पश्चात् राष्ट्रपति का चुनाव

संविधान के अन्तर्गत नये चुनाव फरवरी सन् १९५२ में पूरे हो गये। इसके पश्चात् मई के आरम्भ में राष्ट्रपति का चुनाव हुआ। संविधान में राष्ट्रपति के चुनाव के लिए निम्न व्यवस्था की गई है :—

राष्ट्रपति का चुनाव प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होगा। अप्रत्यक्ष चुनाव करने का मुख्य कारण यह है कि राष्ट्रपति कार्यकारिणी के नाममात्र के अध्यक्ष हैं, उनके हाथ में शासन की वास्तविक शक्ति नहीं। इसलिए १८ करोड़ मतदाताओं की विशाल संख्या से उनका प्रत्यक्ष निर्वाचन आवश्यक नहीं समझा गया। संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक निर्वाचक मंडल द्वारा किया जायगा जिसके सदस्य सब राज्यों की विधान सभा के सदस्य तथा केन्द्रीय संसद् के चुने हुए सदस्य होंगे। चुनाव एकहरे संक्राम्य मत (Single transferable vote) के द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रणाली (proportional representation) के द्वारा किया जायगा; जिससे कोई ऐसा व्यक्ति राष्ट्रपति न चुना जा सके जिसे मतदाताओं की बहुसंख्या का विश्वास प्राप्त न हो। चुनाव में प्रत्येक सदस्य को जितने वोट देने का अधिकार होगा उसके निर्णय के लिए एक विशेष नियम बनाया गया है। इस नियम में कहा गया है कि विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों को जहाँ तक सम्भव होगा, उनकी जनसंख्या के आधार पर बराबर के मत देने का अधिकार दिया जायगा और समस्त राज्यों के प्रतिनिधियों को उतने ही मत दिये जायँगे जितने संसद् के दोनों भवनों के सदस्यों को मिला कर। *ऐसा करने के लिए प्रत्येक मतदाता को जितने मत देने का अधिकार होगा उसकी संख्या* नीचे लिखे प्रकार से निर्धारित की जायगी :—

यू० पी० की आबादी ६, ३१६ लाख है। उसकी विधान सभा के निर्वाचित कुल सदस्यों की संख्या ४३० है। अब इस बात का पता लगाने के लिए कि राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्रत्येक यू० पी० का सदस्य कितने वोट दे सकेगा, हमें आबादी की कुल

सख्या अर्थात् ६,१६,००,००० को ४३० से भाग देना होगा और फिर भजनफल को १,००० से। इस प्रकार भजनफल ६,१६,००,००० – ४३० – १००० = १४३ आया। उत्तर प्रदेश के प्रत्येक सदस्य को यही १४३ राय देने का अधिकार होगा। दूसरे राज्यों के सदस्यों को भी मत देने का अधिकार इसी प्रकार निश्चित किया जायगा।

मई सन् १९५२ के राष्ट्रपति के चुनाव में, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है, इसी प्रकार सब राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों की राय का निश्चय किया गया। उपरोक्त ढग से हिसाब लगाने पर विभिन्न राज्यों के सदस्यों को जितनी रायें मिलीं वे नीचे की तालिका में दी गई हैं :—

राष्ट्रपति के चुनाव में राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों की राय

नाम राज्य	निर्वाचित सदस्यों की सख्या	प्रत्येक सदस्य के लिए रायों की सख्या
आसाम	१०८	७६
बिहार	३३०	११६
बम्बई	३१५	१०४
मध्य प्रदेश	२३२	९०
मद्रास	३७५	१४५
उड़ीसा	१४०	१०३
पंजाब	१२६	१००
यू० पी०	४३०	१४३
पश्चिमी बंगाल	५३८	१०२
हैदराबाद	१७५	१०१
काश्मीर (सविधान सभा)	७५	५६
मध्य भारत	९९	७९
मैसूर	९९	८३
पैप्सू	६०	५५
राजस्थान	१६०	९२
सौराष्ट्र	६०	६६
ट्रावनकोर कोचीन	१०८	७६
अजमेर	३०	२४
भोपाल	३०	२८
कुर्ग	२४	७
देहली	४८	३२

हिमांचल प्रदेश	३६	३०
विन्ध्य प्रदेश	६०	६५
कुल जोड़	३,३५८	३,४५,२५१ मत

संसद् के सदस्यों को जितने मत देने का अधिकार दिया गया उसकी संख्या ३,४५,२५१ मतों, अर्थात् सब विधान सभाओं के सदस्यों की कुल मत संख्या को, लोक सभा के निर्वाचित ४९५ सदस्य तथा राज्य परिषद् के निर्वाचित २०४ सदस्यों के योग से भाग देकर निश्चित की गई। इस प्रकार ३४५, २५१÷४९५+२०४ अर्थात् ४९४ संख्या आई। प्रत्येक संसद् के निर्वाचित सदस्य को इतनी ही राय देने का अधिकार दिया गया। इस प्रकार संसद् के सब सदस्यों की राय का जोड़ ३,४५,३०६ आया। इन रायों को विधान सभाओं के सदस्यों की राय के साथ जोड़ने से कुल संख्या ६,९०,५५७ आई। राष्ट्रपति के पिछले चुनाव में कुछ सदस्यों ने भाग नहीं लिया और इस चुनाव में जितनी राय डाली गई उनकी कुल संख्या ६,०५,३८६ थी।

चुनाव में राष्ट्रपति के पद के लिए ५ उम्मीदवार खड़े हुए। उन्हें जितनी रायें मिलीं उनकी संख्या इस प्रकार है :—

नाम	मत संख्या	कुल मतों का प्रतिशत
राजेन्द्र प्रसाद	५,०७,४००	८४
के० टी० शाह	९२,८२७	१५
एल० जी० थत्ते	२,६७२	½
हरी राम	१,९५४	½
के० के० चटर्जी	५३३	

इस प्रकार लगभग ८४ प्रतिशत रायों से डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को राष्ट्रपति घोषित कर दिया गया और २२ मई, सन् १९५२ को उन्होंने अपने पद की शपथ ग्रहण कर ली।

योग्यता—राष्ट्रपति के पद के लिए केवल वही लोग खड़े हो सकते हैं जो (१) भारत के नागरिक हों, (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो तथा जो (३) लोक सभा में चुने जाने की योग्यता रखते हों। यदि कोई व्यक्ति भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी लाभकारी पद पर आसीन है तो वह निर्वाचन के लिए योग्य नहीं समझा जायगा। परन्तु संघ सरकार या किसी राज्य का मन्त्री होना या गवर्नर होना या किसी विधान सभा या परिषद् का सभापति अथवा अध्यक्ष होना लाभकारी पद नहीं समझा जायगा—ऐसे सब लोग चुनाव में भाग ले सकेंगे।

पद का कार्यकाल—राष्ट्रपति के पद का कार्यकाल ५ वर्ष होगा बशर्ते कि वह इससे पहले ही त्याग-पत्र न दे दें या सार्वजनिक दोषारोपण द्वारा उन्हें उनके पद से न

हटा दिया जाय। जब तक नया पदाधिकारी न चुन लिया जायगा, पहला राष्ट्रपति ही कार्य काल की समाप्ति पर भी अपने पद पर काम करता रहेगा। राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि वह अपने पद से त्याग पत्र दे दे। ऐसा त्याग पत्र उपराष्ट्रपति को सम्बोधित करके देना होगा जो इसके बाद लोक सभा के सभापति के सूचनार्थ पेश कर दिया जायगा। एक बार चुन लिये जाने के पश्चात् भी वही व्यक्ति दोबारा और तिबारा उसी पद के लिए खड़ा हो सकेगा। संविधान में इस विषय में कोई रोक नहीं लगाई गई है।

सार्वजनिक दोषारोपण—राष्ट्रपति को उसके पद से हटाने के सम्बन्ध में विधान में इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि यदि कोई राष्ट्रपति संविधान को भङ्ग करे तो संसद् का कोई एक भवन दो तिहाई बहुमत से दूसरे भवन से यह प्रार्थना कर सकेगा कि वह राष्ट्रपति के विरुद्ध लगाये गये अभियोगों की जाँच पड़ताल करे। ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए किसी भवन के कुल सदस्यों की एक चौथाई के हस्ताक्षर तथा १४ दिन की सूचना आवश्यक है। अभियोगों की जाँच पड़ताल करने वाले भवन में राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि उस जाँच में स्वयं उपस्थित होकर या प्रतिनिधि के द्वारा भाग ले सके। यदि पूरी जाँच के पश्चात् दूसरा भवन दो तिहाई बहुसंख्या से अभियोगों का समर्थन कर दे तो राष्ट्रपति को उसके पद से हटा दिया जायगा।

प्रश्न उठता है कि जब नये विधान में राष्ट्रपति का कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं तो इस दोषारोपण की व्यवस्था किसलिए की गई है। इसका उत्तर यह है कि जैसे पहले बताया गया है, संविधान में राष्ट्रपति के अधिकारों पर कोई वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है। केवल ७४वीं धारा में इतना कहा गया है कि राष्ट्रपति की सलाह तथा सहायता के लिए प्रधान मन्त्री के नेतृत्व में एक मन्त्रिमण्डल होगा। यह कहीं नहीं कहा गया है कि इस मन्त्रिमण्डल की बात मानने के लिए राष्ट्रपति बाध्य होंगे। विधान निर्माताओं का आशय था कि इस दशा में कानून से नहीं, रीति रिवाजों (conventions) से काम लिया जाय, परन्तु साथ ही उन्हें डर था कि यदि राष्ट्रपति रीति-रिवाजों को नहीं मानें और मन्त्रियों की सलाह से काम नहीं करें तो क्या होगा? ऐसी परिस्थिति के लिए ही संविधान की ५१वीं व ५६वीं धारा में राष्ट्रपति पर संविधान तोड़ने का दोष लगाकर, उन्हें उनके पद से अलग करने की व्यवस्था की गई है। मन्त्रियों की सलाह न मानना अथवा देश-द्रोह, भ्रष्टाचार या घूसखोरी का काम करना, संविधान का तोड़ना समझा जायगा।

रिक्त स्थान की पूर्ति—राष्ट्रपति के कार्य काल की समाप्ति से पहले ही संविधान में कहा गया है कि नया निर्वाचन हो जाना चाहिये, परन्तु यदि मृत्यु, त्याग पत्र अथवा सार्वजनिक दोषारोपण के कारण नये चुनाव से पहले ही राष्ट्रपति का स्थान खाली हो जाय तो ऐसी दशा में संविधान में कहा गया है कि छै महीने के अन्दर अन्दर नया

चुनाव हो जाना चाहिये। नये राष्ट्रपति का चुनाव चाहे किसी कारण से हो, उसकी अवधि ५ वर्ष की ही निश्चित की गई है।

वेतन—संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति को १०,००० रु० मासिक वेतन, कई प्रकार का भत्ता तथा रहने के लिए भवन तथा दूसरी सुविधाएँ दी जावेंगी। किसी राष्ट्रपति के कार्यकाल में उसका वेतन नहीं घटाया जा सकेगा। परन्तु, हमारे वर्तमान राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने देश के आर्थिक संकट को देखकर अपने वेतन में स्वेच्छा से, १५% की कमी स्वीकार कर ली है।

राष्ट्रपति के अधिकार

संविधान में कहा गया है कि कार्यकारिणी का प्रत्येक कार्य राष्ट्रपति के नाम पर किया जायगा। वह सेना के प्रधान सेनापति तथा देश की कार्य-पालिका के अध्यक्ष होंगे। वह राष्ट्र के प्रतीक तथा जनता के सबसे बड़े प्रतिनिधि हैं। इँगलैंड के सम्राट् की भाँति वह कानून से ऊपर हैं। उन पर किसी न्यायालय में मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सार्वजनिक दोषारोपण के अतिरिक्त और किसी उपाय से पाँच वर्ष तक उन्हें उनके पद से नहीं हटाया जा सकता। उनकी प्रतिष्ठा, मान-मर्यादा कायम रखने के लिए उन्हें हर प्रकार की सुविधाएँ दी जाती हैं—रहने के लिए विशाल महल, सवारी के लिए रोल्स रायस गाड़ियाँ, निजी हवाई जहाज, स्पेशल ट्रेन, सेना के लिए अंग रक्षक, घर का प्रबंध करने के लिए अनेक अफसर, प्राइवेट सेक्रेटरी, कंट्रोलर आफ हाउसहोल्ड, प्रेस अटैची इत्यादि; दावतें देने के लिए विशेष निधि, मेहमानों के लिए विशाल अतिथि-गृह, सिनेमा देखने के लिए अपना निजी थियेटर, आमोद प्रमोद के लिए आमोद-केन्द्र और बढ़िया बाग बगीचे। कहा जाता है कि राष्ट्रपति भवन में ३०० से अधिक कमरे हैं। उनकी रियासत में ४००० से अधिक आदमी रहते हैं। राष्ट्रपति भवन का अपना निजी पावर हाउस, टेलीफोन ऐक्सचेंज, डाक व तार घर, म्युनिसिपल प्रबन्ध, पुलिस व सेना है। राष्ट्रपति की सत्ता पर भारत सरकार को प्रतिवर्ष १४ लाख रुपये से अधिक खर्च करने पड़ते हैं। संक्षेप में भारत के राष्ट्रपति के वही ठाट-बाट हैं जो इँगलैंड में सम्राट् के और अमरीका में प्रधान के। दूसरे देशों के राजदूत उन्हीं को अपने प्रमाण-पत्र पेश करते हैं तथा वही दूसरे देशों में अपने राजदूतों की नियुक्ति की स्वीकृति देते हैं। संक्षेप में हम राष्ट्रपति के अधिकारों को पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं: (१) शासन सम्बन्धी (Administrative) अधिकार, (२) विधान सम्बन्धी (Legislative) अधिकार, (३) न्याय सम्बन्धी (Judicial) अधिकार, (४) वित्तीय (Financial) अधिकार और (५) संकट कालीन (Emergency) अधिकार।

१. शासन सम्बन्धी अधिकार

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, राष्ट्रपति कार्यपालिका के अध्यक्ष हैं। वह स्वयं

प्रधान मंत्री का चुनाव करते हैं। उन्हीं के सम्मुख सब मंत्रियों को अपने पद की शपथ ग्रहण करनी पड़ती है। बड़े बड़े सरकारी कर्मचारी जैसे संघीय एवं राज्यों के उच्चतम न्यायालयों के सदस्य, राज्यों के राज्यपाल, संघीय पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य, चुनाव कमिश्नर, आडीटर जनरल, राजस्व कमीशन के सदस्य, अटारनी जनरल इत्यादि की नियुक्ति उन्हीं के द्वारा की जाती है। देश में संसद् द्वारा स्वीकृत, कोई भी कानून उस समय तक लागू नहीं किया जा सकता जब तक वह उस पर हस्ताक्षर न कर दें। सब मंत्रियों को अपने विभाग के कार्य से उन्हें अवगत कराना पड़ता है। सरकार का कार्य कुशलता पूर्वक चले, इसके लिए उन्हीं को नियम बनाने पड़ते हैं। दूसरे देशों के विरुद्ध युद्ध व सन्धि की घोषणा भी उन्हीं के द्वारा की जाती है। कबायली इलाकों तथा अण्डमान निकोबार के शासन प्रबन्ध के लिए भी उन्हीं को विशेष प्रबंध करना पड़ता है।

२. विधान सम्बन्धी अधिकार

नव संविधान राष्ट्रपति को विधान मंडल का एक आवश्यक और अनिवार्य अङ्ग मानता है। कोई भी 'बिल' उस समय तक कानून नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति उस पर हस्ताक्षर न कर दें। वह विधान सभा द्वारा पास बिलों को दोबारा विचार के लिए लौटा सकते हैं। विधान सभा की बैठक बुलाने, उसे स्थगित करने तथा भंग करने का अधिकार भी उन्हीं को प्राप्त है। वह संसद् की सभाओं में भाषण दे सकते हैं तथा लिख कर संदेश भेज सकते हैं। प्रति वर्ष संसद् के प्रथम अधिवेशन का उन्हीं को उद्घाटन करना पड़ता है जिसमें वह सरकार की नीति का उल्लेख करते हैं। बहुत से विषयों पर कानून उस समय तक नहीं बन सकता जब तक राष्ट्रपति से उनके विषय में पूर्व स्वीकृति न ले ली जाय। संसद् के विश्रान्ति काल में उन्हें अल्पकालीन कानून (Ordinances) पास करने का भी अधिकार है यद्यपि ऐसे कानूनों की अवधि संसद् के अधिवेशन आरम्भ होने के ६ सप्ताह तक ही रहती है। राज्य परिषद् में १२ सदस्यों को मनोनीत करने का भी उन्हें अधिकार दिया गया है।

३. न्याय सम्बन्धी अधिकार

न्याय के सम्बन्ध में भी राष्ट्रपति को विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। वही देश के हाई कोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट के जजों तथा चीफ जस्टिस की नियुक्ति करते हैं। इसके अतिरिक्त न्यायालयों द्वारा सजा पाये हुए अपराधियों की सजा कम करना या उन्हें क्षमादान देना भी उन्हीं का काम है। वह सुप्रीम कोर्ट से किन्हीं महत्त्वपूर्ण संवैधानिक या सार्वजनिक प्रश्नों पर राय भी ले सकते हैं।

४. वित्तीय अधिकार

अर्थ सम्बन्धी विषयों में भी राष्ट्रपति को अनेक अधिकार प्रदान किये गये हैं। उनकी स्वीकृति के बिना खर्च के सम्बन्ध में कोई भी बिल विधान सभा में प्रस्तुत नहीं

हो सकता। वार्षिक बजट उन्हीं के नाम पर संसद् के सम्मुख पेश किया जाता है। उन्हीं के द्वारा, आर्थिक कमीशन की नियुक्ति की गई थी, जिसके अध्यक्ष श्री के० सी० नियोगी थे। विभिन्न राज्यों के बीच आयकर (Income tax) एवं जूट-कर का बँटवारा उन्हीं की स्वीकृति से किया जाता है।

राष्ट्रपति के अधिकारों पर रोक

परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि राष्ट्रपति भारतीय शासन के विधाननिष्ठ अध्यक्ष (Constitutional Head) हैं।

यद्यपि जैसा पहले बताया गया है, संविधान में ऐसा कोई उल्लेख नहीं है कि राष्ट्रपति अपने मन्त्रियों की सलाह मानने के लिए बाध्य होंगे, परन्तु आशा की जाती है कि इंगलैंड के शासन की भाँति, इस विषय में रीति-रिवाजों (Conventions) से काम लिया जायगा। संविधान में एक विशिष्ट धारा पास करके राष्ट्रपति की कार्य करने की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं किया गया है, परन्तु उनसे आशा की गई है कि प्रत्येक साधारण अवस्था में वह अपने मन्त्रियों की सलाह से ही कार्य करेंगे। हाँ इतना अवश्य है कि संकटकालीन अवस्था में उन्हें अपने विवेक से कार्य करने की अधिक सुविधा प्राप्त होगी। कारण, नव संविधान में ऐसी दशा में उनके हाथ में अनेक अधिकार केन्द्रित कर दिये गये हैं। साधारण दशाओं में किसी राष्ट्रपति को देश के शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप करने का कितना अधिकार है यह इस बात पर निर्भर होगा कि किस प्रकार का व्यक्ति उस पद पर आसीन है। यदि राष्ट्रपति जनता का प्रिय नेता हुआ और साथ ही अत्यन्त ही बुद्धिमान और अनुभवी तो कोई कारण नहीं कि वह देश के शासन प्रबन्ध पर अपने व्यक्तित्व की छाप न लगा सके। प्रधान मन्त्री और राष्ट्रपति के बीच का सम्बन्ध उनके अपने व्यक्तित्व और लोकप्रियता पर निर्भर होगा। यदि प्रधान मन्त्री दुर्बल और शक्तिहीन हुआ तो राष्ट्रपति को अपने अधिकार प्रयोग में लाने का अधिक अवसर मिलेगा। विपरीत अवस्था में राष्ट्रपति केवल शासन का नाममात्र अध्यक्ष रहेगा।

नीचे हम राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों का उल्लेख करते हैं :—

संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति के अधिकार

जर्मनी के वाईमार संविधान की भाँति भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संकटकालीन अवस्था में कार्य करने के लिए विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। इन अधिकारों में से एक अधिकार का प्रयोग राष्ट्रपति पञ्जाब और पेप्सू में कर चुके हैं। पञ्जाब में कांग्रेस पार्लियामेंटरी बोर्ड के आदेश के अधीन भार्गव मन्त्रिमण्डल ने १८ जून सन् १९५१ को त्याग पत्र दे दिया। इसके पश्चात् राष्ट्रपति ने संविधान की ३५६वीं धारा के अधीन एक विशेष विज्ञप्ति निकाल कर २० जून को इस बात की

घोषणा कर दी कि पञ्जाब में संवैधानिक सङ्कट उत्पन्न हो गया है और भविष्य में उस राज्य का शासन वह स्वयं राज्यपाल की सहायता से चलायेंगे। इस घोषणा के बाद पञ्जाब राज्य का शासन, आम चुनाव के पश्चात् नया मंत्रिमंडल बनने तक, उसी प्रकार चला जैसे वह केन्द्र के अधीन कोई चीफ कमिश्नर का राज्य हो। इसी प्रकार पैप्सू में रारोला मन्त्रिमंडल को बर्खास्त कर राष्ट्रपति ने अपने हाथ में उस राज्य के शासन को ले लिया।

राष्ट्रपति की सङ्कटकालीन शक्तियों को हम ३ भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न सङ्कटकालीन स्थिति,
(२) किसी राज्य में संवैधानिक सङ्कट, तथा
(३) देशव्यापी आर्थिक सङ्कट।

(१) *युद्ध, बाह्य आक्रमण अथवा आंतरिक उपद्रवों से उत्पन्न संकटकालीन स्थिति*—संविधान में कहा गया है कि यदि किसी समय राष्ट्रपति को उपरोक्त किन्हीं भी कारणों से यह संशय होगा कि सारे भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा सङ्कट में है तो वह एक उद्घोषणा द्वारा यह कह सकेगा कि सङ्घ सरकार द्वारा ही, सङ्कटकालीन अवस्था में, सब राज्यों की सरकार चलाई जायगी और ऐसी घोषणा के पश्चात् सङ्घ सरकार को अधिकार होगा कि वह राज्यों के लिए कानून बना सके, तथा राज्यों के सरकारी कर्मचारियों को आदेश दे सके कि यह सङ्घ सरकार की आज्ञानुसार कार्य करें।

इस प्रकार की उद्घोषणा उस समय की जा सकती है जब युद्ध या बाहरी आक्रमण या आन्तरिक अशांति अभी उत्पन्न नहीं हुई हो और उसके उत्पन्न होने की केवल सम्भावना हो। संविधान की ३५२ धारा के अन्तर्गत यह घोषणा, केवल दो महीने के लिए ही लागू रह सकती है, जब तक इससे पहले उस घोषणा का समर्थन संसद् के दोनों भवनों द्वारा न कर दिया जाय। संसद् की स्वीकृति भी इस घोषणा के लिए एक समय में केवल ६ मास के लिए दी जा सकती है और किसी भी दशा में कुल मिला कर यह घोषणा ३ वर्ष से अधिक के लिए लागू नहीं की जा सकती।

जिस समय इस प्रकार की घोषणा लागू होगी तो राष्ट्रपति को यह भी अधिकार होगा कि वह कुछ समय अथवा पूरे सङ्कटकालीन समय के लिए नागरिकों के मौलिक अधिकारों सम्बन्धी उस धारा को स्थगित कर दें, जिसके द्वारा उन्हें देश की सर्वोच्च अदालत में अपने अधिकारों की रक्षा के लिए प्रार्थना पत्र पेश करने का अधिकार प्राप्त है।

राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि ऐसे समय वह संविधान की उन

२६८ से लगाकर २७३ धारा में भी संशोधन कर दें जिनके द्वारा राज्यों तथा संघ सरकार के बीच आर्थिक साधनों का विभाजन किया गया है।

(२) राज्यों में *संवैधानिक संकट*—युद्ध अथवा आतंरिक उपद्रवों की अवस्था के अतिरिक्त राष्ट्रपति को संविधान की ३५६वीं धारा के अधीन यह अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय उन्हें राज्यपाल या राजप्रमुख या और किसी ज़रिये से यह ज्ञात हो कि किसी राज्य का शासन संविधान की धाराओं के अनुसार नहीं चलाया जा रहा है तो वह एक घोषणा के द्वारा उस राज्य की सरकार के सब या जितने वह चाहें अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं और राज्यपाल या राज्यप्रमुख के कार्यों का भी स्वयं सञ्चालन कर सकते हैं। ऐसी दशा में वह संघ संसद् को भी अधिकृत कर सकते हैं कि वह उस राज्य के विधान मण्डल की ओर से कानून पास करे। हाई कोर्ट को छोड़कर और किसी संस्था के अधिकार भी वह इसी धारा के अधीन, अपने हाथ में ले सकते हैं। इस घोषणा के पश्चात् संघ संसद् को यह अधिकार होता है कि वह किसी ऐसे अधिकारी को जिसे वह नियुक्त करे, उस राज्य की सरकार चलाने के लिए, जिसके सम्बन्ध में वैधानिक सङ्कट की घोषणा की गई है, कानून बनाने अथवा उन पर कार्य करने की शक्ति प्रदान कर दे। राष्ट्रपति को इस स्थिति में यह भी अधिकार होता है कि वह राज्य के बजट से शासन का कार्य चलाने के लिए, स्वयं खर्चे की मंजूरी दे दें। जैसा पहले बताया जा चुका है, इस धारा के अधीन सङ्कट की घोषणा पञ्जाब तथा पैप्सू राज्य में की जा चुकी है।

(३) *देशव्यापी आर्थिक संकट*—आगे चलकर संविधान की ३६०वीं धारा में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय इन्हें ऐसा अनुभव हो कि देश में एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है जिससे भारत अथवा उसके किसी राज्य के क्षेत्र में भारी आर्थिक सङ्कट उत्पन्न हो गया है, तो वह एक घोषणा द्वारा संविधान में दिये गये घटक के आर्थिक अधिकार अपने हाथ में ले सकते हैं। ऐसी दशा में उन्हें यह भी अधिकार होता है कि वह राज्यों तथा संघ के सरकारी नौकरों के वेतन में कमी कर सकें। सुप्रीम तथा हाई कोर्टों के जजों की तनख्वाह में भी इसी धारा के आधार पर कमी की जा सकती है। संघ सरकार को यह भी अधिकार है कि वह राज्यों की सरकारों को आदेश दे सके कि वह अपने आर्थिक विषयों का प्रबन्ध उसकी आज्ञानुसार करें तथा अपना वार्षिक बजट एवं दूसरे आर्थिक बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए पेश करें।

राष्ट्रपति की संकटकालीन शक्तियों की आलोचना

संविधान की ३५२ से लगाकर ३६० धाराओं में राष्ट्रपति को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं और जिनका वर्णन हमने ऊपर किया है, उनको लेकर हमारे संविधान

के अनेक आलोचकों ने विधान निर्माताओं पर करारे छींटे कसे हैं। उन्होंने कहा है कि ऐसे जनतन्त्र शासन में, जिसके अन्तर्गत राज्य की शक्ति जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथ में हो, राष्ट्रपति को, जो संसद् के प्रति उत्तरदायी नहीं तथा जिसका चुनाव भी स्वयं जनता नहीं करती, इतने अधिकारों का दिया जाना कोई अच्छी बात नहीं। वह कहते हैं कि ऐसे अधिकार तो केवल निरंकुश राज्यों में ही दिये जाते हैं, जनतन्त्र राज्यों में नहीं। इन अधिकारों को पाकर राष्ट्रपति देश का डिक्टेटर बन कर काम कर सकता है।

परन्तु, समालोचकों की उपरोक्त सब बातों में अधिक तत्व नहीं। कारण, वह यह नहीं समझते कि राष्ट्रपति नये विधान के अन्तर्गत भारत का केवल निधाननिष्ठ, नाम-धारी एवं उत्सवमूर्ति अध्यक्ष है। शासन की वास्तविक शक्ति जनता द्वारा चुने गये उन मन्त्रियों के हाथ में निहित है जो संसद् के प्रति उत्तरदायी हैं। राष्ट्रपति अपने अधिकारों का उपयोग केवल उस दशा में कर सकते हैं जब प्रधान मन्त्री उन्हें ऐसा करने की सलाह दे। इसके अतिरिक्त संसद् के उन सदस्यों को जिनमें अधिकतर सदस्य राज्यों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि हैं—सदा यह अधिकार होगा कि वह राष्ट्रपति को इन अधिकारों का उपयोग करने से रोक सकें।

देश की सङ्कटकालीन स्थिति में सारे राष्ट्र का हित इसी बात में है कि राज्य का शासन संघ सरकार द्वारा ही चलाया जाय। उसी के कन्धे पर अन्तिम दशा में सारे देश अथवा उसके किसी भी भाग की सुरक्षा और सुव्यवस्था का भार है, इसलिए ऐसी स्थिति में जब तक संघ सरकार के हाथों में कार्य करने की पूरी शक्ति नहीं होगी, वह देश की रक्षा नहीं कर सकेगी। हमारी नवप्रात स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा राष्ट्र-विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए भी केंद्रीय सरकार के हाथ में इन सब शक्तियों का केंद्रीयकरण अत्यन्त आवश्यक है।

२. उप-राष्ट्रपति

नया संविधान भारत के लिए एक उप राष्ट्रपति के चुनाव की भी व्यवस्था करता है। आम चुनावों के पश्चात् प्रथम बार मई सन् १६५२ में उप राष्ट्रपति का चुनाव किया गया। इस पद पर आजकल सर्वश्री डाक्टर राधाकृष्णन आसीन हैं। अमरीका की भाँति यह उप-राष्ट्रपति राज्य परिषद् के अध्यक्ष हैं। परन्तु यदि किसी समय राष्ट्रपति बीमार होंगे, या किसी विशेष कारण से अपने काम की देखभाल न कर सकेंगे या त्यागपत्र दे देंगे या मृत्यु के कारण उनका स्थान रिक्त हो जायगा, तो उप-राष्ट्रपति उनके स्थान पर उस समय तक कार्य करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव न हो जाय। इस बात में अमरीका और भारत के उप राष्ट्रपति की स्थिति में बड़ा भारी अंतर

है। अमरीका के राष्ट्रपति के त्याग-पत्र देने या मृत्यु हो जाने पर, उप-राष्ट्रपति उनका स्थान उनकी शेष अवधि के लिए ले लेता है। परन्तु भारत में ऐसी अवस्था में वह केवल उतने समय तक के लिए राष्ट्रपति का पद ग्रहण करेंगे जब तक नये राष्ट्रपति का चुनाव नहीं हो जाता।

उपराष्ट्रपति का चुनाव

उपराष्ट्रपति का चुनाव पार्लियामेंट के दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जाता है। इस पद के चुनाव के लिए किसी उम्मीदवार में वही योग्यता होनी चाहिये जो राष्ट्रपति के पद के लिए आवश्यक है। उप राष्ट्रपति को राज्य परिषद् के द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने तथा ऐसे प्रस्ताव पर लोकसभा की अनुमति मिल जाने पर अलग किया जा सकेगा। राष्ट्रपति के समान उप राष्ट्रपति के पद की अवधि ५ वर्ष ही होगी। यदि किसी समय उप-राष्ट्रपति राष्ट्रपति के पद पर कार्य करेंगे तो उन्हें वही सब अधिकार प्राप्त होंगे तथा वही वेतन तथा सुविधाएँ मिलेंगी जो राष्ट्रपति को मिलती हैं।

३. मंत्रिमंडल

भारतीय संघ की वास्तविक कार्यपालिका एक मन्त्रिमण्डल है। उसी के हाथ में शासन की सारी शक्ति निहित है। मन्त्रिमण्डल संसद् (Parliament) के प्रति उत्तरदायी है। संसद् में जनता के प्रतिनिधि हैं। इस प्रकार कार्यपालिका का अन्तिम उत्तरदायित्व जनता के प्रति है। एक प्रजातंत्र शासन की यही सबसे बड़ी पहचान है। जनता जब चाहे मन्त्रिमण्डल को बदल सकती है। आम चुनाव तथा उप-चुनाव के समय जनता को मन्त्रिमण्डल के प्रति अपना विश्वास अथवा अविश्वास प्रकट करने का पूरा अवसर मिलता है। शेष अवसरों पर भी प्रस्तावों, सभाओं, जुलूसों, प्रदर्शनों, हड़तालों तथा समाचार पत्रों द्वारा जनता शासन सम्बन्धी विषयों पर अपनी राय सरकार के कानों तक पहुँचा सकती है। एक उत्तरदायी सरकार को जनता की इस आवाज की कद्र करनी पड़ती है। वह उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकती।

नये चुनाव होने से पहले संघीय मन्त्रिमण्डल का स्वरूप—नये विधान के अन्तर्गत आम चुनाव फरवरी सन् १९५२ में हुए। उस समय तक के लिए संविधान की ३८१ धारा में कहा गया था कि संविधान लागू होने से पहले के मन्त्री, राष्ट्रपति के मन्त्रिमण्डल के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी सन् १९५० को एक प्रकार से मन्त्रिमंडल का पुनर्संगठन हुआ। उस दिन राष्ट्रपति के सम्मुख सभी मन्त्रियों ने अपने पद की दोबारा शपथ ग्रहण की और कहा कि वह भारतीय गणतंत्र राज्य के प्रति वफ़ादार रहेंगे।

आजकल की भाँति इस मन्त्रिमंडल के नेता भी पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। उन्हीं के द्वारा उस मन्त्रिमण्डल का संगठन किया गया था।

इस मंत्रिमण्डल में तीन प्रकार के मन्त्री थे—एक कैबिनेट मन्त्री, दूसरे राज्य मन्त्री (Ministers of State) और तीसरे उपमंत्री (Deputy Ministers)। कैबिनेट मंत्री वह मंत्री कहलाते थे जो सरकार की अंतरंग सभा के सदस्य थे तथा जो सरकार की नीति का निश्चय करते थे। ऐसे मंत्रियों को ३५०० रु० मासिक वेतन, रहने के लिए मुफ्त मकान तथा सवारी के लिए मोटर गाड़ी दी जाती थी। राज्य मंत्री कैबिनेट की मीटिंगों में भाग नहीं ले सकते थे। उन्हें इन मीटिंगों में केवल उस समय आमंत्रित किया जाता था जब उनके विभाग के कार्य के सम्बन्ध में किसी बात पर विचार करना हो। ऐसे मंत्री सरकारी विभाग का स्वतंत्र चार्ज ले सकते थे परन्तु अधिकतर उनके विभाग की देखभाल किसी कैबिनेट मंत्री को करनी पड़ती थी। उपमंत्री कैबिनेट मंत्रियों के सहायक मंत्रियों के रूप में कार्य करते थे। वह किसी दशा में भी कैबिनेट की सभाओं में सम्मिलित नहीं हो सकते थे। राज्य मन्त्रियों को ३००० रु० मासिक और उपमंत्रियों को २००० रु० मासिक वेतन दिया जाता था। राज्य मंत्रियों तथा उपमंत्रियों को रहने के लिए मुफ्त मकान तथा मोटर गाड़ी भी नहीं दी जाती थी।

इस प्रकार मंत्रिमण्डल में १४ कैबिनेट मंत्री, ६ राज्य मंत्री तथा ६ उप मंत्री थे। जून सन् १९५१ में, प्रधानमंत्री ने दो और संसद् के सदस्यों अर्थात् श्री सतीशचन्द्र तथा श्री मिश्र को अपना आनरेरी पार्लियामेंटरी सैक्रेटरी भी बना दिया था। यह पार्लियामेंटरी सैक्रेटरी मंत्री नहीं कहे जाते थे, न उन्हें मंत्रिमण्डल का अंग ही माना जाता था। प्रथम बार भारत के केंद्रीय शासन में, इस नये पद का आविष्कार इसलिए किया गया कि संसद् के कुछ नौजवान सदस्यों को शासन का अनुभव प्राप्त हो सके।

सन् १९५१ तथा १९५२ में भारतीय मंत्रिमण्डल में अनेक परिवर्तन हुए। सबसे पहले श्री षण्मुखम चैट्टी प्रथम मंत्रिमण्डल के वित्त मंत्री थे, इसके पश्चात् डाक्टर जान मथाई को इस पद के लिए चुना गया। उनके त्याग पत्र दे देने पर श्री सी० डी० देशमुख को इस पद पर नियुक्त किया गया। वैसे श्री देशमुख इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य थे। उनका मंत्री पद के लिए चुना जाना, जहाँ एक ओर उनकी योग्यता और बुद्धिमत्ता का परिचायक था, वहाँ दूसरी ओर वह यह साबित करता था कि हमारे देश के राजनीतिज्ञों में अर्थ विशेषज्ञों की कितनी कमी है। डाक्टर मथाई के त्याग पत्र के पश्चात् बहुत दिनों तक उनका स्थान खाली पड़ा रहा। उत्तर प्रदेश के मुख्य मंत्री श्री गोविंद वल्लभ पंत से प्रार्थना की गई कि वह इस पद को स्वीकार कर लें, परन्तु उनके प्रांत की कांग्रेस पार्टी ने उन्हें ऐसा न करने दिया। प्रजातंत्र राष्ट्रों में साधारणतया

सरकारी नौकरों को मंत्री पद के लिए नहीं चुना जाता। परंतु भारतवर्ष में अर्थ एवं वित्त विशेषज्ञों की कमी के कारण हमारे प्रधान मन्त्री को ऐसा करना पड़ा।

वित्त मंत्री के अतिरिक्त दूसरे मंत्रियों के पद में भी पिछले वर्षों में कुछ परिवर्तन हुए। डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी तथा श्री के० सी० नियोगी ने सन् १९५० में मन्त्रिमण्डल से इसलिए त्याग-पत्र दे दिया कि वे नेहरू सरकार की पाकिस्तान के साथ पूर्वी बंगाल के प्रश्न पर, समझौते की नीति का समर्थन नहीं करते थे। श्री दीवान दास दौलतराम को आसाम का राज्यपाल बनाकर उनके स्थान पर श्री के० एम० मुन्शी की नियुक्ति की गई। इसी प्रकार मोहन लाल सक्सेना के स्थान पर श्री अजीत प्रसाद जैन पुनर्वास मन्त्री नियुक्त किये गये।

आम चुनावों के पश्चात् नये मन्त्रि-मंडल का निर्माण

भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों में आम चुनाव नवम्बर दिसम्बर सन् १९५१ से आरम्भ होकर फरवरी सन् १९५२ के अन्त तक समाप्त हो गये। इन चुनावों में कांग्रेस पार्टी को बहुमत में भारी सफलता प्राप्त हुई। केन्द्र में लोक सभा के ४८९ निर्वाचित सदस्यों में से कांग्रेस पार्टी के ३६२ सदस्य तथा राज्य परिषद् में २०० निर्वाचित सदस्यों की संख्या में से १४६ सदस्य कांग्रेस पार्टी के चुने गये। केंद्रीय मन्त्रिमंडल के निर्माण के सम्बन्ध में संविधान का आदेश इस प्रकार है :—

प्रधान मन्त्री का चुनाव राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। वह ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसे संसद् के निचले भवन अर्थात् लोक सभा के बहुसंख्यक सदस्यों का विश्वास प्राप्त हो। दूसरे मन्त्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा नहीं वरन् प्रधान मन्त्री द्वारा की जायगी। इस क्षेत्र में भारतीय संविधान दूसरे विधानों की अपेक्षा अधिक प्रजातन्त्र वादी है, क्योंकि वह प्रधान मन्त्री के नेतृत्व का स्पष्ट रूप से स्वीकार करता है और उसे इस बात का अधिकार देता है कि वह जिसे चाहे चुने तथा जिस प्रकार चाहे मन्त्रियों के बीच काम का बँटवारा करे। मन्त्री चुने जाने के लिए किसी यूनिवर्सिटी डिग्री अथवा कोई विशेष प्रकार की योग्यता अनिवार्य नहीं है। परन्तु प्रत्येक स्थायी मन्त्री के लिए संसद् के किसी भी भवन का सदस्य होना आवश्यक है। ६ महीने से अधिक काल के लिए बाहर के व्यक्ति मन्त्रिमण्डल के सदस्य नहीं रह सकते। मन्त्रियों की संख्या के सम्बन्ध में भी किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है। उनकी संख्या प्रधान मन्त्री द्वारा ही निश्चित की जाती है, और इसमें वह जब चाहे फेर-बदल कर सकते हैं।

उपरोक्त नियमों के अधीन आम चुनावों के पश्चात् नये मन्त्रिमण्डल का संगठन १३ मई सन् १९५२ को हुआ। उसी दिन राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने अपने पद की शपथ ग्रहण की थी, तथा पुराने मन्त्रिमण्डल ने अपना त्याग पत्र दे दिया था। इससे पूर्व ११ मई को संसद् की कांग्रेस पार्टी ने सर्वसम्मति से अपना नेता पं० जवाहर

बी० एन० दातार
श्री एस० करमाहिन
आबिद अली
श्री राज बहादुर
श्री के० डी० मालवीय,
एम० सी० शाह
जे० के० भौंसले
श्री० बी० अलगेसन,
श्रीमती चन्द्रशेखर
ए० के० चन्दा,
एम० बी० कृष्णप्पा,
जैसुखलाल हाथी,
ए० सी० गुहा

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे मन्त्रिमण्डल में १४ कैबिनेट मन्त्री, ६ कैबिनेट मन्त्री जो कैबिनेट के सदस्य नहीं हैं, तथा १५ उपमन्त्री हैं। नये मन्त्रिमण्डल में दूसरी प्रकार के मन्त्रियों की एक नई श्रेणी निर्माण की गई है। पहले इन मन्त्रियों को राज्य मन्त्री कहा जाता था। उन्हें कैबिनेट मन्त्रियों की अपेक्षा कम वेतन मिलता था। अब ऐसे सब मन्त्री कैबिनेट मन्त्री कहलायेंगे। उन्हें साधारणतया कैबिनेट की बैठकों में भाग लेने का अधिकार नहीं होगा, परन्तु यदि किसी समय उनके विभाग से सम्बन्धित कोई विषय कैबिनेट के विचाराधीन होगा तो वह उसमें भाग ले सकेंगे। उपमन्त्रियों के अतिरिक्त ४ पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी भी नियुक्त किये गये हैं। इन में श्रीमती लक्ष्मी मैनन, शाहनवाज, हजारिका तथा श्री बी० आर० भगत के नाम प्रमुख हैं।

मंत्रिमंडल का संगठन (Organisation of the Cabinet)

मन्त्रिमण्डलात्मक सरकार के अधीन, जैसा पहले बताया जा चुका है, शासन की वास्तविक शक्ति मन्त्रियों के हाथ में ही केन्द्रित होती है। राष्ट्रपति कार्यपालिका के नाम-धारी अध्यक्ष होते हैं। वास्तव में उनकी सारी शक्तियों का उपयोग मन्त्रियों द्वारा ही किया जाता है। मन्त्रियों के सम्मिलित रूप को 'कैबिनेट' कहा जाता है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, सब मन्त्रियों के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह 'कैबिनेट' के सदस्य हों। राज्य मन्त्री, उपमन्त्री तथा पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी कैबिनेट के सदस्य नहीं होते। एक प्रकार से 'कैबिनेट' को हम मन्त्रिमण्डल (Council of ministers) की अन्तरंग सभा (Executive Body) कह सकते हैं। इस सभा के सभी प्रमुख मन्त्री सदस्य होते हैं। आजकल भारतीय मन्त्रिमण्डल के सदस्यों की कुल

संख्या २२ है परन्तु 'कैबिनेट' के सदस्यों की संख्या केवल १४ है। इङ्गलैंड में भी इसी प्रकार का प्रबन्ध है। वहाँ मन्त्रियों की संख्या लगभग ५० होती है, परन्तु कैबिनेट के सदस्यों की संख्या २० या २१ से अधिक नहीं होती। कभी कभी 'कैबिनेट' के अन्तर्गत एक और छोटी कैबिनेट (Cabinet within Cabinet) बना दी जाती है जिसके सदस्य प्रधान मन्त्री तथा तीन चार प्रमुख मन्त्री होते हैं। हमारे देश में भी इस प्रकार की छोटी 'कैबिनेट', "मन्त्रिमण्डल की आर्थिक सब कमेटी" है, जिसके सदस्य पं० जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आज़ाद, डाक्टर काटजू, श्री देशमुख तथा श्री नंदा हैं। युद्ध अथवा किसी भीषण सङ्कट के समय इस प्रकार की छोटी कैबिनेट से अधिक काम लिया जाता है, अन्यथा साधारणतया सभी कैबिनेट के सदस्य मिलकर सरकार की नीति का निश्चय करते हैं।

सरकारी विभाग (Departments of the Government of India)

वैसे तो कैबिनेट के सदस्य अलग अलग अपने विभागों की देख भाल करते हैं, परन्तु शासन की नीति का निश्चय वह सब एक साथ मिल कर करते हैं। हमारे देश में सरकारी विभागों का विभाजन इस प्रकार है :—

(१) विदेश विभाग (Ministry of External Affairs)
(२) गृह विभाग (Minis ry of Home Affairs)
(३) रक्षा विभाग (Ministry of Defence)
(४) वित्त विभाग (Ministry of Finance)
(५) व्यापार तथा उद्योग विभाग (Ministry of Commerce & Industry)
(६) संचार विभाग (Ministry of Communications)
(७) परिवहन विभाग (Ministry of Transport)
(८) शिक्षा विभाग (Ministry of Education)
(९) स्वास्थ्य विभाग (Ministry of Health)
(१०) कृषि व खाद्य विभाग (Ministry of Agriculture & Food)
(११) रियासती विभाग (Ministry of States)
(१२) विधि (कानून) विभाग (Ministry of Law)
(१३) निर्माण, मकान तथा रसद विभाग (Ministry of Works, Housing & Supply)
(१४) श्रम विभाग (Ministry of Labour)
(१५) उत्पत्ति विभाग (Ministry of Production)

(१६) रेडियो व सूचना विभाग (Ministry of Information & Broadcasting)

(१७) पुनर्वास विभाग (Ministry of Relief Rehabilitation)

(१८) संसद् विषय विभाग (Ministry of Parliamentary Affairs)

प्रत्येक विभाग का मुख्य अधिकारी एक मन्त्री होता है जिसके अधीन एक सेक्रेटरी, कुछ डिप्टी सेक्रेटरी, अण्डर सेक्रेटरी तथा सुपरिन्टेन्डेन्ट इत्यादि कार्य करते हैं। हमारे देश में सरकार के १५ विभाग कैबिनेट मन्त्रियों के अधीन हैं; शेष ३ विभाग राज्य मन्त्रियों के अधीन हैं। कोई विभाग कैबिनेट मन्त्री के अधीन रहे या राज्य मन्त्री के अधीन इसका निश्चय प्रधान मन्त्री द्वारा ही किया जाता है। कभी-कभी एक ही मन्त्री के अधीन कई कई सरकारी विभाग हो सकते हैं, जैसे आजकल रियासती तथा गृह विभाग, एक ही मन्त्री, अर्थात् डा० काटजू के अधीन हैं। इससे पहले सरदार पटेल सरकार के ३ महत्त्वपूर्ण विभाग, अर्थात् गृह, रियासत तथा रेडियो व सूचना विभाग के अध्यक्ष थे।

संयुक्त उत्तरदायित्व (Joint Responsibility of the Cabinet)

सब मन्त्री अलग अलग अपने अपने विभागों की देख भाल करते हैं, परन्तु कैबिनेट की सभाओं में उन सब को एक-दूसरे के विभाग की आलोचना एवं टीका टिप्पणी करने का अधिकार होता है। वास्तव में सरकार की नीति का निश्चय इन्हीं कैबिनेट की सभाओं में किया जाता है। इस सभा का सभापति प्रधान मंत्री होता है और उसकी अनुपस्थिति में कैबिनेट का सबसे सीनियर मंत्री। कैबिनेट के निर्णय अत्यन्त गुप्त रक्खे जाते हैं और इसके लिए कैबिनेट का अपना अलग सेक्रेटेरियट होता है। कैबिनेट की सभाओं में प्रत्येक सदस्य को अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता होती है, परन्तु एक बार कोई निश्चय हो जाने के पश्चात्, उसे सबको मानना पड़ता है तथा उस पर अमल करना पड़ता है। कोई मंत्री यह नहीं कह सकता कि उसने अमुक बात का विरोध किया था और इसलिए वह उस नीति को मानने के लिए बाध्य नहीं है। सब मंत्री संयुक्त रूप से संसद् के प्रति उत्तरदायी होते हैं। किसी एक विभाग की नीति सारी सरकार की नीति मानी जाती है, इसलिए यदि संसद् के सदस्य किसी एक मंत्री या विभाग के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करना चाहें तो वह सारे मन्त्रिमण्डल के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव माना जाता है, और उसके पास हो जाने पर, सम्पूर्ण मन्त्रिमण्डल को अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है। इस प्रकार संयुक्त जिम्मेदारी (Joint Responsibility) मन्त्रिमण्डलात्मक शासन की सबसे बड़ी पहचान है।

यदि कोई मंत्री कैबिनेट के निर्णय को मानने के लिए तैयार न हो तो उन्हें अपने पद से स्वयं त्याग पत्र देना पड़ता है; अन्यथा प्रधान मंत्री भी उनका त्याग पत्र माँग

सकते हैं। डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी तथा श्री नियोगी ने भारत पाकिस्तान समझौते के प्रश्न पर कैबिनेट से मतभेद हो जाने के कारण त्याग पत्र दिया था। डा० जान मथाई ने भी योजना आयोग (Planning Commission) के निर्माण पर प्रधान मन्त्री से मतभेद होने के कारण त्याग पत्र दिया था।

बहुत बार प्रधान मंत्री किसी मन्त्री द्वारा त्रुटि करने पर उसका त्याग पत्र माँग सकते हैं। श्री षण्मुखम चेट्टी को इनकम टैक्स जाँच समिति के काम में भूल करने पर इसी प्रकार मंत्री पद से अलग किया गया था।

प्रधान मन्त्री का कैबिनेट में स्थान (Position of the Prime Minister in the Cabinet)

कैबिनेट के उपरोक्त वर्णन से पाठकों को विदित हो गया कि प्रधान मंत्री कैबिनेट का मुकुटमणि एवं मेरुदण्ड होता है। वह केन्द्रीय सरकार की धुरी के रूप में कार्य करता है। अंग्रेजी में उसे (Keystone of the Cabinet arch) कह कर पुकारा गया है। वह समस्त शासन की इकाई स्थापित करता है। उसके ऊपर ही सरकार के समस्त कार्य की अन्तिम जिम्मेदारी रहती है। प्रत्येक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विषय पर उसी को निर्णय देना पड़ता है। संसद में वह सरकार की ओर से आवश्यक प्रश्नों पर नीति का स्पष्टीकरण करता है। राष्ट्रपति और कैबिनेट के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी वही 'कड़ी' का काम देता है। वह स्वयं सरकार के प्रत्येक महत्वपूर्ण कार्य से राष्ट्रपति को अवगत कराता है। बड़े बड़े उच्च पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए भी वही राष्ट्रपति को सलाह देता है। अपने देश की विदेश नीति का वही उल्लेख करता है। बड़ी बड़ी सार्वजनिक सभाओं एवं संस्थाओं में उसी को सरकारी नीति की विवेचना करनी पड़ती है। कैबिनेट की सभाओं में वही सभापति का आसन ग्रहण करता है तथा उसके लिए कार्य क्रम निश्चित करता है। वह जब चाहे और जैसे चाहे अपने मंत्रिमण्डल में परिवर्तन कर सकता है। सरकार की आर्थिक एवं गृह नीति का भी वही निर्णय करता है।

परन्तु इस बात का यह आशय नहीं कि कैबिनेट के दूसरे मंत्री कोई महत्ता नहीं रखते। प्रधान मंत्री अपने साथियों का केवल नेता होता है, उनका स्वामी नहीं। वह उनकी प्रत्येक महत्वपूर्ण विषय में राय लेता है तथा उनकी सम्मति एवं सहयोग से ही सरकार का कार्य भार चलाता है।

मन्त्रियों के पद की अवधि (Terms of the Ministers)

मंत्रिमण्डलात्मक शासन में अन्तर्गत मन्त्रियों के पद की कोई निश्चित अवधि नहीं होती। वह केवल उसी समय तक अपने पद पर कायम रहते हैं जब तक उन्हें संसद का

विश्वास प्राप्त हो। अविश्वास की दशा में उन्हें तुरत ही अपने पद से त्याग-पत्र देना पड़ता है।

मन्त्रिमण्डल के कार्य (Functions of the Cabinet)

यहाँ यह अत्यन्त उपयुक्त होगा कि हम संक्षेप में मन्त्रिमण्डल के कार्यों का उल्लेख कर दें :—

(१) सर्वप्रथम सरकार की गृह एवं विदेश नीति का निश्चय करना कैबिनेट का सबसे आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। इस नीति का उल्लेख कैबिनेट के सदस्य राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री द्वारा कराते हैं।

(२) दूसरे, कैबिनेट राज्य के वैधानिक कार्य (Legislative Programme) का निश्चय करती है। संसद् में कौन से बिल प्रस्तुत किये जायेंगे तथा उन्हें किस ढङ्ग से उपस्थित किया जायगा, इसका निश्चय कैबिनेट को ही करना पड़ता है।

(३) तीसरे, राष्ट्र की आर्थिक और वित्तीय नीति का निश्चय कैबिनेट द्वारा ही किया जाता है। इसीलिए कैबिनेट के सब सदस्य मिलकर वार्षिक बजट एवं 'कर नीति' का निश्चय करते हैं। रुपये पैसे सम्बन्धी बिल केवल मन्त्रियों द्वारा ही संसद् में प्रस्तुत किये जा सकते हैं, प्राइवेट सदस्यों द्वारा नहीं।

(४) चौथे, दूसरे देशों के साथ व्यापारिक एवं राजनीतिक संधि का निश्चय कैबिनेट को ही करना पड़ता है। युद्ध एवं सुलह का निश्चय भी कैबिनेट की सलाह पर संसद् द्वारा किया जाता है।

(५) शासन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण विषयों पर भी सब कैबिनेट सदस्यों को मिलकर निश्चय करना पड़ता है। उदाहरणार्थ नये राज्यों का निर्माण, वर्तमान राज्यों की सीमाओं में अदला-बदली, भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण, अधिकारों का विकेन्द्रीकरण इत्यादि समस्त समस्याओं का निर्णय कैबिनेट के सदस्यों द्वारा ही किया जाता है।

(६) अन्त में, संवैधानिक सम्बन्धी समस्त विषयों पर कैबिनेट के सदस्यों को ही निश्चय करना पड़ता है, उदाहरणार्थ संविधान में कब और क्या संशोधन किये जायें, विरोधी दलों के सुझावों को कहाँ तक स्वीकार किया जाय इत्यादि। यह ऐसे विषय हैं जिन पर कैबिनेट की बैठकों में ही निश्चय किया जाता है।

उच्च पदों पर अधिकारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में भी प्रायः पूरी कैबिनेट के सदस्यों की राय ली जाती है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मन्त्रिमण्डलात्मक शासन के अधीन कैबिनेट ही देश की वास्तविक शासक होती है। यही संयुक्त रूप से सरकार के समस्त विभागों की देख-भाल करती है तथा राष्ट्र की नीति का निश्चय करती है।

योग्यता प्रश्न

१. नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को क्या अधिकार प्राप्त हैं? (यू० पी० १९५२)।

२. राष्ट्रपति की वैधानिक व संकटकालीन शक्तियों का वर्णन कीजिये।

३. क्या यह सच है कि नव संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति को फासिस्ट अधिकार दे दिये गये हैं?

४. नव संविधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति का चुनाव किस प्रकार किया जाता है? यह प्रणाली अमरीका से किस दशा में भिन्न है?

५. भारत के राष्ट्रपति और अमरीका के प्रधान की शक्तियों की तुलना कीजिये।

६. 'भारत में राष्ट्रपति को वही स्थान प्राप्त है जो इङ्गलैंड के शासन में सम्राट् को।' यह कथन कहाँ तक ठीक है?

७. नये विधान के अन्तर्गत केन्द्रीय मन्त्रिमंडल का सङ्गठन किस प्रकार होता है? वर्तमान मन्त्रिमंडल का स्वरूप क्या है?

८. प्रधान मन्त्री, मन्त्रि परिषद् रूपी वृत्त खंड का मध्य प्रस्तर है। (लार्ड मार्ले)। यह कथन भारत के प्रधान मन्त्री पर कहाँ तक लागू होता है? (यू० पी० १९५३)

९. कैबिनेट मन्त्री, राज्य मन्त्री और उपमन्त्री में क्या भेद है। यह भेद किसलिए रक्खा गया है?

१०. मन्त्रि परिषद् के सङ्गठन एवं उसके कार्यों का विवरण दीजिये।

११. नवीन संविधान के अनुसार प्रधान मन्त्री की नियुक्ति किस प्रकार होती है? प्रधान मन्त्री के कर्तव्यों तथा अधिकारों का उल्लेख कीजिये। (यू० पी० १९५२)

१२. भारत के उपराष्ट्रपति पर संक्षिप्त नोट लिखो। (यू० पी० १९५३)

अध्याय ७

संघ संसद् (Union Parliament)

आम चुनावों से पहले संघ संसद् का स्वरूप

नये संविधान के अन्तर्गत आम चुनाव होने तक, संविधान की ३१९वीं धारा में कहा गया था कि २६ जनवरी, १९५० से पहले कार्य करने वाली संविधान सभा के सदस्य भारतीय संसद् (Indian Parliament) के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी तक इन सदस्यों की संख्या ३०८ थी। इसके पश्चात् संविधान के उन सदस्यों ने जो प्रान्तीय विधान सभा तथा संविधान सभा दोनों के सदस्य थे, त्याग-पत्र दे दिया। कारण नये संविधान के अन्तर्गत कोई व्यक्ति एक समय में केवल एक ही विधान मण्डल का सदस्य हो सकता है, एक से अधिक का नहीं। इस प्रकार २६ जनवरी के पश्चात् जब २८ जनवरी को गणतन्त्र भारत की प्रथम संसद् का अधिवेशन आरम्भ हुआ तो उसमें लगभग १०० नये सदस्य उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त भारतीय संसद् में कुछ ऐसी नई रियासतों को भी प्रतिनिधित्व दे दिया गया जो जनवरी सन् १९५० के पश्चात् भारतीय यूनियन में सम्मिलित हुई थीं उदाहरणार्थ हैदराबाद, काश्मीर इत्यादि।

इस प्रकार भारतीय संसद् के उन सदस्यों की संख्या जो आम चुनाव से पहले उसके सदस्य थे ३२५ थी। इन सदस्यों का चुनाव सीधा जनता द्वारा नहीं वरन् प्रान्तीय विधान सभाओं द्वारा किया गया था। ३२५ सदस्यों में प्रान्तों, रियासतों, हिंदू, मुसलमान, सिख, ईसाई, पारसी, एँग्लो इंडियन सभी जातियों तथा हितों के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। इस संसद् में विभिन्न राज्यों की स्थिति इस प्रकार थी :—

राज्य का नाम	सदस्य संख्या
आसाम	८
बिहार	३६
बम्बई	२९
मध्य प्रदेश	२०
मद्रास	५०
उड़ीसा	१४
पञ्जाब	१६
उत्तर प्रदेश	५७
पश्चिमी बंगाल	२१
हैदराबाद	१६
जम्मू और काश्मीर	४
मध्य भारत	७

मैसूर	७
पटियाला और पूर्वी-पञ्जाब सङ्घ	३
राजस्थान	१२
सौराष्ट्र	५
ट्रावनकोर कोचीन	७
विन्ध्य प्रदेश	४
अजमेर	१
भोपाल	१
कूच विहार	१
कुर्ग	१
देहली	१
हिमाचल प्रदेश	१
कच्छ	१
मनीपुर त्रिपुरा	१
कुल सदस्य संख्या	३२५

नव संविधान के अन्तर्गत संघ संसद्

नव संविधान के अन्तर्गत सङ्घ संसद् के तीन अङ्ग हैं :— (१) राष्ट्रपति, (२) लोक सभा और (३) राज्य परिषद्। राष्ट्रपति संसद् के अविभाज्य अङ्ग हैं। दोनों भवनों से जो बिल पास होते हैं उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। उन्हीं के द्वारा सब कानून लागू तथा परिवर्तित किये जाते हैं। लोक सभा के सदस्य भारत की ३५ करोड़ जनता का सीधा प्रतिनिधित्व करते हैं। उनका चुनाव सीधा बालिग स्त्री और पुरुषों द्वारा किया जाता है। राज्य परिषद् राज्यों का प्रतिनिधित्व करती है। उसके सदस्य अपने अपने राज्यों के अधिकारों की रक्षा करने की चेष्टा करते हैं। वह सीधे जनता द्वारा नहीं चुने जाते। उनका चुनाव राज्यों में विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता है। अब हम इन दोनों सदस्यों की व्यवस्था के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन करेंगे।

लोक सभा (House of the People)

संसार के सभी प्रजातन्त्रवादी विधानों की भाँति भारत में भी लोक सभा की शक्ति दूसरे भवन अर्थात् राज्य परिषद् की अपेक्षा अधिक रक्खी गई है।

सदस्य संख्या—लोक सभा के सदस्यों की संख्या के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि इस सदन में अधिक से अधिक ५०० सभासद हो सकेंगे। जनसंख्या के आधार पर ५ लाख से ७½ लाख की आबादी के पीछे एक प्रतिनिधि लोक सभा में निर्वाचित होना चाहिये।[८१]

उपरोक्त धारा के अधीन सन् १९५० में संघ संसद् ने एक विशेष कानून पास करके लोक सभा के सदस्यों की संख्या ४९९ निश्चित कर दी थी। विभिन्न राज्यों द्वारा जिस संख्या में प्रतिनिधि आम चुनावों के समय इस सदन के लिए चुने गये उनका विवरण नीचे दिया गया है। इस विवरण में हरिजनों तथा कबाइली जातियों के लिए जिस प्रकार स्थान सुरक्षित रक्खे गये उनकी संख्या भी दे दी गई। ४९९ सदस्यों में से ३ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये गये। इनमें से २ सदस्य ऐंग्लो इण्डियन जाति के लोगों का तथा १ सदस्य आसाम की कबाइली जाति का प्रतिनिधित्व देने के लिए मनोनीत किये गये।

प्रथम आम चुनावों के पश्चात् लोक सभा का संगठन

नाम राज्य	कुल सदस्य संख्या	हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान	कबाइली जातियों के लिए सुरक्षित स्थान
ए. श्रेणी के राज्य			
आसाम	१२	१	२
बिहार	५५	७	६
बम्बई	४५	४	४
मध्य प्रदेश	२९	४	३
मद्रास	७५	१२	१
उड़ीसा	२०	३	४
पञ्जाब	१८	३	—
उत्तर प्रदेश	८६	१७	—
पश्चिमी बङ्गाल	३४	६	२
	३७४	५७	२२
सी. श्रेणी के राज्य			
हैदराबाद	२५	४	—
जम्मू तथा काश्मीर	६	—	—
मध्य भारत	११	२	१
मैसूर	११	२	—
पेप्सू	५	१	—
राजस्थान	२०	२	१
सौराष्ट्र	६	—	—
ट्रावनकोर-कोचीन	१२	१	—
	९६	१२	२

सी. श्रेणी के राज्य			
अजमेर	२	—	—
भोपाल	२	—	—
बिलासपुर	१	—	—
कुर्ग	१	—	—
देहली	४	१	—
हिमाचल प्रदेश	३	१	—
कच्छ	२	—	१
मनीपुर	२	—	—
त्रिपुरा	२	—	—
विंध्य प्रदेश	६	१	१
अंडमान	१	—	—
	२६	३	२
कुल योग	४९६	७२	२६

लोक सभा में विभिन्न दलों की स्थिति

आम चुनावों के फलस्वरूप लोक सभा में विभिन्न दलों की स्थिति इस प्रकार थी :—

नाम दल	मतों की संख्या जो दल को प्राप्त हुये	कुल डाले गये मतों का प्रतिशत	कितने स्थान जीते
कांग्रेस	४७,५२८,६११	४४.८	३६२
समाजवादी	११,१२६,३४४	१०.५	१२
के० एम० पी० पी	६,१५८,७८२	५.८	९
साम्यवादी	४,७१२,००९	४.४	२३
जन सङ्घ	३,२३६,३६२	३.	३
शैड्यूल्ड कास्ट फिडरेशन	२,५०२,६६४	२.३	२
राम राज्य परिषद्	२,०९४,८११	१.९	३
कृषिकार लोक	१,४८६,४८८	१.४	१
हिन्दू महासभा	१,०४६,२६३	६.	४
अन्य दल	२,४००,०००	.९	२९
स्वतन्त्र	१६,८४५,४९४	१५.९	४२
	१०५,९८७,३१८	९९.९	४८९

शेष ७ सदस्यों में ६ जम्मू तथा काश्मीर राज्य के मनोनीत सदस्य हैं, तथा १ सदस्य अंडेमान-निकोबार द्वीप का प्रतिनिधित्व करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया गया है।

१ सदस्य अन्दमान निकोबार द्वीप का प्रतिनिधित्व करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किया गया है।

इस प्रकार भारत की वर्तमान लोक सभा में कांग्रेस दल के सदस्यों को ३/४ से भी अधिक बहुमत प्राप्त है। विरोधी दलों में साम्यवादी दल की स्थिति सबसे अधिक शक्तिशाली है। इस दल के नेता श्री ए० के० गोपालन तथा उपनेता प्रो० मुकर्जी हैं। इसके पश्चात् संयुक्त राष्ट्रीय दल का स्थान है जिसके नेता डाक्टर श्यामाप्रसाद मुकर्जी थे। यह दल बहुत से दक्षिण पक्षीय दलों जैसे जनसंघ, महासभा, अकाली, गणतन्त्र परिषद् इत्यादि को मिलाकर बनाया गया था। डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी की मृत्यु के पश्चात् इस दल की स्थिति डाँवाडोल हो गई है। साम्यवादी दल के पश्चात् इसलिए आजकल प्रजा समाजवादी दल ही जिसके नेता आचार्य कृपलानी हैं, सबसे प्रमुख विरोधी दल बन गया है।

प्रत्यक्ष चुनाव—कानून में कहा गया है कि जम्मू-काश्मीर तथा अन्दमान-निकोबार को छोड़कर, जहाँ के प्रतिनिधि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायँगे, शेष राज्यों में उनका सीधा जनता द्वारा चुनाव किया जायगा।

वयस्क (बालिग) मताधिकार (Adult Franchise)—प्रत्येक ऐसे स्त्री और पुरुषों को जिसकी आयु २१ साल से अधिक है तथा जो पागल, दिवालिया या जन्म से मूर्ख नहीं या किसी घोर अपराध में सजा न पा चुका हो या किसी चुनाव सम्बन्धी अपराध के कारण दण्डित न हुआ हो, राय देने का अधिकार है। नये विधान के अंतर्गत यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन है। इसके द्वारा भारत की १८ करोड़ जनता को राज्य के काम में भाग लेने का अवसर प्रदान किया गया है। भारत के इतिहास में कभी पहले इतनी बड़ी जनसंख्या को ऐसा अधिकार प्राप्त नहीं हुआ था। भारत में ही नहीं, संसार के किसी भी देश में इतनी बड़ी जनसंख्या को आज तक राय देने का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। पिछले चुनावों में इंगलैंड में मतदाताओं की संख्या ३½ करोड़ थी, अमरीका में यह संख्या ६½ करोड़ थी, रूस में १० करोड़ और जन राज्य चीन में १६½ करोड़। पुरुषों में ही नहीं, स्त्रियों में भी भारतवर्ष के अन्दर, मतदाताओं की संख्या सबसे अधिक है। नये संविधान के अन्तर्गत ६ करोड़ स्त्रियों को राय देने का अधिकार प्राप्त है जब कि १९३५ के संविधान के अन्तर्गत उनकी संख्या केवल ६६ लाख थी। १९१९ के भारतीय विधान के अनुसार केवल ३% और १९३५ के ऐक्ट के अनुसार केवल १३% जनता को राय देने का अधिकार था। नये विधान में सम्पत्ति, आमदनी, सामाजिक हैसियत, उपाधियों या सादरता इत्यादि की योग्यता मतदाता के लिए अनिवार्य नहीं रक्खी गई है। प्रत्येक ऐसे बालिग स्त्री या पुरुष को जिसमें भला-बुरा सोचने की साधारण बुद्धि है—राय देने का अधिकार प्रदान कर दिया गया है। इस प्रकार भारत

में शासन की अन्तिम शक्ति उन किसानों, मजदूरों तथा खेत में काम करने वाले हलवाहों के हाथ में आ गई है जो भारतीय जनता का ६०% अंग हैं।

पृथक निर्वाचन प्रणाली का अन्त (Abolition of Separate Electorates)—नये संविधान के अन्तर्गत पृथक निर्वाचन प्रणाली का भी अन्त कर दिया गया है। इसके पहले भारतीय चुनावों में, हिन्दू हिन्दुओं को और मुसलमान, सिख, ईसाई, एँग्लो इण्डियन अपनी-अपनी जातियों के लोगों के लिए वोट देते थे। प्रत्येक जाति के प्रतिनिधियों के चुनाव के लिए अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र होते थे तथा उनकी अपनी अलग निर्वाचन सूचियाँ होती थीं। प्रत्येक जाति के व्यक्तियों के लिए धारा सभा में स्थान सुरक्षित थे। उम्मीदवार धर्म के नाम पर दूसरी जाति के लोगों के विरुद्ध अपने धर्मावलंबियों को भड़काकर उनसे राय माँगते थे। चुनावों में खूब साम्प्रदायिकता का जहर उगला जाता था। नये विधान के अन्तर्गत हरिजन तथा कुछ पिछड़ी हुई कबाइली जातियों को छोड़कर और किसी के लिए सुरक्षित स्थान की व्यवस्था नहीं की गई है। चुनाव सब जातियों के लिए संयुक्त होंगे और उनमें हिन्दू और मुसलमान, सिख और ईसाई सब एक दूसरे को मिल कर राय देंगे। इस प्रकार भारत के नये संविधान में भारत की एकता के दो बड़े शत्रु—सुरक्षित स्थान तथा पृथक निर्वाचन प्रणाली—दोनों का अन्त कर दिया गया है। हरिजनों तथा पिछड़ी हुई जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था इसलिए की गई है जिससे सहस्रों वर्षों से अधिकार-वंचित, यह जातियाँ, समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान अपने जीवन का स्तर ऊँचा कर सकें। *परन्तु यह व्यवस्था केवल दस वर्ष के लिए ही की गई है।* इसके पश्चात् सब जातियों को समान रूप से ही अधिकार प्राप्त होंगे।

निर्वाचन क्षेत्र (Electoral Constituencies)

नये संविधान के अन्तर्गत सन् १९५२ के आरम्भ में चुनाव करने के लिए सारा देश प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों (*Territorial Constituencies*) में बाँटा गया था। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या लगभग ५ लाख से ७॥ लाख के बीच रक्खी गई थी। साथ ही इन क्षेत्रों के बनाते समय, इस बात का ध्यान रक्खा गया कि एक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या और प्रतिनिधियों में जो अनुपात है, वही सारे भारत के निर्वाचन क्षेत्रों के लिए कायम रहे। इस नियम के अधीन चुनाव क्षेत्रों की औसत जनसंख्या ७,२०,००० आई। अब प्रथम चुनाव के पश्चात् दूसरे आम चुनाव के समय, नई जनगणना के हिसाब से विभिन्न क्षेत्रों का पुनर्संगठन किया जायगा जिससे बदली हुई जनसंख्या के हिसाब से, चुनाव करने के लिए क्षेत्रों का पुनर्विभाजन किया जा सके। जन गणना के तुरन्त पश्चात् यह आवश्यक नहीं, कि लोक सभा को तुरन्त भंग कर दिया जाय। इस गणना का प्रभाव केवल नये आम चुनावों पर पड़ेगा।

आगामी आम चुनावों के लिए नई जनगणना के आधार पर, लोक सभा में सीटों का वितरण

भारतवर्ष में नई जनगणना सन् १९५१ के आरम्भ में की गई। इस जनगणना के फलस्वरूप, यह आवश्यक हो गया कि लोक सभा में, जनसंख्या के आधार पर निश्चित की गई, विभिन्न राज्यों की सीटों का पुनः बँटवारा किया जाय। इस कार्य को सम्पादित करने के लिए भारत सरकार ने एक विशेष कमीशन की नियुक्ति की और जुलाई सन् १९५३ में इस कमीशन ने अपनी सिफारिशें भारत सरकार को पेश कर दीं। इन सिफारिशों के आधार पर नई लोक सभा का निर्माण इस प्रकार किया जायगा।

सन् १९५७ में बनने वाली लोक सभा का संगठन

नाम राज्य	कुल सदस्य संख्या	हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान	बन जातियों के लिए सुरक्षित स्थान
ए० श्रेणी के राज्य			
१. आंध्र	२८	४	१
२. आसाम	१२	१	२
३. बिहार	५५	७	६
४. बम्बई	४६	४	५
५. मध्यप्रदेश	२६	४	३
६. मद्रास	४६	८	—
७. उड़ीसा	२०	४	४
८. पंजाब	१७	३	—
९. उत्तर प्रदेश	८६	१६	—
१०. पश्चिमी बंगाल	३४	६	२
बी० श्रेणी के राज्य			
१. हैदराबाद	२५		—
२. जम्मू काश्मीर	६	—	—
३. मध्य भारत	११	२	१
४. मैसूर	१३	२	—
५. पेप्सू	५	१	—
६. राजस्थान	२१	२	—
७. सौराष्ट्र	६		—
८. ट्रावनकोर-कोचीन	१३	१	—

सी० श्रेणी के राज्य			
१. अजमेर	१	—	—
२. भोपाल	२	—	—
३. बिलासपुर	१	—	—
४. कुर्ग	१	—	—
५. देहली	३	—	—
६. हिमाचल प्रदेश	२	—	—
७. कच्छ	२	—	—
८. मनीपुर	२	—	१
६ त्रिपुरा	२	—	१
१०. विंध्यप्रदेश	५	१	१
कुल जोड़	५००	६६	२७

उपरोक्त टेबिल में आंध्र राज्य का नाम भी शामिल कर लिया गया है, कारण यह राज्य अक्तूबर सन् १६५३ में अलग रूप में कार्य आरम्भ कर देगा। अभी हैदराबाद और सौराष्ट्र राज्यों के लिए हरिजनों की सीटों का निश्चय नहीं किया गया है, इस सम्बन्ध में निर्णय बाद में दिया जायगा।

राज्यों की सीटों का बँटवारा भी इसी प्रकार किया गया है। इसका वर्णन ६वें अध्याय में किया गया है।

नई जनगणना के आधार पर किये गये लोक सभा में सीटों के उपरोक्त वितरण से विदित होगा कि सन् १६५७ में बनने वाली लोक सभा, वर्तमान लोकसभा से निम्न बातों में भिन्न होगी :—

(१) वर्तमान लोक सभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या केवल ४८६ है। इनके अतिरिक्त ६ सदस्य काश्मीर राज्य को, २ सदस्य ऐंग्लो इंडियन जाति को, १ सदस्य अंडमान द्वीप को तथा १ सदस्य आसाम की जन जातियों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। इस प्रकार वर्तमान लोक सभा के कुल सदस्यों की संख्या ४६६ है। नई लोक सभा में निर्वाचित सदस्यों की संख्या, काश्मीर को मिला कर ५०० होगी। इसके अतिरिक्त यदि राष्ट्रपति ऐंग्लो इंडियन जाति इत्यादि को विशेष प्रतिनिधित्व प्रदान करेंगे तो यह संख्या बढ़ कर ५०४ हो जायगी।

(२) दिल्ली राज्य के आजकल लोक सभा में ४ प्रतिनिधि हैं। नई लोक सभा में इनकी संख्या घटा कर ३ कर दी गई है।

(३) इसके अतिरिक्त मद्रास, बम्बई, ट्रावनकोर-कोचीन तथा मैसूर राज्यों की सीटों में, आन्ध्र राज्य बनाये जाने की योजना के कारण, परिवर्तन कर दिया गया है।

निष्पक्ष निर्वाचन—मुख्य निर्वाचन आयुक्त (चीफ इलैक्शन कमिश्नर) की नियुक्ति

हमारे संविधान का एक और अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य, चुनावों की निष्पक्षता तथा उनमें ईमानदारी कायम रखने के लिए, निर्वाचन कमीशन की नियुक्ति है। विधान की ३२४वीं धारा में कहा गया है कि निर्वाचकों की सूची, निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण, देश में होने वाले सभी चुनावों का निरीक्षण, एवं देख भाल तथा चुनाव सम्बन्धी मुकदमों के फैसल के लिए राष्ट्रपति एक इलैक्शन कमीशन की नियुक्ति करेंगे, जिसका अध्यक्ष एक चीफ इलैक्शन कमिश्नर होगा तथा उसके नीचे इतने सहकारी इलैक्शन कमिश्नर या रीजनल इलैक्शन कमिश्नर नियुक्त किये जाएँगे, जितने राष्ट्रपति इस कार्य को पूरा करने के लिए उचित समझें। चीफ इलैक्शन कमिश्नर अपने कार्य को पूर्ण निष्पक्षता के साथ कर सके इसलिए संविधान में कहा गया है कि उसकी स्थिति वैसी ही होगी जैसी सुप्रीम कोर्ट के जजों की और उसको अपने पद से उसी प्रकार हटाया जा सकेगा जैसे सुप्रीम कोर्ट के जजों को। अपने कार्य को पूरा करने के लिए चीफ इलैक्शन कमिश्नर को अपने दफ्तर का स्टाफ स्वयं रखने का अधिकार है। सारे देश के चुनाव सम्बन्धी सभी विषयों की देख भाल इसी इलैक्शन कमिश्नर द्वारा की जाती है।

चुनाव का तरीका (Procedure of Elections)

संविधान का ३२४वीं धारा से लेकर ३२९वीं धारा चुनाव के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। इसके अतिरिक्त संविधान के अन्तर्गत एक जन प्रतिनिधित्व विधेयक (People's Representation Act) पास किया गया है जिसमें चुनाव के विषय में सम्पूर्ण बातें विस्तार से लिखी गई हैं।

इस कानून के अनुसार भारत में पिछले चुनाव इस प्रकार सम्पन्न हुए :—

केंद्र व राज्यों के चुनाव एक साथ किये गये। पहले प्रत्येक मतदाता को "विधान सभा" के उम्मीदवारों में से अपना चुनाव करने के लिए मत पत्र (Ballot paper) दिया गया और इसके पश्चात् 'लोकसभा' के चुनावों में भाग लेने के लिए। दोनों चुनाव वयस्क मताधिकार पर आधारित थे, इसलिए उनके लिए एक ही मतदाता-सूची (Electoral Roll) थी।

राज्यों व केंद्र की विधान सभा के चुनाव के लिए समस्त देश बहुत से निर्वाचन क्षेत्रों में बाँटा गया। इन चुनावों के लिए एक सदस्य निर्वाचन क्षेत्र (Single Member Consutuencies) की प्रणाली सबसे अधिक उपयुक्त समझी गई, कारण इस प्रणाली के अन्तर्गत चुनाव क्षेत्रों का क्षेत्रफल छोटा होता है और मतदाता उसे आसानी से समझ लेते हैं। परन्तु कुछ ऐसे क्षेत्रों के लिए जहाँ हरिजन तथा जन-

जाति (Tribal people) के लोगों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिये गये थे, बहु निर्वाचन क्षेत्रों (Plural Member Constituencies) की व्यवस्था भी की गई। सब मिलाकर संसद् के ४८६ और राज्यों के ३०५५ सदस्य चुनने के लिए १६२१ चुनाव क्षेत्र निर्धारित किये गये। इनमें से ४०१ निर्वाचन क्षेत्र संसद् के सदस्यों के चुनाव के लिए थे, जिनमें से ३१४ चुनाव क्षेत्रों में से एक एक सदस्य चुना गया, ८६ निर्वाचन क्षेत्रों से दो दो तथा १ निर्वाचन क्षेत्र से तीन सदस्य चुने गये।

राज्यीय विधान मण्डलों में २५०० निर्वाचन क्षेत्रों में से १६८६ से एक-एक, ५३३ से दो दो और एक निर्वाचन क्षेत्र से तीन सदस्य चुने गये।

चुनाव होने से कुछ समय पहले एक तारीख निश्चित की गई जिस तारीख तक चुनाव में खड़े होने वाले उम्मीदवारों के लिए यह आवश्यक था कि वह अपने निर्देशन पत्र (Nomination papers) चुनाव अधिकारी के सम्मुख दाखिल कर दें। इन निर्देशन पत्रों में दो ऐसे मतदाताओं के हस्ताक्षर होने आवश्यक थे, जिनमें से एक उम्मीदवार का नाम पेश करे तथा दूसरा उसका अनुमोदन करे। उम्मीदवार की ओर से इस बात की सहमति भी आवश्यक थी कि वह चुनाव में खड़े होने के लिए तैयार है।

निर्देशन पत्र दाखिल होने के पश्चात्, ७ दिन के अन्दर उनकी जाँच-पड़ताल की गई। इसके पश्चात्, तीन दिन उम्मीदवारों को इसलिए दिये गये कि यदि वह चाहें तो अपना नाम वापस ले लें।

इसके कम से कम ३० दिन पश्चात् आम चुनावों की तिथि निश्चित कर दी गई।

आम चुनावों के लिए इस बात का प्रबन्ध किया गया कि अधिक से अधिक १००० मतदाताओं के पीछे एक चुनाव घर (Polling Booth) अवश्य हो, जिससे मत दाताओं को अधिक दूर तक पैदल न चलना पड़े। नव संविधान के अन्तर्गत, सवारी का प्रबन्ध करना, उम्मेदवारों के लिए निषिद्ध ठहराया गया है। इसलिए मतदाताओं को अपनी सवारी में या पैदल ही, वोट डालने के लिए आना पड़ा। सारे भारत में लगभग २,५०,००० चुनाव घरों की व्यवस्था की गई। इससे किसी मतदाता को राय देने के लिए २ मील से अधिक पैदल नहीं चलना पड़ा। इस बात का विचार रखते हुए कि चुनाव में ८० प्रतिशत मतदाता पे पढ़े लिखे थे मत पत्र पर निशान लगाने की प्रथा का अंत कर दिया गया। इसके स्थान पर अलग-अलग उम्मीदवारों के लिए अलग अलग चुनाव पेटी निश्चित कर देने की प्रथा को अपनाया गया। प्रत्येक चुनाव पेटी के बाहर और अन्दर किसी ऐसी चीज का निशान लगा दिया गया, जैसे बैलों की जोड़ी, कुटिया, हल, चिड़िया, पेड़, दीपक, सूरज, चाँद, तलवार, घुड़सवार, इत्यादि जिसे गाँव वाले आसानी से पहचान सकें। प्रत्येक उम्मीदवार ने अपना एक निशान चुन लिया और

अपने पक्ष के मतदाताओं से प्रार्थना की कि वह अमुक निशान वाली पेटी में ही मत-पत्र को डालें। चुनाव घर में पहुँचने पर प्रत्येक मतदाता को एक मतपत्र दिया गया। इस मतपत्र पर किसी प्रकार के निशान लगाने की आवश्यकता नहीं थी। मतदाता उसे मोड़कर उस उम्मीदवार की पेटी में डाल सकता था जिसे वह अपना राय देना चाहता था। निशानों के चुनाव के सम्बन्ध में कोई झगड़ा न हो, इसलिए निशान ऐसे स्वीकार किये गये जो वाद-विवाद से रहित हों और जिन्हें चुन कर, उम्मीदवार मतदाताओं की भावनाओं को न भड़का सकें।

आम चुनावों का प्रबन्ध करने के लिए सरकार को कितना प्रयत्न करना पड़ा, इसका अनुमान इस बात से हो जायगा कि १८ करोड़ मतदाताओं के लिए ५२ करोड़ मत-पत्र, १६ लाख चुनाव पेटी तथा १२ लाख चुनाव अधिकारियों का प्रबन्ध किया गया।

चुनाव के पश्चात् मत गिने गये और जिस उम्मीदवार के पक्ष में सबसे अधिक राय पड़ी, उसे निर्वाचित घोषित कर दिया गया।

चुनावों का विश्लेषण

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पाँच वर्ष से भी कम समय में जिस प्रकार भारत सरकार ने वयस्क मताधिकार के आधार पर समस्त देश में आम चुनाव किये उससे हमारे देश का स्थान संसार के प्रजातन्त्र राष्ट्रों में बहुत ऊँचा उठ गया है। संसार के किसी देश में मतदाताओं की संख्या इतनी नहीं, जितनी सन् १९५२ के आम चुनावों में वह भारत में थी। आज भी जब यूरोप के बहुत से प्रगतिशील देशों में जैसे स्विट्जरलैंड में स्त्रियों को पुरुषों के समान मताधिकार प्राप्त नहीं है, भारत ने इस दिशा में साहसपूर्ण कदम उठा कर प्रजातन्त्र राज्यों के इतिहास में एक नया उदाहरण उत्पन्न कर दिया है।

प्रजातन्त्र राज्य के बहुत से आलोचकों को डर था कि हमारे देश में आम चुनाव शांतिपूर्वक सम्पन्न नहीं होंगे और साम्प्रदायिकता, हिंसा तथा जातिवादिता का खुला खेल खेला जायगा। ऐसे निराशावादी लोगों की सभी भविष्यवाणियाँ असत्य सिद्ध हुईं और हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक समस्त देश में आम चुनाव बहुत शांति के साथ पूरे हो गये।

चुनावों में १७,४५४ उम्मीदवार खड़े हुए। कांग्रेस के अतिरिक्त साम्यवादी दल, समाजवादी दल, के० एम० पी० पार्टी, जनसंघ, हिंदू महासभा, अकाली दल इत्यादि पार्टियों ने अपने उम्मीदवार खड़े किये। लोक सभा के चुनावों में ही २८०२ उम्मीदवारों ने भाग लिया। इन चुनावों में जनता ने कांग्रेस दल के उम्मीदवारों को भारी संख्या में निर्वाचित करके यह सिद्ध कर दिया कि वह अशिक्षित होने पर भी अपना भला-बुरा

जानती है और समझती है कि किस दल के नेताओं के हाथ में उसके हित सुरक्षित हैं। जनता ने चुनावों में भारी दिलचस्पी दिखाई। लगभग ५५ प्रतिशत मतदाता राय डालने आये। इनमें स्त्रियों की संख्या पुरुषों से अधिक थी जिससे साबित होता है कि हमारे देश की जनता अब अपने अधिकारों को समझने लगी है।

लोक सभा की अवधि—लोक सभा की अवधि ५ वर्ष है। इस अवधि के समाप्त होने पर 'लोक सभा' स्वयं टूट जायगी। संकटकालीन अवस्था में राष्ट्रपति को लोक सभा की अवधि बढ़ाने का अधिकार दिया गया है, परन्तु किसी भी अवस्था में यह अवधि एक समय में एक वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकेगी और संकटकालीन स्थिति के समाप्त होने पर छः महीने के अन्दर अन्दर दूसरी लोक सभा का चुनाव करना होगा।

अधिवेशन—लोक सभा के एक वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य बुलाये जायँगे। संविधान में कहा गया है कि एक अधिवेशन की समाप्ति और दूसरे अधिवेशन के आरम्भ में ६ महीने से अधिक समय नहीं बीतना चाहिये।

सदस्यों की योग्यता—लोक सभा के केवल वही व्यक्ति सदस्य चुने जा सकेंगे जिनकी आयु कम से कम २५ वर्ष होगी तथा जो भारत के नागरिक होंगे। संसद् को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह चाहे तो लोक सभा के सदस्यों की योग्यता के विषय में कानून बना सकती है। पिछले दिनों इस बात का प्रयत्न किया गया था कि इन योग्यताओं का निश्चय कर दिया जाय, परन्तु संसद् के सदस्यों के बीच यह निश्चय न हो सका कि सदस्यता के लिए न्यूनतम शर्तें क्या रक्खी जायँ।

सदस्यता में बाधक बातें—लोक सभा या राज्य परिषद् के वह व्यक्ति सदस्य न हो सकेंगे जिनमें निम्नलिखित में से कोई भी बात होगी :—

(१) यदि, वह भारत में किसी भी प्रांतीय अथवा केन्द्रीय सरकार के नीचे लाभकारी पद पर नौकर होंगे।

(२) यदि, उनके मस्तिष्क में किसी प्रकार की विकृति होगी।

(३) यदि, उन्होंने किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ली होगी।

(४) यदि वह चुनाव सम्बन्धी अपराध में दोषी ठहराये जा चुके होंगे।

(५) यदि उन्हें किसी अनैतिक अपराध में २ वर्ष से अधिक सजा हो चुकी होगी।

(६) यदि वह सरकारी ठेकेदार होंगे या किसी सरकारी कम्पनी में डाइरेक्टर हों, इत्यादि।

*संसद् की सदस्यता के विषय में यदि किसी प्रकार का विवाद होगा तो वह राष्ट्रपति के फैसले के लिए पेश किया जायगा। परन्तु, राष्ट्रपति उस पर अपना निर्णय देने से पहले इलैक्शन कमिश्नर की राय लेंगे।

स्थान का रिक्तीकरण—संविधान की १०१वीं धारा में कहा गया है कि कोई भी व्यक्ति एक समय में राज्य अथवा संघ के अन्तर्गत एक से अधिक धारा सभा का सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दो या दो से अधिक ऐसे स्थानों के लिए निर्वाचित हो जायगा तो उसे एक को छोड़कर और बाकी सभी स्थानों से त्यागपत्र देना होगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी व्यक्ति में निम्नलिखित में से कोई बात हो जाय तो उसका स्थान भी रिक्त समझ लिया जायगा :—

(१) यदि, वह चुनाव के पश्चात् उस पद पर आसीन रहने के अयोग्य हो जाय, उदाहरणार्थ यदि वह सरकारी नौकरी कर ले।

(२) यदि, वह स्वयं अपने पद से त्यागपत्र दे दे।

(३) यदि, वह अपने भवन की बैठकों से ६० दिन से भी अधिक काल के लिए बिना अनुमति अनुपस्थित रहे।

सदस्यों के अधिकार—संसद् के सभी सदस्यों को भाषण की पूर्ण स्वतन्त्रता होगी। कोई भाषण देने या किसी प्रकार का मत प्रकट करने पर किसी संसद के सदस्य को सजा नहीं दी जा सकेगी। परन्तु यह स्वतन्त्रता संविधान के उपनियमों और संसद् की चालू आज्ञाओं के अधीन होगी। भाषण की स्वतन्त्रता के अतिरिक्त, संसद् द्वारा इस सम्बन्ध में अपने नियम बनाने तक, सदस्यों के दूसरे अधिकार, इङ्गलैंड के हाउस आफ कामन्स के सदस्यों के समान होंगे।

लोक सभा के पदाधिकारी—लोक सभा की बैठकों का सञ्चालन करने के लिए विधान में एक अध्यक्ष (Speaker) तथा उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) के चुनाव की व्यवस्था की गई है। यह दोनों पदाधिकारी लोक सभा के सदस्यों के बहुमत द्वारा निर्वाचित किये जायँगे। 'लोक सभा' जब चाहे उन्हें अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उनके पद से हटा सकेगी। अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को वही वेतन दिया जायगा जो संविधान पास होने से पहले केन्द्रीय धारा सभा के अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष को मिलता था। परन्तु संसद् को अधिकार होगा कि वह चाहे तो इस वेतन को घटा-बढ़ा सकती है। लोक सभा के अध्यक्ष का मुख्य कार्य सभा की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करना, 'लोक सभा' के कार्य का सञ्चालन करना, सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना, बैठक की कार्यवाही के प्रकाशन का उचित प्रबन्ध करना, प्रस्तावों, प्रश्नों एवं बिलों के पेश होने की आज्ञा देना, सदन पर नियन्त्रण रखना तथा 'लोकसभा' सम्बन्धी दूसरे कार्य करना होगा। इङ्गलैंड के हाउस आफ कामन्स के समान 'लोक सभा' के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि वह अध्यक्ष पद के लिए केवल ऐसा ही सदस्य निर्वाचन करे जो किसी दल विशेष से अपना सम्बन्ध तोड़ ले। परन्तु उससे यह आशा की जायगी कि वह निष्पक्ष भाव से अपने कार्य का सञ्चालन करे तथा उस समय तक

जब तक वह अध्यक्ष की कुर्सी पर विराजमान है, किसी पार्टी विशेष के सदस्यों का पक्ष न ले। अध्यक्ष को केवल उस दशा में राय देने का अधिकार दिया गया है जब किसी विषय पर पक्ष और विपक्ष में बराबर के मत हों। ऐसी दशा में अध्यक्ष अपना एक निर्णायक (Casting Vote) दे सकेगा। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में उपाध्यक्ष उसका कार्य भार सँभालता है। आजकल लोक सभा के अध्यक्ष श्री मावलंकर हैं तथा उपाध्यक्ष श्री अनन्तशयनम आयंगर हैं।

गणपूर्ति (Quorum)—लोक सभा की कार्यवाही आरम्भ करने के लिए सभा में कम से कम १/१० सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक है।

राज्य परिषद्

सदस्यता—संसद् की उच्च सभा का नाम राज्य परिषद् है। संविधान में कहा गया है कि इसके सदस्यों की अधिक से अधिक संख्या २५० अर्थात् लोक सभा के सदस्यों की संख्या से आधी होगी। परन्तु अभी संख्या केवल २१७ निश्चित की गई है। इनमें से १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये गये हैं। इनमें डा० जाकिर हुसैन, काका कालेलकर, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, पृथ्वीराज कपूर तथा रुक्मिनी देवी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। यह सदस्य ऐसे हैं जिन्होंने साहित्य, कला, विज्ञान अथवा सामाजिक सेवा के क्षेत्र में विशेष रूप से काम किया है। बाकी सदस्य सङ्घ के अन्तर्गत राज्यों के प्रतिनिधि हैं। उनका चुनाव राज्यों के निम्न भवन अर्थात् विधान सभा (Legislative Assembly) द्वारा एक संक्रमणीय मत (Single Transferable Vote) तथा अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली (Proportional Representation) के आधार पर किया गया है। भिन्न भिन्न राज्यों से जो २५० प्रतिनिधि चुने गये हैं उनका विवरण इस प्रकार है —

राज्य परिषद् का संगठन

राज्य का नाम	सदस्यों की संख्या
ए श्रेणी के राज्य	
आसाम	६
उड़ीसा	६
पंजाब	८
पश्चिमी बङ्गाल	१४
बिहार	२१
मध्य प्रदेश	१२
मद्रास	२७
बम्बई	१७
उत्तर प्रदेश	३१
	१४५

बी श्रेणी के राज्य	
हैदराबाद	११
जम्मू और काश्मीर	४
मध्य भारत	६
मैसूर	६
पटियाला और पूर्वी पंजाब राज्य	३
राजस्थान	६
सौराष्ट्र	४
ट्रावनकोर-कोचीन	६
विन्ध्य प्रदेश	४
कुल संख्या	५१
सी श्रेणी के राज्य	
अजमेर, कुर्ग	१
भोपाल	१
बिलासपुर, हिमाचल प्रदेश	१
कूच बिहार	१
देहली	१
कच्छ	१
मनीपुर, त्रिपुरा	१
कुल संख्या	७
कुल स्थानों का जोड़	२०५

संसद् को अधिकार है कि वह भारतीय संघ के अन्तर्गत सम्मिलित होने वाले नये राज्यों के लिए विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था कर सके तथा कुछ राज्यों के दूसरे राज्यों में सम्मिलित होने के कारण सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में उचित परिवर्तन कर सके।

योग्यता—राज्य परिषद् का सदस्य प्रत्येक वह व्यक्ति हो सकता है जिसकी आयु ३० वर्ष से अधिक हो तथा जिसे प्रान्तों की विधान सभा चुन ले।

अवधि—राज्य परिषद् एक स्थायी संस्था है परन्तु उसके एक तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायेंगे। इस प्रकार आरम्भ के सदस्यों को छोड़ कर बाकी सदस्यों की

अवधि छः वर्ष होगी। राज्य परिषद् के 'लोक सभा' की भाँति एक समय में सीधे चुनाव नहीं होंगे।

पदाधिकारी—राज्य परिषद् का सभापति (Chairman), जैसा पहले बतलाया जा चुका है, देश का उप-राष्ट्रपति होता है जिसका चुनाव दोनों भवनों के सदस्यों द्वारा किया जाता है। उप राष्ट्रपति की अनुपस्थिति में कार्य करने के लिये राज्य परिषद् एक उप-सभापति (Deputy Chairman) भी चुनती है जिसका चुनाव राज्यपरिषद् के सदस्यों द्वारा किया जाता है। आजकल इस पद पर श्री कृष्णमूर्ति राव सुशोभित हैं।

संसद् (पार्लियामेंट) के अधिकार तथा कार्य

सङ्घ के दोनों भवनों अर्थात् लोकसभा और राज्यपरिषद् (Council of State) का संयुक्त नाम संसद् (पार्लियामेंट) है। भारत की संसद् का वही अधिकार प्राप्त हैं जो दूसरे स्वतन्त्र देशों में वहाँ के विधान मण्डल (Legislature) को प्राप्त होते हैं। इन अधिकारों में निम्न अधिकार मुख्य हैं —

(१) देश की व्यवस्था तथा जनता की भलाई के लिए कानून पास करना।

(२) देश की कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखना। यह नियन्त्रण, प्रश्नों, प्रस्तावों, बजट में कटौती, अविश्वास तथा काम रोको प्रस्तावों के द्वारा रखा जाता है। सरकार के प्रत्येक विभाग के साथ निर्वाचित सदस्यों की एक समिति (Standing Committee of the Members of Parliament) भी होती है जो उस विभाग के कार्य, व्यय तथा नीति पर नियन्त्रण रखती है।

(३) सरकार की आमदनी और खर्च की देखभाल करना। अनुमान समिति (Estimates Committee of the Parliament) के द्वारा भी यह काम सम्पादित किया जाता है।

(४) नये टैक्सों को लगाने की स्वीकृति देना अथवा पुराने टैक्सों को कम करना या उन्हें हटा देना।

(५) सरकार की नीति का सञ्चालन तथा राष्ट्र की वैदेशिक नीति का निर्माण करना, दूसरे देशों से युद्ध तथा समझौता इत्यादि करना।

संसद् की शक्तियों पर रोक (Limitations on the Power of Parliament)

परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि संसद् की शक्तियों का क्षेत्र असीमित नहीं है। संसद् संविधान की सीमा के अन्तर्गत रह कर काम करती है। संविधान में उसकी शक्तियों पर निम्न रोक लगाई गई है :—

(१) *विधायनी शक्ति* (Legislative Powers)—सर्व प्रथम संसद् केवल उन्हीं विषयों पर कानून बना सकती है जिनका उल्लेख संविधान की सङ्घीय

(Federal) एवं समवर्ती (Concurrent) सूची में किया गया है। वह राज्य सूची के विषयों पर कानून नहीं बना सकती।

(२) संविधान शक्ति—दूसरे संसद् संविधान में किसी प्रकार का संशोधन उस समय तक नहीं कर सकती जब तक वह संशोधन प्रत्येक सदन के ⅔ बहुमत से स्वीकार न कर लिया जाय।

(३) तीसरे संसद् का कानून बनाने का अधिकार राष्ट्रपति के उस अधिकार द्वारा सीमित हो जाता है जिसके अधीन राष्ट्रपति किसी विधेयक (Bill) पर उस समय तक हस्ताक्षर करने से इन्कार कर सकते हैं जब तक वह दोबारा संसद् के प्रत्येक भवन द्वारा बहुमत से स्वीकार न कर लिया जाय।

संसद् के दोनों भवनों का पारस्परिक सम्बन्ध (Mutual Relations between the two Houses of Parliament)

नव संविधान के अधीन भारतीय संसद् के दोनों भवनों को बराबर के अधिकार प्रदान नहीं किये गये हैं।

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों पर अधिकार

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों के सम्बन्ध में उदाहरणार्थ राज्य परिषद् के अधिकार अत्यन्त सीमित रक्खे गये हैं। ऐसे बिल, मन्त्रियों द्वारा, केवल लोक सभा में ही प्रस्तुत किये जा सकते हैं, राज्य परिषद् में नहीं। यह प्रणाली संसार के सभी प्रजातन्त्रवादी देशों में पाई जाती है। कारण निम्न भवन जनता की राय का अधिक प्रतिनिधित्व करता है, और उसके हाथ में रुपये-पैसे सम्बधी शक्ति देना अधिक लोकतन्त्रीय समझा जाता है। विधान में कहा गया है कि रुपये पैसे सम्बन्धी बिल निम्न भवन अर्थात् लोक सभा द्वारा स्वीकार किये जाने के पश्चात् राज्यपरिषद् में विचारार्थ भेज दिये जाएँगे जिसे यह अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो १४ दिन के अन्दर-अन्दर उस बिल में कोई संशोधन के सुझाव लोक सभा के सम्मुख पेश कर दे। परन्तु, इन सुझावों को स्वीकार या अस्वीकार करने का अंतिम अधिकार लोक-सभा को ही होगा। यदि १४ दिन तक राज्य परिषद् 'बिल' के सम्बन्ध में कोई राय लोक सभा को लिख कर न भेजे, तो बिल राज्य परिषद् की बिना राय के ही पास हुआ समझा जायगा। इस सम्बन्ध में राज्य परिषद् के अधिकारों की तुलना हम इँग्लैंड के हाउस आफ-लार्ड्स के अधिकारों से कर सकते हैं, जिसे भी रुपये-पैसे सम्बन्धी मामलों में किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

कार्यपालिका पर अधिकार

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों की भाँति ही राज्य परिषद् को मन्त्रिमंडल के ऊपर नियंत्रण रखने का अधिकार भी प्राप्त नहीं है। संविधान में कहा गया है कि मन्त्रिमण्डल

लोक सभा के प्रति उत्तरदायी होगा, राज्य परिषद् के नहीं। निम्न भवन को ही अविश्वास का प्रस्ताव पास करके मन्त्रिमण्डल को बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त होगा। राज्य परिषद् मन्त्रियों के कार्य की आलोचना कर सकेगा, तथा प्रश्नों, प्रस्तावों, बजट में कटौती तथा काम रोको प्रस्तावों के द्वारा उनके कार्य की देख भाल कर सकेगा, परन्तु उसे मन्त्रिमण्डल का त्याग-पत्र माँगने का कोई अधिकार नहीं होगा। लोक सभा को यह अधिकार इसलिए दिया गया है कि जनता का सच्चा एवं प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व यही भवन करता है, उच्च भवन नहीं।

दूसरे प्रकार के बिलों पर अधिकार

रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों तथा मन्त्रिमण्डल पर नियन्त्रण रखने के अतिरिक्त, और विषयों में दोनों भवनों के अधिकार समान होंगे। उदाहरणार्थ और हर प्रकार के बिल एक भवन द्वारा पास कर लिये जाने के पश्चात् दूसरे भवन के पास भेजे जायँगे। इस दूसरे भवन को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो ६ महीने के अन्दर अन्दर उस बिल में संशोधन कर दे। इस प्रकार दूसरे भवन द्वारा बिल पर विचार हो जाने के पश्चात् बिल अपने उद्गम स्थान पर वापस आ जायगा, जहाँ दूसरे भवन द्वारा बिल पर किये गये संशोधन पर फिर से विचार किया जायगा। यदि वह संशोधन स्वीकार कर लिया जाय तो बिल सीधा राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। परन्तु संशोधन के विषय में दोनों भवन आपस में राजी न हो सकें तो राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह दोनों भवनों की एक मिली-जुली सभा बुला ले। इस सभा में निम्नभवन का अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा। दोनों भवनों की संयुक्त सभा में जिस रूप में भी बिल बहुमत से पास हो जाय वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और इसके पश्चात् वह राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जायगा। जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति के हस्ताक्षर के लिए प्रस्तुत किया जायगा तो राष्ट्रपति निम्न में से कोई भी काम कर सकेंगे —

(१) बिल पर हस्ताक्षर कर दें।

(२) उसे पार्लियामेंट के विचार के लिए लौटा दें।

दूसरी दशा में यदि पार्लियामेंट उसी बिल को दोबारा पास कर देगी तो राष्ट्रपति को उस पर अवश्य हस्ताक्षर करने पड़ेंगे और वह बिल कानून बन जायगा। परन्तु पहली दशा में संविधान में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि यदि राष्ट्रपति बिल पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दें तो क्या होगा? सम्भवतः राष्ट्रपति ऐसा नहीं करेंगे और इस विषय में एक प्रकार की रीति (Convention) के अधीन काम करेंगे।

वार्षिक आय-व्यय (बजट) पास करने की विधि—भारत के नये संविधान में संसद् के सदस्यों के बजट पर बहस करने के अधिकार बढ़ा दिये गये हैं। पहले की भाँति संविधान में राष्ट्रपति को आज्ञा दी गई है कि वह प्रति वर्ष संघ की आय व व्यय का ब्यौरा संसद् के सदस्यों के सम्मुख पेश करायेंगे। इस ब्यौरे में वह व्यय अलग दिखाया जायगा जिस पर संसद् के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा, तथा जो भारत सरकार के व्यय के रूप में संघ सरकार की संचित निधि में से खर्च किया जायगा। इस व्यय में राष्ट्रपति का वेतन तथा उनके दूसरे भत्ते, लोक सभा व राज्य परिषद् के पदाधिकारियों का वेतन, सुप्रीम कोर्ट और फेडरल कोर्ट के जजों की पेंशन, जजों का वेतन आडिटर जनरल का वेतन, भारत सरकार के ऋण की अदायगी अथवा उसका ब्याज, संघ सरकार के ऊपर किसी कचहरी द्वारा की गई डिग्री की रकम, अथवा कोई ऐसा व्यय जिसे संसद् इस श्रेणी में सम्मिलित कर ले शामिल होगा। दूसरे सभी खर्चे अलग दिखाये जायेंगे। राजस्व तथा पूँजी सम्बन्धी खर्चे का ब्यौरा भी अलग पेश किया जायगा।

बजट पर राय देने का अधिकार केवल लोक सभा के सदस्यों को होगा, राज्य परिषद् के सदस्यों को नहीं। लोक सभा को अधिकार होगा कि वह खर्चे की किसी भी रकम में कमी कर दे अथवा उसे बिल्कुल अस्वीकार कर दे। परन्तु किसी मद पर खर्चे को बढ़ाने अथवा किसी नये खर्चे का सुझाव रखने का लोक सभा के सदस्यों को अधिकार नहीं होगा। खर्चे के सुझाव राष्ट्रपति की अनुमति से, केवल मन्त्रियों द्वारा ही पेश किये जा सकते हैं।

बजट पास हो जाने के पश्चात् फाइनेंस बिल जिसमें कर सम्बन्धी सुझाव, प्रस्तुत किये जाते हैं, लोक सभा के सम्मुख रक्खा जायगा। इस पर भी राज्य परिषद् के सदस्यों को राय देने का अधिकार नहीं होगा।

बजट पर बहस करने के लिए, पहले की भाँति, कोई निश्चित समय मुकर्रर नहीं किया गया है। संविधान पास होने से पहले अर्थ मन्त्री, २८ फरवरी को अपना बजट धारासभा के सम्मुख पेश करते थे। ३१ मार्च इस बजट को पास करने की अंतिम तिथि थी। नव संविधान के अन्तर्गत संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह बजट पास होने तक सरकार के खर्चे के लिए कुछ विशेष रकम स्वीकार कर सकती है। इसके पश्चात् संसद् के सदस्य अपनी सुविधा के अनुसार बजट पर खुली बहस कर सकते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी निश्चित तिथि तक उसे पास कर दें। एक बार बजट पास कर चुकने के पश्चात् संसद् को यह भी अधिकार होगा कि वह किसी असामयिक खर्चे को पूरा करने के लिए सरकार को और रुपया खर्च करने की स्वीकृति दे दे। इस प्रकार उसे सप्लीमेंटरी बजट पास करने का अधिकार होगा। बजट

पास हो चुकने के पश्चात् 'आडिटर जनरल' का यह कर्तव्य होगा कि वह देखे कि सरकार का खर्च बजट में स्वीकृत योजना के अनुसार ही होता है। संसद् के सदस्यों को इस विषय में आडीटर जनरल की वार्षिक रिपोर्ट पर बहस करने का अधिकार भी दिया गया है।

बिल (विधेयक) पास करने की विधि

संसद् के प्रस्तुत बिल दोनों सदनों द्वारा किस प्रकार पास किये जाते हैं तथा दोनों सदनों में उनके विषय में मतभेद हो तो वह कैसे दूर किया जाता है, यह हम पहले बता चुके हैं। यहाँ हम उस विधि का वर्णन करेंगे जिसके द्वारा कोई बिल एक सदन से पास किया जाता है।

बिल सरकारी भी हो सकते हैं और सदस्यों द्वारा भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं। अधिकतर बिल सरकारी ही होते हैं।

प्रत्येक बिल के पास होने से पहले तीन पढ़त होती हैं। प्रथम पढ़त में बिल छपा कर सदस्यों की मेज पर रख दिया जाता है। उस पर किसी प्रकार की बहस नहीं होती।

दूसरी पढ़त में बिल पर विस्तार से बहस होती है पहले उसके सिद्धान्तों पर और इसके पश्चात् यदि वह स्वीकार कर लिया जाय तो उसकी एक-एक धारा पर। इस पढ़त में कई बार, बिल सिलेक्ट कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाता है जिसकी रिपोर्ट पर एक बार फिर पूरा सदन बिल पर बहस करता है। इस पढ़त में बिल में संशोधन भी रक्खे जा सकते हैं। प्रत्येक संशोधन और फिर मूल धारा पर अलग अलग सदस्यों की राय ली जाती है।

तीसरी पढ़त में संशोधित बिल पर एक बार फिर बहस होती है परन्तु इस पढ़त में बिल में संशोधन प्रस्तुत नहीं किये जा सकते।

इसके बाद पूरे सदन (House) की राय ली जाती है और बिल के पास हो जाने पर वह दूसरे सदन में भेज दिया जाता है, जहाँ एक बार फिर इसी प्रकार तीन पढ़त होती हैं। दोनों सदनों से पास होने के बाद बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है।

योग्यता प्रश्न

१. संघ संसद् के विशेषाधिकारों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिये। क्या संसद् संविधान में संशोधन कर सकती है? यदि हाँ तो किस प्रकार? (यू० पी० १९५१)

२. नये संविधान के अन्तर्गत आम चुनाव होने तक संघ संसद् का क्या स्वरूप था? क्या इस संसद् को संविधान में संशोधन करने का अधिकार प्राप्त था?

३. केंद्रीय शासन में द्वि सदन प्रणाली क्यों अपनाई गई है? दोनों सदनों की व्यवस्था के सम्बन्ध में वर्णन कीजिये।

४. वयस्क मताधिकार का सिद्धान्त क्यों स्वीकार किया गया? क्या इससे शासन का स्तर नीचे नहीं गिरेगा?

५. 'भारत में संसार का सबसे महान् प्रजातंत्रीय प्रयोग किया जा रहा है'। यह कथन कहाँ तक सत्य है?

६. संसद् के क्या कर्तव्य हैं? वह कार्यपालिका पर किन उपायों से नियन्त्रण रखती है?

७. संसद् के दोनों भवनों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिये। उन दोनों के बीच में गति-अवरोध किस प्रकार दूर किया जाता है?

८. संसद् के राजस्व सम्बन्धी अधिकार क्या हैं? बजट किस प्रकार पास किया जाता है?

९. संसद् के कानून पास करने का क्या तरीका है? क्या राष्ट्रपति संसद् से स्वीकृत विधेयक को मानने से इनकार कर सकते हैं?

१०. लोक सभा के निर्माण का वर्णन कीजिये। इस सभा के अधिकारों की तुलना राज्य परिषद् के अधिकारों से कीजिये। (यू० पी० १९५२)

११. भारतीय संघ संसद् के कृत्यों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० १९५३)



अध्याय ८

राज्य कार्यकारिणी

जैसा पहले बताया जा चुका है, नव संविधान के अन्तर्गत, शासन की दृष्टि से भारत चार भागों में विभक्त किया गया है। एक भाग में वह राज्य हैं जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अर्थात् गवर्नर हैं, दूसरे भाग में वह राज्य हैं जो बहुत सी देशी रियासतों को जोड़कर बनाये गये हैं तथा जिनके अध्यक्ष राज्यप्रमुख हैं, तीसरे भाग में वह राज्य हैं जो संघ सरकार के अन्तर्गत चीफ कमिश्नरों द्वारा शासित होते हैं, चौथे भाग में अंडमान नीकोबार द्वीप हैं जिनकी शासन व्यवस्था के लिए संविधान में अलग प्रबन्ध किया गया है।

संविधान के भाग 'क' और 'ख' में दिये गये राज्यों अर्थात् उन राज्यों की शासन व्यवस्था जिनके अध्यक्ष राज्यपाल अथवा राजप्रमुख हैं, मूल तत्वों में, संघ सरकार की शासन व्यवस्था से मिलती जुलती है। इन राज्यों में उसी प्रकार की मन्त्रिमण्डलात्मक सरकारें सङ्गठित की गई हैं जैसी संघीय संविधान के अन्तर्गत। सब राज्यों के राज्यपाल राजप्रमुख व केन्द्रीय सरकार के राष्ट्रपति के समान वैधानिक, नामधारी तथा उत्सवमूर्ति अध्यक्ष हैं। शासन की वास्तविक सत्ता सब राज्यों में मन्त्रिमण्डलों के हाथ में रक्खी गई है। सब मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से, संघ सरकार की भाँति, अपनी अपनी विधान सभाओं के प्रति उत्तरदायी हैं। सब राज्यों के विधान मण्डलों का कार्य करने का तरीका उसी प्रकार का है जैसा संघ संसद् का। उन सब में बजट तथा बिल पास करने की समान विधि है। उन सब के सदस्यों को वही अधिकार प्राप्त हैं जो संघ संसद् के सदस्यों को दिये गये हैं। संसद् की योग्यता सम्बन्धी धाराएँ भी दोनों में एक रूप हैं। इस अध्याय में इसलिए हम राज्यों के केवल उन्हीं अंगों का विस्तार से वर्णन करेंगे जिनमें वह संघीय संविधान से भिन्नता रखते हैं, शेष अङ्गों का वर्णन केवल संक्षिप्त रूप से किया जायगा।

राज्यपाल (*Governor*)

संविधान की प्रथम अनुसूची के भाग 'क' में दिये गये राज्यों के अध्यक्ष का नाम राज्यपाल अथवा गवर्नर है। जैसा पहले भी बताया जा चुका है, राज्य के शासन में उसकी स्थिति प्रायः वैसी ही है जैसी संघ संविधान में राष्ट्रपति की। राज्य के सभी काम उसी के नाम पर किये जाते हैं। परन्तु दो बातों में उसकी स्थिति राष्ट्रपति से भिन्न है। प्रथम यह कि राष्ट्रपति के समान विपत्ति काल में शासन की असाधारण शक्तियों के

प्रिय कार्य करने की उसे शक्ति नहीं दी गई है। और दूसरे यह कि राज्य-पाल जहाँ केवल अपने प्रधान मन्त्री अथवा मन्त्रिमण्डल की सलाह से कार्य करने के लिए बाध्य हैं, वहाँ राज्यपाल का एक प्रकार से दोहरा उत्तरदायित्व है। वह एक ओर तो राष्ट्रपति तथा संघ सरकार की आज्ञाओं को मानने के लिए बाध्य है और दूसरी ओर उसे अपने मन्त्रियों की सलाह से काम करना पड़ता है। इस प्रकार राज्यपाल का कार्य कठिनता से खाली नहीं।

नियुक्ति—संविधान में कहा गया है कि राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा अपने स्वयं के हस्ताक्षरों तथा राज्य की मोहर लगा कर की जायगी। उसके कार्यकाल की अवधि ५ वर्ष होगी। पहले संविधान सभा में यह प्रस्ताव रक्खा गया था कि राज्यपाल का जनता द्वारा सीधा चुनाव किया जाय अथवा उसे विधान सभा चुने। परन्तु, स्वीकृत संविधान में यह दोनों सुझाव इसलिए नहीं माने गये कि राज्यपाल को संविधान के अन्तर्गत कोई विशेष अधिकार नहीं दिये गये हैं। जनता द्वारा चुनाव किये जाने पर मन्त्रियों तथा राज्यपाल में संघर्ष की सम्भावना हो सकती थी। कारण, उस दशा में राज्यपाल कह सकता था कि वह भी जनता का वैसा ही प्रतिनिधि है जैसे मन्त्री, और इसलिए जनता के हित की रक्षा के लिए उसे मन्त्रियों के काम में हस्तक्षेप करने का अधिकार है। विधान मण्डल द्वारा चुनाव में यह दोष समझा गया कि इससे राज्यपाल का चुनाव एक दलबन्दी के फेर में पड़ जाता और उसे राज्य के सभी नागरिकों का विश्वास प्राप्त नहीं होता। राष्ट्रपति द्वारा राज्यपाल का चुनाव होने से यह स्थिति उत्पन्न नहीं होगी। वह केवल ऐसे ही व्यक्तियों को इस पद के लिए चुनेंगे जो जनता के विश्वासपात्र हों तथा जिन्होंने अपने नैतिक बल, योग्यता, अनुभव अथवा जनता की स्वार्थहीन सेवा से समाज में विशेष मान पाया हो। इस विधि से राज्य के शासन पर संघीय सरकार का प्रभुत्व भी बढ़ जायगा। अमरीका के संविधान में राज्यों के गवर्नरों का चुनाव जनता द्वारा किया जाता है। वहाँ यह प्रथा इसलिए क्षम्य है कि उस देश के संविधान के अन्तर्गत गवर्नर राज्यों के विधाननिष्ठ अध्यक्ष नहीं वरन् कार्यकारिणी के वास्तविक नेता हैं। हमारे संविधान में राज्यपालों के हाथ में इस प्रकार के अधिकार नहीं दिये गये हैं। इसलिए उनका जनता द्वारा चुना जाना अधिक उपयुक्त नहीं होता।

योग्यता—राज्यपाल के पद के लिए वह सभी व्यक्ति चुने जा सकेंगे, जो (१) भारत के नागरिक हों, (२) जिनकी आयु ३५ वर्ष से अधिक हो, (३) जो संघ संसद् अथवा किसी राज्य के विधान मण्डल के सदस्य नहीं हों। यदि ऐसे कोई व्यक्ति इस पद के लिये चुन लिये जायेंगे तो उनका पहला स्थान तुरन्त रिक्त समझा जायगा।

त्यागपत्र—राज्यपाल को अधिकार होगा कि यदि वह चाहे तो राष्ट्रपति के नाम

पत्र लिखकर अपनी अवधि पूर्ण होने से पहले ही, अपने पद से त्यागपत्र दे दे, अन्यथा अवधि समाप्त होने पर भी वह अपने पद पर उस समय तक आसीन रहेगा जब तक उसके स्थान पर दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति न कर दी जाय।

वेतन—प्रत्येक राज्य के राज्यपाल को ५,५०० रुपया मासिक वेतन मिलेगा। इसके साथ ही उसे वह दूसरी सुविधाएँ, रहने के लिए मकान तथा भत्ते इत्यादि दिये जायगे जो विधान लागू होने से पहले गवर्नरों को दिये जाते थे।

राज्यपालों के अधिकार

राज्यपालों को कानून सम्बन्धी, शासन सम्बन्धी तथा न्याय सम्बन्धी जो विशेष अधिकार दिये गये हैं उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है —

कानून सम्बन्धी अधिकार—(१) राज्यपाल को यह अधिकार है कि वह विधान मण्डल के अन्तर्गत दोनों भवनों या किसी एक भवन के अधिवेशन को बुलाये, स्थगित करे अथवा अवधि पूर्ण होने से पहले ही विधान सभा को भंग कर दे। (२) उसे विधान मण्डल के अन्तर्गत दोनों भवनों के संयुक्त अधिवेशन बुलाने, तथा उनमें भाषण देने का अधिकार है। (३) प्रत्येक नये अधिवेशन के समय उसे आज्ञा दी गई है कि वह विधान मण्डल के संयुक्त अधिवेशन में राज्यनीति पर भाषण देगा जिसके पश्चात् विधान-मंडल के सदस्य उस पर बहस करेंगे। (४) वह किसी भवन के विचारार्थ अपनी ओर से लिखित सन्देश भी भेज सकेगा, जिस पर उस भवन के सदस्यों को शीघ्र से शीघ्र विचार करना होगा। (५) विशेष अवस्था में जब राज्य के विधान मण्डल की बैठक न हो रही हो तो उसे अधिकार होगा कि किन्हीं ऐसे विषयों पर जो राज्य की अधिकार सीमा में हैं, वह किसी सङ्कट का निवारण करने के लिए अल्पकालीन कानून (Ordinance) पास कर सके। ऐसे कानून विधान मण्डल का अधिवेशन आरम्भ होने के तुरन्त पश्चात् उसके विचारार्थ पेश किये जायँगे और ५ सप्ताह के बाद लागू न रहेंगे जब तक इससे पहले ही वह विधान मण्डल की सभा द्वारा अस्वीकृत घोषित न कर दिये जायँ। (६) विधान मण्डल द्वारा पास कोई भी बिल उस समय तक कानून का रूप धारण नहीं कर सकेगा जब तक राज्यपाल द्वारा उस पर हस्ताक्षर न कर दिये जायँ। जिस समय कोई बिल राज्य की विधान सभा और यदि उस राज्य में दो भवन हैं तो दोनों भवनों द्वारा पास कर दिया जायगा तो वह राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए भेजा जायगा। राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि वह उस बिल पर हस्ताक्षर कर दें, या उसे विधान मंडल के दोबारा विचार के लिए वापस कर दें। दूसरी दशा में यदि विधान सभा उसी बिल को दोबारा पास कर देगी, तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

शासन सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को इस बात का अधिकार होगा कि वह

अपने मन्त्रियों को आदेश दे सके कि सरकार के सभी नीति सम्बन्धी विषय तथा आवश्यक निर्णय उसकी जानकारी के लिए, उसके पास भेजे जायँ। विधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य के मुख्य मन्त्री का यह कर्तव्य होगा कि वह राज्यपाल को सरकार के सभी कामों से परिचित रक्खे। राज्यपाल को यह अधिकार होगा कि यदि किसी विषय पर कोई मन्त्री अपनी स्वतन्त्र इच्छा से, पूरे मन्त्रिमंडल की सलाह के बिना कार्य कर डाले तो वह उस विषय को मन्त्रिमंडल के सम्मुख रख दे। राज्य में बहुत से बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी, जैसे पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्य, ऐडवोकेट जनरल, इत्यादि की नियुक्ति भी, मन्त्रियों की सलाह पर राज्यपाल द्वारा ही की जायगी। यह सत्य है कि राज्यपाल शासन सम्बन्धी विषयों पर अपने मन्त्रियों की सलाह से ही कार्य करेगा, परन्तु उसका शासन पर प्रभाव बहुत कुछ उसके अपने व्यक्तित्व, योग्यता तथा अनुभव पर निर्भर होगा। नये विधान के अन्तर्गत राष्ट्रपति केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राज्यपाल के पद के लिए चुनेंगे जो अपनी जन-सेवा, दक्षता या बुद्धि के चमत्कार के कारण समाज में ऊँचा स्थान रखते हों। स्वभावतः ऐसे व्यक्तियों का शासन पर समुचित प्रभाव होगा।

न्याय संबन्धी अधिकार—नये विधान के अन्तर्गत राज्यपाल को सजा पाये हुए अपराधियों की सजा कम करने या उन्हें क्षमा दान देने का अधिकार दिया गया है। परन्तु, ऐसा वह केवल उस दशा में कर सकेंगे जब अपराधी ने कोई ऐसा कानून तोड़ा हो जिसे बनाने का अधिकार राज्य की विधान सभा को हो। मृत्यु दंड को स्थगित करना अथवा ऐसे अपराधियों को क्षमा करना जिन्होंने संघ कानून को तोड़ा हो, राष्ट्रपति का ही काम होगा, राज्यपाल का नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान के अन्तर्गत राज्यपालों को राज्य का वैधानिक अध्यक्ष तो अवश्य बनाया गया है, परन्तु फिर भी अपनी योग्यतानुसार, शासन पर अपने व्यक्तित्व की छाप लगाने के लिए उन्हें अनेक अवसर दिये गये हैं।

मन्त्रिमंडल

राज्य का नामधारी अध्यक्ष तो राज्यपाल होगा, परन्तु वास्तविक शक्ति मन्त्रिमंडल के हाथ में रहेगी। मन्त्रियों का चुनाव मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। मुख्य मन्त्री वह व्यक्ति होगा जो राज्य की विधान सभा में बहुमत दल का नेता होगा।

संख्या—मन्त्रियों की कोई निश्चित संख्या नहीं होगी। राज्य की आर्थिक अवस्था तथा सरकार के काम की उचित व्यवस्था की दृष्टि से मुख्य मन्त्री, उतने मन्त्रियों की नियुक्ति करेगा, जितना वह उचित समझेगा।

अवधि—मन्त्रियों के कार्यकाल की कोई विशेष अवधि नहीं होगी। वह विधान

सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे और यदि विधान सभा उनके प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो उन्हें अपने पद से त्याग पत्र देना होगा। इस प्रकार मन्त्री केवल उस समय तक ही अपने आसन पर विद्यमान रहेंगे, जब तक उन्हें विधान-सभा का विश्वास प्राप्त रहेगा।

योग्यता—मन्त्रि पद की नियुक्ति के लिए विधान सभा का सदस्य होना आवश्यक है। कोई भी बाहर का व्यक्ति ६ महीने से अधिक काल के लिए मन्त्रि पद के लिए नहीं चुना जा सकेगा। यदि इस बीच ऐसा व्यक्ति विधान सभा में निर्वाचित न हो सकेगा तो ६ महीने के पश्चात् उसे अपने पद से त्यागपत्र दे देना होगा।

कार्य प्रणाली—मन्त्रियों में काम का बँटवारा मुख्य मन्त्री द्वारा किया जायगा। प्रत्येक मन्त्री एक या एक से अधिक सरकारी विभागों का अध्यक्ष होगा। उदाहरणार्थ, यदि किसी मन्त्री के पास पुलिस विभाग है तो दूसरे के पास अर्थ विभाग इत्यादि। मन्त्रियों के नीचे, उनके कार्य में सहायता देने के लिए पार्लियामेन्टरी सेक्रेटरी भी नियुक्त किये जा सकते हैं। उनकी नियुक्ति भी मुख्य मन्त्री द्वारा की जायगी।

मन्त्रियों के कर्त्तव्य

मन्त्रियों का मुख्य काम अपने विभाग के अधीन सभी अफसरों के काम की देख भाल करना होगा। शासन का दिन प्रति दिन का काम उन्हीं के द्वारा चलाया जायगा। उनके रहने के लिए बंगला, सवारी के लिए मोटर तथा इतना वेतन दिया जायगा जितना विधान सभा द्वारा निश्चित कर दिया जाय। अपने महकमे की नीति का निश्चय करना, जन सेवा के लिए नई नई योजनाएँ सोचना, अपने नीचे के दफ्तर का इस प्रकार सङ्गठन करना कि सरकारी काम अत्यन्त दक्षता तथा योग्यता से चल सके, विधान मण्डल के सम्मुख अपने कार्यों को समझाना, सदस्यों के प्रश्नों का उत्तर देना, अपने महकमे से सम्बन्धित बिलों को प्रस्तुत करना, बजट पर बहस का उत्तर देना तथा सदस्यों द्वारा की गई अपने विभाग की आलोचना का उत्तर देना, मन्त्रियों का मुख्य कार्य होगा। वैसे तो सभी मन्त्री अलग अलग अपने अपने महकमों के दिन प्रति दिन के काम की देख-भाल करेंगे और किसी एक मन्त्री को दूसरे के कार्य-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं होगा, परन्तु नीति सम्बन्धी विषयों का निश्चय सभी मन्त्री मिल कर करेंगे। मन्त्रिमण्डल की बैठकें बराबर होती रहेंगी और उनमें मुख्य मन्त्री सभापति का आसन ग्रहण करेंगे। सभी मन्त्री वैयक्तिक तथा सामूहिक रूप से विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होंगे। यदि किसी एक मन्त्री के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाय तो केवल वही मन्त्री त्यागपत्र नहीं देगा वरन् सारे मन्त्रिमण्डल को ही अपना स्थान छोड़ देना होगा। मुख्यमन्त्री स्वयं भी यदि चाहे तो किसी एक मन्त्री को उसके पद से हटा

सकेगा।" इस प्रकार सर्व-मन्त्री मुख्य मन्त्री तथा विधान-सभा दोनों के प्रति उत्तरदायी होंगे और राज्य की वास्तविक शक्ति उन्हीं के हाथों में केन्द्रित रहेगी।

पिछड़ी हुई जातियों की सहायता के लिए मन्त्रियों की नियुक्ति—संविधान में कहा गया है कि बिहार, उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में मुख्य मन्त्री द्वारा एक ऐसे मन्त्री की भी नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य कार्य वन जातियों (Tribal people) तथा अन्य पिछड़ी हुई जातियों के अधिकारों की रक्षा करना होगा। दूसरे प्रान्तों में भी हरिजनों के हितों की रक्षा करने के लिए किसी एक मन्त्री को विशेष अधिकार दिये जा सकते हैं। नये संविधान में राज्यों की सरकारों को विशेष रूप से आदेश दिया गया है कि वह अपने अन्तर्गत पिछड़ी हुई जातियों को समाज के दूसरे व्यक्तियों के समान उन्नति के स्तर पर लाने के लिए विशेष प्रयत्न करें।

ऐडवोकेट जनरल—मन्त्रियों के अतिरिक्त राज्यों के विधान में एक ऐडवोकेट जनरल की नियुक्ति की भी व्यवस्था की गई है। यह नियुक्ति मुख्य मन्त्री की सलाह से गवर्नर द्वारा की जायगी। ऐडवोकेट जनरल का मुख्य काम राज्य की सरकार को कानून सम्बन्धी विषयों पर सलाह देना तथा राज्य के विरुद्ध मुकदमों, इत्यादि में सरकार की ओर से पैरवी करना होगा। उसके वेतन तथा कार्य अवधि का निश्चय राज्यपाल द्वारा किया जायगा।

आम चुनावों के पश्चात् उत्तर प्रदेश में नये मंत्रिमंडल का निर्माण

संविधान की ३८८वीं धारा में कहा गया था कि नये चुनाव होने तक राज्यों में वही मंत्रिमण्डल कार्य करते रहेंगे जो संविधान लागू होने से पहले उन प्रान्तों में काम करते थे। उत्तर प्रदेश में आम चुनाव नवम्बर सन् १९५१ में आरम्भ होकर फरवरी सन् १९५२ में समाप्त हुए। इन चुनावों में ४३० सदस्यों की विधान सभा में कांग्रेस दल के ३६० सदस्य चुने गये। इसलिए राज्य के गवर्नर ने कांग्रेस दल के नेता प० गोविंद वल्लभ पंत से ही प्रार्थना की कि वह अपना नया मन्त्रिमंडल बनायें। २० मई सन् १९५२ को इस नये मंत्रिमंडल के सदस्यों की घोषणा कर दी गई। मन्त्रिमंडल के निर्माण में फरवरी के पश्चात् अधिक देर इस कारण से लगी कि राज्य की विधान परिषद् के चुनाव अप्रैल के अन्त तक ही समाप्त हो पाये थे। नये मन्त्रिमंडल में कोई विशेष परिवर्तन नहीं किये गये। सभी पुराने मन्त्रियों को दोबारा मन्त्री परिषद् में ले लिया गया। इसके अतिरिक्त ३ और नये मन्त्री चुन लिये गये। नये मन्त्रिमण्डल में निम्न सदस्य सम्मिलित हैं :

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी—राज्यपाल

प० गोविन्द वल्लभ पंत—मुख्य मन्त्री, आम शासन एवं योजना

हाफ़िज़ मोहम्मद इब्राहीम—वित्त, बिजली एवं बिजली के कारखाने

श्री सम्पूर्णानन्द—गृह तथा श्रम विभाग
श्री हुकुम सिंह—उद्योग, पुनर्वास विभाग
श्री गिरधारी लाल—सार्वजनिक कार्य विभाग (Public works)
श्री चन्द्रभान गुप्त—खाद्य, स्वास्थ्य तथा सिविल सप्लाई
श्री चरन सिंह—कृषि तथा मालगुजारी विभाग
श्री अली जहीर—न्याय, उत्पत्ति कर, रजिस्ट्रेशन विभाग
श्री हरगोविंद सिंह—शिक्षा एवं हरिजन उद्धार विभाग
श्री मोहन लाल गौतम—स्वायत्त शासन
श्री कमलापति त्रिपाठी—सूचना तथा सिंचाई
श्री विचित्र नारायण शर्मा—यातायात तथा सहकारिता

२. भाग 'ख' के राज्यों की कार्यकारिणी का संगठन अर्थात् रियासती संघों की सरकार का स्वरूप

रियासती संघों की सरकार का संगठन उसी प्रकार का होगा जैसा वह 'क' भाग के राज्यों का है। अन्तर केवल इतना है कि 'क' राज्यों के अध्यक्ष राज्यपाल कहलाते हैं और 'ख' भाग के अध्यक्ष राजप्रमुख। उनकी नियुक्ति संघ सरकार और रियासती संघों के बीच हुए समझौते के अनुसार की गई है। इन समझौतों का विस्तृत वर्णन 'भारतीय रियासत' नामक एक अगले अध्याय में किया जायगा। यहाँ हम केवल इन संघों की सरकार के संगठन का वर्णन करेंगे।

'ख' राज्यों के अन्तर्गत मन्त्रिमण्डलों का संगठन उसी प्रकार किया जाता है जैसे 'क' राज्यों में। इन राज्यों में राजप्रमुख मुख्य मन्त्री की नियुक्ति करते हैं। शेष मन्त्री मुख्य मन्त्री द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। सब मन्त्री विधान सभा के प्रति उत्तरदायी हैं।

रियासती संघों के ऊपर संविधान की एक विशेष धारा ३७१ के द्वारा संघ सरकार का विशेष नियन्त्रण कायम कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है कि पहले दस वर्ष के लिए 'ख' राज्य की प्रत्येक सरकार संघ सरकार के नियन्त्रण में रहेगी और उन्हें राष्ट्रपति की उन सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा जो संघ सरकार की ओर से वह उनके नाम जारी करें। परन्तु, आगे चल कर इस धारा में कहा गया है कि संघ संसद् को अधिकार होगा कि वह दस वर्ष की इस अवधि में कमी या बढ़ोत्तरी कर दे या किसी एक या अधिक राज्यों के लिए इस धारा का उपयोग न करे। इस प्रकार का प्रबन्ध संविधान में इस दृष्टि से किया गया है कि भारतीय रियासतों को अभी प्रजातन्त्रीय शासन का अधिक अनुभव नहीं है और उनमें से बहुत सी रियासतों में अभी तक किसी प्रकार की विधान सभाएँ भी नहीं हैं। जिन रियासतों को प्रजातन्त्रीय शासन का अधिक

अनुभव है वहाँ संविधान की उपरोक्त धारा से उन पर संघ सरकार का नियन्त्रण कम किया जा सकता है।

कुछ रियासती संघों के विषय में विशेष आयोजन

संविधान में कुछ रियासती संघों की विशेष परिस्थितियों का विचार करके उनके सम्बन्ध में खास आयोजन किया गया है। उदाहरणार्थ—

काश्मीर रियासत—काश्मीर व जम्मू की रियासत के सम्बन्ध में संविधान की ३७०वीं धारा में कहा गया है कि संघ सरकार का इस रियासत पर नियन्त्रण केवल उन विषयों पर रहेगा जो विषय उसके भारतीय संघ में प्रवेश के समय 'प्रवेश पत्र' (Instrument of accession) में वर्णित कर दिये गये थे, शेष विषयों पर नहीं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत सरकार 'विदेश सम्बन्ध', 'रक्षा' तथा 'यातायात के साधनों' को छोड़ कर और किसी विषय पर काश्मीर व जम्मू की रियासत पर अपना अधिकार न कर सकेगी। परन्तु साथ ही संविधान में यह प्रबन्ध भी कर दिया गया है कि यदि काश्मीर रियासत की अपनी संविधान सभा भारत सरकार को कुछ और विषयों पर नियन्त्रण प्रदान करना चाहे तो उसके लिए राष्ट्रपति उचित व्यवस्था कर सकेंगे।

काश्मीर की समस्या अभी तक राष्ट्र-संघ के विचाराधीन है। उसके भारत में प्रवेश के सम्बन्ध में अभी तक कोई अन्तिम निश्चय नहीं हुआ है। इसलिए उस रियासत की विशेष परिस्थिति का विचार रखते हुए, संविधान में खास आयोजन किया गया है।

ट्रावनकोर रियासत—काश्मीर के अतिरिक्त, ट्रावनकोर रियासत के सम्बन्ध में भी संविधान की २९०वीं धारा में एक विशेष प्रबन्ध किया गया है। इस धारा में कहा गया है कि ट्रावनकोर और कोचीन संघ की सरकार को प्रति वर्ष "देवास्वम निधि" के नाम से ५१ लाख रुपया दिया जायगा। इस रकम को देने का निश्चय उस समय किया गया था जब ट्रावनकोर और कोचीन रियासतों का एक संघ बना था। इस रकम से ट्रावनकोर की रियासत उस राज मन्दिर का प्रबन्ध कर सकेगी जिसके देवता के नाम में कहा जाता है कि उसके राजा रियासत पर शासन करते हैं।

मध्य भारत संघ—इसी प्रकार मध्य भारत संघ के विषय में भी, संविधान में कहा गया है कि उस राज्य के मन्त्रिमण्डल में एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जायगी जिसका मुख्य काम वन प्रदेशों (Tribal Areas) के लोगों की सुविधा का ध्यान रखना होगा। मध्य भारत की रियासतों में पिछड़े हुए ऐसे इलाके हैं जहाँ की जनता अभी तक वर्तमान युग की सभ्यता के वातावरण से कोसों दूर है। इन्हीं लोगों की भलाई के लिए संविधान में विशेष आयोजन किया गया है।

मैसूर रियासत—अन्त में संविधान में कहा गया है कि मैसूर रियासत को छोड़

कर 'ख' सूची के और सभी राज्यों में एक भवनात्मक विधान मण्डल का निर्माण किया जायगा। मैसूर में इसके विपरीत दो 'भवन' होंगे।

आजकल सभी रियासती सङ्घों में आम चुनावों के पश्चात् विधान सभाएँ तथा मन्त्रिमण्डल कायम हो गये हैं। परन्तु इन सब सङ्घों की सरकार, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, आगामी १० वर्षों तक सङ्घ-सरकार के निरीक्षण तथा नियन्त्रण के अन्तर्गत कार्य करेंगी।

३. भाग ग (सी) श्रेणी के राज्यों की कार्यकारिणी का संगठन

सी श्रेणी के राज्यों में जैसा पहले बतलाया जा चुका है, आजकल १० राज्य हैं। इन में तीन राज्य (*दिल्ली, अजमेर, कुर्ग*) वह हैं जो संविधान लागू होने से पहले चीफ कमिश्नर के प्रांत कहलाते थे। शेष राज्य कुछ रियासतों को केन्द्रीय सरकार के अधीन सङ्गठित करके बनाये गये हैं। इस श्रेणी के राज्यों की अपनी विशेष समस्याएँ हैं। *कच्छ, त्रिपुरा तथा मनीपुर* भारत के पश्चिम तथा पूर्व में पाकिस्तान राज्य की सीमाओं से मिलते हैं। सैन्य संरक्षण की दृष्टि से इन राज्यों का विशेष महत्त्व है। *अजमेर, भोपाल तथा कुर्ग* ऐसे छोटे छोटे राज्य हैं जिनके सम्बन्ध में सङ्घ सरकार का विचार है कि इन्हें सम्बन्धित क्षेत्रों की जनता की राय मालूम करके पड़ोसी राज्य अर्थात् राजस्थान, मध्य भारत तथा मैसूर में मिला दिया जाय। *विन्ध्य प्रदेश तथा हिमाचल* प्रदेश राज्यों की आर्थिक उन्नति के लिए केन्द्रीय सरकार की विशेष सहायता की आवश्यकता है। सङ्घ सरकार का विचार है कि कुछ समय पश्चात् इन राज्यों को ए या बी श्रेणी का स्थान दे दिया जाय। वास्तव में विन्ध्य प्रदेश को संविधान के अन्तर्गत बी श्रेणी में ही रक्खा गया था, परन्तु बाद में, उस राज्य के मन्त्रियों के भ्रष्टाचार तथा अयोग्यता के कारण, उसे सी श्रेणी में ले लिया गया। सी श्रेणी के और राज्यों की अपेक्षा विन्ध्य प्रदेश तथा हिमाचल प्रदेश का शासन क्षेत्र बहुत बड़ा है। इसलिए जहाँ दूसरे इसी श्रेणी के राज्यों के अध्यक्ष चीफ कमिश्नर हैं, वहाँ इन राज्यों के अध्यक्ष को उप राज्यपाल या लैफ्टिनैंट गवर्नर का रुतबा दिया गया है। देहली को भारत की राजधानी होने के कारण सी श्रेणी के राज्यों म सम्मिलित किया गया है। *बिलासपुर* राज्य के सम्बन्ध में अभी यह निश्चित नहीं है कि भाखड़ा योजना के कार्यान्वित हो जाने के पश्चात् इस राज्य का कितना भाग पानी से ऊपर बचेगा। इसलिए इस छोटे से राज्य का भी पञ्जाब में विलीनीकरण कर देने के बजाय अलग अस्तित्व कायम रक्खा गया है।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो गया होगा कि सी श्रेणी के राज्य भानमती का पिटारा हैं। उन सब की अपनी अलग अलग समस्याएँ हैं। उन सब में केवल एक ही सामान्य गुण है और वह यह कि उन सब पर केन्द्रीय सरकार का प्रभुत्व है।

संविधान के अन्तर्गत सी राज्यों का शासन प्रबन्ध

संविधान में सी श्रेणी के राज्यों की शासन व्यवस्था के लिए कोई विस्तृत आयोजन नहीं किया गया था। उसमें केवल कहा गया था कि इन राज्यों का प्रबन्ध राष्ट्रपति स्वयं चीफ कमिश्नर या उपराज्यपाल या किसी पड़ोसी राज्य की सहायता से करेंगे। प्रतिनिधि संस्थाओं के सम्बन्ध में कहा गया था कि संसद् को अधिकार होगा कि वह इन राज्यों के लिए विशेष कानून पास करके उनमें विधान मंडल या लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल या परामर्शदाताओं की व्यवस्था कर दे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सी श्रेणी के राज्यों की जनता इस बात के लिए प्रयत्नशील थी कि भारत के दूसरे प्रान्तों की भाँति उसे भी अपने क्षेत्र में चुने हुए प्रतिनिधि तथा लोकप्रिय मन्त्रियों को निर्वाचित करने का अधिकार प्राप्त हो। इस आन्दोलन के सबसे बड़े नेता दिल्ली के स्वर्गीय नागरिक ला० देशबन्धु गुप्ता थे। उनका कहना था कि सी राज्यों की जनता के लिए स्वतन्त्रता का उस समय तक कोई भी मूल्य नहीं जब तक दूसरे राज्यों की भाँति उसे भी प्रजातन्त्रीय अधिकार प्राप्त नहीं हों। यह उन्हीं के सतत् तथा अथक परिश्रम का फल था कि सन् १९५२ के सितम्बर मास में भारतीय संसद् द्वारा सी श्रेणी के राज्यों के लिए एक विशद विधेयक पास कर दिया गया।

सन् १९५२ का सी श्रेणी के राज्यों के लिए कानून

इस विधेयक में ६ सी श्रेणी के राज्यों अर्थात् दिल्ली, अजमेर, कुर्ग, भोपाल, हिमाचल प्रदेश एवं विन्ध्य प्रदेश के लिए एक निर्वाचित विधान सभा तथा लोकप्रिय मन्त्रि मंडल के संगठन की व्यवस्था की गई है। शेष राज्यों के लिए राष्ट्रपति द्वारा एक परामर्शदाता समिति (Council of Advisers) नियुक्त की जायगी। इस समिति के सदस्य चुनाव द्वारा नहीं, वरन् राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायेंगे। रक्षा के दृष्टिकोण से इन राज्यों का विशेष महत्त्व है, इसलिए दलबन्दी के दोषों से दूर रखने के लिए इन्हें सीधा केंद्रीय सरकार के उच्च सरकारी अफसरों के अधीन रखा गया है। शेष राज्यों में वयस्क मताधिकार के आधार पर चुनी गई विधान सभाएँ होंगी। उनमें मन्त्रिमण्डल का संगठन भी उसी प्रकार किया जायगा जैसे वह ए और बी श्रेणी के राज्यों में किया जाता है। केवल निम्न विषयों में सी श्रेणी के राज्यों की कार्यकारिणी के अधिकार ए एवं बी श्रेणी के राज्यों से भिन्न होंगे :—

(१) सर्व प्रथम विधेयक में कहा गया है कि मन्त्री-परिषद् की बैठकों में चीफ कमिश्नर सभापति का आसन ग्रहण करेगा। उसकी अनुपस्थिति में ही मुख्य मन्त्री को अधिकार होगा कि समिति का सभापतित्व कर सके। परन्तु इस सम्बन्ध में इस प्रकार का रिवाज बनता जा रहा है कि मुख्य मन्त्री ही मन्त्रिमण्डल की बैठकों का सभापतित्व करता है।

(२) दूसरे, किसी विषय पर, मन्त्रिमंडल तथा चीफ कमिश्नर या उपराज्यपाल में मतभेद होने की दशा में, विवाद राष्ट्रपति के निर्णय के लिए भेज दिया जायगा और उनका फैसला ही अंतिम माना जायगा। दूसरे राज्यों में राज्यपाल अथवा राज्यप्रमुख को इस बात का अधिकार नहीं होता कि वह मन्त्रिमंडल के निर्णयों में हस्तक्षेप कर सकें।

(३) तीसरे, चीफ कमिश्नर तथा उपराज्यपाल को इस बात का अधिकार भी दिया गया है कि यदि किसी विशेष परिस्थिति में वह आवश्यक समझें तो मन्त्रिमण्डल की सहमति के बिना ही कोई काम कर सकेंगे। ऐसा करने के पश्चात् वह बाद के संघ सरकार की स्वीकृति प्राप्त कर सकते हैं।

(४) दिल्ली राज्य के लिए विधेयक में और कड़ी शर्तें रक्खी गई हैं। कहा गया है कि विधान सभा को पुलिस, शांति और सुरक्षा, अदालत तथा नगरपालिका सम्बन्धी कोई भी कानून बनाने का अधिकार नहीं होगा। यह विषय संघ सरकार के अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत रहेंगे। आगे चल कर विधेयक में यह भी कहा गया है कि नई दिल्ली के सम्बन्ध में मन्त्रिमंडल कोई भी निर्णय उस समय तक नहीं कर सकेगा जब तक चीफ कमिश्नर की स्वीकृति प्राप्त न हो जाय।

भारत की राजधानी होने के कारण दिल्ली के सम्बन्ध में इस प्रकार की कड़ी शर्तें रक्खी गई हैं। दूसरे देशों में संघ सरकार का स्थान सीधा केंद्र द्वारा ही शासित किया जाता है। इस दृष्टि से भारत सरकार को दिल्ली के नागरिकों को प्रजातन्त्रीय अधिकार देना एक अत्यन्त उदार दृष्टिकोण का परिचायक है।

आलोचना—सी श्रेणी के राज्यों की व्यवस्था बहुत से आलोचकों की लेखनी का कड़ा शिकार बनी है। उनका कहना है कि छोटे-छोटे राज्यों के लिए विधान सभा तथा लोकप्रिय मन्त्रिमंडलों का निर्माण श्वेत हाथी बाँधने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इन राज्यों की आय इतनी नहीं कि वह प्रजातन्त्र राज्यों के भारी व्यय को उठा सकें। आलोचकों का कहना है कि कुछ राजनीतिक नेताओं के प्रभाव में आकर तथा उन्हें उच्च पदों पर बैठने का अवसर प्रदान करने के लिए ही इस कानून को पास किया गया है। वह पूछते हैं कि यदि संघ सरकार का अन्तिम उद्देश्य इन राज्यों को पड़ोस के बड़े राज्यों में विलीन करना ही है तो उनमें विधान सभाओं इत्यादि का संगठन क्यों किया गया। एक बार इस प्रकार की संस्थाओं के बन जाने के पश्चात् उनके सदस्यों का हित इसी बात में रह जाता है कि वह कायम रहीं आयें जिससे उनके हित सुरक्षित रहें। अधिकारों की दृष्टि से भी इन राज्यों में दोहरा शासन अधिक सफलतापूर्वक नहीं चल सकेगा। इसलिए कुछ लोगों का अनुमान है कि इस विधेयक में संघ सरकार को शीघ्र ही बहुत से संशोधन करने पड़ेंगे।

४. भाग घ (अंडमान निकोबार) के राज्य का शासन प्रबन्ध

इस राज्य के शासन प्रबन्ध के लिए संविधान की २४३वीं धारा में व्यवस्था की गई है। इस धारा में कहा गया है कि अंडमान निकोबार या किसी और ऐसे प्रान्त का शासन जो बाद में भारत में सम्मिलित हो जाय, राष्ट्रपति द्वारा किया जायगा। इस काम में सहायता प्राप्त करने के लिए वह एक चीफ कमिश्नर या किसी और ऐसे अधिकारी की नियुक्ति कर सकते हैं जिसे वह उचित समझें। इस क्षेत्र के लिए कानून बनाने का अधिकार भी राष्ट्रपति को ही दिया गया है। संघीय कानून या वह कानून जिनके द्वारा इस क्षेत्र का, संविधान लागू होने से पहले शासन चलाया जाता था, केवल उस दशा में लागू समझे जायेंगे जब राष्ट्रपति उनकी स्वीकृति दे दें।

५. अनुसूचित क्षेत्र (Scheduled Areas) तथा अनुसूचित जन-जातियों (Scheduled tribes) का शासन प्रबन्ध

हमारे देश में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ सभ्यता का आधुनिक वातावरण अभी तक अपना प्रभाव नहीं फैला पाया है। इन क्षेत्रों की जनता अभी तक प्राचीन काल की आखेट अथवा पशुपालन अवस्था में रह कर ही अपने जीवन का निर्वाह करती है। १९३५ के विधान के अन्तर्गत हमारे देश के अनेक भाग अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर दिये गये थे और उनका शासन प्रबन्ध सीधे गवर्नरों द्वारा किया जाता था। मन्त्रियों को इन क्षेत्रों के शासन पर किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था। नये संविधान के अन्तर्गत ऐसे क्षेत्रों की संख्या बहुत कम कर दी गई है और केवल वही क्षेत्र इस व्यवस्था के अन्तर्गत सम्मिलित किये गये हैं जहाँ की जनता अपने लिए कुछ विशेष संरक्षण चाहती थी। ऐसे क्षेत्र अधिकतर आसाम प्रान्त में हैं।

संविधान की पाँचवीं अनुसूची (Fifth schedule) में इन क्षेत्रों की व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें कहा गया है कि इन क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध राष्ट्रपति, राज्यपाल अथवा राजप्रमुखों के द्वारा चलायेंगे, जिन्हें अपने कार्य की वार्षिक रिपोर्ट संघ सरकार को देनी होगी। इन क्षेत्रों में कोई भी संघीय अथवा राज्य की सरकार का कानून उस समय तक लागू न किया जायगा जब तक राष्ट्रपति के आदेशानुसार राजप्रमुख अथवा राज्यपाल उसकी स्वीकृति न दे दें। इन क्षेत्रों की स्थानीय जनता को शासन प्रबन्ध का अनुभव प्रदान करने के लिए संविधान में कहा गया है कि इन क्षेत्रों में आदिम जाति मन्त्रणा परिषद् (Tribes Advisory Council) स्थापित की जायगी जिसमें अधिकतर सदस्य इन जातियों के अपने चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। ऐसे क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध इन्हीं मन्त्रणा परिषदों की सलाह से किया जायगा।

राज्यों के वर्गीकरण का कड़ा विरोध

संविधान के अन्तर्गत विभिन्न राज्यों का जिस प्रकार ए, बी और सी श्रेणी में वर्गीकरण किया गया है, उसकी कड़ी आलोचना की गई है। बी और सी श्रेणी के राज्यों में रहने वाली जनता का कहना है कि उसके साथ घोर पक्षपात तथा अन्याय हुआ है। प्रजातन्त्र राज्य में सब प्रान्तों का स्थान समकालीन तथा उनके अधिकार एक से होने चाहिये। किसी विशेष राज्य की जनता को अधिक तथा दूसरों को कम अधिकार देना प्रजातन्त्र शासन की नींव पर कुठाराघात करना है। इससे कुछ क्षेत्रों में रहने वाले नागरिकों के मन में हीनता तथा दूसरों में श्रेष्ठता का भाव उत्पन्न हो जाता है जो अत्यन्त निंदनीय है।

हमारे नेताओं ने आश्वासन दिलाया है कि बहुत शीघ्र इस प्रकार के वर्गीकरण का अन्त कर दिया जायगा। कुछ पिछड़े हुए प्रदेशों की जनता को प्रजातन्त्र शासन का अनुभव प्रदान करने के लिए ही उसने कुछ समय के लिए इस प्रकार का अस्थायी प्रबंध किया है। डा० काटजू ने मई सन् १९५२ में दिल्ली तथा अजमेर की विधान सभाओं का उद्घाटन करते समय इसी प्रकार का आश्वासन दिया था। आशा है, कुछ समय पश्चात् संविधान के संशोधन द्वारा इस दशा में उचित परिवर्तन कर दिया जायगा।

योग्यता प्रश्न

१. नये संविधान के अनुसार राज्यपाल की शक्तियों का वर्णन कीजिये। (यू० पी०, १९५१)

२. राज्यों में कार्यपालिका का स्वरूप क्या होगा? मन्त्रियों और राज्यपाल के बीच पारस्परिक सम्बन्ध का विवेचन कीजिये।

३. नये संविधान में राज्यों का ए, बी और सी श्रेणियों में विभाजन क्यों किया गया है? इन तीनों के शासन प्रबन्ध में मुख्य रूप से क्या क्या भिन्नताएँ होंगी?

४. अल्पसंख्यक तथा जन-जातियों के अधिकारों की रक्षा के लिए राज्यों में क्या विशेष प्रबन्ध किया गया है?

५. 'नये विधान में बी और सी राज्यों की जनता के साथ घोर अन्याय किया गया है।' यह कथन कहाँ तक ठीक है?

६. नये संविधान के अनुसार राज्यपाल के क्या कृत्य हैं? (यू० पी०, १९५३)

अध्याय ६

राज्य विधान मंडल (State Legislative)

संघ संविधान की भाँति राज्यों में भी विधान मंडलों के संगठन की व्यवस्था की गई है। संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य में एक विधान मंडल होगा जिसमें राज्यपाल या प्रमुख और कुछ राज्यों में एक तथा कुछ में दो भवन होंगे। जिन राज्यों में एक भवन है उसका नाम विधान सभा (Legislative Assembly) तथा जिनमें दो भवन हैं उनका नाम विधान सभा (Legislative Assembly) तथा विधान परिषद् (Legislative Council) होगा।

दो भवन—संविधान में कहा गया है कि बिहार, बम्बई, मद्रास, पंजाब, उत्तर प्रदेश, पश्चिमी बङ्गाल तथा मैसूर के विधान-मण्डल के अन्तर्गत दो भवन होंगे। शेष राज्यों में केवल एक ही भवन होगा।

संविधान सभा के बहुत से सदस्य राज्यों के अन्तर्गत द्विभवन प्रणाली के विरुद्ध थे। वे कहते थे कि उच्च भवन से कोई विशेष लाभ न होगा और व्यर्थ में राज्यों की सरकारों का खर्चा बढ़ जायगा परन्तु फिर भी कुछ प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने यह बात नहीं मानी। कारण, वह समझते थे कि वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत, नये चुनावों में ऐसे व्यक्ति, विधान सभा में चुने जा सकते हैं, जिन्हें शासन का कोई अनुभव न हो और जो लम्बी चौड़ी बातें बना कर मतदाताओं को बहका कर, उनसे राय प्राप्त कर लें। इसलिए उन्होंने दो भवनों की माँग की, जिससे उच्च भवन में ऐसे लोगों को प्रतिनिधित्व दिया जा सके, जो अपनी शिक्षा, योग्यता तथा अनुभव के कारण कानून बनाने के कार्य में अधिक योग्यता रखते हों तथा जो निम्न भवन के कार्य को शासन की कुशलता की दृष्टि से देखभाल कर सकें।

फिर भी, उन लोगों की बात मानकर जो दूसरे भवन की प्रथा को अप्रजातन्त्रवादी समझते हैं, संविधान में कहा गया है कि यदि कोई राज्य बाद में उच्च भवन की प्रथा पसन्द नहीं करे तो उस राज्य का विधान सभा को यह अधिकार होगा कि वह दो-तिहाई बहुमत से उच्च भवन तोड़ देने का प्रस्ताव पास कर दे। ऐसा प्रस्ताव पास होने पर

...यह अधिकार दिया गया है कि वह ऐसे राज्य में उच्च भवन को तोड़ दे। ...ों में जहाँ अभी तक उच्च भवन का प्रबन्ध नहीं किया गया है, वहाँ पर भी ...धिकार दिया गया है कि यदि ऐसा राज्य चाहे तो वह अपनी विधान सभा के ...ई बहुमत से ऐसा प्रस्ताव पास करा कर संसद् के पास भेज सकता है। यह ...आने पर संसद् उस प्रान्त के लिए दूसरे भवन की व्यवस्था कर देगी।

विधान सभा (Legislative Assembly)

...द्र शासन की भाँति राज्यों में भी निम्न भवन अर्थात् विधान सभा की सत्ता ... के कार्य में सर्वोपरि रक्खी गई है।

...सदस्य संख्या—संविधान में विभिन्न राज्यों की विधान सभाओं की सदस्य संख्या ...त नहीं की गई है। संख्या का निश्चय करने के लिए एक सिद्धान्त का उल्लेख ... गया है। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत राज्यों में अधिक से अधिक ७५००० जन-... के पीछे एक व्यक्ति विधान सभा में चुना जा सकता है, परन्तु आसाम प्रान्त में ... कबाइली क्षेत्रों की जनसंख्या बहुत कम है, यह नियम लागू नहीं होता। सन् ...२ के आम निर्वाचन के लिए संसद् द्वारा पास एक विशेष विधेयक के अधीन विभिन्न ... में विधान सभा के सदस्यों की संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है :—

नाम राज्य	सदस्यों की कुल संख्या	हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान की संख्या	कबाइली जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की संख्या
...श्रेणी के राज्य			
आसाम	१०८	५	६
बिहार	३३०	४४	३५
बम्बई	३१५	२७	२६
मध्य प्रदेश	२३२	७२	२७
मद्रास	३७५	६२	४
उड़ीसा	१४०	२१	२८
पञ्जाब	१२६	२१	—
उत्तर प्रदेश	४३०	८३	—
पश्चिमी बङ्गाल	२३८	४०	१२
कुल जोड़	२२९४	३३५	१४४

बी श्रेणी के राज्य–			
हैदराबाद	१७५	३१	२
मध्य भारत	९९	१७	१२
मैसूर	९९	१९	—
पैप्सू	६०	१०	—
राजस्थान	१६०	१६	५
सौराष्ट्र	६०	४	१
ट्रावनकोर-कोचीन	१०८	११	—
कुल जोड़	७६२	१०८	२०
सी श्रेणी के राज्य			
अजमेर	३०	६	—
भोपाल	३०	५	२
कुर्ग	२४	३	३
दिल्ली	४८	६	—
हिमाचल प्रदेश	३६	८	—
विंध्य प्रदेश	६०	६	६
कुल जोड़	२२८	३४	११
शेष सी श्रेणी के राज्य जिनमें निर्वाचक कौंसिल (Electoral Colleges) होंगे:			
कच्छ	३०	—	—
मनीपुर	३०	—	—
त्रिपुरा	३०	—	—
कुल जोड़	९०	—	—
पूरा जोड़	३३७३	४७७	१७५

आम चुनाव

संविधान के अन्तर्गत, पिछले चुनावों में जो फरवरी सन् १९५२ में पूरे हुए, प्रत्येक ऐसे व्यक्ति को राय देने का अधिकार प्राप्त था जिसकी आयु १ मार्च सन् १९५० को २१ वर्ष थी, तथा जो उन्मत्त, दिवालिया या किसी भयकर अपराध में सजा पाया हुआ व्यक्ति न था। वयस्क मताधिकार के अन्तर्गत जो चुनाव हुए उनमें लगभग ५५ प्रतिशत मतदाताओं ने अपनी राय डाली। चुनाव अत्यन्त शांति के साथ सम्पन्न हो गये। अनेक राजनीतिक दलों ने इन चुनावों में भाग लिया, परन्तु कांग्रेस दल के ही अधिकतर सदस्य इनमें सफल हुए। अलग अलग राज्यों में चुनाव के फलस्वरूप विभिन्न दलों को जितने स्थान मिले उनकी स्थिति नीचे दी जाती है :

नोट :—उपरोक्त सदस्य संख्या में वह सदस्य सम्मिलित नहीं होंगे जो संविधान की ३३३वीं धारा के अधीन राज्यपालों द्वारा ऐंग्लो इण्डियन जाति के लोगों को प्रतिनिधित्व प्रदान करने के लिए मनोनीत कर दिये जायेंगे।

आम चुनावों का परिणाम

नाम राज्य	कांग्रेस	समाजवादी	के० एम० पी० पी०	जनसङ्घ	हिंदू महा सभा	कम्यूनिस्ट	शैडूल्ड कास्ट फिडरेशन	दूसरे दल	स्वतंत्र	कुल जोड़
१. आसाम	७६	४	२	—	—	१	—	६	१७	१०८
२. बिहार	२४०	२३	१	—	—	—	—	५३	१३	३३०
३. बम्बई	२६६	६	—	—	—	—	१	१८	१८	३१५
४. मध्य प्रदेश	१९४	२	८	—	—	—	—	५	२३	२३२
५. मद्रास	१५२	१३	३५	—	—	६२	२	४६	६२	३७५
६. उड़ीसा	६७	१०	—	—	—	७	—	३३	२१	१४०
७. पञ्जाब	९७	१	—	—	—	४	—	२५	४	१२६
८. उत्तर प्रदेश	३९०	१८	१	२	१	—	—	०	१५	४३०
९. पश्चिमी बंगाल	१५०	—	१५	६	४	२८	—	१६	१६	२३८
१०. हैदराबाद	९३	११	—	—	—	४२	५	१०	१४	१७५
११. मध्य भारत	७५	४	—	४	११	—	—	२	१	९९
१२. मैसूर	७४	३	८	—	—	१	२	—	११	९९
१३. पेप्सू	२६	—	१	२	—	२	१	२०	८	६०
१४. राजस्थान	८२	१	१	८	२	—	—	३२	३५	१६०
१५. सौराष्ट्र	५५	२	—	—	—	—	—	१	२	६०
१६. ट्रावनकोर-कोचीन	४३	११	—	—	—	३८	—	१६	—	१०८

१७. अजमेर	२०	—	—	३	—	—	—	३	४	३०
१८. भोपाल	२५	—	—	—	१	—	—	—	४	३०
१९. कुर्ग	१५	—	—	—	—	—	—	—	९	२४
२०. देहली	३९	२	—	३	१	—	—	—	३	४८
२१. हिमाचल प्रदेश	२४	—	३	—	—	—	१	—	८	३६
२२. विंध्य प्रदेश	४१	१०	३	२	—	—	—	२	२	६०
जोड़	२२४७	१२४	७७	३३	२०	१८५	१२	२६३	२६२	१२८३
निर्वाचन कौंसिल										
२३. कच्छ	२८	—	—	—	—	—	—	—	२	३०
२४. मनीपुर	१०	१	—	—	—	२	—	१६	१	३०
२५. त्रिपुरा	९	—	—	—	—	१२	—	३	६	३०
कुल जोड़	२२९४	१२५	७७	३३	२०	१९९	१२	३१२	३०१	१३७३

नोट :—बिलासपुर राज्य में किसी प्रकार के चुनावों की व्यवस्था नहीं की गई है। इसके अतिरिक्त जम्मू काश्मीर में भी इस संविधान के अन्तर्गत चुनाव नहीं किये गये।

आम चुनावों के पश्चात् विधान सभा में विभिन्न दलों की स्थिति

पिछले आम चुनावों के फलस्वरूप उत्तर प्रदेश में कांग्रेस दल को भारी सफलता मिली। ४३० सदस्यों की विधान सभा में कांग्रेस दल के ३६० सदस्य निर्वाचित हुए। समाजवादी दल को केवल १८ सीटें प्राप्त हुईं। परन्तु पिछले डेढ़ वर्षों में, जुलाई सन् १६५३ तक, राज्य में १२ उपचुनाव हुए हैं। उनमें कांग्रेस दल को अधिक सफलता नहीं मिल सकी। १२ उपचुनावों में से ८ उपचुनावों में कांग्रेस दल की भारी हार हुई। केवल ४ सीटों पर कांग्रेस को विजय प्राप्त हुई। शेष ७ सीट समाजवादी दल को तथा १ सीट स्वतन्त्र उम्मीदवार को मिली। जुलाई सन् १६५३ में, विधान सभा के अंतर्गत, कांग्रेस दल के सदस्यों की संख्या ३८२ थी, समाजवादी दल के सदस्यों की संख्या २५ थी तथा संयुक्त दल के सदस्यों की संख्या ११ थी। समाजवादी दल के नेता श्री राजनारायण हैं।

नई जनगणना के पश्चात् राज्यों में विधान सभाओं का संगठन

संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक जनगणना के पश्चात् केन्द्र तथा राज्यों की विधान सभाओं का पुनर्संगठन किया जायगा, जिससे जनसंख्या के आधार पर विभिन्न क्षेत्रों की जनता को विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो सके। नई जनगणना सन् १६५१ में पूरी हो गई इसलिए सन् १६५७ में होने वाले आम चुनावों के लिए विभिन्न राज्यों में विधान सभाओं की सदस्य संख्या में निम्न परिवर्तन किये गये हैं :—

सन् १६५७ के आम चुनावों के लिए राज्यीय विधान सभाओं का संगठन

नाम राज्य	सदस्यों की कुल संख्या	हरिजनों के लिए सुरक्षित स्थान	जन जातियों के लिए सुरक्षित स्थान
~~ए-श्रेणी-के-राज्य~~			
१. आन्ध्र	१६६	२६	५
२ आसाम	१०८	५	६
३. बिहार	३३०	४१	३३
४. बम्बई	२६४	२५	२७
५. मध्य प्रदेश	२३२	३२	२७
६. मद्रास	२४५	३६	१
७. उड़ीसा	१४०	२५	२८
८. पंजाब	११६	२२	—
६. उत्तर प्रदेश	४३०	७८	—
१०. पश्चिमी बंगाल	२३८	४५	११

बी श्रेणी के राज्य			
१. हैदराबाद	१७५		४
२. मध्य भारत	९९	१६	१३
३. मैसूर	११७	२१	—
४. पैप्सू	६०	१२	—
५. राजस्थान	१६८	१८	३
६. सौराष्ट्र	६०		१
७. ट्रावनकोर-कोचीन	११७	११	—

सी श्रेणी के राज्यों में कोई परिवर्तन नहीं होगा। उपरोक्त विभाजन से स्पष्ट है कि मैसूर, बम्बई, मद्रास, पंजाब, राजस्थान तथा ट्रावनकोर कोचीन राज्यों की विधान सभाओं पर विशेष प्रभाव पड़ेगा। सौराष्ट्र तथा हैदराबाद राज्यों के लिए अभी हरिजनों की सीटों का निश्चय नहीं किया गया है। इसका निर्णय बाद में किया जायगा। आसाम राज्य में १०८ सीटों में से १८ सीट खासी, गारो, लुशाई, नागा तथा उत्तरी कछार क्षेत्रों की जनता के लिए सुरक्षित रक्खी जायगी।

पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त

नव संविधान में मुसलमानों या अन्य अल्पसंख्यक जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की प्रथा को तोड़ दिया गया है। आरम्भ के केवल १० वर्षों के लिए हरिजन तथा कबाइली जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था कायम रक्खी गई है। पृथक् निर्वाचन प्रणाली की प्रथा अत्यन्त दोषपूर्ण थी। सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था से भी जातियाँ स्वयं ऊपर उठने का प्रयत्न नहीं करती थीं। वह परोपजीवी बन जाती थीं। कुछ लोगों को डर था कि पृथक् निर्वाचन प्रणाली के अन्त से मुसलमानों या ईसाई इत्यादि जातियों के अधिकार सुरक्षित न रह सकेंगे। परन्तु यह डर एकदम निर्मूल सिद्ध हुआ। नव संविधान के अन्तर्गत कितने ही मुसलमान, पारसी तथा ईसाई, हिंदू इलाकों से निर्वाचित हुए हैं। उत्तर प्रदेश में ४३० सदस्यों में से मुसलमानों की संख्या ४३ है। इसके अतिरिक्त कई ईसाई भी विधान सभा के सदस्य चुन लिये गये हैं। ये सब बातें सिद्ध करती हैं कि नव भारत में शासन का आधार धर्म नहीं वरन् लौकिकता है।

अवधि—विधान सभा की कार्य-अवधि ५ वर्ष निश्चित की गई है। इसके पश्चात् वह स्वयं टूट जायगी और नयी सभा के लिए चुनाव किये जायेंगे। परन्तु संकटकालीन अवस्था में संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक कानून पास करके एक समय में उसकी अवधि १ वर्ष के लिए बढ़ा सकती है। परन्तु किसी भी दशा में यह अवधि संकटकालीन अवस्था की घोषणा समाप्त होने के ६ महीने के पश्चात् से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

योग्यता—प्रत्येक वह व्यक्ति जिसकी आयु २५ वर्ष से अधिक हो अथवा जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, विधान सभा की सदस्यता के लिए चुना जा सकता है।

विधान परिषद् (Legislative Council)

सदस्य संख्या—संविधान में कहा गया है कि विधान परिषद् के सदस्यों की कुल संख्या विधान सभा के सदस्यों की संख्या के चौथे भाग से अधिक अथवा ४० से कम नहीं होगी। इन सदस्यों में एक तिहाई सदस्य स्थानीय संस्थाओं के सदस्य, जैसे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्यूनिसिपल बोर्ड इत्यादि द्वारा, एक तिहाई सदस्य विधान सभा के सदस्यों द्वारा, १/१२ सदस्य उन लोगों द्वारा जो उस समय राज्य के अन्तर्गत किसी भी यूनिवर्सिटी के ३ वर्ष से अधिक के ग्रेजुएट हैं, १/१२ सदस्य ऐसे लोगों द्वारा जो कम से कम पिछले तीन वर्षों से सेकेंडरी या उससे ऊँची शिक्षा संस्थाओं में अध्यापन का कार्य कर रहे हों, चुने जायँगे। शेष सदस्य राज्यपाल द्वारा ऐसे व्यक्तियों में से मनोनीत किये जायँगे जो साहित्य, विज्ञान, कला, समाज सेवा तथा सहकारी विभाग (Co-operative Dept.) के क्षेत्र में भाग लेने के कारण, समाज में ऊँचा स्थान पा चुके हों। विधान परिषद् के सदस्यों का चुनाव आयरलैंड के संविधान के आधार पर निश्चित किया गया है। इस प्रकार परिषद् में वह सभी व्यक्ति भाग ले सकेंगे जो राज्य के सबसे बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति कहे जा सकते हैं।

जिन राज्यों में द्विभवन प्रणाली का प्रयोग किया गया है, संविधान में परिषद् के सदस्यों की संख्या इस प्रकार निश्चित की गई है :—

बिहार	७२
बम्बई	७२
मद्रास	७२
पञ्जाब	४०
उत्तर प्रदेश	७२
पश्चिमी बङ्गाल	५१
मैसूर	४०

अवधि—विधान परिषद् एक स्थायी संस्था बनाई गई है, परन्तु उसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दूसरे वर्ष चुने जायँगे। विधान सभा की भाँति, परिषद् के एक साथ चुनाव नहीं होंगे।

योग्यता—विधान परिषद् की सदस्यता के लिए आवश्यक है कि उम्मीदवार भारत का नागरिक हो, उसकी आयु कम से कम ३५ वर्ष हो तथा उसमें वह सभी योग्यताएँ हों जो संसद् विशेष कानून के द्वारा निश्चित कर दे।

दोनों भवनों के सम्बन्ध में समान बातें

सदस्यता—कोई व्यक्ति एक समय में एक से अधिक राज्य अथवा संघीय भवन का सदस्य नहीं हो सकता। यदि वह ऐसी दो या दो से अधिक विधान सभाओं का सदस्य चुन लिया जाय तो उसे एक को छोड़कर सभी स्थानों से त्यागपत्र दे देना पड़ता है।

स्थान त्याग—विधान सभा तथा परिषद् के सदस्यों को इस बात का अधिकार है कि वह अपने पद से त्यागपत्र दे दें। यदि कोई सदस्य ६० दिन से अधिक तक 'सभा' या 'परिषद्' के अधिवेशनों में बिना उचित कारण दिखाये, भाग न लेंगे तो उन्हें भी अपने पद से अलग कर दिया जायगा। इसके अतिरिक्त यदि किसी सदस्य में वह योग्यता नहीं रहेगी जो 'सभा' अथवा 'परिषद्' की सदस्यता के लिए आवश्यक है तो उसे भी अपने पद से त्यागपत्र देना पड़ेगा। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित होने के पश्चात् दिवालिया या पागल हो जाय या कोई सरकारी नौकरी कर ले या किसी दूसरे देश की नागरिकता ग्रहण कर ले तो उसकी सदस्यता का अन्त हो जायगा। यदि कोई ऐसा व्यक्ति विधान सभा या परिषद् की बैठकों में भाग लेगा जिसका वह सदस्य नहीं है या सदस्यता से अलग कर दिया गया है तो उस पर ऐसा करने के लिए ५०० रुपया प्रति दिन के हिसाब से जुर्माना किया जा सकेगा।

अधिकार—विधान सभा तथा परिषद् के सदस्यों के अधिकार वही हैं जो संसद् के सदस्यों के हैं।

गणपूर्ति—(Quorum)—विधान मण्डल के अन्तर्गत दोनों भवनों के कार्य आरम्भ होने के लिए कम से कम १/१० सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक रक्खी गई है।

भाषा—संविधान में कहा गया है कि विधान सभा तथा परिषद् का कार्य हिन्दी, अँग्रेजी या उस राज्य की अपनी भाषा में किया जायगा। परन्तु, सभा के अध्यक्ष को इस बात का अधिकार होगा कि यदि वह समझे कि किसी सदस्य को इन तीनों में से कोई भी भाषा नहीं आती तो वह उसको अपनी मातृ भाषा में विचार प्रकट करने की अनुमति दे दे। १५ वर्ष के पश्चात् केवल हिंदी ही अँग्रेजी के स्थान पर प्रयोग में लाई जायगी। परन्तु इसके पश्चात् भी राज्य इस बात के लिए स्वतन्त्र होंगे कि वह अपने आन्तरिक शासन का कार्य अपनी ही राज्य भाषा में चला सकें यद्यपि संघ शासन के साथ सम्पर्क बनाये रखने के लिए, उन्हें हिंदी का ही प्रयोग करना पड़ेगा।

पदाधिकारी—संविधान में विधान सभा के लिए एक अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष और विधान परिषद् के लिए एक सभापति तथा उप सभापति की व्यवस्था की गई है। इन अधिकारियों का काम 'सभा' अथवा 'परिषद्' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण

करना, उनमें अनुशासन तथा नियन्त्रण कायम रखना, उनका कार्यक्रम बनाना, सदस्यों के अधिकारों की रक्षा करना तथा सभा की बैठकों में कार्यवाही को सुचारु रूप से चलाना होगा। उप-सभापति तथा उपाध्यक्ष केवल उस दशा में काम कर सकेंगे जब अध्यक्ष अथवा सभापति किसी कारण से कार्य न कर सकें। 'सभा' तथा 'परिषद्' की बैठकों में सभापति का आसन ग्रहण करने वाला व्यक्ति केवल ऐसी ही दशा में अपने स्वतन्त्र मत का उपयोग कर सकेगा जब किसी विषय पर पक्ष तथा विपक्ष में बराबर मत हों। इसका अर्थ यह हुआ कि साधारणतया वह अपने मत का प्रयोग नहीं करेगा। उसे केवल एक निर्णायक मत (Casting Vote) देने का अधिकार होगा।

वेतन—'सभा' तथा 'परिषद्' के अध्यक्ष व सभापति अथवा उपाध्यक्ष व उप-सभापति को उतना वेतन मिलेगा जितना विधान सभा द्वारा स्वीकृत कर दिया जाय।

अधिवेशन—संविधान में कहा गया है कि विधान सभा तथा परिषद् की एक वर्ष में कम से कम दो बैठकें अवश्य बुलाई जायँगी। साथ ही एक अधिवेशन के अन्त तथा दूसरे अधिवेशन के प्रारम्भ में ६ महीने से अधिक का अन्तर नहीं होगा।

राज्यपाल द्वारा उद्घाटन—नये वर्ष में अधिवेशन आरम्भ होने पर राज्यपाल या राजप्रमुख या उपराज्यपाल या चीफ कमिश्नर, विधान सभा, और जिन राज्यों में दो भवन हैं वहाँ दोनों सदनों के सदस्यों के सम्मुख, एक मिली जुली सभा में भाषण देंगे। इस भाषण में वह राज्य की नीति का उल्लेख करेंगे। सदस्यों को अधिकार होगा कि वह इस भाषण पर बहस कर सकें। राज्यपालों को यह भी अधिकार होगा कि इसके पश्चात् भी वह जब चाहें, एक सदन या दोनों सदनों में आकर सदस्यों के सम्मुख किसी आवश्यक विषय पर भाषण दे सकें। वह सदनों में लिख कर अपनी ओर से सन्देश भी भेज सकेंगे।

विधान मंडल के कार्य तथा अधिकार

(१) *विधायनी अधिकार* (Legislative Powers)—राज्य विधान मंडल उन सभी विषयों पर कानून बना सकेगा जो विधान के सातवें परिशिष्ट के अन्तर्गत राज्य सूची में दिये गये हैं। समवर्ती सूची (Concurrent) में दिये गये विषयों पर भी राज्य की सरकारें कानून बना सकेंगी परन्तु यदि संसद् द्वारा बनाये गये कानून और राज्य के कानूनों में कोई विरोध होगा तो संसद् द्वारा बनाये गये कानून ही प्रामाणिक माने जायँगे।

राज्य विधान मंडलों के उपरोक्त अधिकार पर निम्न दशाओं में कुछ विशेष रोक लगाई जा सकेंगी —

(१) संविधान की २४९वीं धारा में कहा गया है कि यदि किसी समय राज्य परिषद् दो तिहाई सदस्यों के बहुमत से यह प्रस्ताव पास कर दे कि किसी विशेष विषय

पर जो राज्य सूची में दिया गया है, राष्ट्रीय हित के दृष्टिकोण से यह आवश्यक है, कि संघ सरकार द्वारा कानून बनाया जाय तो संघ संसद् को उस विषय पर कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो जायगा।

(ii) संविधान की ३५२वीं धारा के अधीन राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि राष्ट्रीय संकट की घोषणा करके संघ सरकार को राजकीय विषयों पर कानून बनाने का अधिकार दे सकते हैं।

(iii) इसी प्रकार यदि किसी राज्य में संवैधानिक गति अवरोध उत्पन्न हो जाय और राज्यपाल यह घोषणा कर दें कि उस राज्य का शासन-प्रबन्ध संविधान की धाराओं के अनुकूल नहीं चलाया जा सकता, तो संघ सरकार को उस राज्य के सम्बन्ध में कानून पास करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

(v) संविधान की धारा नं० ३०४ में कहा गया है कि कुछ विषयों जैसे अन्तर्प्रान्तीय व्यापार, यातायात इत्यादि पर राज्य की विधान सभाओं को उस समय तक कानून पास करने का अधिकार नहीं होगा जब तक ऐसा करने के लिए वह राष्ट्रपति की पूर्व अनुमति प्राप्त न कर लें।

(vi) अन्त में कुछ विषय ऐसे हैं जैसे जमींदारी उन्मूलन जिनके सम्बन्ध में पास किये गये कानून उस समय तक लागू न किये जा सकेंगे जब तक राष्ट्रपति स्वीकृति न दे दें।

आलोचना—संघ सरकार के उपरोक्त अधिकारों की कुछ आलोचकों ने यह कह कर निन्दा की है कि इस प्रकार के विस्तृत अधिकार राज्यों की विधान सभाओं को नगरपालिका जैसी संस्था में बदल देते हैं, परन्तु हम इसी पुस्तक के पिछले एक अध्याय में देख चुके हैं कि इस प्रकार की आलोचना एकदम मिथ्या है। संघ सरकार अपने विशेष अधिकारों का प्रयोग केवल उस दशा में करती है जब समस्त राष्ट्र पर कोई घोर संकट उपस्थित हो। विदित है कि इस प्रकार की स्थिति में समस्त राष्ट्र का हित इसी बात में होगा कि केंद्रीय सरकार द्वारा कोई कठोर कदम उठाया जाय।

(२) *वित्तीय अधिकार* (Financial Powers)—राज्यों की विधान सभाओं को रुपये पैसे सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्राप्त है। बजट में कुछ रकमों को छोड़ कर सारा व्यय विधान सभा की स्वीकृति से ही किया जाता है। राज्य में कोई नया टैक्स लगाने या पहला कम करने के लिए भी उसी की स्वीकृति आवश्यक है। राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त नहीं कि वह विधान सभा द्वारा पास बजट को अस्वीकार कर सके। जिन राज्यों में दो सदन हैं वहाँ पर भी निम्न भवन को ही वित्त सम्बन्धी पूर्ण अधिकार प्रदान किये गये हैं।

(३) *शासनिक अधिकार* (Executive Powers)—नये संविधान के

अन्तर्गत समस्त देश में उत्तरदायित्वपूर्ण सरकारें स्थापित की गई हैं। राज्यों के मंत्रिमंडलों पर विधान सभाओं का पूर्ण अधिकार है। वह जब चाहे उन्हें अविश्वास का प्रस्ताव पास कर उनके पद से अलग कर सकती है। प्रश्नों, काम रोको प्रस्ताव, बजट में कटौती, इत्यादि के द्वारा भी वह मन्त्रिमंडल पर नियन्त्रण रख सकती है।

द्विभवन प्रणाली के अन्तर्गत राज्यों में कानून बनाने की विधि

जिन राज्यों में दो भवन हैं उनमें कानून पास करने की विधि निम्न प्रकार से होगी —

रुपये पैसे सम्बन्धी बिल—रुपये पैसे सम्बन्धी बिलों पर सब प्रजातन्त्र शासनों की भाँति निम्न भवन की सम्मति ही सर्वमान्य होगी। कोई ऐसा बिल 'विधान परिषद्' में पेश न हो सकेगा, परन्तु ऐसे बिल पर उसे अपनी सम्मति प्रकट करने का पूरा अधिकार होगा। विधान सभा द्वारा पास हो चुकने के पश्चात् ऐसा बिल परिषद् के सम्मुख उपस्थित किया जायगा। 'परिषद्' को अधिकार होगा कि वह १४ दिन के अन्दर अन्दर उस बिल के विषय में अपनी सम्मति लिखकर 'विधान सभा' को भेज दे। इस राय का मानने न मानने का अधिकार विधान सभा को पूर्णतया प्राप्त है। यदि वह विधान परिषद् की बात न माने या 'परिषद्' के सदस्य १४ दिन के अन्दर अपनी राय न भेजें तो ऐसा बिल सीधा राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जायगा जिन्हें उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे। यदि किसी बिल के सम्बन्ध में झगड़ा हो कि वह रुपये पैसे सम्बन्धी बिल (Money Bill) है अथवा नहीं तो विधान सभा के अध्यक्ष की राय इस सम्बन्ध में अंतिम होगी।

दूसरे बिल—दूसरे बिलों के पास किये जाने के सम्बन्ध में संसद् और राज्य के विधान मंडलों की शक्ति में अन्तर है। संसद् में यदि कोई बिल दूसरे भवन द्वारा स्वीकार न किया जाय तो राष्ट्रपति को आज्ञा है कि वह दोनों भवनों की एक संयुक्त बैठक बुलायेंगे और जब तक इस बैठक में वह बिल बहुमत से पास न हो जाय, वह रद्द समझा जायगा। परन्तु राज्यों के विधान मण्डलों के निम्न भवन को इस विषय में अधिक शक्ति प्रदान की गई है। संविधान की १४७वीं धारा में कहा गया है कि यदि कोई बिल विधान सभा पास कर दे और विधान परिषद् उसे उस रूप में स्वीकार न करे या उसे अस्वीकार कर दे या तीन महीने से अधिक तक उस पर विचार न करे तो विधान सभा को अधिकार है कि वह उस बिल को दोबारा अपने अगले अधिवेशन में पास करने के पश्चात् एक बार फिर परिषद् के पास भेज दे और इसके पश्चात् यदि परिषद् फिर से उसे अस्वीकार कर दे या उस पर एक महीने से अधिक तक विचार न करे तो वह दोनों भवनों द्वारा पास समझा जायगा और राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए सीधा भेज दिया जायगा।

बिलों के सम्बन्ध में राज्यपालों के अधिकार—जिस समय कोई बिल राज्यपाल के हस्ताक्षरों के लिए भेजा जायगा तो जैसा पहले बताया जा चुका है, राज्यपाल को अधिकार होगा कि वह उस पर हस्ताक्षर कर दे या उसे अस्वीकार कर दे या उस बिल को राष्ट्रपति की सम्मति के लिए भेज दे। दूसरी दशा में यदि वह बिल विधान मंडल द्वारा दोबारा पास कर दिया जायगा तो राज्यपाल को उस पर हस्ताक्षर अवश्य करने पड़ेंगे।

संविधान की २००वीं धारा में कहा गया है कि राज्यपाल ऐसे बिल की स्वयं स्वीकृति नहीं देंगे जिस बिल का हाईकोर्ट के अधिकार पर कोई प्रभाव पड़े। ऐसे बिल को वह राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजेंगे। शेष बिलों को राष्ट्रपति की सम्मति के लिए भेजना न भेजना उनके अपने अधिकार की बात होगी।

जिस समय कोई बिल राष्ट्रपति की सम्मति के लिए भेज दिया जायगा तो उन्हें अधिकार होगा कि वह उस बिल को स्वीकार कर लें या उसे अस्वीकार कर दें या उसे दोबारा विचार के लिए राज्य की सरकार को लौटा दें। अन्तिम दशा में विधान मंडल को उस बिल पर ६ महीने के अन्दर-अन्दर पुनः विचार करना होगा और यदि फिर वह बिल उसी प्रकार पास कर लिया जाय तो उसे राष्ट्रपति के पास दोबारा भेज दिया जायगा।

संविधान में यह बात स्पष्ट नहीं की गई है कि ऐसी दशा में जब दोबारा भी विधान मंडल किसी बिल को राष्ट्रपति के पास भेजे तो उन्हें स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं। सम्भवतः इस दशा में और देशों की रीतिरिवाजों (Conventions) से काम लिया जायगा।

बिल (विधेयक) पास करने की विधि

राज्यों में विधान मंडल में बिल पास करने की विधि वही होगी जैसी वह संसद् में है और जिसका वर्णन पिछले अध्याय में दिया गया है। प्रत्येक बिल की तीन पढ़तें होती हैं अर्थात् प्रथम पढ़त, द्वितीय पढ़त और तृतीय पढ़त। इसके पश्चात् बिल दूसरे सदन में भेज दिया जाता है, जहाँ पर एक बार फिर उसे उसी प्रकार पास किया जाता है। दोनों सदनों द्वारा पास हो जाने पर बिल सीधा राज्यपाल के हस्ताक्षर के लिए भेज दिया जाता है।

बजट पास करने की विधि

राज्यों के बजट भी उसी प्रकार पास किये जाते हैं जैसे संघ संविधान के अन्तर्गत। राज्यपाल या राजप्रमुख की स्वीकृति से ही कोई बजट विधान सभा में प्रस्तुत किया जा सकता है। विधान सभा का कोई सदस्य सदन में इस प्रकार का प्रस्ताव प्रस्तुत नहीं कर सकता जिसके पास होने पर राज्य की सरकार को धन व्यय करना पड़े। बजट दो

विभागों में बाँटा जाता है। एक विभाग में ऐसे खर्चे दिखाये जाते हैं जिन पर विधान सभा को मत देने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। ऐसे मतों में मुख्यत राज्यपाल का वेतन, हाई कोर्ट के न्यायाधीशों का वेतन, राज्य के ऋण पर ब्याज की रकम, इत्यादि होते हैं। दूसरे भाग में वह खर्चे दिखाये जाते हैं जिन्हें विधान सभा स्वीकार या अस्वीकार कर सकती है। परन्तु उसे यह अधिकार प्राप्त नहीं होता कि वह किसी खर्चे की रकम बढ़ा सके। बजट पास हो जाने के पश्चात् उसे राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेज दिया जाता है। जैसा पहले बताया जा चुका है, वित्त सम्बन्धी विषयों में विधान सभा की राय अन्तिम मानी जाती है और राज्यपाल को यह अधिकार प्राप्त नहीं होता कि वह इस विषय में विधान सभा की राय ठुकरा दे।

योग्यता प्रश्न

१. नये संविधान के अनुसार राज्य की विधान सभा का निर्माण कैसे होता है? उसकी शक्तियों तथा विशेषाधिकारों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० १९५१)

२. कुछ राज्यों में द्विसदन प्रणाली को क्यों अपनाया गया है? क्या यह कदम अप्रजातन्त्रवादी नहीं है?

३ उत्तर प्रदेश की विधान सभा तथा विधान परिषद् का संगठन समझाओ। विभिन्न दलों की इन सदनों में कैसी स्थिति है?

४. राज्यों में दो सदनों के बीच गति अवरोध किस प्रकार दूर किया जाता है? दोनों सदनों की शक्तियों का संक्षिप्त परिचय दो।



अध्याय १०

राज्यों तथा संघ सरकारों के बीच अधिकारों का वितरण

अधिकार वितरण का अधिकार

सङ्घीय विधानों का एक मुख्य लक्षण, जैसा पहले बताया जा चुका है, सङ्घ सरकार तथा उसके अन्तर्गत राज्यों के बीच अधिकारों का विभाजन है। यह अधिकार विभाजन इस आधार पर किया जाता है कि जो विषय राष्ट्रीय महत्त्व के होते हैं तथा जिन पर सारे देश के लिए समान नीति की आवश्यकता होती है, एवं जिनमें सभी राज्य समान रूप से रुचि रखते हैं, उन्हें सङ्घ सरकार के नियन्त्रण में दे दिया जाता है; शेष विषय जो स्थानीय महत्त्व के होते हैं तथा जिन पर विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता के अनुसार कार्य करने की आवश्यकता होती है, राज्यों के अधीन कर दिये जाते हैं। इस प्रकार सङ्घीय शासनों में सङ्घ सरकार तथा उनमें सम्मिलित होने वाले सभी राष्ट्रों के बीच कानून, शासन, न्याय और अर्थ सम्बन्धी अधिकारों का पूर्ण रूप से विभाजन किया जाता है।

अधिकार विभाजन के सम्बन्ध में साधारणतया दो प्रणाली प्रचलित हैं। एक प्रणाली के अनुसार, कुछ निश्चित विषय केंद्रीय सरकार को सौंप दिये जाते हैं और शेष सभी विषयों का नियन्त्रण राज्यों के ऊपर छोड़ दिया जाता है। अमरीका, स्विटज़रलैंड और आस्ट्रेलिया में यही पद्धति प्रचलित है। कैनाडा में इसके विपरीत एक दूसरी प्रणाली का अवलम्बन किया गया है। उस देश में कुछ निश्चित विषय राज्यों को देकर, शेष सभी विषय सङ्घ सरकार के नियन्त्रण में रख दिये गये हैं। इन दोनों प्रणालियों में प्रथम प्रणाली विकेन्द्रीकरण की भावना के आधार पर अवलम्बित है तथा द्वितीय प्रणाली एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार की स्थापना के उद्देश्य से अपेक्षित है।

भारत में अधिकार विभाजन

हमारे नये संविधान के अन्तर्गत भारत में उपरोक्त दोनों प्रणालियों से भिन्न एक तीसरी पद्धति का प्रयोग किया गया है। यह पद्धति कुछ अंशों में आस्ट्रेलिया के संविधान पर आधारित है जहाँ सङ्घ सूची के अतिरिक्त कुछ विषय एक समवर्ती सूची में रक्खे गये हैं। हमारे पुराने १९३५ के कानून में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया गया था। इस प्रणाली के अनुसार राज्य के सभी अधिकार तीन सूचियों में बाँटे गये हैं: (१) सङ्घ सूची, (२) राज्य सूची, (३) समवर्ती सूची। सङ्घ सूची में वे विषय

रक्खे गये हैं जिन पर सङ्घ सरकार ही कानून बना सकती है। राज्य सूची में इसके विपरीत वह विषय हैं जिन पर राज्यों की सरकारें कानून बना सकती हैं। तीसरी समवर्ती सूची में वे विषय हैं जिनका स्वरूप तो स्थानीय है, परन्तु जिन पर यदि सारे राष्ट्र के लिए एक से ही कानून बना दिये जायँ तो शासन की कुशलता तथा देश के एकीकरण में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस तीसरी सूची के निर्माण से सङ्घ विधान का एक बहुत बड़ा दोष अपरिवर्तनशीलता तथा कानूनीपन दूर हो जाता है और राष्ट्रीयता के विकास में अत्यन्त सहायता मिलती है। इस सूची के विषयों पर राज्य तथा सङ्घीय दोनों ही सरकारों को कानून बनाने का अधिकार प्राप्त होता है, परन्तु विरोध की दशा में केवल सङ्घीय कानून ही प्रामाणिक माने जाते हैं।

अवशिष्ट अधिकार (Residuary powers)

वैसे हमारे नव संविधान में राज्य के सभी अधिकारों को इन तीन सूचियों में विभक्त करने का प्रयत्न किया गया है, परन्तु फिर भी सम्भव है, कुछ विषय इस विभाजन के क्षेत्र से बाहर रह गये हों। ऐसे विषयों को अवशिष्ट (Residuary) विषय कहा जाता है। संविधान में कहा गया है कि यह विषय सङ्घ सरकार के अधीन रहेंगे। दूसरे, सङ्घीय विधानों में यह विषय राज्यों की सरकारों के अधीन रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि समवर्ती सूची द्वारा, अवशिष्ट अधिकारों को संघ सरकार के सुपुर्द करके तथा संघीय सूची में बहुत अधिक विषय सम्मिलित करके, हमारे नव संविधान में इस प्रकार का प्रयत्न किया गया है कि भारत में संघीय विधान होने पर भी एक शक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता का निर्माण हो सके।

नीचे हम इन तीनों सूचियों में सम्मिलित विषयों का संक्षिप्त विवरण देते हैं। इनकी पूरी सूची संविधान के सप्तम् परिशिष्ट में दी गई है।

संघ सूची—इनमें सब मिलाकर ९७ विषय हैं। १९३५ के विधान में इस सूची में कुल ५८ विषय थे। आस्ट्रेलिया के विधान मे इस सूची में ३ विषय हैं। इस प्रकार संघ सरकार का अधिकार क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत रक्खा गया है। इन विषयों में रक्षा, विदेशी समस्याएँ, युद्ध और शांति, कबायली क्षेत्र, मुद्रा और सिक्का, नागरिकता, संघीय ऋण, डाक और तार, टेलीफोन और बेतार, फेडरल पब्लिक सर्विस कमीशन, बनारस, दिल्ली, विश्वभारती, अलीगढ़ के विश्वविद्यालय, प्राचीन स्मारक, जनगणना, संघीय रेलें, जहाजरानी और नौकारोहण, पेटेंट तथा कापीराइट, चेक और हुँडियाँ, शस्त्रास्त्र, अफीम, नमक इत्यादि महत्वपूर्ण विषय हैं।

राज्य सूची—इसमें कुल मिलाकर ६६ विषय हैं। १९३५ के संविधान में इस सूची में ५४ विषय थे। इन विषयों में कानून और व्यवस्था, न्याय, जेलें स्वास्थ्य और स्वच्छता, स्थानीय स्वशासन व्यवस्था, मादक वस्तुओं का उत्पादन तथा उन पर नियन्त्रण,

शिक्षा, चिकित्सा सम्बन्धी सहायता, ग्राम सुधार, सिंचाई, मालगुजारी, पशुओं की रक्षा, वन, औद्योगिक उन्नति, सहयोग आन्दोलन, प्रांतीय पब्लिक सर्विस कमीशन इत्यादि महत्वपूर्ण विषय हैं।

समवर्ती सूची—इसमें ४७ विषय हैं। १६३५ के कानून के अधीन इस सूची में ३६ विषय थे। इसमें फौजदारी कानून, जाब्ता फौजदारी, नागरिक कानून, जाब्ता दीवानी, साक्षी तथा शपथ कानून, विवाह और विच्छेद, दत्तक प्रणाली, सम्पत्ति को हस्तान्तरित होना, आवश्यक लिखित पत्रों की रजिस्ट्री, ट्रस्ट, इकरारनामों का कानून, कारखाना कानून, ट्रेड यूनियनें, समाचार पत्र, छापेखाने, विष तथा आपत्तिजनक औषधियों का कानून इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

योग्यता प्रश्न

१. संघ और राज्य की सरकारों के बीच शासन रूपी सम्बन्धों का वर्णन कीजिये।

२. संघ और राज्य की सरकारों के बीच अधिकार विभाजन किस आधार पर किया गया है? अवशिष्ट अधिकार किसे सौंपे गये हैं?

३. समवर्ती सूची का क्या अर्थ है? यदि राज्य और संघ सरकार—दोनों ही इस सूची के विषयों पर कानून बनायें, तो यह अवरोध किस प्रकार दूर किया जाता है?

अध्याय ११

राज्यों तथा संघ सरकार के बीच आय के साधनों का वितरण

नये संविधान में सङ्घ तथा राज्यों की सरकारों के बीच केवल अधिकारों का ही विभाजन नहीं किया गया है वरन् आय के साधनों का भी पूर्ण रूप से विभाजन कर दिया गया है। यह स्पष्ट है कि किसी देश की सरकार उस समय तक अपना काम नहीं चला सकती जब तक उसे आय के पर्याप्त साधन उपलब्ध न हों। संघीय विधानों में जहाँ सङ्घ सरकार तथा उनकी इकाइयों के बीच राज्य के अधिकारों का विभाजन अत्यन्त आवश्यक है, वहाँ उसकी आय के साधनों का बँटवारा करना भी अनिवार्य है। इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखकर हमारे नये संविधान के १२वें भाग में सङ्घ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के बीच आय के साधनों का पूर्ण रूप से विभाजन कर दिया गया है।

संविधान की सातवीं अनुसूची में सङ्घ सरकार तथा राज्य की सरकारों में अलग-अलग आय के क्या साधन होंगे इसका विवरण दिया गया है।

संघ सरकार के आय के साधन—उपरोक्त अनुसूची की पहली सूची में संघ सरकार के आय के साधनों का विवरण ८२ से लगाकर ९७वीं धारा में किया गया है। इन धाराओं में कहा गया है कि सङ्घ सरकार को निम्नलिखित कर लगाने का अधिकार होगा :—

(१) कृषि आय को छोड़कर अन्य आय पर कर।

(२) सीमा शुल्क जिसके अन्तर्गत निर्यात शुल्क भी सम्मिलित है।
(Customs including Export Duties)

(३) भारत में निर्मित वस्तुओं व तम्बाकू पर कर, परन्तु जिनमें शराब व मादक वस्तुओं पर कर सम्मिलित नहीं होगा। (Excise Duties except on Alcoholic drinks)

(४) कम्पनी टैक्स

(५) व्यक्तियों या कम्पनियों के मूलधन पर टैक्स।

(६) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति पर चुंगी।

(७) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति के उत्तराधिकार के बारे में चुंगी। (Estate Duty)

(८) रेल या समुद्र या वायु से ले जाने वाली वस्तुओं व यात्रियों पर सीमा कर तथा रेल का भाड़ा व वायु भाड़ा पर कर।

(९) शेयर-बाजार व सट्टे के सौदे पर कर।

(१०) चैक, हुन्डी, रुक्का, बीमा पत्र, रसीद, ऋण पत्र इत्यादि पर स्टाम्प कर।

(११) प्रकाशित होने वाले समाचार पत्रों की बिक्री व उनमें छपे विज्ञापनों पर कर।

राज्य की सरकारों के आय के साधन—इसी प्रकार संविधान के उसी परिशिष्ट की ४५वीं धारा से लगा कर ६३वीं धारा तक उन करों का विवरण दिया गया है जो राज्य की सरकारें लगा सकती हैं। इन करों में निम्नलिखित कर मुख्य हैं:

(१) भूमिकर (Land Revenue)

(२) कृषि आय पर कर (Agricultural income tax)

(३) कृषि भूमि के उत्तराधिकार के विषय में चुंगी (Succession duty on ag. land)

(४) कृषि भूमि पर सम्पत्ति कर (Estate duty on ag. land)

(५) भूमि व भवनों पर कर (Tax on land and buildings)

(६) खनिज अधिकार पर कर (Tax on mineral rights)

(७) शराब, अफीम व प्रान्त में बनने वाली दूसरी मादक वस्तुओं पर कर (Excise duty on Intoxicants)

(८) बिक्री कर (Sales tax)

(९) बिजली के उपयोग व बिक्री पर कर।

(१०) समाचार पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़ कर अन्य विज्ञापनों पर कर।

(११) यात्रियों पर कर।

(१२) मोटर व ट्रामों पर कर।

(१३) पशुओं और नौकाओं पर कर।

(१४) प्रति व्यक्ति पर कर।

(१५) आमोद-प्रमोद के स्थानों पर कर।

(१६) दस्तावेजों की रजिस्ट्री पर स्टाम्प कर

आय के साधनों के बँटवारे के सम्बन्ध में प्रान्तों का दृष्टिकोण

भारतवर्ष में सन् १९१९ में प्रांतीय स्वशासन की स्थापना के समय से प्रांतीय सरकारें सदा इस बात की शिकायत करती रहती थीं कि उनके आय के साधन समुचित नहीं हैं और इस कारण वह विकास और राष्ट्रीय निर्माण की योजनाओं पर अधिक रुपया खर्च नहीं कर सकतीं। उनका कहना था कि सन् १९१९ से प्रांतों की सरकारों के साथ

अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जा रहा था। केंद्रीय सरकार ने अपने पास तो आय के ऐसे साधन रख लिये थे जिनसे आमदनी आसानी से बढ़ाई जा सकती थी, परन्तु प्रान्तों की सरकार के पास आय के केवल वही साधन थे जिनसे आमदनी बढ़ने के बजाय केवल घट ही सकती थी। नये संविधान में प्रान्तीय सरकारों की यह शिकायत दूर करने का प्रयत्न किया गया है। जैसे तो १६३५ के संविधान में भी प्रान्तीय सरकारों को केंद्र द्वारा कई प्रकार की सहायता देने का प्रबन्ध किया गया था, परन्तु हमारे नये संविधान में इस दिशा में और भी सुधार कर दिया गया है।

नये संविधान के अन्तर्गत राज्यों की सरकारों को संघ सरकार द्वारा सहायता

संविधान की २६९वीं धारा में कहा गया है कि निम्नलिखित शुल्क और कर भारत सरकार द्वारा संग्रहीत किये जाएँगे परन्तु इनसे होने वाली आमदनी का बँटवारा राज्यों की सरकार के बीच कर दिया जायगा :—

(१) सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर (Estate Duty)।

(२) कृषि भूमि को छोड़ कर अन्य सम्पत्ति पर शुल्क।

(३) रेल, समुद्र व वायु से आने जाने वाली वस्तुओं व यात्रियों पर सीमा कर।

(४) रेल के किरायों व भाड़ों पर कर।

(५) शेयर बाजारों व सट्टे के सौदों पर स्टाम्प कर।

(६) समाचार पत्रों के क्रय विक्रय तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

इन सभी करों से होने वाली आमदनी केंद्रीय सरकार राज्यों की सरकारों के बीच बाँट देगी।

आगे चलकर संविधान में कहा गया है कि इनकम टैक्स से होने वाली आमदनी का एक निश्चित भाग विभिन्न राज्यों की सरकारों के बीच बाँट दिया जायगा। इसी प्रकार आसाम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल के सूबों में पटसन पर लगाये जाने वाले निर्यात कर से होने वाली आमदनी के सम्बन्ध में संविधान की २७३वीं धारा में कहा गया है कि जब तक यह निर्यात कर लागू रहेगा, संघ सरकार इन प्रान्तों की सरकार को एक निश्चित रकम प्रति वर्ष देती रहेगी।

इसके अतिरिक्त संविधान में संघ संसद् को इस बात का अधिकार भी दिया गया है कि वह राज्य की सरकारों को अपनी संचित निधि में से सहायता प्रदान कर सके। आसाम राज्य के लिए विशेष रूप से संविधान में कहा गया है कि संघ सरकार उस राज्य में बसने वाली जन जातियों (Tribes) की सहायता के लिए तथा उन क्षेत्रों के शासन प्रबन्ध को जहाँ जन जातियाँ बसती हैं, दूसरे राज्यों के समान शासन के स्तर पर लाने के लिए विशेष रूप से सहायता देगी।

राजस्व कमीशन (Finance Commission)—विभिन्न राज्यों को संघ सरकार द्वारा कितनी आर्थिक सहायता दी जाय तथा उनके बीच आय कर से होने वाली आमदनी का किस प्रकार वितरण किया जाय इनके लिए संविधान में एक राजस्व कमीशन की नियुक्ति का आदेश दिया गया है। पिछले दिनों इस कमीशन की नियुक्ति कर दी गई थी। संविधान में कहा गया था कि राष्ट्रपति विधान लागू होने के दो वर्ष के अन्दर ऐसे कमीशन की नियुक्ति अवश्य कर देंगे। जब तक कमीशन की सिफारिशें प्रकाशित नहीं हो जातीं उस समय तक के लिए भारत सरकार ने निश्चय किया था कि वह श्री सी० डी० देशमुख द्वारा की गई सिफारिशों के अनुसार राज्यों तथा संघ सरकार के बीच 'आय कर' तथा 'पटसन पर निर्यात कर' का बँटवारा करती रहेगी। श्री सी० डी० देशमुख द्वारा की गई सिफारिशें ३१ जनवरी, सन् १९५० को प्रकाशित की गईं।

श्री देशमुख की सिफारिशों से पहले की स्थिति

राज्य की सरकारों को सन् १९३५ के विधान के अन्तर्गत आय कर का ५० प्रतिशत भाग दिया जाता था। विभिन्न प्रान्तों के बीच इस कर की आमदनी का बँटवारा इस प्रकार था —

प्रतिशत

मद्रास	१५	यू० पी०	१५	सी० पी०	५	सिंध	२
बम्बई	२०	पंजाब	८	उड़ीसा	२	सरहदी सूबा	१
बंगाल	२०	बिहार	१०	आसाम	२		

भारत के विभाजन के पश्चात् स्वभावत भारत सरकार को उपरोक्त प्रबन्ध पर पुनः विचार करना पड़ा। सिंध व सरहदी सूबे को दिये जाने वाले इनकम टैक्स का भाग अब भारत सरकार ने दूसरे प्रान्तों में बाँट दिया। साथ ही बंगाल, पंजाब तथा आसाम प्रान्तों का बँटवारा हो जाने से इन राज्यों को पहले की भाँति ही आय कर का भाग नहीं दिया जा सकता था। इसलिए इन प्रान्तों को मिलने वाली आय कर की आमदनी का कुछ भाग दूसरे प्रान्तों को दे दिया गया। १७ मार्च सन् १९४८ को भारत सरकार ने विभाजन के पश्चात् आय कर की आमदनी में से विभिन्न प्रान्तों का भाग इस प्रकार निश्चित किया :

नाम प्रान्त	प्रतिशत
मद्रास	१८
बम्बई	२१
पश्चिमी बंगाल	१२
यू० पी० (उत्तर प्रदेश)	१९

पूर्वी पंजाब (पंजाब)	५
बिहार	१३
सी० पी० (मध्य प्रदेश)	६
आसाम	३
उड़ीसा	३

भारत सरकार की उपरोक्त विज्ञप्ति से बहुत से प्रान्तों को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने संघ सरकार से कहा कि १७ मार्च वाले निर्णय पर पुनः विचार किया जाय। २६ नवम्बर १९४९ को इसलिए भारत सरकार ने श्री सी० डी० देशमुख से प्रार्थना की कि वह इनकम टैक्स तथा निर्यात कर के बँटवारे के विषय में विचार करें और फिर अपना निर्णय संघ सरकार को दें।

श्री देशमुख की सिफारिशें

श्री देशमुख ने विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों से बातचीत करने के पश्चात् अपने निम्न सुझाव संघ सरकार के सम्मुख ३१ जनवरी सन् १९५० को रख दिये। यह सुझाव केंद्रीय सरकार द्वारा स्वीकार कर लिये गये।

आय कर का बँटवारा—आय कर के बँटवारे के सम्बन्ध में श्री देशमुख ने निम्न सुझाव केंद्रीय सरकार के सम्मुख रक्खे :—

नाम राज्य	आयकर का वह भाग जो राज्य की सरकार को दिया जाना चाहिये।
बम्बई	२१ प्रतिशत
मद्रास	१७·५ ,,
पश्चिमी बंगाल	१३·५ ,,
उत्तर प्रदेश	१८ ,,
मध्य प्रदेश	६ ,,
पंजाब	५·५ ,,
बिहार	१०·५ ,,
उड़ीसा	३ ,,
आसाम	३ ,,

उपरोक्त निर्णय से विदित है कि श्री देशमुख के निर्णय से पश्चिमी बंगाल तथा पंजाब को कुछ लाभ हुआ। पहले इन दोनों राज्यों को क्रमशः १२ तथा ५ प्रतिशत आय कर का भाग मिलता था; इस निर्णय से उन्हें १३·५ तथा ५·५ प्रतिशत भाग मिलने

लगा। उत्तर प्रदेश, मद्रास तथा बिहार राज्यों को कुछ हानि हुई क्योंकि उनका आय कर का भाग क्रमशः १६, १८ तथा १३ प्रतिशत से घटा कर १८, १०५ तथा ११·५ प्रतिशत कर दिया गया। शेष राज्यों की स्थिति में कोई अन्तर नहीं हुआ।

पटसन पर निर्यात कर का बँटवारा—पटसन पर निर्यात कर के बँटवारे के सम्बन्ध में श्री देशमुख ने अपना निर्णय इस प्रकार दिया :—

नाम राज्य	निर्यात कर से होने वाली आय का वितरण (*लाख रु० में*)
पश्चिमी बंगाल	१०५
आसाम	४०
बिहार	३५
उड़ीसा	५
कुल रकम	१८५

जैसा पहले बताया जा चुका है, श्री देशमुख की सिफारिशों पर केवल उस समय तक कार्य किया गया जब तक नये संविधान के आदेशानुसार राजस्व कमीशन की सिफारिशें मालूम नहीं हो गईं। इसके पश्चात् इन सुझावों के अनुसार संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के बीच आय के साधनों का वितरण किया जा रहा है।

राजस्व कमीशन की सिफारिशें

संविधान की धारा २०० के अधीन राष्ट्रपति को आदेश दिया गया था कि वह संविधान लागू होने के २ वर्ष के अन्दर एक राजस्व कमीशन की नियुक्ति करेंगे जो राज्यों तथा संघ सरकार के बीच कुछ आय के साधनों के वितरण के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें सरकार के सम्मुख रक्खेगी। इस कमीशन की नियुक्ति २२ नवम्बर सन् १९५१ को की गई। कमीशन के *अध्यक्ष श्री के० सी० नियोगी तथा उसके सदस्य डा० बी०* वे० सदन, जस्टिस राय, वी० एल० मेहता तथा श्री रंगाचारी थे। इस कमीशन ने फरवरी सन् १९५३ में अपनी निम्न सिफारिशें सरकार के सम्मुख पेश कर दीं :—

इनकमटैक्स—इनकमटैक्स की कुल आय का ५५ प्रतिशत भाग विभिन्न राज्यों की सरकारों के बीच इस प्रकार बाँटा जायगा :—

नाम राज्य	प्रतिशत
आसाम	२·२५
बिहार	६·७५
बम्बई	१७·५०
हैदराबाद	४·५०
मध्यभारत	१·७५

मध्य प्रदेश	५.२५
मद्रास	१५.२५
मैसूर	२.२५
उड़ीसा	३.५०
पैप्सू	०.७५
पंजाब	३.२५
राजस्थान	३.५०
सौराष्ट्र	१.००
ट्रावनकोर-कोचीन	२.५०
उत्तर प्रदेश	१५.७५
पश्चिमी बंगाल	११.२५

उपरोक्त विभाजन से विदित है कि नियोगी कमेटी ने श्री देशमुख की सिफारशों में समुचित परिवर्तन कर दिया है। इस योजना के अधीन बी० श्रेणी के राज्यों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इस प्रकार अब राजस्व के क्षेत्र में भी सारे देश का पूर्ण रूपेण एकीकरण हो गया है।

उत्पत्ति कर का बटवारा—संविधान की २७२वीं धारा में कहा गया था कि केंद्र को होने वाला तम्बाकू, सिगरेट, माचिस तथा वनस्पति घी पर लगाये गये उत्पत्ति कर की आय का ४० प्रतिशत भाग राज्यों की सरकारों के बीच बाँट दिया जायगा। राजस्व कमीशन ने इस आय को विभिन्न राज्यों के बीच इस प्रकार बाँटने की सिफारिश की —

नाम राज्य	प्रतिशत
आसाम	२.९१
बिहार	११.६०
बम्बई	१०.३७
हैदराबाद	५.३६
मध्य भारत	९.२६
मध्य प्रदेश	६.१३
मद्रास	१६.४४
मैसूर	२.६२
उड़ीसा	४.३२
पैप्सू	१.००
पञ्जाब	३.६६
राजस्थान	४.४१

सौराष्ट्र	१·१६
ट्रावनकोर कोचीन	२·६८
उत्तर प्रदेश	१·८२३
पश्चिमी बंगाल	७·१६

पटसन पर निर्यात कर का बँटवारा—पटसन पर निर्यात कर के बँटवारे के सम्बन्ध में नियोगी कमीशन की सिफारिशें इस प्रकार थीं :—

नाम राज्य	निर्यात कर से होने वाली आय का वितरण (लाख रु० में)
आसाम	७५
बिहार	७५
उड़ीसा	१५
पश्चिमी बंगाल	१५०

कमी वाले राज्यों को आर्थिक सहायता—इसके अतिरिक्त नियोगी कमीशन ने सुझाव रक्खा कि कुछ राज्यों को उनकी विशेष आर्थिक स्थिति का ध्यान रखते हुए तथा कुछ को उनमें प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिए अधिक सहायता प्रदान की जाय। इस सिफारिश के अधीन विभिन्न राज्यों को निम्न सहायता देना स्वीकार किया गया।

नाम राज्य	कमी वाले राज्यों को विशेष आर्थिक सहायता (लाख रु० में)	प्रारम्भिक शिक्षा के विकास के लिए राज्यों को विशेष सहायता (लाख रु० में)			
		१९५३-५४	५४-५५	५५-५६	५६-५७
आसाम	१००	—	—	—	—
मैसूर	४०	—	—	—	—
उड़ीसा	७५	१६	२२	२७	३२
पंजाब	१२५	१४	१६	२३	२८
सौराष्ट्र	४०	—	—	—	—
ट्रावनकोर-कोचीन	४५	—	—	—	—
पश्चिमी बंगाल	८०	—	—	—	—
बिहार		४१	५५	६६	८३
हैदराबाद		२०	२७	३३	४०
मध्य भारत		६	१२	१५	१८
मध्य प्रदेश		२५	२३	४२	५०
पेप्सू		५	६	८	६
राजस्थान		२०	२६	३३	४०

इस प्रकार विदित है कि राजस्व कमीशन द्वारा राज्यीय सरकारों की आर्थिक स्थिति को सुधारने की समुचित प्रबन्ध किया गया है। अब राज्यों का इनकमटैक्स तथा उत्पत्ति कर की आय का एक निश्चित भाग मिलता रहेगा जिससे देश की स्थिति सुधारने के साथ साथ राज्यों की आय भी बढ़ती रहेगी और वह अनेक जन उपयोगी कार्य कर सकेंगे।

योग्यता प्रश्न

१. सङ्घ और राज्यों की सरकारों के बीच राजस्व के साधनों का विभाजन किस प्रकार किया गया है? क्या यह सच है कि राज्यों के साथ इस दशा में अन्याय किया गया है।

२. श्री देशमुख की क्या सिफारिशें थीं? उनका औचित्य समझाइये।

३. राजस्व कमीशन क्या है? उसकी सिफारिशों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

अध्याय १२

न्यायपालिका का संगठन

[Organisation of Judiciary]

किसी देश में कानून बनाने का कार्य विधान मंडल करता है। उनका पालन कार्यपालिका करती है। न्यायपालिका का मुख्य उद्देश्य एक नागरिक और दूसरे नागरिक तथा राज्य और नागरिकों के बीच विवादों का फैसला करना होता है। किसी भी जनतंत्र देश में एक स्वतंत्र तथा योग्य न्यायपालिका का संगठन, जनता की स्वतंत्रता तथा उसके मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए नितांत आवश्यक समझा जाता है। न्यायपालिका ही सरकार के विभिन्न अंगों को मनमानी करने से रोकती है और जनता को दमन तथा अत्याचार से बचाती है।

उच्चतम न्यायालय (Supreme Court)

नव संविधान के अन्तर्गत भारत में न्याय की सर्वोच्च अदालत का नाम उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) रखा गया है। इस अदालत को संसार के सभी देशों की उच्चतम अदालतों से अधिक अधिकार प्रदान किये गये हैं। १९३५ के ऐक्ट के अधीन भारत में एक फेडरल कोर्ट का संगठन किया गया था। वह न्यायालय अब समाप्त कर दी गई है और उसके स्थान पर उच्चतम न्यायालय (Supreme Court) की स्थापना की गई है। फेडरल कोर्ट के जज इसी न्यायालय के न्यायाधीश नियुक्त कर दिये गये हैं। अब हम इस न्यायालय के संगठन, कर्तव्य तथा अधिकारों के विषय में संक्षिप्त वर्णन देंगे।

संगठन—भारत के उच्चतम न्यायालय में मुख्य न्यायाधिपति (Chief Justice) और दूसरे ७ न्यायाधीशों (Judges) की नियुक्ति का प्रबन्ध है। विशेष अवस्थाओं में आवश्यकता पड़ने पर मुख्य न्यायाधिपति को इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह विशेष काम के लिए तदर्थ (Ad Hoc) न्यायाधीशों की नियुक्ति कर सके। ऐसा केवल उस दशा में किया जायगा जब इस न्यायालय के अपने जजों से गण-पूरक संख्या (Quorum) पूरी न होती हो। सन् १९५० में इसी प्रकार के दो तदर्थ जज हैदराबाद में नियुक्त किये गये। सद्द संसद् को इस बात का भी अधिकार दिया गया है कि यदि वह आवश्यक समझे तो न्यायाधीशों की संख्या में बढ़ोत्तरी कर सकती है। इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति को भी अधिकार है कि वह राष्ट्रपति की स्वीकृति से सुप्रीम कोर्ट तथा फेडरल जजों को सुप्रीम कोर्ट में न्यायाधीश

कार्य करने के लिए निमंत्रित कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को सुप्रीम कोर्ट के दूसरे न्यायाधीशों के समान वेतन तथा अधिकार प्रदान किये जाते हैं, परन्तु उन्हें न्यायालय के सामने साधारण न्यायाधीश नहीं माना जाता। कुछ थोड़े समय के लिए, मुख्य न्यायाधिपति को यह भी अधिकार दिया गया है कि वह हाई कोर्ट के जजों को भी सुप्रीम कोर्ट में कार्य करने के लिए बुला सकें। मुख्य न्यायाधिपति की अनुपस्थिति में राष्ट्रपति सुप्रीम कोर्ट के किसी भी न्यायाधीश को कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति (Acting Chief Justice) के रूप में नियुक्त कर सकते हैं। आजकल उच्चतम न्यायालय में पूरे ८ न्यायाधीश, न्यायाधिपति को सम्मिलित करके, कार्य कर रहे हैं।

न्यायाधीशों की नियुक्ति—हमारे संविधान में न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए अमरीका तथा ब्रिटेन के संविधानों की नकल नहीं की गई है। अमरीका में राष्ट्रपति 'सीनेट' की स्वीकृति से न्यायाधीशों की नियुक्ति करता है। इंगलैंड में यह नियुक्ति प्रधान मंत्री की सलाह से सम्राट् द्वारा की जाती है। भारत में वैसे तो राष्ट्रपति को ही न्यायाधीशों की नियुक्ति का कार्य सौंपा गया है, परन्तु संविधान में कहा गया है कि राष्ट्रपति किसी न्यायाधीश की नियुक्ति से पहले सुप्रीम कोर्ट तथा हाईकोर्ट के जजों से सलाह लेंगे। इसके अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट की नियुक्तियों के लिए मुख्य न्यायाधिपति की मंत्रणा अनिवार्य ठहराई गई है।

योग्यता—न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान में निम्न शर्तें आवश्यक रक्खी गई हैं :—

(१) न्यायाधीश भारत का नागरिक हो, (२) वह किसी उच्च न्यायालय (हाई कोर्ट) में अथवा दो या दो से अधिक न्यायालयों में लगातार कम से कम ५ वर्ष तक न्यायाधीश के रूप में काम कर चुका हो या (३) वह कम से कम दस वर्ष तक किसी उच्च न्यायालय में अथवा दो या दो से अधिक ऐसे न्यायालयों में अधिवक्ता (Advocate) की हैसियत से कार्य कर चुका हो, या (४) वह कोई सुविख्यात न्यायशास्त्रज्ञ (Jurist) हो।

कार्य अवधि—सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश उस समय तक अपने पद पर काम कर सकते हैं जब तक उनकी आयु ६५ वर्ष की न हो जाय। उनकी स्वतंत्रता कायम रखने के लिए संविधान में कहा गया है कि किसी भी न्यायाधीश को उस समय तक उसके पद से अलग नहीं किया जा सकेगा, जब तक संसद् के दोनों भवन दो-तिहाई बहुमत से राष्ट्रपति से यह प्रार्थना न करें कि किसी न्यायाधीश की अयोग्यता अथवा अनाचार के कारण उसके पद से अलग कर दिया जाय। न्यायाधीशों के लिए एक मकान तथा ४००० रुपया मासिक वेतन का आयोजन किया गया है। मुख्य न्यायाधिपति का वेतन दूसरे न्यायाधीशों से अधिक, ५,०००) मासिक नियत किया गया है। अपने पद से

रिटायर होने के पश्चात् न्यायाधीशों के लिए शर्त रक्खी गई है कि वह भारत की किसी भी अदालत में वकालत न कर सकेंगे। इस प्रकार की शर्त इसलिए आवश्यक समझी गई जिससे देश की अदालतों पर सुप्रीम कोर्ट के पुराने न्यायाधीशों के व्यक्तित्व का अनुचित प्रभाव न पड़े।

बैठकों का स्थान—सुप्रीम कोर्ट के अधिवेशन साधारणतया दिल्ली में होते हैं, परन्तु मुख्य न्यायाधिपति को यह अधिकार दिया गया है कि राष्ट्रपति की स्वीकृति से, वह भारत के दूसरे स्थानों में भी सुप्रीम कोर्ट की बैठकों का आयोजन कर सकते हैं।

सुप्रीम कोर्ट के अधिकार

सुप्रीम कोर्ट भारत की सर्वोच्च अदालत होगी। इसके फैसले देश की दूसरी अदालतों पर लागू होंगे। इस न्यायालय की स्थापना के पश्चात् हमारे देश से इंगलैंड की प्रिवी कौंसिल का अधिकार-क्षेत्र समाप्त कर दिया गया है। इस न्यायालय में जाने वाली सभी अपीलों की सुनवाई अब सुप्रीम कोर्ट में ही होती है। सुप्रीम कोर्ट को दीवानी, फौजदारी तथा संवैधानिक मुकदमों पर अधिकार प्राप्त है। इन मुकदमों की सुनवाई के लिए यह अंतिम न्यायालय है।

प्रथम क्षेत्राधिकार (Original Jurisdiction)—सुप्रीम कोर्ट को ऐसे मुकदमों पर प्रथम क्षेत्राधिकार प्राप्त है जो भारत सरकार तथा दूसरे राज्यों की सरकारों के बीच, अथवा दो या दो से अधिक राज्यों की सरकारों के बीच संवैधानिक विषयों के सम्बन्ध में उत्पन्न हों। परन्तु इस न्यायालय का क्षेत्राधिकार उन मुकदमों पर नहीं होगा जो भारतीय रियासतों और संघ सरकार के बीच हुई संधियों अथवा इकरारों के कारण उत्पन्न हों।

अपील का क्षेत्राधिकार (Appallate Jurisdiction)—तीन प्रकार की अपीलें सुप्रीम कोर्ट में सुनी जा सकेंगी : (१) संवैधानिक, (२) दीवानी, (३) फौजदारी।

(१) *संवैधानिक*—संवैधानिक विषयों में सुप्रीम कोर्ट केवल उस दशा में अपील सुनेगा जब राज्य का हाईकोर्ट यह प्रमाणित कर दे कि मुकदमे में संविधान की किसी धारा के सही आशय के सम्बन्ध में विवाद है। सुप्रीम कोर्ट स्वयं भी ऐसे मुकदमों की अपने यहाँ सुनवाई की आज्ञा दे सकता है।

(२) *दीवानी मुकदमें*—दीवानी मुकदमों की अपील सुप्रीम कोर्ट में केवल उस दशा में होगी जब राज्य का हाईकोर्ट यह प्रमाणित कर दे कि किसी मुकदमे की राशि या मूल्य २०,००० रु० से अधिक है या यह कि मुकदमे में कोई ऐसी बात पर विवाद है जिसकी सुनवाई सुप्रीम कोर्ट द्वारा की जानी चाहिये।

(३) *फौजदारी मुकदमा*—फौजदारी मुकदमों की सुनवाई सुप्रीम कोर्ट में केवल

उस दशा में हो सकती है जब (१) किसी हाई कोर्ट द्वारा अपील में अभियुक्त की रिहाई के आदेश को उलट कर मृत्यु दंड में बदल दिया जाय, (२) हाई कोर्ट अपने अधीन किसी न्यायालय से किसी मुकदमे को अपने पास मँगा ले और फिर उसमें अभियुक्त को मृत्यु दंड दे दे, या (३) हाई कोर्ट किसी मुकदमे में यह प्रमाणित कर दे कि उसमें कोई महत्त्वपूर्ण कानूनी समस्या पेश है।

फौजदारी मुकदमों में, संसद् को यह अधिकार दिया गया है कि वह सुप्रीम कोर्ट का अधिकार क्षेत्र एक विशेष कानून पास करके बढ़ा सकती है। मुकदमों की निगरानी (Revision) का भी सुप्रीम कोर्ट को विशेष अधिकार है। सुप्रीम कोर्ट भारत की किसी भी मातहत अदालत से मुकदमों को अपने यहाँ मँगा कर उनकी अपील सुन सकता है अथवा उनकी निगरानी कर सकता है अथवा स्वयं अपील की आज्ञा दे सकता है। इन सबके अतिरिक्त जैसा कि पहले बताया जा चुका है, सुप्रीम कोर्ट को नागरिकों के मौलिक अधिकार सम्बन्धी मुकदमे सुनने का भी अधिकार प्राप्त है। पिछले वर्षों में ऐसे अनेक मुकदमे सुप्रीम कोर्ट द्वारा सुने गये हैं।

सुप्रीम कोर्ट का मन्त्रणा सम्बन्धी कार्य (Advisory functions of the Supreme Court)—मुकदमे तथा अपील सुनने के अतिरिक्त सुप्रीम कोर्ट का एक महत्त्वपूर्ण कार्य राष्ट्रपति को ऐसे सार्वजनिक महत्त्व के विषयों पर मन्त्रणा देना है जो वह उसके विचारार्थ भेज दें। ऐसे विषयों पर सुप्रीम कोर्ट ऐसी सुनवाई के पश्चात् जैसा वह उचित समझे, राष्ट्रपति को अपनी सम्मति लिख कर भेज देता है। संविधान की इसी धारा के अधीन सुप्रीम कोर्ट की राय के लिए वह उन संधियों तथा इकरारनामे भी भेजे जा सकते हैं जो रियासतों तथा संघ सरकार के बीच हुए हों और जिन पर सुप्रीम कोर्ट का प्रथम क्षेत्राधिकार नहीं है। इस अधिकार के अधीन राष्ट्रपति ने पिछले दिनों सुप्रीम कोर्ट से इस सम्बन्ध में अपनी राय देने के लिए कहा था कि केन्द्रीय शासित प्रदेशों में दूसरे राज्यों के कानून किस दशा में और किस प्रकार लागू किये जा सकते हैं।

काम करने की विधि

सुप्रीम कोर्ट को यह अधिकार है कि वह स्वयं अपने कार्य के उचित सम्पादन तथा अपने सम्मुख वकीलों की पेशी के लिए आवश्यक नियम बना सकता है। परन्तु इन नियमों को लागू करने से पहले राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है। सुप्रीम कोर्ट द्वारा सभी महत्त्वपूर्ण मुकदमे कम से कम पाँच जजों की एक बैंच के सम्मुख सुने जाते हैं और उनका निर्णय उपस्थित न्यायाधीशों की बहुसंख्यक सहमति से दिया जाता है। परन्तु सहमत न होने वाले किसी न्यायाधीश को अपना अलग निर्णय देने की पूरी आज्ञा है।

स्टाफ की भर्ती—सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति अथवा किसी ऐसे न्यायाधीश

अथवा अफसर को जिसको मुख्य न्यायाधिपति नियुक्त कर दें, यह अधिकार है कि वह सुप्रीम कोर्ट के लिए स्वयं स्टाफ की भर्ती कर सके तथा उनकी नौकरी के सम्बन्ध में उचित नियम बना सके। इस न्यायालय की स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए संविधान की १४६वीं धारा में यह भी कहा गया है कि सुप्रीम कोर्ट का सारा व्यय जिसके अन्तर्गत न्यायालय के पदाधिकारियों और उसके सेवकों को दिये जाने वाला सब वेतन भी सम्मिलित होगा, संघ सरकार के वार्षिक बजट की उस निधि में से दिया जायगा जिस पर संसद् के सदस्यों की राय लेना आवश्यक नहीं है।

हाई कोर्ट

संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक राज्य में एक हाई कोर्ट का होना अनिवार्य होगा। हाई-कोर्ट एक मुख्य न्यायाधिपति तथा ऐसे अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनेगा जिन्हें राष्ट्रपति समय-समय पर नियुक्त करना आवश्यक समझें। हाई कोर्ट के न्यायाधीशों की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायगी। परन्तु, ऐसा करने से पहले वह भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्य के राज्यपाल तथा मुख्य न्यायाधिपति से मन्त्रणा करेंगे। साधारणतया हाई कोर्ट के न्यायाधीश ६५ वर्ष की आयु तक अपने पद पर आसीन रह सकेंगे। हाई कोर्ट के न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान की २१७वीं धारा में कहा गया है कि केवल वही व्यक्ति इस पद के लिए चुने जा सकेंगे जो भारत के नागरिक हों तथा जो कम से कम दस वर्ष तक न्यायिक (Judicial) पद ग्रहण कर चुके हों अथवा जो किसी राज्य के हाई कोर्ट में अथवा ऐसे दो या अधिक उच्च न्यायालयों में लगातार कम से कम दस वर्ष तक अधिवक्ता (Advocate) रह चुके हों।

हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधिपति को ४००० रु० मासिक वेतन तथा दूसरे न्यायाधीशों को ३५०० रु० मासिक वेतन एवं दूसरे भत्ते दिये जाने का प्रबन्ध किया गया है। हाई कोर्ट में कार्यकारी (Acting) मुख्य न्यायाधिपति और रिटायर्ड जजों की नियुक्ति के सम्बन्ध में वही नियम लागू हैं जो सुप्रीम कोर्ट के सम्बन्ध में पहले बतलाये जा चुके हैं।

हाई कोर्ट के अधिकारों तथा कार्य क्षेत्र के सम्बन्ध में वही नियम लागू रक्खे गये हैं जो १९३५ के संविधान में दिये गये थे। इसके अतिरिक्त नये संविधान में उन्हें यह भी अधिकार दिये गये हैं कि वह (१) बिना किसी रोक के माल के मुकदमों को सुन सकेंगे। (२) नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए लेख (Writs) निकाल सकेंगे तथा (३) अपने अधीन न्यायालयों से मुकदमे हटा कर अपने पास स्वयं सुन सकेंगे।

हाई कोर्ट के क्षेत्राधिकार अथवा कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में राज्य की विधान सभा को

कानून बनाने का अधिकार नहीं होगा। केवल संघ संसद् को ही इस विषय में कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

अधीन न्यायालय (Subordinate Courts)

हाई कोर्ट के अधीन जिलों के न्यायालयों के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि जिला न्यायाधीशों (District Judges) की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा, हाई कोर्ट की सम्मति से की जायगी। इन न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि जिला न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए आवश्यक है कि ऐसा व्यक्ति या तो भारतीय संघ या राज्य की नौकरी में रहा हो अथवा उसने कम से कम ७ वर्ष तक वकील (Pleader) एवं अधिवक्ता (Advocate) के रूप में काम किया हो। जिला न्यायाधीश के अतिरिक्त दूसरे जजों की नियुक्ति राज्यपाल उन नियमों के अधीन करेंगे, जिन्हें वह राज्य के पब्लिक सर्विस कमीशन तथा हाई कोर्ट की सलाह से बनायेंगे। जिला अथवा उसके अधीन अदालतों पर पूरा नियन्त्रण हाई कोर्ट का होगा। उसे ही इन सब अदालतों में काम करने वाले अधिकारियों की उन्नति, तबादला तथा नियुक्ति का अधिकार होगा।

उत्तर प्रदेश में न्याय का प्रबन्ध

दूसरे राज्यों की भाँति हमारे राज्य में भी एक हाई कोर्ट है। पहले हमारे प्रांत में दो हाई कोर्ट थे—एक इलाहाबाद में और दूसरा लखनऊ में। परन्तु जुलाई सन् १६४८ में ये दोनों हाई कोर्ट मिला कर एक कर दिये गये। हमारे हाई कोर्ट में एक मुख्य न्यायाधिपति और २० दूसरे न्यायाधीश हैं। यह न्यायालय हर प्रकार के फौजदारी तथा दीवानी मुकदमों की अपीलें सुनता है। इसके फैसलों की अपील सुप्रीम कोर्ट में जा सकती है। हाई कोर्टों के नीचे तीन प्रकार की अदालतें काम करती हैं, जिनका सङ्गठन निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायगा :

दंड न्यायालय (फौजदारी अदालतें)	व्यवहार न्यायालय (दीवानी अदालतें)	राजस्व-न्यायालय (माल की अदालतें)
हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)	हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)	हाई कोर्ट (उच्च न्यायालय)
सेशन कोर्ट	डिस्ट्रिक्ट कोर्ट	बोर्ड आफ रेवेन्यू
मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी	सिविल जज	कमिश्नर की अदालत
" द्वितीय श्रेणी	मुंसिफी	कलक्टर की अदालत
" तृतीय श्रेणी	खफ़ीफा न्यायालय	तहसीलदार की अदालत
आनरेरी मजिस्ट्रेट		नायब तहसीलदार की अदालत

फौजदारी अदालत

प्रायः प्रत्येक जिले में एक सेशन जज होता है जो मजिस्ट्रेटों के फैसलों की अपील सुनता है तथा कत्ल इत्यादि के संगीन मुकदमों की सीधी सुनवाई करता है। सेशन जज को फाँसी तक की सजा देने का अधिकार होता है, परन्तु ऐसी सजा देने से पहले उसे हाई कोर्ट की स्वीकृति लेनी पड़ती है।

सेशन जज के नीचे तीन प्रकार के मजिस्ट्रेट मुकदमों का फैसला करते हैं; यह मजिस्ट्रेट प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट कहलाते हैं। प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट को दो वर्ष की सजा तथा १००० रु० जुर्माना, द्वितीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट को ६ महाने की सजा तथा २०० रु० जुर्माना और तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट का एक महीने की सजा और ५० रु० जुर्माना करने का अधिकार होता है। मजिस्ट्रेट अवैतनिक (Honorary) भी होते हैं और वैतनिक (Stipendary) भी। पहले ऐसे लोगों को आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया जाता था जो खुशामदी और सरकार के पिट्ठू होते थे, परन्तु आजकल केवल योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों को ही इसके लिए चुना जाता है।

दीवानी अदालत

जिले में सबसे बड़ी दीवानी अदालत डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत कहलाती है। सेशन और डिस्ट्रिक्ट जज एक ही व्यक्ति होता है। फौजदारी मुकदमों का फैसला करते समय वह सेशन जज कहलाता है और दीवानी मुकदमों का फैसला करते समय डिस्ट्रिक्ट जज कहलाता है। डिस्ट्रिक्ट जज को बड़ी से बड़ी रकम के मुकदमे सुनने का अधिकार है। डिस्ट्रिक्ट जज के नीचे सिविल जज, मुन्सिफ तथा स्माल काज कोर्ट जज की अदालतें होती हैं। स्माल काज कोर्ट की कचहरी में १००० या ५०० रुपया से अधिक मालियत के मुकदमों का सुनवाई नहीं होती। मुन्सिफों की अदालत में ५,००० रु० तक के मुकदमे सुने जा सकते हैं। सिविल जज अपने मातहत छोटी अदालतों के मुकदमों की अपील सुनते हैं और बड़े-बड़े दीवानी मुकदमों की स्वयं भी सुनवाई करते हैं।

माल की अदालत

हाई कोर्ट के समान माल के मुकदमों के लिए सबसे बड़ी अदालत बोर्ड आफ रैवेन्यू कहलाती है। यह अदालत कमिश्नरों के फैसलों की अपीलें सुनती है। बोर्ड आफ रैवेन्यू के नीचे कमिश्नर, कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार तथा नायब तहसीलदार की अदालतें होती हैं। भूमि तथा लगान सम्बन्धी हर प्रकार के मुकदमे इन अदालतों में सुने जाते हैं।

योग्यता प्रश्न

१. उच्चतम न्यायालय के संगठन की व्याख्या कीजिये। पुराने फेडरल कोर्ट और आज के उच्चतम न्यायालय में क्या अन्तर है?

२. सुप्रीम कोर्ट के अधिकारों की व्याख्या कीजिये। नागरिकों के मौलिक अधिकारों की सुप्रीम कोर्ट किस प्रकार रक्षा करता है?

३. नव संविधान के अन्तर्गत न्यायपालिका की स्वतंत्रता एवं निष्पक्षता का किस प्रकार प्रबन्ध किया गया है?

४. उच्चतम न्यायालय तथा राज्यों के न्यायालयों का क्या सम्बन्ध होगा?

५. उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों की योग्यता के सम्बन्ध में क्या नियम बनाये गये हैं? क्या यह न्यायाधीश रिटायर होने के पश्चात् वकालत कर सकेंगे?

६. उच्चतम न्यायालय के कृत्यों तथा शक्तियों का वर्णन कीजिये। इसका भारतीय संविधान में क्या विशेष महत्त्व है? (यू० पी० १९५३)



अध्याय १३

भारतीय रियासतें

स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले रियासतों का स्वरूप		स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रियासतों का स्वरूप	
कुल संख्या	५६२	कुल संख्या	१५
क्षेत्रफल	७,२५,६६४ वर्गमील	स्वतन्त्र इकाइयाँ	३
भारत के समस्त क्षेत्रफल का भाग	४५ प्रतिशत	रियासती सङ्घ	५
जनसंख्या	९,३२,००,०००	केंद्रीय शासित रियासतें	७
भारत की समस्त जन संख्या का भाग	२४ प्रतिशत	प्रान्तों में विलीन रियासतों की संख्या	२१६
भारत की समस्त जनता में से रियासतों में रहने वाली जनता की धर्म के आधार पर संख्या—		रियासती सङ्घों में सङ्गठित रियासतों की संख्या	२७५
हिंदू	२५ प्रतिशत	हिमाचल प्रदेश में विलीन रियासतों की संख्या	२१
मुसलमान	१६ प्रतिशत	विन्ध्य प्रदेश में विलीन रियासतों की संख्या	३५
ईसाई	४६ प्रतिशत	सब राजाओं को मिलने वाली प्रिवी पर्स की	
सिख	२७ प्रतिशत	रकम	५६५ लाख रु०

भारतीय रियासतों का इतिहास

हमारे देश की रियासतों का इतिहास, उनके जन्म की कथा तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उनके विलीनीकरण एवं सङ्घीयकरण की गाथा 'अलिफ लैला' की कहानियों के समान रोचक है। वैसे तो हमारे देश की कुछ थोड़ी सी रियासतों जैसे उदयपुर, जोध-पुर, मैसुर, ट्रावनकोर, कोचीन, बनारस इत्यादि का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है, परन्तु अधिकतर रियासतें हमारे देश में ऐसी हैं जिनका जन्म मुगल साम्राज्य के पतन तथा अँग्रेज़ी साम्राज्य के प्रारम्भिक विस्तार काल में हुआ था। जिस समय मुगल सम्राट् औरङ्गजेब की मृत्यु के पश्चात् भारत में मुसलमानी साम्राज्य की जड़ें हिल उठीं और अनेक हिंदू, पठान तथा मुसलमान स्थानीय शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर

दी तथा इसके तुरन्त पश्चात् जिस समय अँग्रेज शासक व्यापारियों के रूप में हमारे देश में आये और उन्होंने भारत की आन्तरिक राजनीतिक स्थिति का लाभ उठाकर इस देश में अपना साम्राज्य स्थापित करने के प्रयत्न आरम्भ कर दिये, तो हमारे देश में अनेक छोटी और बड़ी रियासतों का जन्म होना आरम्भ हो गया। अँग्रेजों ने सोचा कि किसी दूसरे देश में राज्य करने के लिए उन्हें वहाँ के स्थानीय लोगों की सहायता तथा मित्रता की आवश्यकता होगी। ऐसे सहायक और मित्र उन्हें उन लोगों की श्रेणी में बहुत सुगमता से मिल गये जिन्होंने उसी काल में अपने राज्यों की स्थापना की थी, अथवा जो उन्हीं दिनों, कुछ थोड़ी सी सैन्य शक्ति के सहारे, जर्जरित मुगल साम्राज्य की हड्डियों पर अपने साम्राज्य की विशाल नींव खड़ी करना चाहते थे। ऐसे सभी लोगों की महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने में, अँग्रेजी सेना ने पूर्ण सहायता प्रदान की। बदले में इन राजाओं ने अँग्रेजी सेना की संरक्षता में रहना स्वीकार कर लिया, और अँग्रेज शासकों को भारत की स्वतन्त्र रियासतों में शनैः शनैः अनेक प्रकार के अधिकार प्राप्त हो गये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की अधिकतर रियासतें २०० वर्ष से भी कम पुरानी हैं। इनका निर्माण तथा अस्तित्व हमारे अङ्गरेज शासकों की कूट राजनीतिक चाल का द्योतक था। अङ्गरेज जानते थे कि भारत के राजा और नवाब, जमींदार और बड़े-बड़े जागीरदार उन्हीं के सहारे जीवित रह सकते थे। भारत की जनता इन सभी शासकों के अत्याचार तथा दमन से तंग आ चुकी थी और वह उनकी सत्ता को जड़-मूल से नष्ट कर देना चाहती थी। परन्तु अङ्गरेजी सेना के संरक्षण के कारण भारतीय रियासतें कायम थीं और वह निर्दयतापूर्वक अपनी प्रजा के शोषण के कार्य में लगी रहती थीं। इस प्रकार जहाँ एक ओर भारतीय रियासतें अपनी प्रजा के साथ गुलामों से भी बुरा व्यवहार करती थीं, वहाँ दूसरी ओर वह भारत के ब्रिटिश शासकों की खुशामद तथा 'जी हुजूरी' में लगी रहती थीं और उन्हें अपना संरक्षक मान कर उनकी इच्छा पर नीच से नीच कार्य करने के लिए सदा प्रस्तुत रहती थीं।

विभिन्न भारतीय रियासतों में भेद

जिस समय मुगल साम्राज्य के विनाश के पश्चात् भारत में देशी रियासतों का जन्म हुआ, तो सभी रियासतें एक ही प्रकार की न बनीं। विभिन्न स्थानीय शासकों, अमीरों, सेनाधिकारियों तथा जागीरदारों की सैन्य शक्ति के अनुसार उनकी रियासतों का अधिकार-क्षेत्र छोटा या बड़ा हो गया। इन्हीं सब रियासतों को बाद में ब्रिटिश सरकार ने मान्यता प्रदान कर दी और उनके साथ अलग अलग सन्धियों पर हस्ताक्षर कर दिये। इन सन्धियों में विभिन्न रियासतों को उनकी स्थिति के अनुसार अलग अलग अधिकार प्रदान किये गये। परिणाम यह हुआ कि जहाँ भारत की लगभग ६०० रियासतों में समानता एवं एकरूपता के चिह्न बहुत कम थे, वहाँ उनमें भिन्नता (Dissimilarities) अधिक

दृष्टिगोचर होती थी। उदाहरणार्थ समानता की दृष्टि से भारत की रियासतों में केवल निम्नलिखित एक-से लक्षण थे :—

(१) भारत की सभी रियासतें ब्रिटिश सत्ता के अधीन थीं। वह अन्तर्राष्ट्रीय कानून की दृष्टि से स्वतन्त्र रियासतें नहीं कही जा सकती थीं। वह किसी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की सदस्य नहीं हो सकती थीं। उनकी विदेशी नीति का संचालन भारत सरकार द्वारा किया जाता था।

(२) अपने आंतरिक शासन प्रबन्ध की दृष्टि से वह स्वतन्त्र थीं। भारतीय धारा सभा द्वारा बनाये गये कानून रियासतों में लागू नहीं किये जाते थे। ब्रिटिश भारत की अदालतों को भी रियासती प्रजा पर किसी प्रकार का अधिकार प्राप्त नहीं था।

(३) सभी रियासतों पर ब्रिटिश सम्राट् को सर्वाधिकार प्राप्त थे। दूसरे शब्दों में भारत की सभी रियासतें भारत सरकार की सार्वभौम सत्ता (Paramount Power) के अधीन रह कर कार्य करती थीं।

इनके अतिरिक्त अन्य सभी विषयों जैसे अधिकार क्षेत्र, जनसंख्या, आंतरिक संगठन, सम्राट् से सम्बन्ध, जनता के अधिकार इत्यादि में वह एक दूसरे से भिन्न थीं। उदाहरणार्थ—

(१) यदि एक ओर भारत में हैदराबाद और काश्मीर जैसी रियासतें थीं जो आज भी पहले जैसी ही बनी हुई हैं और जिनका प्रांतों में विलीनीकरण नहीं किया गया है, और जिनका क्षेत्रफल क्रमश: ८२,००८ वर्गमील तथा ८२,३१३ वर्गमील है, तो दूसरी ओर भारत में ऐसी छोटी छोटी रियासतें भी थीं जिनका क्षेत्रफल कतिपय एकड़ों में है।

(२) भारत में ऐसी रियासतें जिनका क्षेत्रफल १०,००० वर्गमील से अधिक था, १५ से ज्यादा नहीं थीं। इसके अतिरिक्त ६७ ऐसी रियासतें थीं जिनका क्षेत्रफल १००० तथा १०,००० वर्गमील के बीच में था। शेष रियासतों में २०२ ऐसी थीं जिनका क्षेत्रफल २० वर्गमील से भी कम था।

(३) आबादी की दृष्टि से भारत में केवल २६ ऐसी रियासतें थीं जिनकी जनसंख्या २० लाख से अधिक थी। इसके अतिरिक्त ऐसी रियासतों की संख्या जिनकी आबादी २० लाख से कम परन्तु ५ लाख से ऊपर थी १७ थी। शेष रियासतों की जनसंख्या बहुत साधारण थी। इनमें, विशेषकर शिमला तथा काठियावाड़ की रियासतों में, ऐसी भी बहुत-सी रियासतें विद्यमान थीं जिनकी जन-संख्या १००० से भी बहुत कम थी।

(४) आय की दृष्टि से भारत में केवल १६ ऐसी रियासतें थीं जिनकी वार्षिक आय १ करोड़ रुपये से अधिक थी, ७ रियासतों की आय ५० लाख तथा ७० लाख रुपये के बीच में थी। शेष रियासतों की आय बहुत कम थी। इनमें ऐसी रियासतें भी

थीं जिनकी आय एक साधारण कारीगर की आय से भी कम थी, परन्तु उनके क्षेत्र में ब्रिटिश भारत का कानून लागू न होने के कारण, वह रियासतें ही कही जाती थीं।

(५) *अधिकारों की दृष्टि से जहाँ कुछ रियासतों को ब्रिटिश सरकार से संधि के* अधीन, अपनी करेन्सी, रेल, डाकखाने, सेना इत्यादि रखने का अधिकार था, और विदेशी नीति को छोड़कर दूसरे प्रायः सभी मामलों में वह भारत सरकार से स्वतंत्र थीं, वहाँ हमारे देश में ऐसी भी अनेक रियासतें थीं, जिनके नरेशों को तृतीय दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार ही प्राप्त थे।

(६) शासन प्रबन्ध की दृष्टि से जहाँ कुछ रियासतों में ब्रिटिश भारत के समान प्रतिनिधि संस्थाएँ तथा आधुनिक ढंग की व्यवस्था थी, वहाँ अधिकतर रियासतों में मध्यकालीन युग की सामंतशाही प्रथा के अनुसार उनका शासन किया जाता था और *उनकी जनता को किसी भी प्रकार के राजनीतिक व आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।*

रियासतों का वर्गीकरण

रियासतों में विद्यमान इन्हीं विभिन्नताओं के कारण, हमारे अँग्रेज शासकों को उनके वर्गीकरण में अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। उनमें से यदि किसी ने संधियों, समझौतों तथा सनदों के आधार पर उनका वर्गीकरण किया तो कुछ दूसरों ने उनके आंतरिक शासन प्रबन्ध की दृष्टि से उनका विभाजन किया। इस विषय में 'बटलर कमेटी' का वर्गीकरण सबसे अधिक प्रामाणिक माना जाता है। इस कमेटी ने रियासतों को तीन वर्गों में विभक्त किया :—

(१) प्रथम वर्ग में कमेटी ने उन १०८ रियासतों को स्थान दिया जिन्हें 'नरेन्द्र मंडल' में व्यक्तिगत प्रतिनिधित्व मिला था। ऐसी रियासतों का क्षेत्रफल ५ लाख वर्ग-मील तथा जनसंख्या ६ करोड़ थी।

(२) द्वितीय वर्ग में कमेटी ने उन १२७ रियासतों को रक्खा जिन्हें नरेन्द्र मंडल में स्वयं बैठने का नहीं वरन् अपने १२ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया था। ऐसी रियासतों का क्षेत्रफल ८०,००० वर्गमील तथा जनसंख्या ८० लाख थी।

(३) तृतीय श्रेणी में कमेटी ने ३२७ रियासतों तथा जागीरों को रक्खा जिन्हें नरेन्द्र मंडल में किसी प्रकार का प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया था। इन रियासतों का क्षेत्रफल केवल ६४०० वर्गमील तथा जनसंख्या लगभग २५० लाख थी।

बटलर कमेटी ने रियासतों के आंतरिक शासन प्रबन्ध के आधार पर भी रियासतों का वर्गीकरण किया था। उस सिद्धान्त के आधार पर उसने कहा था कि भारत में सन् १६२६ में, ३० ऐसी रियासतें थीं जिनमें धारा सभाओं की व्यवस्था की गई थी, यद्यपि इन धारा सभाओं को केवल परामर्शदात्री अधिकार ही थे। इसके अतिरिक्त भारत में ४० ऐसी रियासतें थीं जिनमें हाईकोर्टों की प्रथा उसी प्रकार की थी जैसी वह ब्रिटिश

भारत में है। ३४ रियासतों में कार्यकारी (Executive) और न्यायकारी (Judicial) विभागों को अलग कर दिया गया था। ५६ रियासतों में नरेन्द्रों का व्यय निश्चित था। ५४ रियासतों में प्राविडेंट फंड तथा बोनस की प्रथा थी। शेष रियासतें इतनी पिछड़ी हुई थीं कि उनमें न किसी प्रकार की प्रतिनिधि संस्थाएँ थीं, न आधुनिक न्याय विभाग, न वहाँ नरेन्द्रों की आय निश्चित थी और न उनके अधिकार। उनका सङ्गठन अत्यन्त मध्ययुगी तथा सामन्तशाही आधार पर था।

नरेन्द्र मंडल

ऊपर जिस नरेन्द्र मंडल का जिक्र किया गया है उसका सङ्गठन मौंटफोर्ड सुधार योजना के अधीन ८ फरवरी सन् १९२१ को किया गया था। यह संस्था इसलिए बनाई गई थी जिससे रियासतों के नरेश पारस्परिक समस्याओं पर मिल कर विचार कर सकें। इस संस्था को किसी प्रकार के विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे और इसके निश्चय वायसराय के सम्मुख केवल सिफारिशों के रूप में प्रस्तुत किये जाते थे। परन्तु फिर भी इस संस्था का सङ्गठन इस दृष्टि से विशेष महत्त्व रखता था कि इससे पहले रियासतों के नरेशों को एक दूसरे के साथ किसी प्रकार के सीधे सम्बन्ध रखने अथवा राजनीतिक वार्ता करने का अधिकार नहीं था। ऐसा वह केवल राजनीतिक विभाग के माध्यम द्वारा कर सकते थे।

रियासतें तथा ब्रिटिश सरकार की सार्वभौम सत्ता (Indian States and Paramount Power)

रियासतों के सम्बन्ध में उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध उन्हें किसी भी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। उनका निर्माण तथा अस्तित्व ब्रिटिश सरकार की कृपा पर निर्भर था। उनका निर्माण तथा पालन, इसी दृष्टि से किया गया था कि वह अंग्रेज सरकार की अधिक से अधिक सहायता करें तथा भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ों को अधिक मजबूत बनायें। इसलिए रियासती नरेशों को जहाँ अपनी प्रजा के विरुद्ध हर प्रकार के तानाशाही अधिकार प्राप्त थे, वहाँ उन्हें ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध किसी भी प्रकार के अधिकार प्रदान नहीं किये गये थे। ब्रिटिश सरकार के रियासतों के विरुद्ध अधिकारों को 'सम्राट् के सार्वभौम अधिकार' (Paramount Powers of the Crown) के नाम से भी सम्बोधित किया जाता था। इन अधिकारों का विकास शनैः-शनैः हुआ और भारत स्थित सम्राट् के विभिन्न प्रतिनिधियों ने रियासतों के साथ हुई ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सन्धियों का इस प्रकार आशय लिया कि ब्रिटिश सरकार को रियासतों के आंतरिक व बाह्य—हर प्रकार के विषयों में हस्तक्षेप करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

आरम्भ में सन् १८५७ तक रियासतों का सम्राट् से कोई भी सम्बन्ध नहीं था।

इसके पश्चात् 'भारत विद्रोह' के बाद महारानी विक्टोरिया ने घोषणा की कि वह राजाओं के मान और विशेषाधिकारों की रक्षा स्वयं अपने मान और विशेषाधिकारों के समान करेंगी और सभी देशी नरेशों को अपनी अपनी प्राचीन प्रथाओं के अनुसार शासन करने की अनुमति होगी। ऐसी घोषणा इस दृष्टि से की गई थी कि जिससे भारतीय रियासतें भविष्य में सदा ब्रिटिश सरकार की मित्र बनी रहें और विद्रोही शक्तियों का साथ न दें। परन्तु जिस समय अंग्रेजी सत्ता भारत में अत्यन्त शक्तिशाली हो गई और उसे भारतीय नरेशों की सहायता की कोई विशेष अपेक्षा न रही, तो उसने रियासतों के आंतरिक व बाह्य विषयों में शनैः शनैः हस्तक्षेप करना आरम्भ कर दिया। उसने कहा यदि किसी राज्य में कुशासन है, प्रजा के साथ न्याय नहीं होता, जीवन और सम्पत्ति की रक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं है, राज्य की आर्थिक व्यवस्था उचित नहीं है तो ब्रिटिश सरकार सुशासन की दृष्टि से उस रियासत में हस्तक्षेप कर सकती है। वास्तव में अंग्रेजी सरकार प्रजा के हित में नहीं, वरन् प्रजा के हित साधन के नाम पर अपनी स्वार्थसिद्धि की पूर्ति के लिए ही रियासतों के आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप करती थी। यह हस्तक्षेप भारत सरकार के राजनीतिक विभाग व रियासतों में स्थित सम्राट् के दूत रैजिडैंट, पोलिटिकल एजेंट इत्यादि की सिफारिशों पर किया जाता था। परिणाम यह होता था कि देशी रियासतों के नरेश सदा राजनीतिक विभाग व उसके दूतों से डरते रहते थे और उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए सब प्रकार के उचित व अनुचित उपाय काम में लाते थे।

भारत की परतन्त्रता के २०० वर्षों से भी अधिक काल में हमें अनेक उदाहरण ऐसे देखने को मिलते हैं जहाँ ब्रिटिश सरकार ने ऐसे नरेशों के शासन में हस्तक्षेप किया जो राष्ट्रीय अथवा स्वतन्त्र विचार रखते थे, परन्तु जनता के अधिकारों की रक्षा अथवा रियासतों में प्रजातन्त्रात्मक संस्थाओं के संगठन के लिए उसने एक बार भी किसी नरेश के विरुद्ध कदम नहीं उठाया। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८७३ में बड़ौदा के महाराज को रैजीडैंट को विष देने के सन्देह मात्र पर ही गद्दी से अलग कर दिया। सन् १९२६ में उदयपुर तथा इन्दौर के महाराजाओं को गद्दी से निकाला गया। सन् १९२३ में नाभा नरेश को कैद किया गया। इसके पश्चात् रीवाँ के नरेश को गद्दी से हटाया गया।

सन् १९२६ में वायसराय लार्ड रीडिंग ने हैदराबाद के निजाम को एक पत्र लिख कर रियासतों के सम्बन्ध में सम्राट् की सार्वभौम सत्ता का इस प्रकार वर्णन किया —

"भारतवर्ष में ब्रिटिश सम्राट् की राजसत्ता सर्वोच्च है, अस्तु किसी भी देशी नरेश का ब्रिटिश सरकार से समता के आधार पर बातचीत करना वैध न होगा। यह सर्वोच्चता केवल सन्धियों या समझौतों पर आश्रित नहीं है पर उनसे स्वतन्त्र भी उसका अस्तित्व है। साथ ही विदेशी सम्बन्ध में सम्राट् का इन रियासतों पर विशेष अधिकार

है। ब्रिटिश सरकार का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह सन्धियों व समझौतों का ध्यान रखते हुए भारतवर्ष भर में शान्ति व सुव्यवस्था की रक्षा करे।"

भारतीय नरेशों ने भारत सरकार द्वारा अपनी रियासतों के आन्तरिक प्रबन्ध में बढ़ता हुआ हस्तक्षेप देखकर सन् १९२६ में सम्राट् से प्रार्थना की कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ हुई उनकी सन्धियों तथा समझौतों के आधार पर सार्वभौम सत्ता (Paramount Power) का अधिकार क्षेत्र निश्चित किया जाय और उन्हें बताया जाय कि उनके क्या अधिकार हैं। सम्राट् ने नरेशों की यह प्रार्थना स्वीकार करके, उसी वर्ष एक कमेटी बिठाई जिसके अध्यक्ष श्री बटलर थे। इस कमेटी ने रियासतों के सम्बन्ध में एक विस्तृत रिपोर्ट भारत सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट ने कहा कि, "रियासतों के सम्बन्ध में सम्राट् के क्या अधिकार हैं उनका निश्चय करना कठिन है। सार्वभौम सत्ता सार्वभौम है और वह सर्वोच्च ही रहेगी।" (Paramountcy is Paramountcy and must remain Paramount)

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार ने रियासतों के विरुद्ध अपने अधिकारों का कभी स्पष्टीकरण नहीं किया और समय और परिस्थिति की आवश्यकतानुसार वह सदा, उनके आन्तरिक व बाह्य, हर प्रकार के विषयों में हस्तक्षेप करती रही। हस्तक्षेप के इन उदाहरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि, संक्षेप में, रियासतों की सम्राट् के सम्मुख इस प्रकार स्थिति थी :—

(१) रियासतों की कोई अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति नहीं थी। वे दूसरे देशों में अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सकती थीं, यद्यपि भारत सरकार के प्रतिनिधियों में प्रायः एक प्रतिनिधि देशी रियासतों का भी सम्मिलित रहता था।

(२) वे विदेशों से सीधे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती थीं।

(३) सम्राट् की अनुमति के बिना कोई नरेश किसी विदेशी सरकार से कोई पद या मान स्वीकार नहीं कर सकता था।

(४) वायसराय की अनुमति के बिना कोई विदेशी किसी रियासत में नौकर नहीं रक्खा जा सकता था।

(५) ब्रिटिश सरकार से पासपोर्ट लिये बिना नरेश या देशी राज्यों का नागरिक विदेश नहीं जा सकता था।

(६) रियासतों की सेना ब्रिटिश भारत की सेना के आधार पर संगठित की जाती थी। लड़ाई या आन्तरिक विद्रोह के समय इस सेना को भारत सरकार की सहायता करनी पड़ती थी।

(७) रियासतों के नरेशों को गोद लेने या अपना उत्तराधिकारी निश्चित करने के लिए सम्राट् की अनुमति लेनी पड़ती थी।

(८) कुशासन या आर्थिक कुप्रबन्ध के आधार पर वायसराय जब चाहते किसी नरेश को गद्दी से निकाल सकते थे तथा उसकी रियासत का प्रबन्ध अपने अधीन ले सकते थे।

(६) नरेशों की शिक्षा दीक्षा, उनके शादी विवाह, भ्रमण व भाषण एवं दूसरी हलचलों पर भी वायसराय को नियन्त्रण रखने का पूर्ण अधिकार था।

(१०) रेल, तार, डाक या मुद्रा सम्बन्धी वायसराय द्वारा जारी की गई आज्ञाओं का पालन करना भी नरेशों के लिए अनिवार्य था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय रियासतें पूर्णरूपेण ब्रिटिश सत्ता के अधीन थीं। उनकी स्वतन्त्रता केवल नाममात्र की थी। जब तक रियासतों के नरेश ब्रिटिश सरकार की इच्छानुसार कार्य करते तथा अपने अँग्रेज रेजिडेंट और पोलिटिकल एजेन्टों को प्रसन्न रखते थे तब तक वह अपनी प्रजा के साथ जिस प्रकार का चाहते, व्यवहार कर सकते थे, परन्तु किसी समय भी यदि वह अपने शासकों के विरुद्ध स्वतन्त्र नीति से काम लेने का साहस करते तो उन्हें गद्दी छोड़ने के लिए उद्यत रहना पड़ता था।

रियासतें तथा उनकी जनता

परन्तु जहाँ ब्रिटिश सत्ता के समक्ष हमारी रियासतें इस प्रकार दास वृत्ति से व्यवहार करती थीं, वहाँ अपनी स्वयं की प्रजा के साथ उनका व्यवहार अत्यन्त स्वेच्छाचारी तथा अन्यायपूर्ण होता था। अधिकतर रियासतों में मध्यकालीन ढंग पर तानाशाही निरंकुश राज्य था। राजाओं की आज्ञा ही इन रियासतों में कानून थी। जनता को किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं थे। राजनीतिक अधिकारों का तो कहना ही क्या, नागरिक स्वतन्त्रता का अधिकार भी रियासतों की प्रजा के लिए दुर्लभ था। उन्हें भाषण देने, संघ बनाने, समाचार पत्र प्रकाशित करने, स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण करने अथवा कोई भी व्यवसाय एवं व्यापार करने की स्वतन्त्रता नहीं थी। अधिकतर रियासतों में न्याय का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। कानून बनाने, शासन चलाने तथा न्याय सञ्चालन करने का सब काम एक ही व्यक्ति अर्थात् रियासत के नरेश के हाथ में केंद्रित रहता था। राज्य में केवल वही लोग उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किये जाते थे जो राजाओं के परिवारों से सम्बन्धित होते थे अथवा जो खुशामदी, जी हुजूर, चपल, षड्यन्त्री एवं नैतिक आचरण की दृष्टि से अत्यन्त पतित और जो अपने राजाओं के विलासी जीवन के लिए उपयुक्त सामग्री जुटाने की क्षमता रखते थे। कुछ प्रगतिशील रियासतों को छोड़ कर शेष रियासतों के नरेशों का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त निकृष्ट था। रंग महलों में पड़े हुए रंगरेलियाँ मनाना, रनवास को सजाना, नई नई शादियाँ करना, शराब, जुआ, घुड़दौड़ आदि व्यसनों में पड़े रहना, दूसरे देशों में जाकर अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई

को व्यर्थ नष्ट करना, अंग्रेज शासकों के कर्मचारियों की खुशामद करना, यही उनका रात दिन का कार्य था। अपनी प्रजा की भलाई के लिए योजनाएँ बनाना, अथवा उनके दुख को अपना दुख एवं सुख को अपना सुख समझना, उनकी उन्नति तथा विकास के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करना, उनके लिए शिक्षा संस्थाएँ, चिकित्सालय, पुस्तकालय, वाचनालय इत्यादि खोलना, अपने राज्य के उद्योगधन्धे अथवा प्रजा की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए रचनात्मक कार्य करना, सड़क बनाना, पानी, बिजली अथवा आने जाने की सुविधाओं इत्यादि का प्रबन्ध करना—वह अपना कार्य नहीं समझते थे। वह स्वयं अपने लिए तो हर प्रकार के साजो-सामान व ऐशो इशरत की सामग्री चाहते थे—चाहते थे कि, रहने के लिए विशाल महल हों, एक जगह नहीं परन्तु सब सुन्दर स्थानों में, बिजली हो, आधुनिक काल की सभी सुविधाएँ हों, सुन्दर लान, बाग, बगीचे, खिलाड़ी खेलने के मैदान, रनिवास, पानी के झरने, लिफ्ट, सवारी के लिए रत्न-जटित, स्पेशल ट्रेन, हवाई जहाज, अस्त्र शस्त्र, दास दासियाँ लोगों की सलामी, फौज, बैंड, गाजेबाजे, नर्तक, नर्तकियाँ और सब कुछ—परन्तु अपनी जनता द्वारा इनमें से किसी भी वस्तु की दरकार करना वह रियासत के प्रति घोर राजद्रोह समझते थे। वह अपने को भगवान् का प्रतीक और प्रजा पर शासन करने के लिए स्वयं ईश्वर का भेजा हुआ दूत समझते थे। परन्तु जहाँ तक आचरण का सम्बन्ध था, देवता तो क्या, पशुओं से भी गया बीता उनका व्यवहार था। उनका सिद्धान्त था कि प्रजा राजा के लिए है, राजा प्रजा के लिए नहीं। प्रजा से हर प्रकार की बेगार लेना, बिना वेतन उनसे काम कराना, उनकी धन और सम्पत्ति को अपनी ही दौलत समझना, तरह-तरह के कर व टैक्स लगाकर उनका शोषण करना, अपने वैयक्तिक व्यय एवं पारिवारिक उत्सवों के लिए जनता से रकम वसूल करना, कभी शादी के लिए टैक्स लगाना तो कभी अपने जन्म दिन का उत्सव मनाने के लिए, कभी दावतों के लिए कर वसूल करना तो कभी महल बनाने के लिए, कभी जनता से त्यौहारों पर भेंट माँगना तो कभी दर्शन देने के उपलक्ष में—संक्षेप में प्रत्येक सम्भव उपाय से अपनी जनता का निर्दयतापूर्वक शोषण करना, उनका मुख्य काम था। वह अपनी प्रजा के साथ गुलामों से भी बुरा व्यवहार करते थे। वह उन्हें केवल एक ही बात की शिक्षा देते थे और वह यह कि 'प्रजा का धर्म है कि वह अपने राजा पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए सदा उद्यत रहे।" यही मुख्य कारण था कि जहाँ ब्रिटिश भारत की प्रजा केवल अंग्रेजों की गुलाम थी वहाँ हमारे देशी रियासतों की प्रजा एक दोहरी गुलामी का शिकार थी—एक अंग्रेज शासकों की, दूसरे अपने अत्याचारी नरेशों की।

आर्थिक स्थिति—रियासती प्रजा की आर्थिक दशा भी अत्यन्त हीन थी। कुछ बड़ी बड़ी रियासतों को छोड़कर छोटी रियासतों में न किसी प्रकार के उद्योग-धन्धे थे, न

कारखाने, न बड़ी बड़ी व्यापार की मण्डियाँ थीं, न आधुनिक बैङ्क और व्यवसाय। "व्यापार की आत्मा"—सड़कों, रेलों, मोटरों इत्यादि का भी उचित प्रबन्ध नहीं था। किसानों से जमीन का भारी लगान वसूल किया जाता था। जमींदारों, ठिकानेदारों तथा जागीरदारों के जुल्म के रक्षण के लिए किसी प्रकार के कानून नहीं थे। जमींदार जब चाहते, किसानों को अपनी जमीन से निकाल कर बाहर कर सकते थे। उन्हें तरह-तरह की बेगार करनी पड़ती थी। उनकी खेती की उन्नति के लिए किसी प्रकार की आधुनिक सुविधाएँ नहीं थीं। न उन्हें बोने के लिए अच्छा बीज ही मिलता था न खाद और न आधुनिक ढङ्ग के हल। जमीनों का किराया बहुत अधिक था और जमींदार जब चाहते, उसमें वृद्धि कर सकते थे। गाँवों में किसी प्रकार के घरेलू उद्योग धंधे न थे। नगरों में जहाँ कहीं छोटे मोटे कारखाने थे वहाँ पर मजदूरों की दशा अत्यन्त ही खराब थी। उनकी रक्षा के लिए किसी प्रकार के फैक्टरी कानूनों की व्यवस्था नहीं थी और उन्हें चौदह-चौदह, पन्द्रह-पन्द्रह घन्टे काम करने के लिए विवश किया जाता था।

शिक्षा का प्रबन्ध—भारत की लगभग ६०० रियासतों में से केवल ३ रियासतों—ट्रावनकोर, मैसूर तथा हैदराबाद में विश्वविद्यालय थे। सब रियासतों में कुल मिलाकर डिग्री कालेजों की संख्या ३० से अधिक नहीं थी। ४०० से अधिक रियासतों में एक भी हाई स्कूल नहीं था। पढ़े लिखे लोगों की संख्या सब रियासतों म मिला कर ३ प्रतिशत थी। केवल मैसूर रियासत में टेकनिकल शिक्षा का प्रबन्ध था।

राजनीतिक अधिकार—दक्षिण की कुछ रियासतों को छोड़कर शेष रियासतों में जनता को किसी प्रकार के राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। धारा सभाओं का सगठन केवल ३० रियासतों में था और उनमें भी अधिकतर सदस्य नरेशों द्वारा नामजद किये जाते थे। शेष रियासतों में किसी प्रकार की जनतन्त्रात्मक व्यवस्था नहीं थी। स्वायत्त शासन संस्थाएँ भी बहुत कम रियासतों म थीं। कुछ रियासतों में तो गुलामी की प्रथा भी चली आती थी। राजाओं के विवाहों में दास और दासियों को दहेज के रूप में देना राजस्थान की रियासतों की एक आम प्रथा थी।

रियासतों में स्वतन्त्रता आन्दोलन

इस प्रकार हम देखते हैं कि कुछ रियासतों को छोड़ कर शेष सभी रियासतों में प्रजा की दशा अत्यन्त खराब थी। इस दशा को सुधारने के लिए रियासती प्रजामण्डलों तथा कांग्रेस से सबंधित आल इंडिया स्टेट्स पीपुल्स कांग्रेस ने भारी आन्दोलन किया। परन्तु, भारत को स्वतन्त्रता मिलने से पहले देशी राज्यों में प्रजा की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। वह गुलामी की चक्की में ही पिसती रही। रियासतों में स्वतन्त्रता आन्दोलन के विषय में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं—एक तो यह कि हमारी

राष्ट्रीय कांग्रेस ने रियासतों के संग्राम में कोई सक्रिय भाग नहीं लिया, यद्यपि उसकी पूर्ण सहानुभूति इस आंदोलन के साथ थी और कांग्रेस के अनेक प्रमुख नेता जैसे पंडित जवाहरलाल नेहरू, पट्टाभि सीतारमैया इत्यादि स्टेट्स पीपुल्स कांग्रेस के भी नेता थे, और दूसरी यह कि यद्यपि रियासती प्रजा का स्वतन्त्रता संग्राम में बलिदान ब्रिटिश भारत से किसी प्रकार भी कम नहीं था, फिर भी देशी राज्यों में प्रचार के आधुनिक साधनों, विशेषकर समाचारपत्रों की कमी के कारण, इस प्रकार की घटनाएँ जनता को कम मालूम पड़ती थीं। ब्रिटिश भारत में जिन अत्याचारी तथा कठोर उपायों का अवलम्बन हमारे स्वतन्त्रता संग्राम को कुचलने के लिए किया गया, उससे कहीं अधिक दमन रियासती प्रजा को सहना पड़ा। फिर भी इस प्रकार की रोमांचकारी घटनाएँ समाचारपत्रों में प्रकाशित नहीं होती थीं। देशी रियासतों के नरेशों ने हमारे अंग्रेज शासकों का साथ केवल इसी बात में नहीं दिया कि उन्होंने अपने क्षेत्र में स्वतन्त्रता आंदोलन को बुरी तरह कुचला, वरन् आजादी के सिपाहियों पर गोली बरसाने के लिए उन्होंने भारत सरकार को भी अपनी सेनाओं की सेवाएँ अर्पित कीं। हमारे देशी राज्यों के नरेश, अंग्रेजों के इशारे पर सदा कठपुतली की तरह नाचते थे। यही कारण था कि कांग्रेस ने देशी राज्यों के मामले में हस्तक्षेप न करने की नीति का अवलम्बन किया और उसने सदा यह कहा कि देशी रियासतों की प्रजा की स्वतन्त्रता का प्रश्न समस्त भारत की स्वतन्त्रता के साथ जुड़ा हुआ है। जिस समय हमारे देश से ब्रिटिश सत्ता का अन्त हो जायगा और अंग्रेज हमारे देश से चले जायँगे तो रियासतें स्वतः ही स्वतन्त्र हो जायँगी, कारण देशी राज्यों की सामन्तशाही का एक मात्र आधार ब्रिटिश सत्ता थी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देशी रियासतों का स्वरूप

पिछले तीन वर्षों के इतिहास ने हमारे नेताओं की इस भविष्यवाणी को सच्चा साबित कर दिखाया है। १५ अगस्त, सन् १९४७ के तुरन्त पश्चात् हमारे देश की रियासती सत्ता की जड़ें हिल उठीं। यद्यपि हमारे अँगरेज शासक भारत छोड़ते समय द्वेष की अग्नि में, भारत को अनेक छोटे छोटे भागों में छिन्न-भिन्न देखने के लिए यह घोषणा कर गये थे कि रियासतों के ऊपर भारत सरकार को किसी प्रकार के सर्वभौम अधिकार (Paramount Rights) प्राप्त नहीं होंगे, और देशी रियासतें पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र होंगी, फिर भी स्वतन्त्र भारत के परिवर्तित वातावरण में नरेशों की यह हिम्मत न हुई कि वह भारत सरकार से अलग रह कर अपना अलग राज्य बनाते या अपनी प्रजा पर पूर्ववत् ही तानाशाही शासन लादे रहते। कुछ रियासतों ने प्रारम्भ में इस प्रकार की शरारतें करनी चाहीं। इनमें ट्रावनकोर, जूनागढ़, भोपाल तथा हैदराबाद की रियासतें प्रमुख थीं। परन्तु कुछ ही दिनों में इन रियासतों को यह अनुभव हो गया कि उनकी सत्ता का एक मात्र आधार ब्रिटिश-सेना हमारे देश से विदा हो चुकी थी, और उनकी

महत्त्वाकाक्षाओं को पूरा करने के लिए अब न उनकी प्रजा ही उनके साथ थी और न भारत सरकार की सैन्य शक्ति। सर्वप्रथम ट्रावनकोर सरकार के दीवान सर सी० पी० रामस्वामी अय्यर को, जो अपनी रियासत का भारतीय संघ से अलग रखना चाहते थे, अत्यन्त तिरस्कृत होकर अपना पद छोड़ना पड़ा। इसके पश्चात् जूनागढ़ रियासत में, जिसने पाकिस्तान के साथ मिलने की घोषणा की थी, अनेक उपद्रव हुए और जनता के प्रकोप से घबड़ा कर नवाब को पाकिस्तान में शरण लेनी पड़ी। इसके थोड़े दिन पश्चात् हैदराबाद की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया गया। उस रियासत में मुसलमानों का सबसे अधिक जोर था और वह पाकिस्तान के षड्यंत्रों का केन्द्र बन रही थी। कासिम रिजवी के धर्मान्ध नेतृत्व में, हैदराबाद के डेढ़ लाख रजाकार तथा निजाम, एक स्वतन्त्र, निरंकुश तथा सामन्तवादी सरकार बनाये रखने का स्वप्न देख रहे थे। भारत सरकार ने निजाम के साथ शांतिपूर्ण वार्ता करने के लिए कितने ही प्रयत्न किये। हैदराबाद राज्य भारत के मध्य में स्थित है। भारत सरकार अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा की दृष्टि से, किसी दशा में भी उसे एक स्वतन्त्र राज्य रह कर, भारत विरोधी शक्तियों का अड्डा बनाने की आज्ञा न दे सकती थी। परन्तु हैदराबाद के रज़ाकार अपनी शरारत में लगे हुए थे और उन्होंने निजाम को भारत सरकार की सभी उचित माँगों को ठुकरा देने के लिए बाध्य कर दिया। अन्त में, विवश होकर, *१३ सितम्बर सन् १९४८ के दिन, भारत सरकार का हैदराबाद राज्य के विरुद्ध पुलिस कार्यवाही करनी पड़ी।* चार दिन के पश्चात् हैदराबाद की सरकार ने हथियार डाल दिये और भारत सरकार से समझौते की प्रार्थना की। इस प्रकार कुछ ही दिनों में यह पुलिस कार्यवाही सफलतापूर्वक समाप्त हो गई।

हैदराबाद के उदाहरण के पश्चात् और किसी रियासत ने भारत सरकार के समस्त देश को एक सङ्गठित एवं शक्तिशाली राष्ट्र बनाने के कार्य में बाधा न डाली और सरदार पटेल के नेतृत्व में भारत की ५०० से अधिक रियासतें १५ इकाइयों में पूर्ण संगठित कर दी गई।

रियासतों का एकीकरण

भारतीय रियासतों के एकीकरण का आंदोलन उस समय आरंभ हुआ जब सरदार पटेल के नेतृत्व में भारत सरकार के अन्तर्गत जुलाई सन् १९४७ में एक रियासती विभाग खोला गया। सर्व प्रथम इस विभाग ने भारतीय रियासतों से अपील की कि वह भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए प्रवेशपत्र पर हस्ताक्षर कर दें। आरम्भ में इस प्रवेशपत्र में रियासत की सरकारों को *केवल तीन विषयों अर्थात् विदेश नीति,* रक्षा तथा यातायात का नियन्त्रण संघ सरकार को सौंपना था। परन्तु कुछ ही दिन पश्चात् भारत सरकार को अनुभव हुआ कि देश की नव प्राप्त स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने

के लिए आवश्यक है कि रियासतों तथा प्रांतों के अधिकार कम किये जायँ और भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना की जाय। इस उद्देश्य से एक ऐसे नये समझौते पर हस्ताक्षर कराये गये जिसके द्वारा संघ सरकार को रियासतों के ऊपर उन सभी विषयों पर प्रभुत्व प्राप्त हो गया जिनका वर्णन हमारे नव संविधान की संघ तथा समवर्ती सूची में किया गया है।

भारतीय संघ में सम्मिलित होने के पश्चात् देश की छोटी-छोटी रियासतों से प्रार्थना की गई कि वह भारत को एक शक्तिशाली, अविच्छिन्न राष्ट्र में संगठित करने के लिए अपने पड़ोसी प्रांत में मिल जायँ अथवा अपना कोई अलग संघ बना लें। इस नीति के अधीन बहुत शीघ्रता से काम लिया गया और सर्वप्रथम पहली जनवरी, सन् १९४८ को यह घोषणा की गई कि उड़ीसा प्रांत की २३ रियासतें उसी प्रांत में विलीन कर दी गई हैं। इसके पश्चात् मध्य प्रांत, पंजाब, बम्बई तथा बिहार राज्यों की छोटी-छोटी रियासतों का समाहार किया गया और उन राज्यों के नरेशों को वार्षिक पेन्शन के रूप में एक निश्चित रकम देकर विदा कर दिया गया। अंतिम रियासत कूच बिहार पहली जनवरी सन् १९५० को बंगाल राज्य में विलीन कर दी गई। बहुत-सी बड़ी-बड़ी रियासतों के संघ बना दिये गये और इस प्रकार दो वर्ष से भी कम समय में भारत की छाती पर स्थित सामन्तशाही के ५०० गढ़ समाप्त हो गये।

रियासतों के भारत में प्रवेश उनके विलीनीकरण तथा संघीकरण का क्रान्तिकारी परिणाम इस प्रकार हुआ :—

भारत की २१६ रियासतें प्रांतों में विलीन कर दी गई हैं। ऐसी रियासतों का कुल क्षेत्रफल १,०८,७३९ वर्गमील तथा जनसंख्या १,९१,५८,००० है।

भारत की ६१ रियासतें केन्द्र के अधीन ७ चीफ कमिश्नरों के प्रांतों में संगठित कर दी गई हैं। इन रियासतों में भोपाल, कच्छ, बिलासपुर, त्रिपुरा, मनीपुर, हिमाचल तथा विन्ध्यप्रदेश की रियासतें हैं। इनका कुल क्षेत्रफल ६३,७०४ वर्गमील तथा जनसंख्या ६९ लाख है।

अन्त में भारत की २७५ रियासतों को ५ संघों में संगठित किया गया है। इन संघों के नाम इस प्रकार हैं—सौराष्ट्र, पेप्सू, मध्य भारत, राजस्थान तथा ट्रावनकोर-कोचीन। इन संघों में सम्मिलित रियासतों का क्षेत्रफल २,१५,४५० वर्गमील तथा जनसंख्या ३४७ लाख है।

एकीकरण के क्रम से प्रभावित न होने वाले राज्य केवल ३ हैं अर्थात् मैसूर, हैदराबाद और जम्मू काश्मीर। इन तीनों रियासतों का भविष्य अभी अनिश्चित है। काश्मीर का प्रश्न संयुक्त राष्ट्र संघ के विचाराधीन है। मैसूर तथा हैदराबाद रियासत का भविष्य महाकर्नाटक तथा आन्ध्र राज्य के निर्माण के साथ जुड़ा हुआ है।

इस प्रकार भारत की ५०० से अधिक रियासतों की केवल १५ इकाइयाँ रह गई हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) सौराष्ट्र, (२) पेप्सू, (३) मध्य भारत, (४) राजस्थान, (५) ट्रावनकोर-कोचीन, (६) हिमाचल प्रदेश, (७) कच्छ, (८) बिलासपुर, (९) भोपाल, (१०) त्रिपुरा, (११) मनीपुर, (१२) विंध्य प्रदेश, (१३) मैसूर, (१४) हैदराबाद और (१५) जम्मू काश्मीर।

रियासती नरेशो की 'प्रिवी पर्स' का निश्चय

भारत सरकार ने एक निश्चित नीति के अधीन देश की समस्त रियासतों से इस प्रकार का समझौता किया है जिसके अधीन उनके नरेशों को अपनी समस्त राजसत्ता जनता के हाथों में सौंप देने के बदले में अपने व्यय के लिए एक निश्चित राशि, निम्न प्रकार, प्रतिवर्ष मिलती रहेगी।

उन रियासतों को जिनकी वार्षिक आय १ लाख या इससे कम है, आय का १५ प्रतिशत भाग 'प्रिवी पर्स' के रूप में दिया जायगा। इसके बाद, एक लाख से ५ लाख तक की आय पर १० प्रतिशत और ५ लाख से १० लाख तक की आय पर ७॥ प्रतिशत भाग 'प्रिवी पर्स' के रूप में दिया जायगा। किसी एक नरेश को अधिक से अधिक १० लाख रुपया वार्षिक दिया जा सकेगा। कुछ थोड़ी सी बड़ी बड़ी रियासतों के साथ इस नियम का पालन नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ हैदराबाद के निज़ाम के लिए, 'प्रिवी पर्स' की रकम ५० लाख रुपया वार्षिक निश्चित की गई है, बड़ौदा महाराज को २६॥ लाख रुपया दिया गया है, मैसूर के महाराज को २६ लाख, जयपुर व ट्रावनकोर के महाराज को १८ लाख, बीकानेर या पटियाला महाराज को १७ लाख, जोधपुर महाराज को १७॥ लाख तथा इंदौर महाराज को १५ लाख रुपया वार्षिक दिया गया है। परन्तु यह बढ़ी हुई राशि इन रियासतों के नरेशों को केवल उनके जीवन काल में ही दी जायगी। सब रियासतों को मिलाकर भारत सरकार को ५ करोड़ ६५ लाख रुपया प्रति वर्ष 'प्रिवी पर्स' के रूप में देना होगा। 'प्रिवी पर्स' की सबसे कम राशि १९२) रुपया वार्षिक कटोदिया (सौराष्ट्र) नरेश को दी गई है।

नरेशों की निजी सम्पत्ति के विषय में भी भारत सरकार ने विशिष्ट नियम बनाये हैं। इन नियमों के अधीन प्रत्येक नरेश को रहने के लिए दो महल दिये गये हैं—एक महल उसकी अपनी राजधानी में दूसरा किसी पहाड़ या समुद्र तट पर। नरेशों की दिल्ली में स्थित कोठियों के विषय में अभी अंतिम निश्चय नहीं हुआ है। इस विषय में अभी तक वार्ता जारी है। कृषि भूमि के सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि जो नरेश स्वयं कृषि करने में रुचि रखते हैं उन्हें कुछ भूमि दे दी जाय, परन्तु इस भूमि पर लगान इत्यादि के वही नियम लागू होंगे जो दूसरी प्रजा पर लागू होते हैं। पारिवारिक

आभूषण तथा हीरे जवाहिरात नरेशों के संरक्षण में रक्खे गये हैं। वह उनका विशेष उत्सवों पर उपयोग कर सकेंगे। परन्तु इन वस्तुओं को बेचने अथवा इधर-उधर करने का उन्हें अधिकार नहीं होगा। अधिकांश जागीरें नरेशों के हाथ से छीन ली गई हैं परन्तु उनके कम्पनियों इत्यादि में इस प्रकार के शेयर जो उन्होंने अपना निजी आय से खरीदे थे, उन्हीं के हाथों में छोड़ दिये गये हैं।

बहुत सी रियासतों में राजकोष तथा नरेशों के निजी कोष में किसी प्रकार का अंतर नहीं रक्खा जाता था। इन रियासतों के सम्पत्ति वितरण में भारी दिक्कतों का सामना करना पड़ा। हमारे देश की कितनी ही ऐसी रियासतें थीं जिनके नरेशों ने यह समझ कर कि अब उनकी राजसत्ता समाप्त होने वाली है, अपनी अटल धन-सम्पत्ति विदेशों को भेज दी और जिस समय उनके खजानों की जाँच पड़ताल की गई तो उनमें कुछ ही आने या रुपये देखने को मिले। इसी प्रकार की एक रोचक घटना नाभा रियासत में हुई जहाँ उस राज्य के पैप्सू संघ में समाहार के पश्चात्, खजाने में केवल ६ पैसे शेष मिले। नरेशों ने करोड़ों रुपया विदेश भेज कर दूसरे स्थानों पर बड़ी-बड़ी जायदादें खरीदीं तथा अनेक उद्योग धंधों में अपना रुपया लगाया। जहाँ इस प्रकार की घटनाएँ, अत्यन्त निंदनीय हैं और वह हमारे नरेशों के चरित्र पर अनुचित प्रकाश डालती हैं, वहाँ हमें यह न भूलना चाहिये कि भारतीय जनता के लिए, इस प्रकार की एक रक्तहीन क्रान्ति का मूल्य चुकाना स्वाभाविक ही था। यह सच है कि हमारे चरित्रहीन नरेशों ने अपनी प्रजा की गाढ़ी कमाई का करोड़ों रुपया अपने निजी ऐश व आराम के लिए हड़प कर लिया, परन्तु हमें यह समझ लेना चाहिये कि एक बार इस प्रकार का भारी बलिदान देकर, आगे आने वाले काल के लिए, अब हमारी प्रजा सुख और चैन का जीवन व्यतीत कर सकेगी और उसका वह अमानुषिक शोषण समाप्त हो जायगा जिसके कारण वह कभी अपना सर ऊपर न उठा सकती थी। रियासतों के नरेशों के हाथों से राजशाही शक्ति को छीन कर, सरदार पटेल ने सदा के लिए, भारतीय रियासतों की पीड़ित जनता के दुःखों का अन्त कर दिया है। वहाँ की जनता के बीच से अब शासक और शासित का भेद नष्ट हो गया है। आज हमारी देशी राज्यों की जनता को वही अधिकार प्राप्त हैं जो भारत के दूसरे प्रांतों की जनता को मिले हुए हैं।

भारतीय रियासतों की कुछ कठिन समस्याएँ

परन्तु देश के एकीकरण के पश्चात् हमें यह न समझ लेना चाहिये कि हमने भारत की देशी रियासतों की उपस्थिति से उत्पन्न सभी समस्याओं को सुलझा लिया है। यह सच है कि यह समस्याएँ अब इतनी जटिल नहीं रह गई हैं जितनी वह पहले थीं, और आशा है कि थोड़े ही समय में उनका कोई उचित हल निकल आयेगा। परन्तु इस कारण हमें अपने प्रयत्नों में किसी प्रकार की ढील नहीं छोड़नी चाहिये।

रियासतों के विलीनीकरण एवं एकीकरण के कारण जो नई समस्याएँ हमारे देश में उत्पन्न हो गई हैं उनका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है —

(१) रियासतों की आय की समस्या—एकीकरण की नीति को अपनाने से पहले रियासतें हर प्रकार के 'कर' लगाने के लिए स्वतन्त्र थीं। समुद्र तट पर स्थित कुछ रियासतें बाहर से आने वाले माल पर भी कर लगा सकती थीं। आय कर, नमक कर, रेल, डाकखाने तथा मिंट से होने वाली आय, रियासतों में बाहर से आने वाले माल पर कर, इत्यादि मदों से होने वाली आय रियासतों को मिलती थीं। नव संविधान के अन्तर्गत रियासतों को केवल वही कर लगाने का अधिकार होगा जो भारत के दूसरे राज्यों में लगाये जायँगे। इस कारण कुछ रियासती सङ्घों की आय बहुत कम हो जायगी और वह अपनी जनता के लिए वही सुविधाएँ उपलब्ध नहीं कर सकेंगी जिनकी उन क्षेत्रों की जनता को स्वतन्त्रता का अनुभव कराने के लिए आवश्यकता है। भारत सरकार ने रियासतों की इसी समस्या को सुलझाने के लिए सर वी० टी० कृष्णमाचारी के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई। इस कमेटी ने निम्न सिफारिशें कीं —

(१) रियासतों को अपने क्षेत्र में भारत के विभिन्न प्रान्तों से आने वाले माल पर चुंगी (International Cus oms Duties) नहीं लगानी चाहिये। इस प्रकार की चुंगी हैदराबाद, राजस्थान, मध्य भारत, सौराष्ट्र और विंध्य प्रदेश में लगाई जाती थी। विंध्य प्रदेश और सौराष्ट्र में इस प्रकार की चुंगी पहली अप्रैल, १९५० से अवैध घोषित कर दी गई है। दूसरी रियासतों के लिए सङ्घ सरकार ने ४ से ५ वर्ष तक की मुहलत दी है। इस बीच में यह रियासतें चुंगी की प्रथा को समाप्त कर बिक्री टैक्स के द्वारा अपनी आर्थिक हानि को पूर्ण कर लेंगी।

(२) आय कर (Income tax) के सम्बन्ध में कमेटी ने कहा है कि रियासतों को यह कर उसी दर से लगाना चाहिये जैसा वह भारत के विभिन्न प्रान्तों में लगाया जाता है। इस कर से होने वाली आय केंद्रीय सरकार को मिलती है, परन्तु राज्य की सरकारों को उसमें ५५ प्रतिशत भाग दिया जाता है। रियासतों को भी इसी अनुपात से आयकर का भाग दिया जायगा। आरम्भ में कमेटी ने सिफारिश की है कि रियासतों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह अपने क्षेत्र म आय कर की दर धीरे धीरे बढ़ायें, जिससे उनकी आर्थिक व्यवस्था पर एकदम बुरा प्रभाव न पड़े। भारत सरकार ने इस सम्बन्ध में रियासतों को २ से ६ वर्ष तक का समय दिया है। इसके पश्चात् सभी रियासतों में आय कर उसी प्रकार वसूल किया जायगा जैसे वह शेष भारत में किया जाता है और रियासतों को आयकर से होने वाली आमदनी में समान रूप से भाग दिया जायगा।

(३) रेल, डाकखाने, करन्सी, मिन्ट, ऑडिट तथा ब्रॉडकास्टिंग विभागों पर रिया

सभी सरकारों का आधिपत्य पहली अप्रैल १९५० से समाप्त कर दिया गया है। कमेटी की सिफारिशों के अधीन यह सभी महकमे तथा इनसे होने वाली आय संघ सरकार को सौंप दी गई है।

(४) देश के आर्थिक एकीकरण से जिन रियासतों को विशेष आर्थिक हानि होगी और जिनमें हैदराबाद, मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन तथा सौराष्ट्र मुख्य हैं, उनके लिए कमेटी ने सिफारिश की है कि संघ सरकार ऐसी सभी रियासतों को पाँच वर्ष तक सहायता देगी। इसके पश्चात् रियासतों तथा भारत के दूसरे सभी राज्यों की आर्थिक स्थिति की जाँच एक 'राजस्व कमीशन' द्वारा कराई जायगी और संविधान में कहा गया है कि इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर आगे चल कर भारत का आर्थिक सङ्गठन किया जायगा।

इस प्रकार यद्यपि कृष्णमाचारी कमेटी ने देश के एकीकरण से होने वाले आर्थिक कष्ट को निवारण करने का समुचित प्रयत्न किया है, परन्तु आने वाले चार या पाँच वर्ष हमारे देश के लिए ऐसे होंगे जिसमें अत्यन्त सावधानी से कार्य करने की आवश्यकता है, और जिस बीच केन्द्रीय सरकार को रियासती सर्चों की आर्थिक व्यवस्था पर विशेष नियन्त्रण रखने की आवश्यकता होगी।

(२) सैनिक समस्या—रियासतों की दूसरी गुत्थी सेना की समस्या है। अंग्रेजों के काल में प्रायः प्रत्येक रियासत अपनी अलग सेना रखती थी। यह सेना युद्ध या आंतरिक अशान्ति के समय अंग्रेजी सरकार का साथ देती थी। नव संविधान के अन्तर्गत देश की रक्षा व सेना के सङ्गठन का पूर्ण कार्य संघ सरकार को सौंपा गया है। इसलिए रियासतों को आदेश दिया गया है कि वह अपने क्षेत्रों में केवल इतनी ही सेना रक्खें जितनी संघ सरकार द्वारा उनके लिए निश्चित की जाय। ऐसी सेना का समस्त व्यय संघ सरकार द्वारा दिया जायगा। रियासतों को अपनी शेष सेना कम करनी होगी। ऐसा करने से कुछ रियासतों में बेकारी की समस्या बढ़ जायगी, परन्तु संघ सरकार ने रियासतों से अपील की है कि वह छटनी में आने वाले सैनिकों को अपने राज्य की पुलिस में भर्ती करने का प्रयत्न करें।

(३) सुशासन की समस्या—देश के एकीकरण से उत्पन्न होने वाली समस्याओं में रियासतों की सब से कठिन समस्या कुशल सरकारी प्रबन्ध की समस्या है। अंग्रेजों के काल में हमारी रियासतों का शासन प्रबन्ध अत्यन्त निकृष्ट कोटि का था। वहाँ सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति उनकी योग्यता के आधार पर नहीं वरन् उनकी चापलूसी के आधार पर की जाती थी। नरेश जब चाहते किसी सरकारी कर्मचारी को हटा सकते थे। जनता में शिक्षा का प्रचार अत्यन्त सीमित था। प्रतिनिधि संस्थाओं के कार्य के संचालन का उन्हें किसी प्रकार का अनुभव नहीं था। जनता में एक शिक्षित

व जाग्रत लोकमत की भारी कमी थी। फिर भी रियासतों का शासन प्रबन्ध इस कारण निर्विघ्न रूप से चलता था कि जनता शासकों के कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करती थी, और वह हर प्रकार का दमन व अत्याचार सहने की आदी बन गई थी। परन्तु भारत को स्वाधीनता प्राप्त होने तथा रियासतों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डलों के बन जाने के पश्चात् हमारी रियासतों का शासन स्तर और भी नीचे गिर गया है। इसका मुख्य कारण हमारी रियासतों में अनुभव प्राप्त राजनीतिज्ञों की कमी तथा सरकारी कर्मचारियों की अयोग्यता है।

ब्रिटिश भारत में प्रतिनिधि संस्थाएँ बहुत काल से कार्य करती चली आ रही थीं। जनता के बहुत से नेताओं को शासन प्रबन्ध का समुचित ज्ञान प्राप्त था। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत में अंग्रेजों के काल का शासन प्रबन्ध अत्यन्त उच्चकोटि का था। सरकारी कर्मचारी अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी व्यक्ति होते थे। इस कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्, जनता के प्रतिनिधियों के हाथ में शासन शक्ति के आ जाने से, जहाँ ब्रिटिश भारत के शासन प्रबन्ध में कोई विशेष शिथिलता नहीं आई, वहाँ हमारी रियासतों का शासन प्रबन्ध अत्यन्त ही दोषपूर्ण हो गया। रियासती संघों में लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बन गये परन्तु मन्त्री ऐसे व्यक्ति बने जिन्हें शासन का किसी प्रकार का अनुभव प्राप्त नहीं था। वह केवल प्रजा मण्डलों के साधारण कार्यकर्ता थे। इसके अतिरिक्त मन्त्रिमण्डलों की सहायता व उनके मार्ग प्रदर्शन के लिए मैसूर, ट्रावनकोर-कोचीन व मध्य भारत को छोड़कर पिछले आम चुनावों से पहले, और किसी रियासत में विधान सभाएँ नहीं थीं। स्वभावतः ऐसी रियासतों में शासन का स्तर अत्यन्त नीचे गिर गया और रियासती प्रजा को यह अनुभव होने लगा कि इस प्रकार के शासन से नरेशों का शासन कहीं अच्छा था।

आजकल रियासतों की सबसे जटिल समस्या अच्छी सरकार की समस्या है। रियासतों में राजनीतिक साइनबोर्ड अवश्य बदल गया है, नरेशों के स्थान पर अब उन क्षेत्रों में लोकप्रिय सरकारें हैं, परन्तु ये सरकारें ऐसी हैं जो रियासती जनता को अधिक सुख नहीं पहुँचा सकी हैं।

रियासतों में अनुभव प्राप्त उच्च सरकारी कर्मचारियों की भी भारी कमी है। इस प्रकार के अधिकतर कर्मचारी केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भेजे गये हैं। परन्तु जब तक रियासती जनता में से स्वयं इस प्रकार के अनुभव प्राप्त सरकारी कर्मचारियों का निर्माण नहीं होता तब तक उन क्षेत्रों का शासन प्रबन्ध नहीं सुधर सकता।

रियासत के शासन प्रबन्ध को सुधारने के लिए आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में शीघ्र ही (१) जनता में शिक्षा के प्रसार के लिए शिक्षा संस्थाओं की व्यवस्था की जाय, (२) लोकमत को जाग्रत व सचेत बनाने के लिए ऐसे राजनीतिक दलों का निर्माण

किया जाय जिनका आधार साम्प्रदायिकता की भावना का प्रचार न हो, (३) रियासती जनता में से प्रतियोगिता के आधार पर उच्च सरकारी कर्मचारियों की भरती का प्रबन्ध किया जाय, तथा अन्त में (४) रियासतों के न्याय विभाग को आधुनिक ढङ्ग पर संगठित करने के लिए उनमें अत्यन्त योग्य एवं निष्पक्ष व्यक्तियों की नियुक्ति की जाय।

इन्हीं सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हमारे नव संविधान में प्रथम दस वर्षों के लिए रियासती सङ्घों को आदेश दिया गया है, कि वह रियासती मन्त्रालय के अधीन रह कर कार्य करें तथा उसकी आज्ञाओं को मानें। इस सम्बन्ध में संविधान की विस्तृत धाराओं का वर्णन हम पहले ही कर चुके हैं।

(४) आर्थिक समस्या—रियासती सङ्घ की चौथी समस्या उनकी प्रजा की गरीबी की समस्या है। अंग्रेजों के काल में रियासती जनता का जिस प्रकार उनके नरेशों तथा सामन्तों द्वारा निर्दयतापूर्वक शोषण किया जाता था उसकी कहानी सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इन रियासतों में यदि एक ओर राजा और उसके कुछ निकट सम्बन्धी जागीरदार अथाह धन और ऐश्वर्य की आनन्दमयी सरिता में गोते लगाते थे, तो दूसरी ओर उनकी प्रजा निर्धनता, अज्ञान्धता, आश्रयहीनता तथा भूख और प्यास की अग्नि में धधक-धधक कर अपने प्राणों की बलि देती थी। इन रियासतों में मध्य वर्ग (Middle Class) जैसी जनता की कोई श्रेणी ही नहीं थी। या तो एक बड़े बड़े महलों या राजप्रासादों में रहने वाले कुछ मुट्ठी भर सामन्त थे या दूसरी ओर भूख प्यास से त्रस्त, टूटे-फूटे झोंपड़ों में रहने वाली, अपढ़ जनता थी। जनता के यह भोले भाले पेट अपने नरेशों की धन-पिपासा को शान्त करने के लिए ही काम करते थे। उनकी कमाई का अधिकतर भाग राजाओं के लिए भोग-विलास की सामग्री एकत्रित करने के काम में ही आता था। अधिकतर रियासतों में न किसी प्रकार के आधुनिक उद्योग धन्धे थे, न बड़ी-बड़ी व्यापार की मण्डियाँ। इन क्षेत्रों की ६५ प्रतिशत जनता कृषि के ही सहारे अपना निर्वाह करती थी। स्वभावतः जनता की आर्थिक दशा हीन थी। और वह सामन्तों के जुल्म और अत्याचार के नीचे इतनी दबी हुई रहती थी कि उसे कभी अपने चारों ओर देखकर अपनी दशा को सुधारने का विचार न आता था।

आज रियासतों के एकीकरण के पश्चात् उनके शासकों के सम्मुख अपनी प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने की सबसे कठिन समस्या है। हमारी रियासती जनता को स्वतंत्रता के वातावरण का उस समय तक कोई अवकाश नहीं हो सकता जब तक उसे खाने के लिए दो समय भोजन तथा तन ढाँकने के लिए कपड़े न मिलें। हमारे लोकप्रिय रियासती मन्त्रिमण्डलों को इसलिए चाहिये कि वह अपनी जनता की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए आधुनिक कृषि, उद्योग तथा व्यापार के तरीकों को प्रोत्साहन दें।

(५) *प्रादेशिक भक्ति की समस्या*—अन्त में हमारे देशी राज्यों की प्रजा को अपने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है। अभी तक रियासतों की जनता सहस्रों वर्षों से एक ही प्रकार के राजतन्त्रीय शासन प्रबन्ध के अधीन रह कर, यह न समझ पाई है कि प्रजातन्त्र शासन उनके अपने राज्य प्रबन्ध का नाम है। राजतंत्रीय शासन कभी प्रजातन्त्र शासन से अच्छा नहीं हो सकता। कारण उसमें देश की असंख्य जनता को अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर नहीं मिलता। आज कितने ही देशी राज्यों के व्यक्ति अपने पुराने नरेशों को याद करते और कहते हैं कि ऐसे जनराज्य से तो हमारा पहला राज्य ही अच्छा था। वह यह भूल जाते हैं कि अच्छा शासन स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता। आरम्भ में प्रत्येक देश के लोग ही, नई-नई राज्यसत्ता अपने हाथ में आने के समय, शासन प्रबन्ध में त्रुटियाँ किया करते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात् शिक्षित तथा जागरूक लोकमत उन्हें जनमत के हित में कार्य करने को बाध्य कर देता है।

एक और दशा में भी हमारी देशी राज्यों की जनता को अपना दृष्टिकोण बदलने की आवश्यकता है। वह यह है कि अभी तक इन क्षेत्रों की जनता अपने आपको एक बहुत छोटी रियासत का एक नागरिक समझती आई है। वह उस छोटे क्षेत्र के प्रति ही अपनी राजभक्ति का प्रदर्शन करती है। उदाहरणार्थ जोधपुर रियासत के व्यक्ति वृहद् राजस्थान संघ में सम्मिलित होने के बाद भी यही समझते हैं कि वह जोधपुरी हैं और जोधपुर तो उनका अपना है, परन्तु बीकानेर, या उदयपुर या जयपुर नहीं। इस प्रकार की प्रादेशिक सङ्कुचित राजभक्ति की भावना राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक सिद्ध होती है और देश में एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण नहीं होने देती। हमारे रियासती संघों की सरकारों को इसलिए चाहिये कि वह इस प्रकार की भावना का अन्त करने के लिए कोई प्रयत्न बाकी न रक्खें। भारतीय जन जीवन से प्रादेशिकता के इस विष को हम जितना शीघ्र दूर कर सकें उतना अच्छा है।

भारत की ५०० रियासतों का एकीकरण करके, हमारे राष्ट्र निर्माता सरदार पटेल ने देश का जैसा हित साधन किया है, वैसा कोई एक व्यक्ति भारतीय इतिहास में आज तक नहीं कर सका। आज भारतीय राष्ट्र की मजबूत नींव रक्खी जाने का कार्य सम्पन्न हो चुका है। आवश्यकता अब इस बात की है कि हम इस सुदृढ़ नींव पर एक ऐसे नव समाज तथा राष्ट्र का निर्माण करें जिसकी कीर्ति विश्व के चारों कोनों में फैलती रहे और जो सदा उन्हीं सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता रहे जिनके लिए हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने अपने सारे जीवन-कार्य किया तथा जिसका प्रचार करने के लिए अन्त में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति दे दी।

योग्यता-प्रश्न

१. 'स्वतन्त्र भारत का सबसे महान् कार्य देश का एकीकरण है।' इस कथन की यथार्थता को समझाइये।

२. स्वतन्त्रता से पहले भारतीय रियासतों में प्रजा की क्या दशा थी? उस दशा में अब तक क्या सुधार हुआ?

३. अङ्गरेजों के काल में रियासतों का वर्गीकरण किस प्रकार किया जाता था? आजकल वह किस आधार पर किया जाता है?

४. रियासतों का वर्तमान शासन प्रबन्ध कैसे किया जाता है? कुछ रियासतों को बी और कुछ को सी श्रेणी में क्यों रक्खा गया?

५. नये संविधान के अन्तर्गत रियासतों में विधान सभा तथा मंत्रिमंडल बनाने के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था की गई है?

६. रियासतों के नरेशों के साथ प्रिवी पर्स का निश्चय किस आधार पर किया गया है? क्या यह प्रबन्ध अनुचित है?

७. रियासतों की वर्तमान समस्याएँ क्या हैं? वे किस प्रकार सुलझाई जा सकती हैं?

अध्याय १४

भारत में सरकारी नौकरियाँ

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में, नए संविधान के अन्तर्गत, हमने संघ तथा राज्यों की सरकारों के संगठन का अध्ययन किया है। परन्तु यह संगठन उस समय तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक हम सरकार के यंत्र को चलाने वाली संस्था अर्थात् सरकारी नौकरों के संगठन का अध्ययन न करें।

स्थायी सरकारी नौकरों की प्रथा का महत्त्व

पिछले अध्यायों में हमने देखा है कि सरकार की नीति का संचालन करना मन्त्रियों का काम होता है। इसीलिए हम कहते हैं कि जब एक मन्त्रिमंडल के स्थान पर दूसरा मन्त्रिमंडल बन जाता है तो सरकार बदल जाती है। परन्तु मन्त्रियों द्वारा निर्धारित नीति का संचालन करना सरकारी नौकरों का काम होता है। मन्त्री स्वयं सरकार के विशाल संगठन को नहीं चला सकते। वह केवल सरकारी संगठन का नेतृत्व कर सकते हैं। मन्त्रियों तथा विधान मंडल द्वारा निर्धारित नीति को कार्य रूप में परिणत करना उन सरकारी नौकरों का काम होता है जो मन्त्रिमण्डल के बदलने पर अपने स्थान का त्याग नहीं करते, वरन् जो कोई भी मन्त्रिमंडल शासनारूढ हो, उसकी ही आज्ञानुसार सरकारी काम को चलाते हैं और देश के विभिन्न भागों में सरकारी आज्ञाओं का पालन करते हैं।

प्रजातन्त्रीय सिद्धान्त के अन्तर्गत सरकार का कार्य इसी कारण कुशलतापूर्वक चलता है कि मन्त्रियों को उन सरकारी नौकरों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होता है जो अपना सारा जीवन एक ही प्रकार के कार्य में लगा कर उसमें पूर्ण रूप से दक्षता तथा अनुभव प्राप्त कर लेते हैं। यदि इस प्रकार के सरकारी नौकरों के संगठन की व्यवस्था न होती, और मन्त्रिमंडल के परिवर्तन के साथ-साथ, पुराने सरकारी नौकरों को भी अपना स्थान त्याग करना पड़ता, तो अनुभवहीन मन्त्री तथा नये सरकारी कर्मचारी देश का शासन नहीं चला सकते थे। आजकल प्रजातन्त्र शासनों के अन्तर्गत हम देखते हैं कि एक व्यक्ति जिसे शासन का कोई भी अनुभव प्राप्त नहीं होता, तथा जिसने पहले कभी उस प्रकार का काम ही नहीं किया होता, वह भी जनता का विश्वासपात्र होने के कारण सरकार का मन्त्री बन सकता है। इंगलैंड की सरकार में कितने ही ऐसे व्यक्ति भारत मंत्री बन जाते थे जिन्होंने कभी भारत को देखना तो क्या इसके विषय में कभी गूढ़ अध्ययन भी नहीं किया था। परन्तु ऐसे मंत्री भी अपने कार्य में इस कारण पूर्ण सफलता प्राप्त करते थे कि उन्हें अपने अधीन उन स्थायी, सरकारी कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त होता था

जो वर्षों तक एक ही प्रकार का कार्य करते रहने के कारण, उसमें पूर्ण रूप से दक्षता प्राप्त कर लेते थे। अच्छे, कुशल, परिश्रमी तथा ईमानदार सरकारी कर्मचारियों का संगठन, इसलिए प्रजातन्त्र शासन की सफलता के लिए अनिवार्य आवश्यक है।

अँगरेजों के काल में भारत में सरकारी नौकरियों का संगठन

प्रजातन्त्र शासन के अन्तर्गत ही नहीं, दूसरे हर प्रकार के सरकारी संगठनों के अधीन सरकारी नौकरों की कुशल व्यवस्था की आवश्यकता होती है। निरंकुश शासनों में सरकारी नौकर ही सारे देश का शासन चलाते हैं। ऐसे राज्यों में जनता को सरकारी काम में हस्तक्षेप करने का किसी प्रकार का अधिकार नहीं दिया जाता। उसका काम केवल राजाज्ञाओं का पालन करना होता है। इसलिए इस प्रकार की व्यवस्था में सरकारी नौकरों को अपने कार्य में और भी अधिक दक्ष होने की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु इस प्रकार का सरकारी संगठन जीवशक्तिहीन, निरंकुश, अत्याचारी तथा जनता से अत्यधिक दूर रह कर कार्य करता है। इसका एकमात्र उद्देश्य राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था (Law and order) कायम रखना रह जाता है। वह जनता की सेवा तथा उत्थान का कार्य नहीं करता। जनता को किसी प्रकार की राजनीतिक शिक्षा प्राप्त नहीं होती, उसमें आत्म विश्वास का निर्माण नहीं होता तथा उसका नैतिक स्तर निरन्तर गिरता रहता है।

नौकरशाही (Bureaucracy)

अँग्रेजों के काल में इसी प्रकार का सरकारी संगठन हमारे देश में विद्यमान था। उस सरकारी संगठन को हम नौकरशाही या ब्यूरोक्रेसी के नाम से संबोधित करते थे। इस संगठन के अन्तर्गत सरकारी नौकर अपने आपको जनता का सेवक नहीं उसका स्वामी समझते थे। जनता स्वयं सरकारी अधिकारियों को अपना 'माई-बाप' कहकर सम्बोधित करती थी। सरकारी नौकर जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी नहीं होते थे। वह अँग्रेज शासकों की गुलामी करते थे परन्तु भारतीय जनता को हर प्रकार से कुचलते थे। इस प्रकार का सरकारी संगठन अत्यन्त अनुत्तरदायी तथा स्वार्थपूर्ण होता था और वह एक लोहे की, जीवनहीन, मशीन के समान एक बँधी हुई लकीर के आधार पर कार्य करता था। उसमें विचार शक्ति का अभाव था, वह जनता का हितचिन्तन नहीं कर सकता था। वह अत्याचारपूर्ण उपायों से जनता का शोषण तथा उसका दमन करता था।

इंडियन सिविल सर्विस

अँग्रेजों के काल में इस प्रकार के भारतीय सरकारी संगठन की द्योतक हमारी 'इंडियन-सिविल-सर्विस' थी। इस सर्विस के सदस्य भारत सरकार द्वारा नहीं वरन्

इगलैंड में 'भारत मत्री' द्वारा भर्ती किये जाते थे। इस सर्विस के अधिकतर सदस्य अँग्रेज होते थे और उन्हीं को उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त किया जाता था। शिक्षा के दौरान में इन अधिकारियों को केवल यह बताया जाता था, कि वह किस प्रकार भारत में वहाँ की जनता से दूर रहकर देश में शान्ति व सुव्यवस्था बनाये रखने के कार्य में सफल हो सकते हैं। उन्हें इस बात की शिक्षा नहीं दी जाती थी कि वह जनता की किस प्रकार अधिक से अधिक सेवा कर सकते हैं। इसीलिए आज भी हम देखते हैं कि इस पुरानी सर्विस के जो लोग भी सरकारी नौकरियों में शेष हैं, वह भारत के परिवर्तित वातावरण में भी उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जैसे वह जनता के सेवक नहीं उसके स्वामी हों। उनमें दम्भ, घमण्ड तथा झूठे स्वाभिमान के अधिक चिह्न देखने को मिलते हैं। वह साधारण जनता के साथ रहना अथवा उससे सम्पर्क बढ़ाना पसन्द नहीं करते। जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों यहाँ तक कि मन्त्रियों को भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं। यह समझते हैं कि देश का शासन चलाने की एकमात्र योग्यता केवल उनमें है और जनता के चुने हुए प्रतिनिधि मूर्ख, अनुभवहीन तथा अव्यावहारिक हैं।

जहाँ मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से 'इडियन सिविल सर्विस' के लोगों में उपरोक्त सभी बुराइयाँ हैं, वहाँ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि शासन के कार्य में वह व्यक्ति अत्यन्त ही निपुण तथा दक्ष हैं। अँग्रेजों के काल में इन लोगों को इस प्रकार की उच्च शिक्षा दी जाती थी कि वह अपने पाठ्यक्रम का पूरा करने के पश्चात् सरकारी काम में हर प्रकार से कुशल हो जाते थे। उनकी भरती एक अत्यन्त कठिन परीक्षा तथा प्रतियोगिता के आधार पर की जाती थी। इस परीक्षा में केवल वही व्यक्ति उत्तीर्ण हो पाते थे जो अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि तथा परिश्रमी होते थे। इगलैंड के अतिरिक्त सारे भारतवर्ष से जिसमें उस समय पाकिस्तान भी सम्मिलित था, केवल तीन या चार व्यक्ति प्रति वर्ष इण्डियन सिविल सर्विस के लिए चुने जाते थे। स्वभावत यह व्यक्ति ऐसे होते थे, जिनको सारे देश का मथा हुआ 'मस्तिष्क' कहा जा सकता था।

इडियन सिविल सर्विस का इतिहास

कुछ अशों में, भारत में राजनीतिक चेतना के सञ्चार का मूल कारण, हम इडियन सिविल सर्विस के साथ जोड़ सकते हैं।

जिस समय, सन् १८८५ तक, भारत म राष्ट्रीय काग्रेस की स्थापना भी नहीं हुई थी और जनता स्वराज्य के नाम से भी अनभिज्ञ थी, उस समय इण्डियन सिविल सर्विस में भारतीयों की भर्ती का प्रश्न लेकर ही कुछ व्यक्तियों ने सारे देश में राजनीतिक चेतना का सञ्चार किया था। इस सर्विस का संगठन ईस्ट इडिया कम्पनी के काल में उस समय हुआ था जब अँग्रेजों को भारत का शासन चलाने के लिए अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी अधिकारियों की आवश्यकता थी। आरम्भ में 'कम्पनी' के डाइरेक्टरों के

रिश्तेदार अथवा कृपापात्र ही इस सर्विस में भर्ती किये जाते थे, परंतु ब्रिटिश सरकार को आगे चलकर जब यह अनुभव हुआ कि किसी दूसरे देश में शासन चलाने के लिए लालची, बेईमान तथा अयोग्य अधिकारियों से काम नहीं चलता और इसके लिए अत्यन्त ही योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है, तो उसने सन् १८५८ में, प्रतियोगिता के आधार पर, इंडियन सिविल सर्विस में ब्रिटिश यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थियों को भर्ती करने का निश्चय किया। इन विद्यार्थियों के शिक्षण के लिए 'हेलीबरी' में एक ट्रेनिंग कालेज भी खोल दिया गया।

आरम्भ में भारतीय विद्यार्थियों का इस सर्विस में भर्ती होने से रोकने के लिए उनके मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित की गईं। कहा गया है कि केवल इंगलैंड में पढ़ने वाले वही भारतीय इस सर्विस की परीक्षा में बैठ सकेंगे जिनकी आयु १९ वर्ष से कम होगी। उन्नीसवीं शताब्दी का भारत आज से बहुत भिन्न था। उस समय विदेशी यात्रा धर्मविरोधी समझी जाती थी। तिस पर, छोटी आयु में अपने बच्चों को समुद्र पार भेजने के लिए कोई भी परिवार तैयार नहीं होता था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय विद्यार्थियों के अंग्रेज विद्यार्थियों की अपेक्षा अधिक कुशाग्र बुद्धि होने पर भी, सन् १८७० तक केवल एक ही भारतीय इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती हो सका।

भारतवासियों के इंडियन सिविल सर्विस में भर्ती किये जाने के इसी प्रश्न को लेकर देश के नेताओं ने, ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध आन्दोलन किया। उनकी माँग थी कि भारतवासियों को बढ़ते हुए अनुपात से इस सर्विस में भर्ती किया जाय, उनके प्रवेश के लिए इंगलैंड के अतिरिक्त भारत में भी प्रतियोगिता परीक्षा ली जाय, तथा भर्ती के पश्चात् उनको उच्च से उच्च सरकारी पद प्राप्त करने के योग्य समझा जाय। सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् यह आन्दोलन और भी अधिक शक्तिशाली हो गया। कांग्रेस के तत्वावधान में कई प्रतिनिधि मंडल इंगलैंड भेजे गये। इन सब आन्दोलनों का परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सन् १९१९ के मौंटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के पश्चात् तक, ब्रिटिश सरकार ने भारत में इंडियन सिविल सर्विस की भर्ती के लिए अलग परीक्षा का आयोजन नहीं किया, परन्तु फिर भी उसने एक बढ़ते हुए अनुपात से इंडियन सिविल सर्विस में भारतवासियों की भरती के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया। १९१९ के पश्चात् आई० सी० एस० की परीक्षा भी भारत में होने लगी, यद्यपि इस परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप बहुत थोड़े से ही व्यक्ति इस सर्विस में भर्ती किये जाते थे।

ली कमीशन की नियुक्ति—सन् १९२३ में ब्रिटिश सरकार ने इंपीरियल सर्विस के समस्त संगठन के विषय में विस्तृत रिपोर्ट देने के लिए, एक विशेष कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के सभापति लार्ड ली थे। कमीशन ने अपनी सिफारिशों में

कहा कि इम्पीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० एस० और आई० एम० एस० में भारतीयों का अनुपात कुछ वर्षों में, (१० से लगाकर २५ वर्षों में) धीरे-धीरे बढ़ाकर ५० प्रतिशत कर दिया जाय, दूसरी सरकारी नौकरियों के विषय में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे। उसने कहा कि भारत की समस्त नौकरियों को केंद्रीय तथा प्रांतीय भागों में बाँट दिया जाय। प्रत्येक विभाग की नौकरी के तीन भाग किये जायँ—(१) केंद्रीय या प्रांतीय सुपीरियर सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। इपीरियल सर्विसों अर्थात् आई० सी० एस०, आई० पी० एस० तथा आई० एम० एस० के विषय में कमीशन ने कहा कि इनकी भर्ती भारत मन्त्री के ही द्वारा की जानी चाहिये तथा इनके ऊपर केंद्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों का किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रहना चाहिये।

ली कमीशन की सिफ़ारिशों ने भारत में अत्यधिक राजनीतिक असंतोष उत्पन्न कर दिया। कारण, जनता तो समझती थी कि माटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के पश्चात् ब्रिटिश सरकार उच्च सरकारी नौकरियों पर से भी अपना नियन्त्रण हटा लेगी और इम्पारियल सर्विस के सदस्य जनता के चुने हुए मन्त्रियों के अधीन रह कर काम कर सकेंगे। परतु ब्रिटिश सरकार जानती थी कि ब्रिटिश इपीरियल सर्विस के सदस्यों की राजभक्ति तथा सहयोग के कारण ही भारत में उसका शासन कायम है। इसलिए किसी मूल्य पर भी वह इन नौकरियों के ऊपर से अपना नियन्त्रण छोड़ने के लिए प्रस्तुत नहीं थी।

सन् १९३५ के विधान में भी भारत मन्त्री ने इपीरियल सर्विस के ऊपर अपना ही अधिकार कायम रक्खा। कैसे आश्चर्य की बात थी कि जनता के प्रतिनिधि मन्त्रियों की कुर्सियों पर बैठें और शासन की नीति का सञ्चालन करें, परन्तु उनके नाचे कार्य करने वाले उच्च सरकारी कर्मचारी मन्त्रियों के प्रति नहीं वरन् एक विदेशी सरकार के प्रतिनिधि के प्रति उत्तरदायी हों। संसार के राजनीतिक इतिहास में इस प्रकार का प्रबन्ध अद्वितीय था। परतु ब्रिटिश सरकार भारतवासियों क हाथ में वास्तविक शासन सत्ता सौंपना नहीं चाहती थी। वह तो केवल अन्तर्राष्ट्रीय लोकमत को अपने पक्ष में करने के लिए एक इस प्रकार का ढकोसला संसार के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहती थी जिसमें बाहर से यह प्रतीत हो कि भारतवर्ष में सरकार की समस्त सत्ता वहाँ की जनता के हाथ में है परतु वास्तव में वह स्वय उस देश का भाग्य विधाता हो।

अगस्त सन् १९४७ अर्थात् उस समय तक जब कि ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों के हाथ में समस्त शासन सत्ता को हस्तान्तरित नहीं कर दियाँ, हमारे देश में इपीरियल-सर्विसों के सम्बन्ध में यही व्यवस्था कायम रही। इस व्यवस्था में सबसे बड़ा दोष यह था कि इस इम्पीरियल सर्विस के सदस्य मन्त्रियों द्वारा निर्धारित शासन की नीति का उचित रूप से पालन नहीं करते थे और उनकी इस अवज्ञा के लिए मन्त्रीगण उनके

विरुद्ध किसी प्रकार की अनुशासन सम्बन्धी कार्यवाही भी नहीं कर सकते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इसीलिए सर्वप्रथम भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि इम्पीरियल सर्विसों के ऊपर उसका वही अनुशासन हो, जो उसे दूसरी सर्विसों के ऊपर प्राप्त है। बहुत से अंग्रेज, इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य, जो इस परिवर्तित वातावरण में कार्य करना नहीं चाहते थे, भारत सरकार ने उन्हें ब्रिटिश सरकार से एक समझौता करके, पेंशन तथा हानि पूर्ति (Compensation) की रकम देकर विदा कर दिया। इस प्रकार सन् १९४७ में लगभग ५०० अंग्रेज इम्पीरियल सर्विसों से पृथक् कर दिये गये। दूसरे सिविल सर्विस के सदस्यों से, भारत सरकार ने एक विशेष प्रबन्ध पत्र पर हस्ताक्षर करा लिये, जिसके अन्तर्गत उन्होंने यह स्वीकार किया कि वह भारत मन्त्री के स्थान पर भारत सरकार के प्रति उत्तरदायी होंगे और उसके अनुशासन के नीचे रह कर कार्य करेंगे।

इस प्रकार भारतीय शासन की सबसे दूषित प्रथा, जिसके अन्तर्गत सरकार के कुछ नौकर भारतीय जनता का नमक खाकर भी एक दूसरी सरकार के प्रति उत्तरदायी थे, तथा उसी की नीति को भारत में कार्यान्वित करते थे, का अन्त कर दिया गया और देश के समस्त सरकारी कर्मचारियों का एक से ही नियमों के अधीन, भारत सरकार के अनुशासन में ले लिया गया।

१. असैनिक नौकरियाँ (Civil Services)

भारत सरकार के अधीन नौकरियों का संगठन

अखिल भारतीय नौकरियाँ—इण्डियन सिविल सर्विस के स्थान पर अब भारत में एक दूसरी अखिल भारतीय सर्विस का संगठन किया गया है जिसका नाम 'इण्डियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' है। इस सर्विस के सदस्य उसी प्रकार के पद प्राप्त करते हैं जैसे पहले इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों को मिलते थे। इण्डियन पुलिस सर्विस का संगठन पहले जैसा ही रक्खा गया है। इन दोनों सर्विसों के सदस्य केन्द्रीय सरकार के अधीन 'यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन' द्वारा भरती किये जाते हैं, परन्तु वह प्रान्तों में रह कर उनकी सरकारों के अधीन काम करते हैं। इस प्रकार का आयोजन इस दृष्टि से किया गया है जिससे भारत में शासन प्रबन्ध की दृष्टि से एकता बनी रहे और राज्यों में कार्य करने वाले बड़े-बड़े उच्च सरकारी कर्मचारी केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में रहें तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें। एक तीसरी नई अखिल भारतीय सर्विस इण्डियन फॉरेन सर्विस के नाम से संगठित की गई है जिसके सदस्य भारत के विदेशों में स्थित दूतावासों में काम करते हैं।

उपरोक्त तीनों अखिल भारतीय सर्विसों के अतिरिक्त निम्न सर्विसों के सदस्य भी

केन्द्रीय सरकार द्वारा ही भरती किये जाते हैं तथा उन्हें भी देश के किसी भी भाग में कार्य करने के लिए बाध्य किया जा सकता है :—

(1) Indian Audit and Accounts Service
(2) The Military Accounts Service
(3) The Indian Railway Accounts Service
(4) The Indian Customs and Excise Service
(5) The Income Tax Officers (Class I, Grade II) Service
(6) The Transportation (Traffic) and Commercial Departments of the Superior Revenue Establishment of State Railways Services.
(7) Indian Postal Service
(8) Indian Forest Service
(9) Survey of India
(10) Central Engineering Service
(11) I. R. S. E.
(12) Telegraph Eng Service

इन सभी नौकरियों में भरती के लिए केन्द्रीय सरकार के अधीन यूनियन पब्लिक सर्विस कमीशन, एक सयुक्त प्रतियोगिता परीक्षा का आयोजन करती है। इस परीक्षा के परिणामों के फलस्वरूप उपरोक्त सभी नौकरियों के लिए सदस्य छाँटे जाते हैं तथा उन्हें देश के विभिन्न भागों में कार्य करने के लिए भेज दिया जाता है।

केन्द्रीय सरकार के अधीन दूसरी नौकरियाँ—उपरोक्त नौकरियों के अतिरिक्त सरकार के अधीन विभिन्न महकमों में काम करने के लिए चार प्रकार के सरकारी नौकर रक्खे जाते हैं। इन सरकारी नौकरों को क्रमश: प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकर (I, II, III, and IV Class Services) कहा जाता है। चतुर्थ श्रेणी के सरकारी नौकरों की सूची में चपरासी तथा फर्राश इत्यादि गिने जाते हैं। तृतीय श्रेणी में दफ्तरों में काम करने वाले क्लर्क, टाइपिस्ट, स्टैनो, ऐसिस्टैंट तथा छोटे दर्जे के सरकारी अफसर आते हैं। इसके अतिरिक्त प्रथम तथा द्वितीय श्रेणी के अफसर अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर कार्य करते हैं तथा इनमें से अधिकतर को 'गजटेड अफसर' की उपाधि दी जाती है।

केन्द्रीय सरकार के अधीन मुख्य रूप से निम्न सर्विसों के लोग काम करते हैं :—

केन्द्रीय सेक्रेटेरियेट सर्विस, डाकखाने या यातायात सम्बन्धी सर्विस, कस्टम्स सर्विस,

केन्द्रीय इक्साइज सर्विस, इनकम टैक्स सर्विस, अखिल भारतीय रेडियो सर्विस, इंडियन स्टेट्स सर्विस तथा रक्षा सम्बन्धी सर्विस।

भारत के नये संविधान के चौदहवें भाग में केन्द्रीय व राज्य की सरकारों के कर्मचारियों को कुछ विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। उदाहरणार्थ संविधान की ३११वीं धारा में कहा गया है कि किसी कर्मचारी को तब तक उसके पद से अलग नहीं किया जायगा जब तक उसे उन कारणों से अवगत न कराया जाय जिनकी वजह से उसके विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही की जा रही है। साथ ही उसे अपील का अधिकार दिया गया है। आगे चल कर संविधान में कहा गया है कि कोई भी सरकारी कर्मचारी उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी से निम्न किसी भी अधिकारी द्वारा पदच्युत नहीं किया जायगा। इण्डियन सिविल सर्विस के उन सदस्यों के अधिकारों की रक्षा के लिए जिनकी भर्ती स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले भारत मन्त्री द्वारा की जाती थी, संविधान में कहा गया है कि उनके वेतन, छुट्टी, क्षति पूर्ति तथा अनुशासन सम्बन्धी अधिकार पहले जैसे ही बने रहेंगे। भारत सरकार के समस्त कर्मचारियों को मत प्रदान करने के उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होंगे जैसे दूसरे नागरिकों को, परन्तु उन्हें किसी राजनैतिक दल का सदस्य नहीं होने दिया जायगा। ऐसी रोक प्रत्येक देश में ही लगाई जाती है जिससे सरकारी नौकर राजनीति की दलदल में न फँसें और जो भी राजनीतिक दल शासनारूढ़ हो उसकी ही सेवा करते रहें।

प्रान्तों (राज्यों) के अधीन नौकरियों का संगठन

इंडियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस तथा इण्डियन पुलिस सर्विस के अधिकारियों को छोड़ कर राज्यों में कार्य करने वाले और शेष सारे सरकारी कर्मचारी राज्यों की सरकारें द्वारा भर्ती किये जाते हैं, तथा वे उसी अनुशासन के अधीन रहकर कार्य करते हैं। १६३५ के विधान के अधीन इंडियन मैडिकल सर्विस के सदस्य भी भारत मन्त्री द्वारा नियुक्त किये जाते थे परन्तु नये विधान के अन्तर्गत यह सर्विस प्रान्तीय कर दी गई है अर्थात् इसके सदस्य अब राज्यों की सरकारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं।

राज्य की सर्विसों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रान्तीय सर्विस, (२) सबार्डिनेट सर्विस और (३) लोअर सबार्डिनेट सर्विस। प्रान्तीय सर्विस में निम्न नौकरियाँ सम्मिलित हैं :—

(१) प्रान्तीय सिविल सर्विस—जिनके सदस्य कार्यकारिणी तथा न्याय सम्बन्धी महकमों में काम करते हैं।

(२) प्रान्तीय पुलिस सर्विस—जिनके सदस्य डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस इत्यादि के पद पर कार्य करते हैं।

(३) प्रान्तीय शिक्षा सर्विस (Provincial Education Service)

(४) प्रांतीय इञ्जीनियरिंग सर्विस (Provincial Engineering Service)
(५) प्रांतीय स्वास्थ्य सर्विस (Provincial Health Service)
(६) प्रांतीय चिकित्सा सबंधी सर्विस (Provincial Medical Service)
(७) प्रांतीय कृषि सर्विस (Provincial Agricultural Service)
(८) प्रांतीय पशु चिकित्सा सर्विस (Provincial Veterinary Service)
(६) प्रांतीय वन सर्विस (Provincial Forest Service)

इन सर्विसों के सदस्यों की नियुक्ति पब्लिक कमीशन की सिफारिशों के आधार पर राज्यपाल द्वारा की जाती है। इस सर्विस के सदस्य, प्रान्तों में, प्रथम श्रेणी (Class I) के सरकारी नौकर कहे जाते हैं।

इस सर्विस के अधिकारियों के नीचे सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य काम करते हैं जिनमें हम तहसीलदार, नायब तहसीलदार, थानेदार, इन्सपेक्टर पुलिस, इक्साइज इन्सपेक्टर, सब असिस्टेंट सर्जन, सरकारी महकमे के इंसपेक्टर, कृषि इन्सपेक्टर इत्यादि के नाम ले सकते हैं।

सबार्डिनेट सर्विस के सदस्यों के अधीन अनेक क्लर्क, स्टेनो असिस्टेंट इत्यादि काम करते हैं। यह सदस्य लोग्रर सबार्डिनेट सर्विस के सदस्य कहलाते हैं। इन सब की नियुक्ति भी पब्लिक सर्विस कमीशनों की सिफारिशों के आधार पर की जाती है। कुछ टेकनिकल पदों पर सरकार के विभिन्न विभाग भी स्वय सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकते हैं। परन्तु इनके लिए पब्लिक सर्विस कमीशन की स्वीकृति अनिवार्य होती है।

राज्यों के अन्तर्गत काम करने वाले सरकारी नौकरों को भी प्राय उसी प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं जैसे केंद्रीय सरकार के अधीन काम करने वाले सरकारी नौकरों को। अन्तर केवल इतना है कि राज्य की सरकारें केंद्र की अपेक्षा अपने कर्मचारियों को कम वेतन देती हैं। ऐसा होना स्वाभाविक ही है, कारण प्रान्तों में खर्च कुछ कम होता है और वहाँ जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सस्ती तथा आसानी से मिल जाती हैं।

लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का सगठन

हमारे नये सविधान की एक विशेषता यह है कि राज्यों तथा सङ्घ सरकार के अन्तर्गत, सरकारी नौकरों की भर्ती के लिए ऐसे लोक सेवा आयोगों (Public Service Commissions) का सगठन किया गया है, जो कार्यकारिणी से स्वतंत्र रह कर, प्रतियोगिता के आधार पर, सरकारी नौकरों की भर्ती का कार्य करते हैं। शासन प्रबन्ध की कुशलता तथा निष्पक्षता के विचार से इस प्रकार का प्रबन्ध प्रत्येक ही प्रगतिशील देश में पाया जाता है। यदि कार्यपालिका के हाथों में ही सरकारी नौकरों की भर्ती का काम सौंप दिया जाय तो इससे शासन में शिथिलता आ जाती है, कारण

इस प्रकार के प्रबन्ध में केवल वही लोग सरकारी पद प्राप्त कर सकते हैं जो उच्च सरकारी अधिकारियों के सम्बन्धी अथवा मित्र हों। लोक सेवा आयोग प्रतियोगिता तथा परीक्षाओं के आधार पर सरकारी कर्मचारियों की भर्ती करते हैं, और यद्यपि इस प्रकार के प्रबन्ध में भी बहुत से अयोग्य तथा सिफारिशी व्यक्ति सरकारी नौकरी प्राप्त कर लेते हैं, परन्तु फिर भी दूसरे हर प्रकार के आयोजनों से यह प्रबन्ध अच्छा है। लोक सेवा आयोगों के कार्य में अधिक कुशलता तथा निष्पक्षता लाने के लिए आवश्यक है कि उनके सदस्य अत्यन्त ईमानदार, योग्य तथा चरित्रवान हों। सरकारी नौकरों की भर्ती केवल भेंट (Selection by interview) के आधार पर न की जाय। परीक्षार्थियों की योग्यता की जाँच के लिए तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक अनुभव (Psychological (Experiments) काम में लाये जायें, तथा सरकार के लिए लोक सेवा आयोग की सिफारिशों के आधार पर सरकारी नौकरों की नियुक्ति करना अनिवार्य बना दिया जाय। हमारे देश में अभी तक लोक सेवा आयोग, केवल प्रतियोगिता के आधार पर, हर प्रकार के सरकारी नौकरों की भर्ती नहीं करते। कितने ही सरकारी कर्मचारी केवल ५-६ मिनट की कमीशन के सम्मुख भेंट के पश्चात् उच्च सरकारी पदों पर नियुक्त कर दिये जाते हैं। उनकी योग्यता की परीक्षा के लिए किसी प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपाय काम में नहीं लाये जाते। आशा है, नव-संविधान के अन्तर्गत संगठित हमारे लोक सेवा आयोग इन दोषों को शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

नव-संविधान में, संघ सरकार के अंतर्गत सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए अलग तथा राज्यों में उनके सरकारी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए अलग, लोक सेवा आयोगों का संगठन किया गया है।

संविधान की ३१५वीं धारा में कहा गया है कि भारत में संघ सरकार तथा राज्यों की सरकारों के लिए अलग लोक सेवा आयोग होंगे, परन्तु दो या दो से अधिक राज्यों के विधान मण्डल संघ सरकार से यह प्रार्थना कर सकेंगे कि उनके लिए एक संयुक्त लोक सेवा आयोग बना दिया जाय। संघ लोक सेवा आयोग भी राज्यों की सरकारों के लिए, उनके राज्यपाल अथवा राजप्रमुख की प्रार्थना पर, उस राज्य की सब अथवा किन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कार्य करना स्वीकार कर सकेगा।

लोक सेवा आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति—लोक सेवा आयोगों के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति, यदि वह संघ आयोग या संयुक्त आयोग है, तो राष्ट्रपति द्वारा, और यदि वह राज्य आयोग है तो राज्यपाल या राजप्रमुख द्वारा, की जाती है। इन सदस्यों में आधे सदस्य ऐसे होते हैं जो कम से कम दस वर्ष तक केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारों के नीचे कार्य कर चुके हों।

कार्य अवधि—आयोगों के सदस्यों की कार्य अवधि ६ वर्ष निश्चित की गई है,

परन्तु इससे पहले भी, कोई सदस्य यदि वह संघ आयोग का सदस्य है तो ६५ वर्ष की आयु होने पर, और यदि वह राज्य आयोग का सदस्य है तो ६० वर्ष की आयु होने पर, अपने पद से अलग किया जा सकेगा। एक बार से अधिक कोई भी व्यक्ति आयोगों की सदस्यता के लिए मनोनीत न हो सकेगा।

आयोगों के सदस्य पद से केवल उस समय हटाये जा सकेंगे जब उनके विरुद्ध कदाचार का आरोप हो और उस आरोप की पूरी जाँच देश के उच्चतम *न्यायालय* (Supreme Court) द्वारा कर ली जाय। इस प्रकार की जाँच के पश्चात् यदि राष्ट्रपति यह समझें कि कोई सदस्य वास्तव में कदाचार का दोषी है तो वह उसे उसके पद से हटा सकेंगे। राज्यपालों अथवा राजप्रमुखों को सदस्यों के विरुद्ध इस प्रकार की कार्यवाही करने का अधिकार नहीं होगा।

सदस्य संख्या—आयोगों के सदस्यों की संख्या, यदि वह संघ आयोग है तो राष्ट्रपति द्वारा और यदि वह *राज्य आयोग है तो राज्यपाल अथवा राजप्रमुख द्वारा*, निश्चित की जाती है। सदस्यों के वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तों का निश्चय भी वही करते हैं।

सदस्यता में बाधक शर्तें—आयोगों के सदस्यों तथा अध्यक्षों के सम्बन्ध में संविधान में कुछ कड़ी शर्तें रक्खी गई हैं। उदाहरणार्थ विधान में कहा गया है कि :—

(१) *कोई भी सदस्य एक बार से अधिक उसी पद के लिए मनोनीत न किया जा सकेगा।*

(२) संघ आयोग का अध्यक्ष अपनी पदावधि की समाप्ति पर संघ सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार के अधीन किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(३) अपनी अवधि की समाप्ति पर किसी राज्य के लोक सेवा आयोग का अध्यक्ष, संघ आयोग का सदस्य अथवा अध्यक्ष, या किसी दूसरे राज्य के आयोग का अध्यक्ष हो सकेगा, परन्तु वह संघ अथवा उसके अंतर्गत राज्यों की सरकारों के अधीन और *किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।*

(४) इसी प्रकार संघ आयोग का कोई सदस्य उसी आयोग अथवा किसी राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा परन्तु वह और किसी प्रकार की नौकरी न कर सकेगा।

(५) राज्य आयोगों का कोई सदस्य, अपनी कार्य अवधि की समाप्ति पर संघ आयोग का अध्यक्ष अथवा सदस्य, या किसी दूसरे राज्य के आयोग का अध्यक्ष बन सकेगा, परन्तु वह और किसी दूसरे प्रकार की नौकरी नहीं कर सकेगा।

इस प्रकार की शर्तें इसलिए निश्चित की गई हैं जिससे आयोगों के सदस्य अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके ऐसे व्यक्तियों व सम्बन्धियों को ऊँचे सरकारी पदों पर नियुक्त न कर दें जो उन्हें रिटायर होने के पश्चात् सरकारी नौकरी का प्रलोभन दें।

आयोगों के अधिकार—आयोगों के अधिकारों के सम्बन्ध में संविधान में कहा गया है कि प्रत्येक आयोग को अपने अधिकार क्षेत्र में, सभी प्रतियोगिक सरकारी नौकरियों के लिए व्यक्ति भर्ती करने का हक होगा। इस प्रकार की भर्ती के लिए वह परीक्षाओं का आयोजन करेंगे। वह ऐसे नियम बनावेंगे जिनके अनुसार विभिन्न सरकारी नौकरियों के लिए व्यक्ति भरती किये जा सकें। सरकारी नौकरों की तरक्की तथा एक विभाग से दूसरे विभाग में उनकी बदली के सम्बन्ध में भी नियम बनावेंगे। उन्हें सरकारी नौकरों की ओर से, उनके विरुद्ध कार्यवाही किये जाने पर, अपील सुनने का भी अधिकार होगा। पेंशन, ऐसे मुकदमों में खर्च हुई रकम की माँग जो किसी सरकारी कर्मचारी को किसी पद विशेष पर कार्य करने के कारण करनी पड़ी हो, अथवा कर्तव्य पालन के समय शारीरिक अथवा मानसिक हानि होने पर पेंशन अथवा क्षतिपूर्ति की माँग तथा इसी प्रकार के दूसरे प्रश्नों पर भी, जिनका सरकारी कर्मचारियों से सम्बन्ध होगा, कमीशनों द्वारा विचार किया जायगा। इन सब के अतिरिक्त संविधान में कहा गया है कि यदि संसद् उचित समझे तो आयोगों को दूसरे प्रकार के अधिकार भी प्रदान कर सकेगी।

वार्षिक रिपोर्ट—संघ तथा राज्यों के आयोगों को, प्रति वर्ष अपने कार्य की पूरी रिपोर्ट संसद् अथवा विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत करनी होगी। इस रिपोर्ट में आयोग अपनी उन सिफारिशों का भी वर्णन करेगा जिनको संघ अथवा राज्यों की सरकारों ने स्वीकार नहीं किया हो। आयोगों की रिपोर्टों पर संसद् और राज्यों की विधान सभाओं को विचार करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नये संविधान में, लोक सेवा आयोगों को बहुत विस्तृत अधिकार देकर, हमारे विधान निर्माताओं ने, सरकारी नौकरियों में भर्ती का एक ऐसा प्रबन्ध किया है जो हर प्रकार से दोषरहित तथा न्याय संगत हो सके। आयोग कार्यपालिका के प्रभाव क्षेत्र से उसी प्रकार स्वतन्त्र होंगे जैसे हमारी न्यायपालिका (Judiciary) है। उनके सदस्यों को सुप्रीम कोर्ट की सिफारिश के बिना पदच्युत नहीं किया जा सकेगा। उनके वेतन तथा नौकरी की दूसरी शर्तें राष्ट्रपति अथवा राज्यपाल व राजप्रमुख द्वारा स्वयं निश्चित की जायँगी। सरकारी महकमों के लिए आयोगों की सिफारिशों पर अमल करना प्रायः अनिवार्य होगा। जो महकमे इन सिफारिशों पर अमल नहीं करेंगे उनकी रिपोर्ट संसद् के सम्मुख प्रस्तुत की जायगी।

किसी देश में मन्त्रिमण्डल के सदस्य चाहे कितने अधिक योग्य तथा बुद्धिमान हों, सरकार की अन्तिम सफलता उसके स्थायी कर्मचारियों के चरित्र पर निर्भर करती है। इसलिए आशा है कि हमारे लोक सेवा आयोग स्वतन्त्र भारत में ऐसे सरकारी कर्मचारियों

को चुनेंगे जो हमारे देश को गौरवान्वित कर सकें तथा जो झूठा, दम और स्वाभिमान त्याग कर जनता की सच्ची सेवा कर सकें।

२. सैनिक नौकरियाँ (Defence Services)

असैनिक सरकारी कर्मचारी जहाँ किसी देश में कार्यकारिणी द्वारा निर्धारित नीति को कार्यान्वित करते हैं, वहाँ देश की सेना राष्ट्र की आन्तरिक उपद्रवों तथा बाह्य आक्रमणों से रक्षा करती है। शासन के अस्तित्व तथा राष्ट्र के गौरव के लिए सेना का सगठन उतना ही आवश्यक है जितना सरकार के विभिन्न विभागों का निर्माण।

हमारे देश में स्वतन्त्रता प्राप्ति से पहले सेना का सगठन भारत की रक्षा के लिए नहीं वरन् ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए किया जाता था। इसी कारण भारत की गुलामी के काल में सेना का सबसे अधिक उपयोग हमारे स्वतन्त्रता सग्राम को कुचलने के लिए किया गया। सेना पर व्यय, उसकी संख्या का निश्चय, उसमें ब्रिटिश सिपाहियों की भरती, उसका विदेशों में उपयोग—सब ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा की दृष्टि से किया जाता था। यही कारण था कि हमारे देश के नेता अगस्त सन् १६४७ से पहले सदा इसी बात की माँग किया करते थे कि भारतीय सेना का व्यय कम किया जाय तथा उसमें भारतीयकरण (Indianisation) की नीति का अवलम्बन हो।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश के सैन्य सगठन में आमूल परिवर्तन किये गये। जिस सेना में कुछ ही वर्ष पहले प्राय सारे ही उच्च अधिकारी अग्रेज ही हुआ करते थे, तथा जिसमें लगभग एक लाख सिपाही अग्रेज थे, आज उसी सेना का पूर्ण रूप से भारतीय तथा राष्ट्रीयकरण कर दिया गया है। कुछ थोड़े से उच्च सेना अधिकारियों को छोड़ कर, जिनमें से भी अधिकतर केवल वही लोग हैं जो विशेष प्रकार की टेकनिकल योग्यता रखते हैं, शेष सभी सेना अधिकारी भारतीय नियुक्त कर दिये गये हैं। अंग्रेज अधिकारियों को केवल कुछ वर्षों के ठेके पर ही नियुक्त किया गया है। भारतीय सेना की अंतिम अँग्रेज टुकड़ी २८ फरवरी १६४८ को हमारे देश से विदा कर दी गई।

अँग्रेजों के काल में प्रधान सेनापति (Commander in Chief) हमारे देश की सर्वोच्च कार्यकारिणी अर्थात् वायसराय की एक्जेक्यूटिव कौंसिल के सब से प्रमुख सदस्य होते थे। उनका भारत के तीनों सेना अर्थात् जल, थल तथा वायु सेना पर पूर्ण आधिपत्य होता था। स्वतन्त्रता के पश्चात् सेनापति का पद रक्षामंत्री के अधीन कर दिया गया तथा देश की तीनों विभिन्न सेनाओं के लिए अलग-अलग सेनापति नियुक्त कर दिये गये। आजकल हमारी थल सेना के सेनापति श्री करिअप्पा हैं, जल सेना के सेनापति वाइस ऐडमिरल श्री पैरी हैं और वायुसेना के सेनापति श्री चेपमैन हैं।

एक तीसरा क्रान्तिकारी परिवर्तन हमारे सैन्य के सगठन में यह किया गया है कि

अंग्रेजों के काल में हमारी सेना की भर्ती भारत की कुछ विशिष्ट सैन्य जातियों में से की जाती थी। आजकल भारत का प्रत्येक नागरिक चाहे वह किसी भी प्रान्त, जाति, धर्म अथवा सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखता हो, अपनी सेना में भरती होकर उच्च से उच्च पद प्राप्त कर सकता है।

सेना का संगठन

आजकल भारतीय सेना का सर्वोच्च अधिकारी जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि रक्षामन्त्री होता है। वह कार्यकारिणी के सदस्य के रूप में देश की रक्षा-नीति का संचालन करता है। रक्षा मन्त्री की सहायता के लिए दो सरकारी दफ्तर होते हैं जिन्हें मिनिस्ट्री आफ डिफेन्स तथा आर्म्ड फोर्स हैड क्वार्टर के नाम से सम्बोधित किया जाता है। फौज के प्रत्येक विभाग का जैसा ऊपर बताया जा चुका है, अपना एक अलग सेनापति होता है। देश की रक्षा समस्याओं पर अविलम्ब विचार करने के लिए, मंत्रिमंडल की विशेष समिति होती है जिसे (Defence Committee of the Cabinet) कहा जाता है। इस सदस्य कमेटी में प्रधान मंत्री, उपप्रधान मंत्री, रक्षा मन्त्री, वित्त मंत्री तथा रेल मंत्री होते हैं। तीनों सेनाओं के सेनापति भी इस कमेटी की बैठकों में भाग ले सकते हैं। यह कमेटी सेना सम्बन्धी देश की समस्त समस्याओं पर अन्तिम विचार करती है।

रक्षा सचिवालय (Defence Ministry) सेना की नीति सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करती है। नीति का संचालन (Army Head Quarters) द्वारा किया जाता है। इस सचिवालय के निम्न भाग होते हैं :

1. General Staff Branch
2. Adjutant General's Branch
3. Quarter Master General's Branch
4 Master General of Ordinance Branch
5. Engineer in Chie 's Branch
6. Military Secretary's Branch

यह विभिन्न विभाग जैसा उनके नामों से स्पष्ट है, क्रमशः सैन्य नीति, सैन्य भर्ती, सेना के सामान की प्राप्ति, हथियारों इत्यादि की सप्लाई, सेना के लिए आवश्यक इमारतों तथा सड़कों इत्यादि के निर्माण एवं राष्ट्रपति की रक्षा की व्यवस्था करते हैं।

आजकल हमारे देश की सेना पर लगभग १६० करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय होता है। हमारी सेना की सैन्य संख्या लगभग ५ लाख है। सेना की तीनों शाखाओं के अधिकारियों के शिक्षण के लिए देहरादून तथा पूना में Military Academy हैं। स्थायी सेना के अतिरिक्त हमारे देश में 'राष्ट्रीय कैडेट कोर' तथा 'प्रादेशिक सेना'

(टैरीटोरियल फोर्स) का सगठन किया गया है। राष्ट्रीय केडट कोर में केवल स्कूल व कालेज के छात्र सैनिक शिक्षा ग्रहण करते हैं। प्रादेशिक सेना दूसरे नागरिकों को सैनिक शिक्षण देने के लिए है। इन दोनों सेनाओं के लोग सैन्य शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् अपने अपने काम में लग जाते हैं और फिर केवल राष्ट्रीय सङ्कट के समय में ही सेना में भर्ती होकर देश की रक्षा का कार्य करते हैं।

स्थायी सेना का वितरण हमारे देश के तीन भागों (Commands) में किया गया है। इन भागों को पश्चिमी भाग (Western Command), पूर्वी भाग (Eastern Command), और दक्षिणी भाग (Southern Command) कहा जाता है। प्रत्येक भाग फौज के एक जनरल के अधीन रह कर कार्य करता है।

अङ्गरेजों के काल में हमारी जल तथा वायु सेना के संगठन पर अधिक जोर नहीं दिया गया, कारण अङ्गरेज हमारी सेना को ब्रिटिश साम्राज्य की सेना का ही एक भाग समझते थे। इंगलैंड की सरकार स्वयं अपनी जल तथा वायु सेना को शक्तिशाली बनाने पर अधिक जोर देती थी और अपने अधीन देशों में थल सेना के सगठन को अधिक महत्त्व प्रदान करती थी। इस प्रकार वह सारे साम्राज्य की रक्षा के लिए एक सयुक्त नीति (Integrated Policy) से काम लेती थी। भारत-विभाजन से हमारी सेना की इन दोनों शाखाओं की शक्ति और भी कम हो गई।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इसलिए हमारी सरकार ने जल तथा वायु सेना के सगठन पर अधिक जोर दिया। जल सेना की विभिन्न शाखाओं की ट्रेनिंग के लिए उसने विजगापट्टम, कोचीन, लोनवाला, जामनगर तथा मैसूर में स्कूल खोले। उसने हमारी जल सेना को शक्तिशाली बनाने के लिए इङ्गलैंड व अमेरिका से बहुत से विध्वंसक ज्हाज (Destroyers) तथा युद्ध जहाज (Battle ships) खरीदे। इसी प्रकार वायु सेना को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए उसने बहुत से युद्धक विमान, उड़ान नौका, रक्षक विमान इत्यादि खरीदे तथा हवाई सेना की बहुत सी नई टुकड़ियाँ सगठित कीं। परन्तु अभी तक दूसरे देशों की अपेक्षा हमारी सैन्य शक्ति बहुत कम है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि भारत सरकार एक बहुत बड़ी सेना रखने में विश्वास नहीं करती। हमारी सरकार साम्राज्यवादी नीति का अवलम्बन करना नहीं चाहती। वह दूसरे देशों की स्वतन्त्रता हड़प कर अपने साम्राज्य का विस्तार देखना नहीं चाहती। वह केवल इतनी सेना रखना चाहती है जिससे वह आतंरिक विद्रोहों को दबा सके तथा दूसरे देशों के सामान्य आक्रमण से अपनी रक्षा कर सके। आजकल परमाणु तथा हाईड्रोजन बम के युग में कोई देश, चाहे उसकी सैन्यशक्ति कितनी बढ़ी-चढ़ी क्यों न हो, अकेला रह कर अपनी रक्षा नहीं कर सकता। यदि हमारे देश की सरकार, आज अरबों खरबों रुपया प्रतिवर्ष खर्च करके भी यह चाहे कि वह रूस अथवा

अमरीका की सैन्यशक्ति का मुकाबला कर सके तो यह एक असंभव बात है। अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए हमें राष्ट्र संघ की शक्ति पर ही निर्भर रहना पड़ेगा। आज हमारा देश एक भीषण आर्थिक सङ्कट में से गुजर रहा है। ऐसे समय में १६० करोड़ रुपया प्रतिवर्ष की सेना पर व्यय करना जनता की आशाओं पर पानी फेरना है। भारत की कोटि-कोटि जनता आज अपनी भूख, बेकारी तथा आश्रयहीनता की समस्या का हल चाहती है। सेना पर रुपया बरबाद करने की अपेक्षा वह सरकार से आशा करती है कि वह उसके लिए नये नये उद्योग-धन्धे चलायेगी, मकानों का प्रबन्ध करेगी, बेकारी को दूर करने के लिए योजनाएँ बनायेगी तथा बढ़ती हुई वस्तुओं की कीमतों को कम करने के लिए रचनात्मक कार्य करेगी। हमारे देश के नेता इसलिए अब प्रयत्नशील हैं कि सेना पर व्यय कम किया जाय। यदि भारत और पाकिस्तान के सम्बन्धों में सुधार हो सका और दोनों देश अपने झगड़े का निपटारा शांतिपूर्वक उपायों से कर सके तो वह दिन दूर नहीं जब हमारा सेना पर व्यय कम हो जायगा और हमारी सरकार जनता के आर्थिक सङ्कट को दूर करने के लिए बहुत-कुछ रचनात्मक कार्य कर सकेगी।

योग्यता प्रश्न

१. प्रजातन्त्र शासन में लोकप्रिय मन्त्री तथा स्थायी सरकारी नौकरों के बीच किस प्रकार सामञ्जस्य स्थापित किया जाता है? स्थायी नौकरों की प्रथा का क्या महत्त्व है?

२. नौकरशाही शासन के क्या दोष थे? प्रजातन्त्र शासन में उन दोषों को कैसे दूर किया जाता है?

३. सङ्घीय लोक सेवा आयोगों के विधान का वर्णन कीजिये। कौन से विषय ऐसे हैं जिनके लिए लोक सेवा आयोग की सम्मति लेना सङ्घ सरकार के लिए अनिवार्य है? (यू० पी०, १६५१)

४. राज्य व लोक-सेवा आयोगों का किस प्रकार सङ्गठन किया जाता है? उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य क्या हैं?

५. केंद्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न सरकारी नौकरियों का सङ्गठन समझाइये।

६. अपने देश के सैनिक सङ्गठन के विषय में तुम क्या जानते हो?

७. अखिल भारतीय सर्विस के सम्बन्ध में नोट लिखो। (यू० पी०, १६५२)

नव संविधान पर एक आलोचनात्मक दृष्टि

इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में हमने अपने नव संविधान की रूप-रेखा पर एक विहगम दृष्टि डाली है। इस संविधान में कौन सी विशेषताएँ हैं, तथा क्या-क्या गुण हैं, जिनके कारण हम कह सकते हैं कि हमारा विधान संसार के सर्वोत्तम विधानों में से एक है, इसका वर्णन हम इसी पुस्तक के द्वितीय अध्याय में विस्तारपूर्वक कर चुके हैं। अभी तक हमारे इस संविधान पर कार्य आरम्भ ही हुआ है। राज्यों की विधान सभाओं तथा केन्द्रीय विधान मण्डल के चुनाव अभी हाल ही में हो चुके हैं। इसलिए जिस समय तक इस संविधान पर कुछ वर्षों तक कार्य नहीं होता, तब तक हम यह नहीं कह सकते कि हमारे इस 'ऐतिहासिक पत्र' में क्या-क्या दोष हैं अथवा यह प्रत्येक दृष्टि से सर्वगुण सम्पन्न है अथवा नहीं। डाक्टर अम्बेदकर ने संविधान सभा के अन्तिम अधिवेशन में ठीक ही कहा था—"किसी विधान की सफलता इस बात पर निर्भर नहीं होती कि उसका निर्णय किन आदर्शों पर किया गया है, अथवा उसकी भाषा पूर्ण-रूपेण प्रजासत्तात्मक है अथवा नहीं, वरन् इस बात पर निर्भर करती है कि उस पर किस भावना से कार्य किया जाता है। विधान के सैद्धान्तिक गुण कितने ही अच्छे हों, परन्तु यदि वह लोग जो उसे कार्यान्वित करने के लिए आगे आते हैं, ईमानदार नहीं, तो अच्छे से अच्छा विधान भी बुरा होता जाता है। इसके विपरीत संविधान चाहे जितना बुरा हो, यदि उस पर कार्य करने वाले लोग अच्छे हैं तो विधान अच्छा बन जाता है। विधान की सफलता का अन्तिम उत्तरदायित्व जनता तथा राजनीतिक दलों पर है। यदि उन दोनों शक्तियों ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संवैधानिक उपायों को काम में लाया और क्रान्तिकारी उपाय न अपनाये तो निःसन्देह हमारा नव संविधान सफल रहेगा।"

नव संविधान के विरुद्ध आलोचनाएँ

हमारे नव संविधान के सिद्धान्तों तथा उसकी आकृति के विरुद्ध आलोचकों की भी कमी नहीं है। हमारे देश के अनेक लेखकों, राजनीतिक विद्वानों, विशेषकर समाजवादी तथा साम्यवादी नेताओं ने इस संविधान की दिल खोल कर आलोचना की है। नीचे हम इन आलोचनाओं का सार देते हैं। इन्हें देखने से पता चलेगा कि अधिकांश आलोचनाएँ वैयक्तिक प्रतिक्रिया द्वारा अनुप्रेरित हैं। वास्तविकता की दृष्टि से उनमें अधिक सार नहीं है और अधिकतर दलील एक दूसरे को काट देती हैं। उदाहरणार्थ

जहाँ एक ओर आलोचक यह कहते हैं कि हमारा नया विधान समुचित रूप में प्रजातन्त्रवादी नहीं है, वहाँ दूसरी ओर वह वयस्क मताधिकार की आलोचना करते हैं और कहते हैं कि अशिक्षित तथा जाहिल जनता के हाथ में शक्ति देने का अधिकार देने से हमारे राष्ट्र की नींव सुदृढ़ नहीं हो सकती। इसी प्रकार जहाँ एक ओर आलोचक भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार की स्थापना देखना चाहते हैं वहाँ दूसरी ओर वह राज्य की सरकारों के हाथ से अधिकार छीने जाने पर आँसू बहाते हैं। नीचे हम अपने संविधान के विरुद्ध की गई विभिन्न आलोचनाओं का विश्लेषण करेंगे और यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि उनमें कहाँ तक सार है :—

(१) *संसार का सबसे विस्तृत एवं जटिल विधान*—सर्व प्रथम हमारे नव संविधान के विषय में यह कहा जाता है कि यह विधान अत्यन्त जटिल, विस्तृत तथा कानूनीपन के दर्पों से भरा हुआ है। यह विधान संसार के विधानों में सबसे अधिक लंबा है तथा इसके बनाने में जितना समय लगा एवं इस पर जितना रुपया व्यय किया गया वह अद्वितीय है। हमारे संविधान में ३६५ धाराएँ तथा ८ परिशिष्ट हैं। इसके विपरीत अमरीका के संविधान में केवल ७, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, कैनाडा के संविधान में १४७, तथा दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ धाराएँ हैं। हमारे विधान को पास करने में देश की संविधान सभा को २ वर्ष ११ मास तथा १७ दिन का समय लगा तथा इस पर ६४ लाख रुपया व्यय किया गया। इसके विपरीत अमरीका की संविधान सभा ने केवल ४ मास, दक्षिण अफ्रीका की सभा ने १ वर्ष, तथा कनाडा की सभा ने २ वर्ष ५ मास में अपने विधान तैयार कर लिये थे।

आलोचना का उत्तर—इन आलोचनाओं को दोहराते समय हमारे राजनीतिज्ञ यह भूल जाते हैं कि भारतवर्ष की जैसी विकट समस्याएँ तथा यह जटिल परिस्थितियाँ जिनका विधान परिषद् को सामना करना पड़ा, संसार के किसी दूसरे देश के सम्मुख न थीं। भारत की लगभग ६०० देशी रियासतों का एकीकरण एवं विलीनीकरण जिनको हमारे विदेशी शासक विदा होते समय पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर गये थे, उस साम्प्रदायिक समस्या का निवारण जिसका हल अंग्रेजों द्वारा बनाई गई दो गोल मेज सभाएँ कुछ न निकाल सकीं, नये प्रान्तों का निर्माण, राष्ट्र भाषा का प्रश्न, भारत की प्राचीन संस्थाओं का नई संस्थाओं के साथ योग, वयस्क मताधिकार का प्रश्न, तथा जनता के उन मौलिक अधिकारों का निर्णय जिनके बिना भारत की त्रस्त तथा शोषित जनता के लिए स्वतन्त्रता का कोई मूल्य न था—और इन सारी समस्याओं पर उस समय विचार, जब सारा देश बँटवारे तथा ६० लाख शरणार्थियों के पुनर्वास के घोर संकट का सामना कर रहा था—कोई आसान काम न था। तीन वर्ष तो बहुत कम हैं। भारत की प्रत्येक उल्लिखित समस्या, हमारी सदियों की परतन्त्रता और गुलामी के वातावरण में इतना जटिल रूप

धारण कर चुकी थी कि यदि उसका निवारण और अधिक समय भी लेता तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। यदि जल्दी में हमारी विधान परिषद् ने अपने पहले वर्ष में संविधान बनाने का कार्य समाप्त कर दिया होता तो हमारी देशी रियासतों का क्या रूप होता, हैदराबाद और काश्मीर की समस्याओं का क्या हल निकलता, अल्पसंख्यक जातियों के लिए सुरक्षित स्थानों की क्या व्यवस्था रहती—यह कुछ प्रश्न हैं जिन पर हमें ठंडे हृदय से विचार करना चाहिये। किसी देश का संविधान एक अत्यन्त पवित्र तथा पावन ग्रंथ होता है। वह प्रतिदिन नहीं बदला जा सकता, उसके स्वरूप पर किसी देश की जनता का भविष्य निर्भर होता है। इसलिए ऐसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ को जितना भी सोच विचार कर बनाया जाय उतना ही कम है। रही आकार की बात तो इससे भय खाने की आवश्यकता नहीं। एक अच्छे संविधान का सबसे बड़ा गुण स्पष्टता है, और भारत की समस्याओं को देखते हुए एक छोटे संविधान में सब समस्याओं का निरूपण न हो सकता था।

(२) *अभारतीय विधान*—हमारे नव संविधान के विषय में दूसरी बात यह कही जाती है कि यह विधान अभारतीय है। उसकी आत्मा व आधार विदेशी है। वह भारत की प्राचीन संस्कृति का पुष्प और फल नहीं है। उसमें अधिकतर १९३५ के विधान की नकल की गई है। शेष विधान में इंगलैंड, अमरीका, कनाडा, आस्ट्रेलिया तथा आयरलैंड के विधानों से प्रेरणा ली गई है। इस विधान में कोई नई बात नहीं है, उसमें कोई नया सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया गया है।

उत्तर—इस आलोचना के उत्तर में हम केवल यही कह सकते हैं कि जो लोग हमारे संविधान को अभारतीय कह कर उसकी उपेक्षा करते हैं वह यह नहीं बताते कि हमारे नव संविधान का कौन सा भाग भारतीय संस्कृति पर कुठाराघात करता है, तथा वह किस प्रकार का संविधान भारतीय संस्कृति के अनुरूप समझते हैं? क्या प्राचीन भारत में जनतन्त्रात्मक शासन प्रणाली नहीं थी? क्या हमारे पहले राजा जनता द्वारा नहीं चुने जाते थे? क्या वह जनता के चुने हुए प्रतिनिधियों की सलाह से काम नहीं करते थे? क्या प्राचीन भारत में प्रतिनिधि संस्थाएँ—जनपद तथा लोक सभाएँ—नहीं थीं? क्या प्राचीन भारत में राज्यों का कोई विधान नहीं होता था? क्या बौद्ध काल में भिक्षु संघों का वही स्वरूप नहीं था जो आज हमारी 'संसद्' का है। *जिन लोगों ने डाक्टर जायसवाल, वासुदेव शरण अग्रवाल तथा भण्डारकर द्वारा लिखित उन पुस्तकों* को पढ़ा है जिनमें हमारे प्राचीन हिंदू राज्यों की व्यवस्था का उल्लेख किया गया है, उन्हें भारतीय संविधान में वर्णित हमारी आधुनिक शासन प्रणाली अभारतीय प्रतीत नहीं होगी। गणतन्त्रात्मक प्रणाली भारत के लिए नवीन नहीं है। वेदों, ब्राह्मण ग्रन्थों,

(600 B.C. to 400 A. D.) तक रही। संसार के शायद ही किसी दूसरे देश में इतने लंबे काल तक गण राज्य प्रणाली की प्रथा विद्यमान रही हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे नव संविधान के विषय में यह कहना कि यह अभारतीय है, पूर्णतया असत्य है। ऐसा केवल वही लोग कहते हैं जिन्होंने भारत के प्राचीन इतिहास का पठन पाठन एवं गूढ़ अध्ययन नहीं किया है। यह सच है कि हमारे विधान निर्माताओं ने दूसरे देशों के संविधानों से भी उनकी अच्छी बातें ग्रहण करने का प्रयत्न किया है और अपनी प्राचीन संस्थाओं को आधुनिक स्वरूप दे दिया है, परन्तु ऐसा करने में बुराई क्या है? क्या हम चाहते हैं कि हमारा देश संसार से अलग अपनी एक अलग दुनियाँ बनाये, हम पर दूसरी संस्कृतियों का प्रभाव न पड़े, हम दूसरे देशों से उनकी अच्छी बातें ग्रहण न करें, उनसे सम्पर्क न बढ़ायें? यदि हमारी ऐसी ही मनोवृत्ति रही, तो हम संसार में कभी आगे न बढ़ सकेंगे।

रही नये सिद्धान्तों के प्रतिपादन की बात तो जैसा डाक्टर अम्बेदकर ने कहा था, "पिछले २०० वर्षों में संसार में इतने संविधान बनाये गये हैं तथा हर दृष्टिकोण से उनके प्रत्येक पहलू पर इतना विचार किया गया है कि संविधानों के विषय में किसी नये सिद्धांत का प्रतिपादन करना अथवा कोई नये प्रकार का ऐसा संविधान बनाना जिसके विषय में कभी पहले नहीं सुना गया हो, न सम्भव ही है न आवश्यक ही।" यहाँ हम यह कह देना भी चाहते हैं कि एक ओर तो हमारे कुछ आलोचक यह कहते हैं कि भारत के संविधान में कोई नई बात नहीं है और उसमें दास वृत्ति से केवल यूरोप व अमरीका के देशों के संविधानों की नकल की गई है और दूसरी ओर यह यह भी कहते हैं कि हमारा नया संविधान संसार में अनूठा है और जिस प्रकार का भारतीय संघ उसके अन्तर्गत बनाने का प्रयत्न किया गया है, वैसा संघ किसी दूसरे देश में देखने को नहीं मिलता। इस प्रकार की विरोधात्मक दलीलें एक दूसरे का खंडन कर देती हैं और वह केवल यही सिद्ध करती हैं कि हमारा नया संविधान इस दृष्टि से बनाया गया है कि उसमें भारत की विशेष परिस्थिति के अनुसार सफलतापूर्वक कार्य करने की क्षमता हो और उसमें हमारी प्राचीन परम्परा एवं दूसरे देशों के संविधानों के सभी अच्छे गुण विद्यमान हों।

(३) *अगांधीवादी विधान*—हमारे नव संविधान के विरुद्ध तीसरी दलील यह दी जाती है कि उसमें गांधीजी के आदर्शों को पालन करने का कोई भी ध्यान नहीं रक्खा गया है।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर देने से पहले हमें यह समझ लेना चाहिये कि कोई भी विधान राजनीतिक विचारधारा की मीमांसा नहीं करता। वह केवल शासन व्यवस्था के मूल सिद्धांतों को प्रकट करता है, यद्यपि उसकी व्यवस्था से यह प्रकट हो जाता है

कि उसमें किस विचार धारा से काम लिया गया है। हमारे संविधान के गूढ़ अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा कि उसमें गांधीय दर्शन एवं कार्यक्रम का रंग-रूप आसानी से देखा जा सकता है।

गांधी जी के आदर्श क्या थे? रचनात्मक कार्यक्रम, अछूत प्रथा का अन्त, खादी एवं ग्रामोद्योगों की प्रगति, हिन्दू मुसलिम एकता, सर्वजन-कल्याण, मद्यनिषेध, राष्ट्र भाषा का प्रचार तथा विश्व शान्ति। संविधान के विभिन्न भागों विशेषकर उसके नियामक सिद्धांतों का अध्ययन करने से पता चलेगा कि उसमें राष्ट्रपिता के इन उद्देश्यों को प्राप्त करने का समुचित प्रयत्न किया गया है।

जनता द्वारा रचनात्मक कार्य किये जाने के लिए कोई विधान बाध्य नहीं कर सकता, वह तो एक व्यक्तिगत भावना का विषय है। जहाँ तक अछूत प्रथा के अन्त करने का प्रश्न है, यह हम देख ही चुके हैं कि नव संविधान में उसे एक भीषण अपराध घोषित कर दिया गया। खादी व ग्रामोद्योग की बात राज्य के नियामक सिद्धान्तों के अन्तर्गत आ गई है, क्योंकि ४३ से ५२ धाराओं में स्पष्ट कह दिया गया है कि राज्य व्यक्तिगत अथवा सहकारी आधार पर ग्राम्य क्षेत्रों में ग्रामोद्योग की उन्नति के लिए प्रयत्न करेगा। इसी प्रकार संयुक्त निर्वाचन प्रणाली की व्यवस्था द्वारा हिन्दू-मुसलमान एकता का महत्व स्वीकार किया गया है। सर्वजन-कल्याण के लिए हमारे संविधान में धर्म, जाति, लिंग व स्थिति का विचार न रखते हुए सब स्त्री पुरुषों को बराबर के मूल अधिकार प्रदान किये गये हैं। नियामक सिद्धान्त सम्बन्धी ३८वीं धारा में कहा गया है कि राज्य सभी नागरिकों के लिए जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था करेगा एवं आर्थिक व्यवस्था का सञ्चालन इस विधि से करेगा कि राष्ट्रीय सम्पत्ति एवं साधनों का वितरण जनसाधारण के हित में हो। इसी प्रकार संविधान की विभिन्न धाराओं में बेकारी, बुढ़ापे, बीमारी आदि की दशा में सरकारी सहायता का अधिकार, बालकों की नि:शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी अधिकार, मद्य एवं मादक वस्तुओं के निषेध, गोरक्षा, एक राष्ट्रभाषा एवं विश्व शान्ति की पुष्टि के लिए न्याय तथा सम्मानपूर्ण सम्बन्धों की अक्षुण्णता बनाये रखने के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। यह सभी सिद्धान्त गांधी जी को अत्यन्त प्रिय थे और इनकी स्पष्ट झलक हमारे संविधान में देखने को मिलती है।

(४) मौलिक अधिकारों पर कुठाराघात करने वाला विधान—बहुत से नेताओं का कहना है कि भारतीय संविधान में नागरिकों के मौलिक अधिकारों का वर्णन एक ढकोसला है। उन्हें जो एक हाथ से दिया गया है वही दूसरे हाथ से छीन लिया गया है।

उत्तर—इन आलोचकों का आशय मौलिक अधिकारों में वर्णित उन शर्तों से है

जिनके द्वारा कहा गया है कि विशेष परिस्थितियों में नागरिकों के कई अधिकार छीने भी जा सकेंगे। परन्तु यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि ससार के किसी भी देश में नागरिकों को पूर्ण रूप से मनचाहे काम करने की स्वतन्त्रता नहीं दी जाती। अमेरिका में भी जहाँ विधान में मौलिक अधिकारों का वर्णन है, सुप्रीम कोर्ट द्वारा ऐसे फैसले दिये गये हैं जिनके *अन्तर्गत नागरिक अधिकारों की व्याख्या उसी प्रकार की गई है* जैसी भारतीय सविधान में।

यह सच है कि अमेरिका के सविधान में नागरिकों के जिन मौलिक अधिकारों का वर्णन किया गया है उन पर किसी प्रकार की वैधानिक रोक नहीं लगाई गई है, परन्तु वहाँ पर सुप्रीम कोर्ट द्वारा एक दूसरा सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है जिसे अँग्रेजी में (डाक्ट्रिन आफ दी पुलिस पावर आफ दी स्टेट) अर्थात् "राज्य की पुलिस शक्ति का सिद्धान्त" कहते हैं। इस सिद्धान्त के अन्तर्गत अमरीका के उच्चतम न्यायालय ने कहा है कि नागरिकों को अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिये जा सकते। राज्य की रक्षा व जनता के हित में सरकार को अधिकार है कि वह नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगा सके।

मौलिक अधिकारों के सम्बन्ध में, अमरीका व भारत के सविधानों में केवल इतना अन्तर है कि एक देश में सुप्रीम कोर्ट को अधिकार है कि वह इस बात का निश्चय करे कि *नागरिकों के अधिकारों पर किन दशाओं में रोक लगाना उचित है* और दूसरे देश में विधान द्वारा ही इस बात का निश्चय कर दिया गया है कि उन अधिकारों पर क्या-क्या रोक लगाई जाय। एक प्रकार से हम कह सकते हैं कि अमरीका के सविधान में सुप्रीम कोर्ट की शक्ति अधिक विस्तृत रक्खी गई है और उसे इस बात का अधिकार दिया गया है कि वह काग्रेस द्वारा बनाये गये किसी असवैधानिक कानून को रद्द कर सके। भारत में इसके विपरीत *'विधान मण्डल' की शक्ति को सर्वोपरि रक्खा गया है* और जब तक वह सविधान के अन्दर रह कर कार्य करती है, देश का उच्चतम न्यायालय उन कानूनों को रद्द नहीं कर सकता।

पिछले दिनों मौलिक अधिकार सम्बन्धी श्री गोपालन के एक मुकदमे में हमारे सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय किया था कि ससद् को सविधान के अन्तर्गत ऐसे कानून बनाने का अधिकार है जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर रोक लगाई जा सके। इसी दृष्टि से उसने *भारत सरकार* के सन् १९४९ के बिना मुकदमे नजरबन्दी कानून को वैध घोषित किया। इस कानून की केवल वही धारा अवैध घोषित की गई जिसके द्वारा न्यायालयों को इस बात का अधिकार नहीं दिया गया था कि वह उन कारणों की छान-बीन कर सके जिनके कारण किसी व्यक्ति को नजरबन्द करना आवश्यक समझा गया।

अन्तिम दशा में, हमें यह भलीभाँति समझ लेना चाहिये कि किसी देश में भी

नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा, न्यायालय व संविधान द्वारा नहीं, वरन् केवल एक सचेत, जागृत व शिक्षित लोकमत द्वारा ही की जा सकती है। यदि लोकमत सचेत न हुआ तो संविधान चाहे जितना अच्छा हो, वह भी बदला जा सकता है और इस प्रकार के कानून बनाये जा सकते हैं जिनसे नागरिकों के मौलिक अधिकारों का कोई अर्थ ही शेष न रह जाय। और यदि किसी देश में जनता जागरूक है तो संविधान चाहे जितना निकम्मा हो, सरकार का इतना साहस नहीं हो सकता कि वह नागरिकों के अधिकारों के साथ किसी प्रकार का खिलवाड़ कर सके। अपने मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए इसलिए हमें चाहिये कि विधान में त्रुटि निकालने के स्थान पर हम जनता में जागृति उत्पन्न करें और लोकमत को सचेत व सुदृढ़ बनावें। हम इस दशा में सन्तोषजनक प्रगति कर रहे हैं। यह इस बात से ज्ञात होता है कि मई सन् १९५१ में जब संविधान में प्रथम संशोधन किया गया तो भारतीय जनता ने इस बात का प्रयत्न किया कि संशोधन उसके अधिकारों को छीनने वाले न हों।

(५) *राज्यों की सत्ता व उनके अधिकारों का हराने वाला विधान*—हमारे नव संविधान के विरुद्ध पाँचवाँ आक्षेप यह लगाया जाता है कि उसके अन्तर्गत राज्यों की सरकारों के अधिकारों को छीनकर, उनकी स्थिति प्राय. वैसी ही कर दी गई है जैसी स्थानीय संस्थाओं (म्युनिसिपल इन्स्टीट्यूशन्स) की। आलोचकों का कहना है कि संघीय विधान के अन्तर्गत संघ में सम्मिलित होने वाली इकाइयों के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये। संघ को इस बात का अधिकार नहीं होना चाहिये कि वह राज्यों के आन्तरिक शासन प्रबन्ध में हस्तक्षेप कर सके। संघीय विधान केवल इसी दृष्टि से बनाया जाता है कि उसके अन्तर्गत कुछ ऐसे विषयों का प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार को सौंपा जाय जिनमें उस संघ में सम्मिलित होने वाली सभी इकाइयाँ समान रूप से रुचि रखती हों, और शासन के शेष सभी विषय राज्यों की सरकारों के पास सुरक्षित रहें। भारतीय विधान में संघ शासन के इन मूल सिद्धान्तों का ध्यान न रख कर, एक इस प्रकार की सरकार का संगठन किया गया है जो केवल नाम से संघीय है, अन्यथा उसमें सभी लक्षण एकात्मक सरकार जैसे हैं।

उत्तर—इस आक्षेप के उत्तर में हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने इस बात की परवाह न करते हुए कि हमारे देश का संविधान पूर्ण रूप से संघीय विधानों के लक्षणों को सन्तुष्ट करता है अथवा नहीं, इस बात का प्रयत्न किया है कि हमारे देश के लिए एक ऐसे विधान की रचना हो जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल हो एवं जिसमें हमारे देश में व्याप्त प्रान्तीयता एवं पृथक्करण की भावनाओं का अन्त करने की क्षमता हो। हमारे देश का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत की स्वाधीनता को केवल उस समय खतरा उत्पन्न हुआ है जब

हमारे देश में केंद्रीय सत्ता की शक्ति कम हो गई है। इसलिए हमारे नये विधान में इस बात का विचार रक्खा गया है कि जहाँ राज्यों की सरकारों को अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र रह कर कार्य करने की आज्ञा हो, वहाँ वह कोई ऐसा काम न कर सकें जिससे जनता का अहित हो।

अनुचित केन्द्रीयकरण के आरोप का उत्तर देते हुए डाक्टर अम्बेदकर ने संविधान सभा में कहा था, "संघीय विधानों की सबसे बड़ी पहचान यह है कि उनके अधीन संघ सरकार तथा उनकी इकाइयों के बीच अधिकारों का विभाजन होना चाहिये।" हमारे विधान में यह विभाजन पूर्ण रूप से विद्यमान है। इस अधिकार विभाजन के अधीन संघ एवं राज्यों की सरकारें अपने अपने क्षेत्र में काम करने के लिए स्वतन्त्र होंगी। रही विशेष परिस्थितियों की बात, तो ऐसे समय में सारे देश का ही हित संघ सरकार द्वारा काम किये जाने में होगा, हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि संघ सरकार सदा संसद् के प्रति उत्तरदायी होगी। और लोक सभा तथा राज्य परिषद् में केवल वही सदस्य भाग ले सकेंगे जो राज्यों के चुने हुए प्रतिनिधि होंगे। ऐसे सदस्य कभी अपने राज्य के हित के विरुद्ध काम नहीं करेंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आलोचकों के इस आरोप में अधिक बल नहीं है। आज हमारे देश में एक ऐसे शासन की आवश्यकता है जो सारे राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध कर हमारी नव प्राप्त स्वतन्त्रता को इन्द्र के वज्र के समान सुदृढ़ बना सके।

(६) *फासिस्टवादी विधान*—उपरोक्त आरोप से मिलता जुलता एक दूसरा आरोप हमारे विधान के विरुद्ध यह लगाया जाता है कि उसके अधीन समस्त राज्य सत्ता केन्द्र में ही एकत्रित कर दी गई है, और भारत की प्राचीन परम्परा के अनुसार उसका आधार ग्राम पंचायतें नहीं रक्खी गई हैं। इसी कारण कुछ आलोचकों का कहना है कि हमारा नया विधान हमें फासिस्मवाद की ओर ले जाता है। संविधान में राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया है कि वह एक संकटकालीन स्थिति की घोषणा करके, देश का समूल शासन, संघ सरकार के अधीन ले सकें और फिर केन्द्रीय सरकार उसी प्रकार कार्य करे जैसा कोई तानाशाह किया करता है।

उत्तर—इस आरोप का उत्तर हम पहले ही दे चुके हैं। यहाँ केवल यह बतला देना पर्याप्त होगा कि आलोचकों का यह कहना कि नव संविधान के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों की उपेक्षा की गई है अथवा उनके संगठन के लिए किस प्रकार का प्रबन्ध नहीं किया गया है, ठीक नहीं है। हमारे संविधान के निर्माणक सिद्धान्तों में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भारतीय संघ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य अपने क्षेत्र में ग्राम पंचायतों के संगठन के लिए शीघ्रातिशीघ्र प्रयत्न करेगा। हमारे देश के कितने ही प्रान्तों में इस प्रकार की सहस्रों पंचायतें संगठित की जा चुकी हैं और उन सब को वही अधिकार

प्रदान कर दिये गये हैं जो प्राचीन भारत में ग्राम पंचायतों को प्राप्त थे। दूसरे प्रान्तों में भी इस दिशा में अत्यन्त शीघ्रता के साथ काम किया जा रहा है।

(७) *अनमनीय संविधान*—एक और आलोचना विधान के विरुद्ध यह की जाती है कि इसमें फैलाव, विकास व परिवर्तन के लिए अधिक स्थान नहीं है। इस विधान को कानूनबाज़ी के दाँव पेंचों से भरपूर कर दिया गया है। यह विधान स्पष्ट नहीं है और इसे भारत की अशिक्षित जनता भली प्रकार नहीं समझ सकती।

उत्तर—किसी देश का विधान एक अनन्त पावन तथा पवित्र ग्रन्थ होता है। उसी के स्वरूप पर जनता के अधिकार आधारित रहते हैं। कोई भी देश, इसलिए अपने संविधान को, एक बार अत्यन्त सोच समझ कर बना लेने के पश्चात् यह नहीं चाहता कि वह आसानी से बदला जा सके। भारत ने विधान को भी केवल इसी दृष्टि से दुष्परिवर्तनशील (रिजिड) रक्खा गया है, परन्तु उसमें कितनी ही ऐसी धाराएँ हैं जो बहुमत से बदली जा सकेंगी। दूसरी धाराओं के परिवर्तन के लिए केवल दो तिहाई बहुमत का होना आवश्यक होगा। रही कानूनीपन की बात, तो इस प्रकार के महत्वपूर्ण 'ग्रन्थ' में यह दोष सर्वत्र ही पाया जाता है। सावधान सरकार का स्वरूप निश्चित करने के लिए होता है। उसके सिद्धान्त आम जनता द्वारा आसानी से समझे जा सकते हैं। जहाँ तक उसकी धाराओं का सम्बन्ध है, वह विशेषज्ञों के लिए बनाई जाती हैं। जन-साधारण के लिए वह विशेष महत्व नहीं रखतीं।

(८) *संकुचित प्रतिनिधित्व के आधार पर बनाया गया विधान*—हमारे देश के समाजवादी व साम्यवादी दलों द्वारा यह बात प्रायः बहुत बार दोहरा कर कही जाती है कि हमारा विधान एक ऐसी संविधान सभा द्वारा नहीं बनाया गया जिसका चुनाव वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ हो। संविधान सभा के चुनाव प्रान्तीय सभाओं द्वारा किये गये थे, जिनका चुनाव देश की समस्त बालिग जनता द्वारा नहीं वरन् केवल उन्हीं लोगों द्वारा किया गया था जिन्हें सन् १६३५ के विधान के अधीन राय देने का अधिकार प्राप्त था। ऐसे लोगों की संख्या १३ प्रतिशत से अधिक नहीं थी। इन आलोचकों का कहना है कि इसी सीमित मत प्रदान प्रथा के अधीन उन लोगों को संविधान सभा में प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया जो भारत की नग्न तथा भूख और प्यास से पीड़ित जनता, किसान और मजदूरों के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते थे। स्वाभावतः इन लोगों ने अपने स्वार्थ लाभ के लिए इस प्रकार का विधान बनाया जिसके अधीन वह गरीब जनता का शोषण जारी रख सकते थे। उदाहरणार्थ, इन लोगों का कहना है कि नये विधान में व्यक्तिगत सम्पत्ति की प्राप्ति पर किसी प्रकार की रोक नहीं लगाई गई है, देश के बड़े बड़े कारखानों के ऊपर राज्य के स्वामित्व का प्रबन्ध नहीं किया गया है,

मजदूरों को ट्रेड यूनियन बनाने, हड़ताल करने तथा अपने अधिकारों की रक्षा के लिए आन्दोलन करने का अनियन्त्रित अधिकार नहीं दिया है, इत्यादि।

उत्तर—उपरोक्त आरोप में समुचित सचाई है। परन्तु आलोचक यह भूल जाते हैं कि जिस परिस्थिति में हमारे देश की विधान सभा का सङ्गठन हुआ उस दशा में वयस्क मताधिकार के आधार पर उसका सङ्गठन असम्भव नहीं तो अव्यावहारिक अवश्य था। हमें यह भी नहीं भूलना चाहिये कि किसी भी चुनाव के अधीन संविधान सभा में कांग्रेस दल को ही बहुमत प्राप्त होता और फिर उस दशा में संविधान का वही स्वरूप होता जो उसका आज है। रही समाजवाद की बात, तो भारत की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति, इस सिद्धान्त के प्रतिफलन के अनुकूल नहीं है। आज हमारा देश भीषण आर्थिक सङ्कट के समय से गुजर रहा है। ऐसी अवस्था में राष्ट्रीयकरण की माँग एक आकर्षक नारे के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। हाँ, परिस्थिति सुधरने पर जनता को पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने संविधान में उचित परिवर्तन कर सके। हमारा संविधान किसी समय भी दो तिहाई बहुमत से बदला जा सकता है। यदि आने वाले आम चुनावों में समाजवादी दल को विजय प्राप्त होती है तो उसे पूर्ण अधिकार होगा कि वह अपने सिद्धान्त के अनुसार संविधान में परिवर्तन कर ले।

(६) *राष्ट्र मण्डल के स्वरूप से प्रभावित हमारा विधान*—अन्त में हमारे नव संविधान के विरुद्ध सबसे बड़ी दलील यह दी जाती है कि यह विधान एक स्वतन्त्र देश की स्वतन्त्र जाति का विधान नहीं है। यह एक ऐसे देश का विधान है जो राष्ट्र मण्डल का सदस्य है और इस कारण यह एक पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र देश का विधान नहीं है। हमारे देश की सरकार ने राष्ट्र मण्डल का सदस्य रहना स्वीकार करके जनता के साथ विश्वासघात किया है। कारण, सन् १६३० के पश्चात् से कांग्रेस सदा यह कहती रही थी कि वह कभी औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थिति स्वीकार नहीं करेगी।

उत्तर—उपरोक्त आरोप का विस्तृत विश्लेषण हम इसी पुस्तक के तीसरे अध्याय में कर चुके हैं। यहाँ हम केवल इतना ही दुहरा देना उचित समझते हैं कि, भारत राष्ट्र मण्डल का सदस्य रहे, इसके लिए हमारा देश इतना इच्छुक नहीं था जितना स्वयं राष्ट्र मण्डल के दूसरे देश, और ऐसा करने के लिए उन्होंने भारत की प्रत्येक शर्त मानी और स्वयं राष्ट्र मण्डल का स्वरूप ही बदल दिया। आज राष्ट्र मण्डल का प्रत्येक देश आन्तरिक व बाह्य शासन प्रबन्ध की दृष्टि से पूर्ण रूप से स्वतन्त्र है। सम्राट् के प्रति राज भक्ति का प्रश्न भी अब नहीं उठता। सम्राट् राष्ट्र मण्डल का अब केवल सांकेतिक रूप में अध्यक्ष है। वह ब्रिटिश साम्राज्य का प्रथम नागरिक है, परन्तु भारतीय सरकार का अध्यक्ष नहीं। हमारी सरकार का अध्यक्ष जनता का अपना चुना हुआ प्रतिनिधि राष्ट्रपति है। राष्ट्र मण्डल की सदस्यता से भारत के गणतन्त्रीय स्वरूप अथवा उसकी

सत्ता पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता। हमारे देश की जनता प्रत्येक विषय में स्वयं ही अपना मार्ग निर्धारित करती है। वह किसी प्रकार की ब्रिटेन अथवा राष्ट्रमंडल के दूसरे सदस्यों की विदेश नीति को पालन करने के लिए बाध्य नहीं।

निष्कर्ष—इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे विधान निर्माताओं ने हमारे देश के लिए एक ऐसा संविधान बनाया है जिस पर हम गर्व कर सकते हैं। यह सच है कि संविधान के कुछ अंश ऐसे हैं जिन्हें अत्यन्त असन्तोष की दृष्टि से देखा गया है, परन्तु भारत की वर्तमान राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थिति में, स्वभावतः इससे अच्छा विधान नहीं हो सकता था। आज हमारे देश की सबसे बड़ी आवश्यकता अपनी स्वतन्त्रता को दृढ़ बनाने तथा आर्थिक संकट को दूर करने की है। ऐसी दशा में यदि हमारे विधान निर्माता हमारे देश के लिए आदर्श विधान नहीं बना सके हैं, तो इसके लिए उन्हें दोषी ठहराना उचित नहीं। इस प्रकार की व्यवस्था का उत्तरदायित्व यदि किसी पर है तो वह हमारे देश की वर्तमान परिस्थिति है। हमें आशा है, जैसे-जैसे देश की जनता में शिक्षा का प्रसार होगा तथा वह अपने कर्तव्यों को भली प्रकार समझने लगेगी, वैसे वैसे हमारे वर्तमान संविधान की असन्तोषजनक धाराएँ बदल दी जायेंगी और हम एक ऐसे राष्ट्र के नागरिक कहे जाने में गर्व का अनुभव करेंगे, जिसका संविधान संसार का सबसे सुन्दर तथा आदर्श विधान होगा।

योग्यता प्रश्न

१. नये संविधान के विरुद्ध क्या-क्या आलोचनाएँ की जाती हैं? इन आलोचनाओं में कितना सार है?

२. क्या यह सच है कि हमारा नव संविधान अधिनायकवादी और अभारतीय है?

३. नव संविधान में राज्यों की स्थिति नगरपालिकाओं जैसी रह गई है। क्या यह आरोप सच है?

४. "नव संविधान में दूसरे देशों के संविधानों की नकल की गई है और कोई नई परम्परा कायम करने का प्रयत्न नहीं किया गया।" इस कथन में कितनी सच्चाई है?

५. "नया विधान संसार का सबसे जटिल, लम्बा तथा निकम्मा विधान है।" क्या यह कथन ठीक है?

अध्याय १६

उत्तर प्रदेश का शासन प्रबन्ध

भारत के सभी प्रान्तों से हमारा प्रान्त अधिक बड़ा है। इसका क्षेत्रफल १,१२,५२३ वर्गमील और जनसख्या, ६, ३२, ००,००० है। रामपुर, बनारस तथा टेहरी गढवाल रियासतों को भी अब हमारे प्रान्तों में ही विलीन कर दिया गया है। हमारा प्रान्त इतना बड़ा है कि यूरोप के कई छोटे-छोटे देश, जैसे—स्विटजरलैंड, बेल्जियम, हालैंड, लुक्जमबर्ग, ऐल्बानिया, ऐस्टोनियाँ इत्यादि इसमें समा सकते हैं। विदित है कि इतने बड़े प्रान्त (जिसे नये संविधान में राज्य कहा गया है) का शासन राजधानी में बैठकर किसी एक राज्यपाल अथवा मन्त्रिमंडल द्वारा नहीं चलाया जा सकता। इसलिए शासन की सुविधा की दृष्टि से प्रत्येक प्रान्त कुछ डिवीजनों, जिलों, सब डिवीजनों, तहसीलों, परगनों तथा गाँवों में बाँट दिया जाता है। इनमें से प्रत्येक भाग का एक अलग अफसर होता है जिसे कमिश्नर, कलक्टर, डिप्टी कलक्टर, तहसीलदार, कानूनगो तथा पटवारी कहा जाता है। मन्त्रियों के नीचे जो और विभाग होते हैं जैसे कृषि विभाग सिंचाई विभाग, सहकारी विभाग, इमारती विभाग, राजस्व विभाग, शिक्षा विभाग, उद्योग विभाग, श्रम विभाग इत्यादि। उनका प्रबन्ध उस महकमे के नीचे अलग-अलग अफसरों द्वारा किया जाता है।

सरकारी विभाग

प्रत्येक सरकारी विभाग का सर्वोच्च अधिकारी एक मंत्री ही होता है जो प्रान्तीय धारा सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। मंत्री की सहायता के लिए विभाग में एक सेक्रेटरी होता है, जिसके नीचे कुछ डिप्टी तथा अडर सेक्रेटरी काम करते हैं। उनके नीचे एक पूरा दफ्तर होता है जिसमें क्लर्क, असिस्टेंट तथा सुपरिंटेंडेंट होते हैं। मंत्री का काम सरकार की नीति का निश्चय करना तथा अपने विभाग की उन्नति के लिए योजनाएँ बनाना होता है। विभाग के दिन प्रति दिन का काम, सेक्रेटरी तथा उसके नीचे काम करने वाले सरकारी अफसर करते हैं।

विभाग का सबसे बड़ा दफ्तर तो राजधानी में होता है, परन्तु उसके कार्यवाह अफसर जिलों, तहसीलों तथा गाँवों में रह कर अपने-अपने काम की देखभाल करते हैं। यह अफसर अपने विभाग के मंत्री तथा सेक्रेटरी के आदेशों का पालन करते हैं; साथ ही यह अपने काम का विवरण जिले के कलक्टर तथा डिवीजन के कमिश्नर को भी

देते हैं। इस प्रकार इन अफसरों की दोहरी जिम्मेदारी होती है—एक अपने मुहकमे के प्रति और दूसरे कलक्टर या कमिश्नर के प्रति। कलक्टर और कमिश्नर अपने-अपने क्षेत्र में प्रांतीय सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह शासन के सभी महकमों की देख-भाल करते हैं जिससे राज्य का प्रबन्ध ठीक प्रकार से चल सके और जनता अपना जीवन सुख और चैन के साथ व्यतीत कर सके।

साधारण शासन प्रबन्ध

कमिश्नर

हमारे प्रांत में दस कमिश्नरियाँ हैं। प्रत्येक कमिश्नरी का औसतन क्षेत्रफल ११,००० वर्गमील है तथा जनसंख्या ६० लाख। कुमाऊँ को छोड़कर शेष सभी डिवीजनों में कमिश्नर डिवीजन का प्रधान अफसर होता है। कुमाऊँ डिविजन का शासन नैनीताल के डिप्टी कमिश्नर के हाथ में है। कमिश्नर का मुख्य काम जिले के कलक्टर तथा प्रांतीय मंत्रियों के बीच एक कड़ी का काम करना होता है। प्रांतीय सरकार की सभी आज्ञाएँ कलक्टरों के पास कमिश्नरों के द्वारा भेजी जाती हैं। कमिश्नर अपने नीचे सभी जिलाधीशों के काम की देखभाल करता है। उसका मुख्य काम मालगुजारी तथा भूमि सम्बन्धी होता है। वह अपने अधीन अधिकारियों की मालगुजारी सम्बन्धी निर्णयों की अपील सुनता है तथा मालगुजारी की वसूली की देखभाल करता है। जरूरत पड़ने पर वह मालगुजारी की छूट भी दे सकता है तथा उसकी वसूली रोक सकता है।

कुछ लोगों का विचार है कि कमिश्नर का पद व्यर्थ का अनावश्यक पद है। प्रांतीय सरकार सीधा कलक्टरों के साथ अपना सम्बन्ध रख सकती है। मद्रास प्रांत के अन्दर कमिश्नर का पद नहीं होता, फिर भी वहाँ शासन अत्यन्त कुशलता के साथ चलता है। आजकल जब शासन का कार्य चलाने के लिए अनुभवी अधिकारियों की अत्यन्त कमी है तो इस पद के लिए योग्य तथा पुराने मुलझे हुए अधिकारियों की नियुक्ति करना न्यायसंगत नहीं। इसलिए हमारे प्रांत की सरकार इस बात का विचार कर रही है कि कमिश्नरों के पद को रक्खा जाय अथवा नहीं। अन्तिम निश्चय होने तक सरकार ने कमिश्नरों की संख्या १० से घटा कर ५ कर दी है।

जिलाधीश (कलक्टर)

प्रत्येक कमिश्नरी में कुछ जिले होते हैं। भिन्न भिन्न कमिश्नरों में जिलों की संख्या अलग-अलग है। उदाहरणार्थ, लखनऊ कमिश्नरी में ६ जिले हैं, मेरठ में ५ और गोरखपुर में केवल ३। हमारे प्रांत में कुल जिलों की संख्या ५१ है। इनमें वह जिले भी शामिल हैं जो रामपुर, बनारस तथा टेहरी-गढ़वाल रियासतों को मिलाने से बनाये गये हैं। जिले के सर्वोच्च अधिकारी को जिलाधीश या कलक्टर कहते हैं। कुमाऊँ

में उसे डिप्टी कमिश्नर कहा जाता है। कुछ काल पहले तक यह अफसर इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य होते थे। सिविल सर्विस के लोगों को भी बहुत अनुभव हो जाने के पश्चात् कलक्टर बनने का अवसर दे दिया जाता था। परन्तु अब इण्डियन सिविल सर्विस की भर्ती बन्द कर दी गई है, कारण इस सर्विस का चुनाव भारत मंत्री द्वारा किया जाता था। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ऐसा करना सम्भव नहीं था इसलिए उसके स्थान पर 'इण्डियन ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' का आयोजन किया गया है। इसी सर्विस के व्यक्ति आजकल जिलों के कलक्टर बनते हैं।

कलक्टर अपने जिले में सरकार का प्रतिनिधि रूप होता है। शासन प्रबन्ध की दक्षता उसी के कार्य पर निर्भर रहती है। जिले के अन्तर्गत सब प्रकार के कामों की देखभाल करना उसी का काम होता है। उसे कई काम करने पड़ते हैं जैसे मालगुजारी वसूल करना, जिले में शान्ति और व्यवस्था कायम रखना, जिले की जेलों, शिक्षा संस्थाओं, अस्पतालों, सड़कों, इमारतों, स्थानीय संस्थाओं और ग्राम पंचायतों की देखभाल करना इत्यादि। मुख्य रूप से उसके अधिकारों को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :—

(१) मालगुजारी सम्बन्धी अधिकार—जिले की मालगुजारी वसूल करना कलक्टर का मुख्य काम होता है। इसी दृष्टि से उसे भूमि सम्बन्धी सभी कागजात सँभाल कर रखने पड़ते हैं। जिले के सारे पटवारी, कानूनगो, नायब तहसीलदार तथा तहसीलदार उसकी इस काम में सहायता करते हैं। जिले का खजाना भी उसी के अधीन रहता है।

(२) शान्ति और व्यवस्था सम्बन्धी अधिकार—जिले में शान्ति और व्यवस्था कायम रखना कलक्टर का दूसरा मुख्य काम है। इस कार्य की दृष्टि से जिले के सारे पुलिस कर्मचारी, पुलिस सुपरिन्टेंडेंट, डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट, थानेदार इत्यादि उसी के नीचे काम करते हैं। राजनीतिक दृष्टि से भी जिले में किसी प्रकार की गड़बड़ी न होने देना उसी का काम है। सभा, जुलूस, समाचारपत्रों, राजनीतिक दलों इत्यादि की देखभाल करना—इसलिए उसके कार्य का आवश्यक अङ्ग है। जिले में किसी कलक्टर की सफलता इसी बात से जानी जाती है कि वह शान्ति बनाये रखने में कहाँ तक सफल होता है। समाचारपत्रों पर दृष्टि रखना, जनता को अपने पक्ष में बनाना, सरकार की आज्ञाओं को जनता तक पहुँचाना तथा सारे जिले का दौरा करना उसका मुख्य काम होता है।

(३) न्याय सम्बन्धी अधिकार—कलक्टर न्याय की दृष्टि से प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट होता है। बहुत से फौजदारी मुकदमे उसी की अदालत में पेश किये जाते हैं। उसे अपराधियों को दो वर्ष तक की सजा तथा १,००० रुपया जुर्माना करने का अधिकार होता है। वह माल के मुकदमों में अपने अधीन डिप्टी कलक्टरों के निर्णयों की अपील

करने पड़ते हैं। उसे प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के अधिकार भी प्राप्त होते हैं और उसका मुख्य काम मुकदमों की सुनवाई करना तथा अपने सब डिवीजन में शांति और व्यवस्था कायम करना होता है। उसे मालगुजारी के प्रबंध की देखभाल नहीं करनी पड़ती।

तहसीलदार

एक सब डिवीजन में तीन या चार तहसीलें होती हैं। प्रत्येक तहसील का अफसर एक तहसीलदार होता है। उसके भी दो प्रकार के काम होते हैं—एक मालगुजारी सम्बन्धी और दूसरे शासन सम्बन्धी। मालगुजारी की वसूली के लिए उसके नीचे एक नायब तहसीलदार, एक सदर कानूनगो, कुछ दूसरे कानूनगो तथा बहुत से पटवारी काम करते हैं। यही अफसर मालगुजारी तथा जमीनों की मिल्कियत का ब्यौरा रखते हैं। तहसीलदार एक द्वितीय श्रेणी का मजिस्ट्रेट भी होता है। वह छोटे फौजदारी तथा माल के मुकदमों का फैसला करता है। शासन प्रबन्ध की दृष्टि से तहसीलदार के नीचे तहसील के सभी थानों के थानेदार, हेड कान्स्टेबिल, सिपाही तथा गाँवों के चौकीदार, आकर अपने काम का ब्यौरा देते हैं। तहसीलदार, कलक्टर तथा डिप्टी कलक्टर दोनों के प्रति जिम्मेदार होता है।

पुलिस का प्रबन्ध

जिले में शान्ति तथा व्यवस्था कायम रखने के लिए पुलिस होती है जिसका मुख्य अधिकारी एक पुलिस सुपरिन्टेंडेंट होता है। उसके नीचे दो प्रकार की पुलिस काम करती है :—(१) खुफिया पुलिस और (२) साधारण पुलिस। खुफिया पुलिस के लोग गुप्त रहकर संगीन जुर्मों की छानबीन करते हैं। बड़े-बड़े षड्यन्त्रों तथा राजनीतिक अभियोगों का भी वही पता लगाते हैं। दोनों प्रकार की पुलिस के अलग अलग सब-इन्सपेक्टर, इन्सपेक्टर तथा डिप्टी सुपरिन्टेंडेंट पुलिस होते हैं। यह सभी अफसर सुपरिन्टेन्डेन्ट पुलिस तथा जिले के कलक्टर को अपने काम का ब्यौरा देते हैं। पुलिस के महकमे का सबसे बड़ा अधिकारी होम मिनिस्टर कहलाता है। उसके नीचे एक इनस्पेक्टर जनरल आफ पुलिस तथा कुछ डिप्टी तथा असिस्टेन्ट इन्सपेक्टर जनरल पुलिस का काम करते हैं। जिले का पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट इन्हीं अफसरों के प्रति उत्तरदायी होता है।

पुलिस की दृष्टि से प्रत्येक जिला कुछ सर्किलों, थानों तथा चौकियों में बँटा हुआ होता है। सर्किल का अफसर एक सर्किल इनस्पेक्टर, थाने का अफसर एक थानेदार तथा चौकी का अफसर एक हवलदार कहलाता है। कुछ बड़े बड़े नगरों में कोतवालियाँ भी होती हैं जिनका इंचार्ज एक कोतवाल होता है।

भारत की गुलामी के काल में पुलिस अफसर अपना मुख्य कार्य देश में राजनीतिक

आन्दोलन को दबाना तथा किसी भी प्रकार के उचित अथवा अनुचित उपायों से अपने क्षेत्र में शान्ति बनाये रखना समझते थे। जनता के भले तथा प्रतिष्ठित व्यक्तियों को परेशान करने तथा उनके विरुद्ध झूठे-सच्चे मुकदमे बनाने में भी उन्हें आनन्द आता था। वह जनता की रक्षा नहीं, उसके अधिकारों की भर्त्सना करते थे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् पुलिस के दृष्टिकोण में एक बड़ा परिवर्तन आ गया है। वह अब अपने आप को जनता का सेवक समझती है। जनता के साधारण व्यक्तियों का सबसे अधिक काम पुलिस के अधिकारियों के साथ पड़ता है इसलिए स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझ कर हमारे पुलिस अधिकारियों को चाहिये कि वह रिश्वत, बेईमानी, दमन तथा जुल्म का मार्ग छोड़कर जनता की सेवा को ही अपना सबसे बड़ा धर्म समझें। हमारे प्रान्त में आज भी पुलिस के कितने ही ऐसे कर्मचारी हैं जिनकी मनोवृत्ति अभी तक नहीं बदली है और जो पुराने ही ढङ्ग पर शासन का कार्य चलाना चाहते हैं। हमारा धर्म है कि हम ऐसे पुलिस कर्मचारियों को उनका कर्तव्य समझाने तथा उनके अनुचित कार्यों को मन्त्रियों तथा प्रान्तीय विधान सभा के सदस्यों के सम्मुख रक्खें।

जेलों का प्रबन्ध

प्रत्येक जिले में एक जेल होना अनिवार्य होता है, जिससे वहाँ पर वह सभी अपराधी रक्खे जा सकें जो कानून को तोड़ते हैं। जेल का बड़ा अफसर 'सुपरिन्टेंडेंट जेल' तथा छोटा अफसर 'जेलर' कहलाता है। जिले का सिविल सर्जन भी जेलों की देखभाल करता है।

स्त्रियों तथा बच्चों के लिए अलग जेल होते हैं। जहाँ ऐसा प्रबन्ध सम्भव नहीं, वहाँ उनके लिए उसी जेल में अलग वार्ड बना दी जाती है। हमारे प्रान्त में छोटे बच्चों के लिए चुनार में एक अलग जेल है। स्त्रियों के लिए भी आगरे में एक विशेष जेल की व्यवस्था है।

जेल का सर्वोच्च अधिकारी जेल मन्त्री होता है। उसके नीचे एक इन्सपेक्टर जनरल आफ प्रीजन्स काम करता है। अंग्रेजों के काल में हमारे जेलों का प्रबन्ध अच्छा नहीं था। जेलों से निकल कर अपराधी एक सभ्य नागरिक के स्थान पर और भी भयङ्कर अपराधी बन जाता था। जेलों में अपराधियों के नैतिक चरित्र को उठाने की कोशिश नहीं की जाती थी। उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा भी नहीं दी जाती थी। आजकल हमारी सरकार इस ओर ध्यान दे रही है।

स्वास्थ्य व सफाई का प्रबन्ध

जनता के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए प्रान्तीय सरकार के अन्तर्गत एक स्वास्थ्य विभाग होता है। आजकल हमारे प्रान्त में इस विभाग के मन्त्री श्री चन्द्रभान गुप्त हैं। मन्त्री के

नीचे इस विभाग का सर्वोच्च अधिकारी जो डाइरेक्टर आफ पब्लिक हेल्थ कहलाता है, काम करता है। उसकी सहायता के लिए कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। इस विभाग का मुख्य काम बीमारियों को रोकना, जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना, सफाई रखना, स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा देना, प्रदर्शनियों इत्यादि का प्रबन्ध करना, संक्रामक बीमारियों को फैलने से रोकना, जन्म और मृत्यु का हिसाब रखना तथा खाने-पीने की चीजों की स्वच्छता कायम रखना होता है। यह काम शहरों में म्युनिसिपैल्टियाँ तथा गाँवों में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा ग्राम पंचायतें करती हैं। प्रत्येक बड़ी म्युनिसपैल्टी में एक हेल्थ आफिसर होता है जिसके नीचे कई सैनीटरी इन्सपेक्टर तथा वैक्सीनेटर इत्यादि काम करते हैं। इन कर्मचारियों के काम की देखभाल प्रान्त के स्वास्थ्य विभाग के डाइरेक्टर इत्यादि द्वारा की जाती है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ पर्याप्त मात्रा में विद्यमान नहीं हैं। हमारे देश के व्यक्तियों की औसतन आयु केवल २६ वर्ष है। हजारों रोगी, चिकित्सा की किसी प्रकार की सुविधा न मिलने के कारण, मौत के शिकार हो जाते हैं। १००० बच्चों के पीछे १६० बच्चे १ वर्ष की आयु से पहले ही काल के गाल में समा जाते हैं। लाखों स्त्रियाँ प्रसव की वेदना के कारण, किसी प्रकार का जच्चाग्रह का प्रबन्ध न होने से परलोक को सिधार जाती हैं। दूसरे देशों में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया जाता है। आशा है, हमारी प्रान्तीय सरकारें अब इस ओर विशेष रूप से ध्यान देंगी।

चिकित्सा का प्रबन्ध

स्वास्थ्य विभाग का मुख्य काम बीमारियों की रोक थाम तथा जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करना होता है। यह विभाग बीमारों तथा रोगियों की चिकित्सा का प्रबन्ध नहीं करता। यह काम प्रान्त के चिकित्सा विभाग द्वारा किया जाता है। प्राय चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग का एक ही मन्त्री अधिकारी होता है, परन्तु उसके नीचे काम करने वाले चिकित्सा तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी अफसर अलग अलग होते हैं। चिकित्सा विभाग का प्रधान कर्मचारी इन्सपेक्टर जनरल आफ सिविल हास्पिटल्स कहलाता है। उसकी सहायता के लिए भी असिस्टेंट तथा डिप्टी डाइरेक्टर्स होते हैं। इस विभाग में जिले का प्रधान अफसर सिविल सर्जन कहलाता है जो जिले के सभी अस्पतालों की देखभाल करता है। अस्पताल सरकारी भी होते हैं तथा म्युनिसिपल व डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के भी। बच्चों के लिए अलग अस्पताल भी होते हैं।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं के समान चिकित्सा सम्बन्धी प्रबन्ध की भारी कमी है। हमारे देश में ४०,००० व्यक्तियों के पीछे एक अस्पताल,

६,००० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर तथा ८६,००० व्यक्तियों के पीछे एक नर्स है। इंगलैंड में ७०० व्यक्तियों के पीछे एक डाक्टर; ४०० व्यक्तियों के पीछे एक नर्स तथा २,००० व्यक्तियों के लिए एक अस्पताल का प्रबन्ध है। बच्चों, स्त्रियों तथा सम्मक रोगों की चिकित्सा के लिए भी हमारे देश में उचित प्रबन्ध नहीं है। आशा है कि शीघ्र ही प्रान्तीय सरकारें इस ओर विशेष ध्यान देंगी।

योग्यता प्रश्न

१. "जिलाधीश भारत के असली शासक हैं।" इस कथन की सत्यता का विवेचन कीजिए। (यू० पी० १६२८, ३२,४८)

२ जिले के बड़े सरकारी अफसरों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० १६३०)

३. नये संविधान के अंतर्गत जिलों के अधिकारियों के दृष्टिकोण में कहाँ तक परिवर्तन हुआ है ?

४. जिले में शांति और व्यवस्था कैसे कायम की जाती है ?

५. जेलों के प्रबन्ध के विषय में आप क्या जानते हैं ?

६. भारत में स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी क्या प्रबन्ध है ? दूसरे देशों की अपेक्षा यह प्रबंध कैसा है ?



अध्याय १७

स्थानीय स्वशासन

स्थानीय संस्थाओं का महत्त्व

स्थानीय स्वशासन का अर्थ वह शासन है जिसके द्वारा नगर, उपनगर तथा ग्राम में रहने वाले लोगों को अपनी स्थानीय समस्याओं का अपनी आवश्यकता तथा इच्छानुसार प्रबन्ध करने का अधिकार दिया जाता है। किसी भी देश में केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारें इच्छा रहने पर भी स्थानीय विषयों का इतना उचित प्रबन्ध नहीं कर सकतीं जितना स्वयं उन स्थानों की जनता, जिनके जीवन पर उन विषयों का दिन प्रतिदिन प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ किसी नगर की अमुक गली में सफाई है अथवा नहीं, प्रात. भंगी ने आकर झाड़ू लगाई है या नहीं, नालियाँ ठीक प्रकार से साफ की गई हैं या नहीं, कूड़ा डालने के लिए किसी स्थान पर ढाल का उचित प्रबन्ध है या नहीं, किसी गली या कूचे में सरकारी रोशनी की व्यवस्था है अथवा नहीं, नगर के रोगियों के लिए औषधालय में दवाइयाँ हैं अथवा नहीं, आने-जाने के मार्ग पर ठीक प्रकार से सफाई अथवा मरम्मत की गई है अथवा नहीं, इत्यादि—ये कुछ ऐसे विषय हैं जिनका सम्बन्ध स्थानीय लोगों के नित्य के जीवन से होता है और उस स्थान के रहने वाले लोग ही इन समस्याओं का उचित प्रबन्ध कर सकते हैं—कोई दूर रहने वाली केन्द्रीय या प्रांतीय सत्ता नहीं। इसलिए प्राय प्रत्येक देश मे ही स्थानीय विषयों का प्रबन्ध करने के लिए नगरपालिकाएँ, जिला मण्डलों, उपनगरपालिकाएँ तथा ग्राम पंचायतों इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।

सक्षेप में हम कह सकते हैं कि स्थानीय संस्थाओं के सगठन से निम्न लाभ होते हैं —

(१) सुविधाजनक प्रबन्ध—प्रजातन्त्र देशों में स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ नागरिकों के जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण भाग लेती हैं। उनका मुख्य काम ऐसी सुविधाओं का प्रबंध करना होता है, जिनका सम्बन्ध व्यक्तियों के दैनिक जीवन से है। शुद्ध दूध, घी, मक्खन, पीने का पानी, स्वास्थ्यप्रद फल, खाद्य सामग्री, औषधालय, तैरने के तालाब, बिजली, ट्राम, बस, सड़कें खेलने के मैदान इत्यादि का उचित प्रबन्ध—यह कुछ ऐसे विषय हैं जो हमारे नित्यप्रति के जीवन को सुखमय अथवा दु खी बनाते हैं। यह सब काम स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं। केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों की नीति तथा उनके कार्य, हमारे दैनिक जीवन को इतना अधिक प्रभावित नहीं करते, जितना स्थानीय

संस्थाओं के काम, जिनकी उचित व्यवस्था पर, हमारे दिन प्रति दिन के जीवन का हर्ष, उल्लास, आनन्द एवं उत्साह निर्भर रहता है। यदि हमारी केन्द्रीय या प्रांतीय सरकार दूसरे देश में अपना दूतावास स्थान देती है अथवा देश की सेना में एक और टुकड़ी जोड़ देती है, या हमारी प्रांतीय सरकार उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए एक पञ्च वर्षीय योजना बना देती है तो इससे हमारे दैनिक जीवन पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना उन कामों से पड़ता है जो हमारी स्थानीय संस्थाओं को करने पड़ते हैं।

(२) काम का बँटवारा—स्थानीय संस्थाएँ अपने ऊपर छोटी-छोटी स्थानीय समस्याओं का कार्य भार लेकर केन्द्रीय व प्रांतीय सरकारों के भार को हल्का कर देती हैं और उन्हें इस बात का अवसर देती हैं कि वह बड़ी बड़ी राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर अधिक ध्यान दे सकें।

(३) कार्य-कुशलता—स्थानीय संस्थाओं द्वारा शासन के कार्य में कुशलता तथा दक्षता की वृद्धि होती है। कारण, उनका निर्माण कार्य विभाजन के प्रशंसनीय सिद्धांत पर किया जाता है और स्थानीय लोग अपनी समस्याओं का अधिक सुन्दरता से उपचार कर सकते हैं।

(४) नागरिक शिक्षा—अन्त में, स्वशासित संस्थाएँ नागरिक शिक्षा के महान् केन्द्र का काम करती हैं। वह नागरिकों में जन सेवा, बलिदान, सहयोग, समय तथा अनुशासन की उन भावनाओं का निर्माण करती हैं जिन पर एक स्वस्थ नागरिक जीवन अवलम्बित है। व्यक्तियों में सार्वजनिक कार्यों में रुचि लेने की भावना जाग्रत करती हैं। वे उन्हें शासन का अनुभव प्रदान करती हैं। इस प्रकार आगे चलकर वह उन्हें इस योग्य बनाती हैं कि वह देश के बड़े बड़े कामों में भाग ले सकें तथा केन्द्रीय व प्रांतीय शासनों में उच्च पदों पर काम कर सकें। ये लोकतन्त्र शासन की इकाइयों का काम देती हैं और जनता को इस बात का अवसर देती हैं कि वह शासन कार्य में अधिक भाग ले सके। इस प्रकार यह गणतन्त्र की नींव कही जाती हैं। प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक लास्की ने कहा है "स्थानीय संस्थाएँ सरकार के दूसरे अङ्गों से बढ़कर जनता को लोकतन्त्र की शिक्षा देती हैं। ये जातियों को शिक्षित बनाती हैं, नागरिक गुणों के विकास के लिए प्रारम्भिक पाठशालाओं का काम देती हैं तथा जनता को वास्तविक स्वतन्त्रता का अनुभव कराती हैं।"

भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में स्थानीय संस्थाएँ किसी न किसी रूप में सदा चली आई हैं। वैदिक काल में भारतीय ग्रामों का संगठन पञ्चायती राज्य के सिद्धांत पर आधारित था। सारे देश में स्वायत्त शासन संस्थाओं की भरमार थी। ये संस्थाएँ अपने क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थीं और वे केवल ग्राम में शांति बनाये रखने अथवा

न्याय करने का काम ही नहीं करती थीं वरन् जनता के सामाजिक आचार और व्यवहार, शिक्षा, जीविका, व्यापार व दूसरे कामों पर भी उनका पूरा नियन्त्रण था। वह राजाओं का चुनाव करती थीं। इन संस्थाओं का उल्लेख हमें जातक, रामायण, महाभारत, बृहस्पति, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा अन्य पुरातन ग्रंथों में मिलता है। स्वायत्त शासन की यह प्रणाली भारतीय राजनैतिक जीवन में लगभग १६वीं शताब्दी के मध्य तक बनी रही। इसके पश्चात् बाह्य हस्तक्षेप से उनका सन्तुलन बिगड़ने लगा और अन्त में जीवन की यह स्वस्थ प्रणाली बिलकुल लुप्त हो गई।

प्रसिद्ध अङ्गरेज इतिहासकार सर चार्ल्स मैटकाफ ने तो यहाँ तक कहा है, "इन संस्थाओं ने भारतीय सामाजिक जीवन की स्थिरता तथा स्वतन्त्रता को बनाये रखने में दूसरी सभी भारतीय संस्थाओं से अधिक सहयोग दिया है। भारत में राज्य बदले, एक शासन प्रणाली का अन्त हुआ, दूसरी का प्रादुर्भाव, कितने ही आक्रमणकारी आये, परन्तु भारत की इन ग्राम पञ्चायतों में वह शक्ति थी कि वह इन सब क्रान्तियों तथा परिवर्तनों के बीच स्थिर बनी रहीं और भारतीयों के जीवन को उसी प्राचीन संस्कृति के वातावरण में ढालती रहीं।"

प्राचीन भारत की इन संस्थाओं को 'श्रेणी' या 'गुण' के नाम से सम्बोधित किया जाता था। इनमें ५ से लगाकर ७ तक जनता के चुने हुए प्रतिनिधि गाँव या नगर का प्रबन्ध करते थे। बड़ी नगरपालिकाओं में अधिक प्रतिनिधि भी होते थे। उदाहरणार्थ चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में पाटलीपुत्र नगर के प्रबन्ध का वर्णन देते हुए प्रसिद्ध यूनानी राजदूत मेगास्थनीज लिखता है कि इस नगर के प्रबन्ध के लिए ३० प्रतिनिधियों की एक समिति थी। यह समिति उपसमितियों द्वारा सारे नगर का प्रबन्ध करती थी। पाटलीपुत्र का शासन प्रबन्ध अत्यन्त उच्च कोटि का था। नगर में भूमिगत नालियों का प्रबन्ध था। प्रकाश तथा सफाई की उचित व्यवस्था थी। नगरपालिका की ओर से अनेक उद्यान, क्रीड़ास्थल, खेल के मैदानों इत्यादि का प्रबन्ध किया जाता था। नगर में शान्ति व सुरक्षा बनाये रखने का काम भी यही संस्था करती थी।

जाति पंचायतें

प्राचीन भारत में एक दूसरे प्रकार की जाति पञ्चायतें थीं जिनके सदस्य केवल वही व्यक्ति थे जो किसी जाति या व्यवसाय विशेष से सम्बन्ध रखते हों। ऐसी संस्थाएँ दो प्रकार के कार्य करती थीं—सर्व प्रथम वह जातीय या व्यावसायिक एकता बनाये रखने में सहायक सिद्ध होती थीं और दूसरे वह अपने सदस्यों की सहायता तथा उनके अधिकारों की रक्षा के लिए उसी प्रकार के कार्य करती थीं जैसे आजकल सहायक समितियाँ (Co-operative Societies) या ट्रेड यूनियनों द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। यह संस्थाएँ अपने सदस्यों द्वारा नैतिक आचरण का अवलम्बन करने तथा व्यापार

में ईमानदारी से काम लेने पर भी ज़ोर देती थीं। इसी कारण इन संस्थाओं में जाति अथवा व्यापार के अलिखित नियमों के उल्लङ्घन करने की दशा में दण्ड व्यवस्था का आयोजन भी रहता था।

उपरोक्त पञ्चायतों में से कुछ जाति पञ्चायतें आजकल भी ग्रामीण भारत में, विशेष कर दलित जातियों में पाई जाती हैं। इनको बिरादरी पंचायत भी कहा जाता है जैसे कोलियों, मेहतरों, चमारों, धोबियों की पंचायतें इत्यादि। यह पंचायतें थोड़े-थोड़े समय बाद खुले स्थानों में होती हैं और अपनी ही जाति व व्यवसाय की समस्याओं पर विचार करती हैं। जाति के प्रत्येक सदस्य को इन सभाओं में बोलने का अधिकार होता है। इन संस्थाओं में अधिक अनुशासन से कार्य नहीं होता। प्रायः सभाओं में सभी व्यक्ति एक साथ बोलने का प्रयत्न करते हैं जिससे आस पास वालों को ऐसा प्रतीत होता है मानों यह व्यक्ति आपस में लड़ रहे हों। इन संस्थाओं के फैसलों का पालन जाति के लोग इस डर से करते हैं कि उनका सामाजिक बहिष्कार न कर दिया जाय। बहुत बार ये पंचायतें कुर्सीनें इत्यादि भी करती हैं और कभी कभी सदस्यों का हुक्का पानी व रोटी-बेटी का व्यवहार बन्द कर देती हैं। इन जाति पंचायतों से कुछ लाभ अवश्य हैं। उदाहरणार्थ, ये जाति की नैतिक अवनति को रोकती हैं, विवादों का पारस्परिक भाई-चारे के ढंग से निर्णय करती हैं और जातीय एकता को दृढ़ करती हैं, परन्तु आजकल राष्ट्रीयता के निर्माण में ये पञ्चायतें घातक सिद्ध होती हैं। इन पंचायतों के कारण एक जाति के सदस्यों में पृथक्करण की भावना बनी रहती है और समाज के लोग एक दूसरे के साथ मिलकर घनिष्ठ मित्रता का व्यवहार नहीं कर पाते। बहुत बार जाति पंचायतों में एक दूसरे के साथ संघर्ष भी हो जाते हैं। आधुनिक काल में व्यवसाय के आधार पर ट्रेड यूनियनों का संगठन किया जाता है। इस कारण जाति पाँति के आधार पर संस्थाओं का निर्माण करना अधिक उचित नहीं जान पड़ता।

मुसलिम काल में स्वायत्त शासन संस्थाओं का सङ्गठन

मुसल्मान काल में भारत के ग्रामीण जीवन पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। मुसल्मान शासक नगर के जीवन को ही अधिक पसन्द करते थे। इस कारण उनके काल में हमारी ग्रामीण संस्थाओं का संगठन पूर्ववत् ही बना रहा। हाँ, इतना अवश्य है कि नगरों के शासन के लिए जो प्राचीन नगरपालिकाओं का संगठन था उसे तोड़ दिया गया और उनके स्थान पर नगरों के शासन प्रबन्ध के लिए कोतवालों की नियुक्ति कर दी गई। यह कोतवाल आजकल की म्युनिसिपल कमेटियों के सब कार्यों की देख भाल करते थे।

ब्रिटिश शासन-काल में स्वायत्त शासन-संस्थाओं का विकास

हमारे अंग्रेज शासकों ने सर्वप्रथम देश में केन्द्रीयकरण की नीति का अनुसरण

किया। इस नीति के अधीन, उन्होंने अपने शासन के प्रारंभिक काल में, स्थानीय संस्थाओं को जड़ मूल से नष्ट कर दिया। भारत की प्राचीन ग्राम पचायतें भी जो सहस्रों वर्षों से हमारे सामाजिक जीवन का अविच्छिन्न अङ्ग बन गई थीं, तोड़ दी गई। परन्तु शीघ्र ही सरकार को अपनी त्रुटि का पता चल गया और उसने यह अनुभव किया कि इतने बड़े देश में शासन की कुशलता की दृष्टि से किसी न किसी प्रकार की स्थानीय संस्थाओं का सगठन अवश्य होना चाहिये। इसी उद्देश्य से सर्वप्रथम सन् १७९३ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने एक कानून पास किया जिसके अन्तर्गत भारत में स्थानीय संस्थाओं का सगठन किया गया। इसके पश्चात् सन् १८४२, १८५० तथा १८५६ में दूसरे कानून बनाये गये जिनके द्वारा इन संस्थाओं का सगठन अधिक व्यापक बना दिया गया। आरम्भ में इन संस्थाओं के सदस्य केवल मनोनीत ही होते थे, परन्तु सन् १८७३ में लार्ड मेयो ने निर्वाचन पद्धति की नींव डाली। इसके पश्चात् सन् १८८२ में लार्ड रिपन के शासन काल में इन संस्थाओं को और अधिक लोकप्रिय बना दिया गया। निर्वाचित सदस्यों की सख्या बढ़ा दी गई और सभापति का शासन भी गैर-सरकारी बना दिया गया। सन् १९१९ में मौन्टेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधारों के अधीन प्रांतों में स्वायत्त शासन विभाग एक लोकप्रिय मन्त्री के हाथों में दे दिया गया। इसके पश्चात् इन संस्थाओं के सगठन में अधिक सुधार किये गये। निर्वाचित सदस्यों की सख्या में वृद्धि कर दी गई और मत देने का अधिकार बहुत अधिक लोगों को दिया जाने लगा। हमारे अपने प्रांत में सन् १९१६ में एक वृहद् म्युनिसिपल ऐक्ट पास किया गया। इसी ऐक्ट के अधीन अभी कुछ दिन पहले तक हमारी म्युनिसिपैल्टियों का शासन प्रबन्ध किया जाता था। पिछले वर्ष इस ऐक्ट में कुछ सशोधन किये गये जिससे वयस्क मताधिकार के आधार पर राय देने का अधिकार सभी बालिग स्त्री और पुरुषों को दे दिया गया, पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया और म्युनिसिपल कमेटियों के प्रधानों का निर्वाचन सदस्यों के हाथ से छीन कर सीधा मतदाताओं के हाथ में दे दिया गया।

स्थानीय संस्थाओं का वर्गीकरण

भारत की स्थानीय संस्थाओं को हम मोटे रूप से दो श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं :—

१. नगरों की समस्याओं की देखभाल करने वाली संस्थाएँ।

२. ग्रामीण प्रदेशों की देखभाल करने वाली संस्थाएँ।

जो संस्थाएँ नगरों के प्रबन्ध की व्यवस्था करती हैं, उनका वर्गीकरण हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं :—

१. कारपोरेशन।

२. म्युनिसिपल कमेटियाँ या नगरपालिकाएँ
३. टाउन एरिया व नोटीफाइड एरिया कमेटियाँ या उप नगरपालिकाएँ
४. कैन्टोन्मेंट बोर्ड
५. पोर्ट ट्रस्ट

इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों की संस्थाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है :—

१. डिस्ट्रिक्ट बोर्ड या जिला मंडली
२. ताल्लुका या सब डिवीजनल बोर्ड
३. ग्राम पंचायत

अब हम इन विभिन्न संस्थाओं के कार्य अथवा सङ्गठन की विवेचना करेंगे।

स्थानीय संस्थाओं के कार्य

जैसा पहले बतलाया जा चुका है स्थानीय संस्थाओं का काम मुकामी बातों का प्रबन्ध करना होता है। इन कामों को हम चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :

(१) सार्वजनिक रक्षा—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का काम सड़कों तथा गलियों का बनाना, उनकी मरम्मत करना, नगर की रोशनी का प्रबन्ध करना, मकानों इत्यादि के बनाने के लिए नियम बनाना, जनता के लिए स्वच्छ पानी व नहरों इत्यादि का प्रबन्ध करना, आग से बचाव के लिए दमकलें या फायर इजनों का प्रबन्ध करना, जनता के स्वास्थ्य को हानि पहुँचाने वाली चीजों की बिक्री को रोकना, ऐसे कारखानों तथा व्यापारों पर नियन्त्रण रखना जिनसे जनता के स्वास्थ्य अथवा चरित्र पर कुप्रभाव न पड़े तथा सार्वजनिक मार्गों पर से रुकावटें हटाना इत्यादि होता है।

(२) सार्वजनिक स्वास्थ्य—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का काम चेचक का प्रबन्ध, सङ्क्रामक रोगों की रोक थाम, औषधालयों तथा चिकित्सालयों का प्रबन्ध, खेल के मैदान तथा बगीचों का प्रबन्ध तथा ऐसे दूसरे कामों को करना होता है जिनसे जनता के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़े।

(३) सार्वजनिक शिक्षा—स्थानीय संस्थाएँ लड़के व लड़कियों के लिए प्राइमरी शिक्षा, टेकनिकल शिक्षा, पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर, क्लब कला केन्द्र इत्यादि का प्रबन्ध करती हैं।

(४) सार्वजनिक सुविधाएँ—इस शीर्षक के अन्तर्गत स्थानीय संस्थाओं का कर्त्तव्य अपने नागरिकों की सेवा व हित के लिए इस प्रकार का कार्य करना होता है जैसे पानी गैस व बिजली का प्रबन्ध, म्यूजियम का खोलना, श्मशान भूमि का प्रबन्ध, बसें व ट्राम चलाना, गाड़ियाँ चलाना, डेरी खोलना, रैन बसेरे व बाजार बनाना, सिनेमा खोलना, पब्लिक हॉल बनाना, वृक्ष लगाना, विश्राम के स्थान बनाना, नालों का प्रबन्ध करना इत्यादि

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्थानीय संस्थाओं को वही सभी काम सुपुर्द किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध उन स्थानों पर रहने वाली जनता की सुविधा, भलाई तथा आराम से होता है। प्रायः सभी संस्थाएँ चाहे वह बड़े बड़े नगरों में कार्य करती हों या छोटे कस्बों में, देहाती इलाकों में काम करती हों या छोटे-छोटे गाँवों में, अपने साधनों के अनुसार इसी प्रकार के कार्य करती हैं।

दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाएँ

दुर्भाग्यवश हमारे देश की स्थानीय संस्थाएँ, अनेक कारणों से अपने नागरिकों को वह सभी सुविधाएँ प्रदान नहीं कर पातीं जो दूसरे देशों की संस्थाएँ करती हैं। इगलैंड फ्रांस या अमरीका के किसी गाँव या कस्बे में आप चले जाइये, आपको उन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं द्वारा हर प्रकार की सुविधाएं देखने को मिलेंगी। मोटर या दूसरी सवारी का प्रबन्ध, हाटलों का इन्तजाम, खालिस दूध, दही, घी व मक्खन का प्रबन्ध, ट्राम, बस व रेलों की व्यवस्था, तैरने का तालाब, मोटर क्लब, खेलने के मैदान, लान, पार्क चिड़ियाघर, कला केन्द्र, वाचनालय, पुस्तकालय आदि का प्रबन्ध तथा दूसरे प्रकार की अनेक सुविधाएँ इन देशों की स्थानीय संस्थाएँ अपने नागरिकों को प्रदान करती हैं। उनकी आमदनी के स्रोत इतने अधिक होते हैं कि एक एक म्युनिसिपैल्टी में कई कई लाख रुपये की आमदनी होती है। हमारे देश में सारी स्थानीय संस्थाओं की कुल आमदनी ५० करोड़ रुपये से अधिक नहीं। इङ्गलैंड में ग्लासगो म्यूनिसिपैल्टी की आमदनी १५ करोड़ रुपये से अधिक है। यही मुख्य कारण है कि वहाँ की संस्थाएँ अपने नागरिकों के लिए बहुत अधिक सुविधाओं का प्रबन्ध कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त हमारे देश के लोगों में नागरिक व सार्वजनिक भावना व शासन के अनुभव की भारी कमी है। हमारे गाँवों में शहरों के लोग म्युनिसिपल या डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के सदस्य इसलिए नहीं बनते कि वह वहाँ जाकर जनता की सेवा करें या उनकी दशा सुधारने के लिए नई योजनाएँ बनायें, वरन् इसलिए कि उनकी अपनी इज्जत या आबरू बढ़े और उनके कुछ स्वार्थों की पूर्ति हो सके। हमारी अधिकतर स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अधपढ़े लिखे होते हैं। वह दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ नहीं उठा सकते। उनमें इतनी योग्यता नहीं होती कि दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाओं के कार्य का अध्ययन करें। दूसरे देशों की स्थानीय संस्थाएँ जिनकी आमदनी कम होती है आपस में मिलकर एक दूसरे के सहयोग से कार्य करती हैं। उदाहरणार्थ, पास पास की दो या दो से अधिक म्युनिसिपल कमेटियाँ एक ही अस्पताल, शिशु गृह, बच्चा खाना, नाट्यशाला, खेल के मैदान, पब्लिक हाल इत्यादि बना लेती हैं। इससे खर्च में भारी कमी हो जाती है और जनता को अधिक सुविधाएँ मिल जाती हैं। भारत में भी हम इसी प्रकार के सहयोग से काम कर सकते हैं।

हमारे देश की स्थानीय संस्थाओं में सुधार के लिए कुछ सुझाव

भारतवर्ष की स्थानीय संस्थाओं में सुधार करने के लिए आवश्यक है कि भारतीय जनता अपने कर्त्तव्यों को भलीभाँति समझे और चुनाव के समय केवल ऐसे ही व्यक्तियों को राय दे जो हर प्रकार से योग्य तथा अनुभवी हों और जो उनकी सच्ची सेवा कर सकें। जाति पाँति, पारिवारिक बन्धन या रिश्तेदारी के विचार से हमें राय नहीं देनी चाहिये। हमें मतदाता परिषद् (Voters Council), नागरिक संस्थाएँ (Citizens Associations) इत्यादि बनानी चाहिये और इनके द्वारा इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए नहीं वरन् जन-सेवा के लिए कार्य करें। जब तक जनता स्वयं जागरूक न बनेगी और वह अपने अधिकारों को न समझेगी तब तक कोई बाहरी संस्था उसका उद्धार नहीं कर सकती।

जनता को शिक्षित बनाने तथा उसे अपने कर्तव्यों की याद दिलाने के लिए आवश्यक है कि भारत के प्रत्येक स्कूल व कालेज में नागरिक शास्त्र व स्वायत्त शासन सम्बन्धी संस्थाओं की शिक्षा अनिवार्य बना दी जाय। हमारे विश्वविद्यालयों को भी चाहिये कि वह एम० ए० तथा पी-एच० डी० की डिग्रियों के लिए भी स्थानीय स्वशासन की शिक्षा पर जोर दें। आजकल हमारे देश की यूनिवर्सिटी में स्थानीय संस्थाओं की शिक्षा को स्थान नहीं दिया जाता। इन संस्थाओं की कितनी ही ऐसी समस्याएँ हैं जिन पर अनुसन्धानात्मक अध्ययन किया जा सकता है, उदाहरणार्थ स्थानीय राजस्व (Local Finance), म्युनिसिपल व्यापार (Municipal Trading), गृह निर्माण योजना नगर योजना (Housing Problem), जन स्वास्थ्य (Public Health), (Social Amenities) इत्यादि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिन पर बहुत गूढ़ सामाजिक उत्थान का अध्ययन किया जा सकता है। इसलिए विश्वविद्यालयों को चाहिये कि वह अपने पाठ्यक्रम में इस शिक्षा पर विशेष ध्यान दें।

नागरिक संस्थाओं का संगठन

कार्पोरेशनों का सङ्गठन

हमारे देश में मुख्यतः तीन कार्पोरेशन बहुत प्राचीन समय से कार्य करते हैं। ये कार्पोरेशन बम्बई, कलकत्ता और मद्रास में हैं। इनकी स्थापना ब्रिटिश पार्लियामेंट के विशेष कानूनों द्वारा की गई थी। भारत में सबसे पहला कार्पोरेशन सन् १६८७ में मद्रास नगर में स्थापित किया गया। इसके पश्चात् बम्बई तथा कलकत्ता कार्पोरेशन सङ्गठित किये गये। म्युनिसिपल कमेटियों की अपेक्षा कार्पोरेशन को अधिक अधिकार प्राप्त होते हैं। उन पर प्रान्तीय सरकार का नियन्त्रण भी नाममात्र का होता है।

कलकत्ता कार्पोरेशन

कलकत्ता कार्पोरेशन के सदस्यों की कुल संख्या ९८ है। इन सदस्यों में ९३ सभा-

स्द (Councillors) और ५ एल्डरमैन होते हैं। एल्डरमैनों का चुनाव सभासदों द्वारा किया जाता है। यह नगर के सबसे प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। कार्पोरेशन का अध्यक्ष मेयर कहलाता है, जिसका चुनाव प्रति वर्ष किया जाता है। कार्पोरेशन के शासन प्रबंध के लिए एक, चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर की नियुक्ति की जाती है। कार्पोरेशन के डेमेंटेरियट के सारे प्रबन्ध का उत्तरदायित्व इसी अफसर पर होता है। कार्पोरेशन के मेयर वा काउंसिलर उसके काम में हस्तक्षेप नहीं करते।

बम्बई कार्पोरेशन

बम्बई कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या १०६ है। इनमें से ८० निर्वाचित, १६ मनोनीत तथा १० सदस्य शेष सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बम्बई कार्पोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर को म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। यह प्रायः इण्डियन सिविल सर्विस का सदस्य होता है और उसकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। बम्बई में एक प्राचीन रीति के अनुसार मेयर का चुनाव प्रति वर्ष क्रमशः हिंदू, मुस्लिम तथा पारसी सदस्यों में से किया जाता था। परन्तु कुछ समय हुआ इस रीति को तोड़ दिया गया। पिछले दिनों कई वर्ष तक बम्बई के मेयर श्री एस० के० पाटिल ही रहे।

मद्रास कार्पोरेशन

मद्रास कार्पोरेशन के सदस्यों की संख्या ६५ है। इनमें ५६ सदस्य निर्वाचित १ मनोनीत तथा ५ सदस्य दूसरे सदस्यों द्वारा चुने जाते हैं। बम्बई कार्पोरेशन की भाँति मद्रास कार्पोरेशन के चीफ एक्जीक्यूटिव आफिसर को भी म्यूनिसिपल कमिश्नर कहा जाता है। इसकी नियुक्ति प्रान्तीय सरकार द्वारा की जाती है।

उत्तर प्रदेश में कार्पोरेशनों का संगठन

उत्तर प्रदेश की सरकार ने निश्चय किया है कि वह राज्य के पाँच बड़े नगरों अर्थात् *कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, आगरा तथा लखनऊ* में कार्पोरेशनों का सङ्गठन करेगी। इस सम्बन्ध में एक विशेष कानून प्रान्तीय विधान सभा के विचाराधीन है। आशा है यह कानून इस वर्ष के अन्त तक पास हो जायगा और इसके पश्चात् इन नगरों में कार्पोरेशनों के सङ्गठन के लिए आम चुनाव किये जाएंगे। आम चुनाव होने तक इन नगरों की नगरपालिकाओं को तोड़ दिया गया है और उनका प्रबन्ध ऐडमिनिस्ट्रेटरों के हाथ में दे दिया गया है।

उत्तर प्रदेश में नगरपालिकाओं का संगठन

नगरपालिकाओं के सङ्गठन के विषय में हमारे प्रान्त में, एक बृहद कानून सन् १६१६ में पास किया गया था। सन् १६४६, ५१ तथा ५२ में इस कानून में बहुत से परिवर्तन कर दिये गये। आजकल नगरपालिकाओं का सङ्गठन इस प्रकार किया जाता है।

नगरपालिका—राजकीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी क्षेत्र को नगरपालिका घोषित कर सकती है। आजकल हमारे प्रान्त में नगरपालिकाओं की संख्या ११५ है। जिन नगरपालिकाओं की जनसंख्या ५०,००० से अधिक है उन्हें सरकार सिटी नगरपालिका (City Municipality) घोषित कर सकती है। जिन नगरपालिकाओं की आय ५०,००० रु० वार्षिक से अधिक है उनके लिए आवश्यक है कि उनमें एक मैडिकल आफिसर आफ हेल्थ तथा एक एकाउन्टस् आफीसर नियुक्त किया जाय। ऐक्जीक्यूटिव आफिसर की नियुक्ति प्रायः सभी नगरपालिकाओं के लिए है। कुछ छोटी नगरपालिकाओं में ऐक्जीक्यूटिव आफिसर के स्थान पर सेक्रेटरी की नियुक्ति की जाती है। बड़ी नगरपालिकाओं में इंजीनियर, वाटर वर्क्स, सुपरिंटेडेन्ट, ओवरसीयर, चीफ सैनाटरी इन्सपेक्टर इत्यादि पदाधिकारी नियुक्त किये जाते हैं।

सदस्य संख्या—सन् १९५३ के संशोधित म्यूनिसिपिल ऐक्ट के अधीन उत्तर प्रदेश की नगरपालिकाओं की सदस्य संख्या ११ से कम तथा ५० से अधिक नहीं होगी। किसी नगरपालिका में सदस्य संख्या कितनी हो इसका निश्चय प्रान्तीय सरकार करेगी। नगरपालिका के सभी सदस्य निर्वाचित होंगे। सदस्यों के अतिरिक्त एक प्रधान का निर्वाचन भी सीधा जनता द्वारा किया जाएगा जो नगरपालिका का पहले (Ex officio) सदस्य होगा। मुसलमानों के लिए नगरपालिका में अलग सीटें सुरक्षित नहीं रक्खी जायँगी। वह आम निर्वाचन क्षेत्र से चुनाव में खड़े हो सकेंगे। परन्तु हरिजनों के लिए, ऐक्ट में, किसी क्षेत्र में उनकी जनसंख्या के हिसाब से, सुरक्षित सीटों की व्यवस्था कर दी गई है।

वयस्क मताधिकार—नये कानून के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में नगर पालिकाओं के चुनाव के लिए सीमित-मताधिकार के स्थान पर वयस्क मताधिकार की व्यवस्था की गई है। इस प्रबन्ध के अन्तर्गत नगर-पालिका के क्षेत्र में रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति जिसकी आयु २१ वर्ष या इससे अधिक हो, मतदाता बन सकेगी। मतदाताओं की योग्यता के सम्बन्ध में शिक्षा, आय, सम्पत्ति, हैसियत, उपाधि या इसी प्रकार की कोई आवश्यक शर्त नहीं रखी गई है। कानून में कहा गया है कि प्रत्येक वह व्यक्ति जो ६ मास से अधिक किसी नगर-पालिका के क्षेत्र में रहता हो तथा जो पागल, दिवालिया कोढ़ी अथवा किसी न्यायालय द्वारा किसी भी पाप अपराध में दण्डित न हो, मतदाता बन सकेगा। विदित है कि इस प्रकार नये कानून में स्त्री पुरुष, धनी निर्धन, हिंदू-मुसलमान, अछूत व सवर्ण—सब को बराबर का मताधिकार दिया गया है।

सदस्यों की योग्यता—नगर पालिका की सदस्यता के लिए प्रत्येक वह व्यक्ति उम्मीदवार हो सकेगा जिसका नाम मतदाताओं की सूची में हो, जो हिंदी अथवा अङ्गरेजी पढ़ लिख सकता हो, एवं जो सरकारी नौकर, सरकारी वकील, अवैतनिक मजिस्ट्रेट या

मुंसिफ या सहायक कलेक्टर न हो। कुष्ट रोग से पीड़ित व्यक्ति, दिवालिया तथा ऐसे लोग जिनके नाम म्युनिसिपल टैक्स बाकी हों, वह भी नगर पालिका की सदस्यता के लिए खड़े न हो सकेंगे।

नगर पालिका का प्रधान—नये कानून में सबसे मुख्य क्रांतिकारी परिवर्तन नगरपालिकाओं के प्रधान के सम्बन्ध में किया गया है। पुराने कानून के अधीन अध्यक्ष का चुनाव नगर-पालिकाओं के सदस्यों द्वारा किया जाता था। इस रीति में सबसे बड़ा दोष यह था कि सदस्य दलबन्दी की प्रथा से प्रभावित होकर आये दिन एक अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करके दूसरे ऐसे अध्यक्ष को उसके स्थान पर लाने के लिए प्रयत्नशील रहते थे जो उनकी अधिक स्वार्थ पूर्ति कर सके और इस कारण नगरपालिकाओं की शासन व्यवस्था अत्यन्त निकृष्ट तथा निम्नकोटि की रहती थी। संशोधित कानून में इसलिए कहा गया है कि नगर पालिकाओं के अध्यक्ष का चुनाव सीधा मतदाताओं द्वारा किया जायगा। नये कानून के अन्तर्गत भी सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर सकते हैं परन्तु अध्यक्ष को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह समझे कि जनता उसके साथ है और उसकी नीति को पसन्द करती है तो वह प्रांतीय सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि नगर पालिका को तोड़ कर नये आम चुनाव कर दिये जायें। इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अन्तिम अधिकार प्रांतीय सरकार को है। आम निर्वाचन के पश्चात् यदि नये सदस्य अध्यक्ष के विरुद्ध फिर अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दें तो अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपना त्याग पत्र दे देना होगा। नये कानून के अन्तर्गत प्रांतीय सरकार को भी इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से यह समझे कि किसी नगर पालिका का अध्यक्ष अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है तो वह उसे उसके पद से हटा सकती है। संशोधित कानून के अनुसार, आशा है कि नगर पालिकाएँ नगरों की व्यवस्था अधिक सुचारु रूप से कर सकेंगी।

आम निर्वाचन—संशोधन कानून में एक और विषय जिसको विशेष महत्त्व दिया गया है, वह है कि आम चुनाव के समय उम्मीदवार मतदाताओं से धर्म की दुहाई देकर या उनकी जातीय एवं साम्प्रदायिक भावनाओं को भड़का कर राय न माँग सकेंगे। कानून में कहा गया है कि चुनावों में 'धर्म खतरे में है' का नारा लगाना या यह कहना कि 'यदि अमुक उम्मीदवार को राय न दी गई तो राय न देने वाले व्यक्ति पर ईश्वर का प्रकोप होगा'—गैर कानूनी समझा जायगा। इस आधार पर कानून में कहा गया है कि यदि यह सिद्ध हो सके कि कोई उम्मीदवार इन उपायों को काम में लाकर निर्वाचित हो गया है तो ऐसे व्यक्ति का चुनाव रद्द किया जा सकता है।

कार्यावधि—नये कानून के अनुसार नगर पालिकाओं की कार्यावधि ४ वर्ष निश्चित

की गई है। परन्तु प्रान्तीय सरकार को इस बात का अधिकार दिया गया है कि यदि वह किन्हीं विशेष कारणों से आवश्यक समझे तो उनकी अवधि एक समय में एक वर्ष के लिए बढ़ा सकती है परन्तु किसी दशा में भी यह अवधि २ वर्ष से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती।

नगर-पालिकाओं के कार्य—इसी अध्याय में जैसा पहले बताया जा चुका है कि नगर पालिकाएं मुख्य रूप से चार प्रकार के कार्य करेंगी—१. सार्वजनिक रक्षा का कार्य, २. सार्वजनिक स्वास्थ्य का कार्य, ३. सार्वजनिक शिक्षा का कार्य और ४. सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने का कार्य। इन कार्यों का विस्तृत वर्णन हम पहले ही दे चुके हैं और यह भी देख चुके हैं कि हमारे देश में नगर-पालिकाएँ अपने कर्तव्यों का उचित रूप से पालन क्यों नहीं करतीं।

आय के साधन—हमारी नगर पालिकाओं की असफलता का सबसे मुख्य कारण यह है कि उनकी आय के स्रोत अत्यन्त सीमित हैं। अपने प्रान्त की नगर-पालिकाओं की आय के साधनों को हम चार मुख्य भागों में बाँट सकते हैं—१. म्युनिसिपल कर, २. सरकारी सहायता, ३. ऋण और ४. म्युनिसिपल व्यापार से आय।

१ *म्युनिसिपल कर*—नगरपालिकाओं की आय का सबसे बड़ा भाग करों द्वारा प्राप्त होता है। यह कर निम्नलिखित हैं :—

(क) सम्पत्ति कर (Property Tax)

(ख) व्यापार तथा व्यवसाय कर (Taxes on Trades and Professions)

(ग) गाड़ियों, ताँगों, ठेलों, रिक्शा व सवारी के दूसरे साधन पर कर

(घ) कुत्तों पर कर

(च) बाहर से नगरों में आने वाले पदार्थों पर कर जिसे चुंगी कर (Octroi or Terminal Tax) कहा जाता है।

(छ) पानी, बिजली व सफाई कर

(झ) म्युनिसिपल सम्पत्ति व कमेटी के बाजारों से आय

२. *सरकारी सहायता*—प्रायः प्रत्येक ही नगर-पालिका को प्रान्तीय सरकार की ओर से एक बँधी हुई वार्षिक सहायता मिलती है।

३. *ऋण*—नगर पालिकाओं को प्रान्तीय सरकार की अनुमति से ऋण लेने का अधिकार भी प्राप्त होता है।

४. *म्युनिसिपल व्यापार*—नगर पालिकाओं की आय का एक और बड़ा स्रोत जिसे हमारे देश में बहुत कम काम में लाया जाता है, म्युनिसिपल व्यापार है। दूसरे देशों में नगर पालिकाएँ अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धे चलाती हैं—जैसे होटल खोलना,

डेरी फार्म चलाना, ट्राम इत्यादि का आयोजन करना, थियेटर व सिनेमा खोलना, शुद्ध खाद्य-पदार्थों की बिक्री का प्रबन्ध करना, सार्वजनिक स्नानागार व तैरने के तालाबों का प्रबन्ध करना, बोट क्लब व पिकनिक के स्थानों का प्रबन्ध करना इत्यादि। इन कार्यों से न केवल नगर-पालिकाएँ अपनी आय में वृद्धि करती हैं, वरन् अपने नागरिकों के दैनिक जीवन को भी अधिक आनन्दमय व सुविधाजनक बनाने में सहायक सिद्ध होती हैं।

आय के साधनों में वृद्धि करने के लिए कुछ सुझाव

पैनल कमेटी की सिफारिशें—भारत सरकार ने स्थानीय संस्थाओं की आर्थिक अवस्था की जाँच तथा उनके साधनों में बढ़ोत्तरी पर विचार करने के लिए श्री पी० के० नैतल की अध्यक्षता में कमेटी बिठाई थी। इस कमेटी की रिपोर्ट मई सन् १९५१ में प्रकाशित हो गई। कमेटी ने नगर पालिकाओं की वर्तमान आर्थिक अवस्था के विषय में निम्न आँकड़े प्रकाशित किये :—

भारत में तीन कार्पोरेशनों की आय सन् १९४६-४७ में १२ करोड़ ३५ लाख रुपये थी। प्रति व्यक्ति के हिसाब से यह आय ८ रु० ११ आ० ४ पाई थी।

५९२ नगर पालिकाओं की आय १७ करोड़ ५६ लाख रुपये थी। जनसंख्या के विचार से यह आय ३ रु० ६ आ० ६ पा० प्रति व्यक्ति थी।

१८६ जिला मण्डलियों की आय १५ करोड़ ५५ लाख रुपये थी। जनसंख्या के विचार से यह आय केवल ३ आने ९ पाई थी।

कमेटी ने कहा कि इस प्रकार विदित है कि भिन्न-भिन्न स्थानीय संस्थाएँ अपने अधिकारों का पूरा उपयोग कर अपने आर्थिक साधनों का पूर्ण लाभ नहीं उठातीं। उसने कहा कि आजकल भी स्थानीय संस्थाओं को इतने अधिकार प्राप्त हैं कि वह उनसे अपनी आय को कई गुना बढ़ा सकती हैं। सम्पत्ति कर के विषय में कमेटी ने कहा कि बहुत-सी नगर पालिकाएँ इस कर को नहीं लगातीं। उसने कहा कि स्थानीय संस्थाओं को चाहिये कि वह (१) सम्पत्ति पर अधिक कर लगाएँ, (२) कारखानों पर विशेष कर लगाएँ, (३) रेल व मोटर से आने वाले यात्रियों पर कर लगाएँ, (४) बाहर से आने वाली वस्तुओं पर कीमत के हिसाब से कर लगाएँ तथा (५) पानी, बिजली, बस, डेयरी, ट्राम, सिनेमा इत्यादि का प्रबन्ध करके उन साधनों से आय को बढ़ाएँ।

नगर पालिकाओं की आय बढ़ाने के लिए हम निम्न और सुझाव पाठकों के सम्मुख पेश करते हैं :—

१. सन्तानोत्पत्ति कर (Progressive tax on birth of children)—हाल ही में पंजाब के बरनाला नामक नगर की कमेटी ने इस प्रकार का कर लगाया है। सन्तानोत्पत्ति की सूचना प्रत्येक माता-पिता को नगर-पालिका में देनी होती है। ऐसे

इसमें यदि शिशु के माता पिताओं से कहा जाय कि वह प्रथम शिशु पर कम परन्तु उसके पश्चात् बढ़ता हुआ कर नगर पालिका के कार्यालय में जमा करें तो इस विधि से न केवल नगर पालिकाओं की आय में ही वृद्धि हो सकेगी वरन् हमारे देश की बढ़ती हुई जनसंख्या पर भी कुछ प्रतिबन्ध लग सकेगा।

२. *विवाहों तथा सहभोजों के अवसर पर उन पदार्थों में होने वाले कुल व्यय के अनुपात से कर*—हमारे देश में विवाहों तथा सहभोजों पर करोड़ों रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। यदि हर्ष और उल्लास के इन अवसरों पर नगर-पालिका भी अपने नागरिकों से कहे कि उसे कुछ 'कर' दिया जाय तो यह कोई अनुचित माँग नहीं होगी। इन अवसरों पर नगर पालिकाओं के कर्मचारियों विशेषकर सफाई इत्यादि का अधिक काम करना पड़ता है। इसलिए उचित ही है कि ऐसे लोगों से सुनिश्चित कर वसूल किया जाय।

३. *नौकर रखने पर कर*—नगरों में प्रत्येक ऐसे परिवार के लिए जो अपने यहाँ नौकरों से काम लेता है, अनिवार्य होना चाहिए कि वह अपने नौकरों के हिसाब से एक बढ़ती हुई दर के अनुसार नगर पालिकाओं को टैक्स दे। इससे नौकरों के चरित्र के सम्बन्ध में भी जाँच पड़ताल हो जायगी और आये दिन होने वाली घरों में चोरियों की संख्या कम हो जायगी।

४. *सिनेमा के विज्ञापनों पर कर।*

५. *म्युनिसिपल धंधा जैसे सिनेमा, थियेटर, बैंक, डेयरी, स्टोर, सार्वजनिक स्नानागार, बसें, ट्राम इत्यादि चलाकर उत्तम आय।*

६. *प्रान्तीय सरकारों से अधिक सहायता की माँग।*

७. *विनोद* (Entertainment) *तथा जुए पर लगाये हुए प्रांतीय करों में नगर पालिकाओं द्वारा निश्चित भाग की माँग।*

हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि हमारे देश की नगर पालिकाएँ इन सभी आय के साधनों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें तो उनकी वार्षिक आय में भारी बढ़ोतरी हो सकती है और वह अपने नागरिकों की अधिक सेवा कर सकता है।

नगर पालिकाओं के अधिकार

इसी अध्याय में हमने नगर पालिकाओं के कर्तव्यों का विवरण दिया है। इन कर्तव्यों को पूर्ण करने के लिए नगर पालिकाओं को कानून द्वारा विशेष प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं। उदाहरणार्थ—प्रत्येक नगर पालिका अपने नागरिकों पर कई प्रकार के कर लगाती है। वह नगर में जायदाद इत्यादि बनाने के लिए विशेष नियम बनाती है। प्रत्येक नागरिक को नया मकान या दूकान बनाने या अपनी पुरानी सम्पत्ति में

परिवर्तन करने के लिए नगर-पालिका की स्वीकृति लेनी पड़ती है। नगर का स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए प्रत्येक नगर पालिका को विशेष अधिकार दिये जाते हैं, जैसे अशुद्ध, सड़े-गले, बीमारी फैलाने वाले, मिलावटी पदार्थों की रोक थाम करने का अधिकार, हलवाइयों इत्यादि को आदेश देने का अधिकार कि वह हानिकारक पदार्थों को न बेचें और कीटाणुओं से अपने पदार्थों की रक्षा करने के लिए सफाई व जाली की अलमारियों इत्यादि का समुचित प्रबन्ध करें इत्यादि। कुछ विशेष प्रकार के दूषित जैसे वेश्यागमन इत्यादि व्यापारों की रोक थाम के लिए भी नगर पालिकाएँ नियम बनाती हैं। कारखाने, मादक वस्तुएँ, जहरीले पदार्थ, शीघ्र आग पकड़ने वाली चीजे जैसे पेट्रोल, मिट्टी का तेल, सिनेमा, फिल्म इत्यादि के नियन्त्रण के लिए भी नगर-पालिकाओं को नियम बनाने पड़ते हैं।

सरकार की ओर से नगर पालिकाओं को ऐसे नागरिकों के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही करने का भी अधिकार होता है जो उसके नियमों को भङ्ग करें, सार्वजनिक स्थानों पर गन्दगी फैलायें, अपने मकानों में उचित सफाई का प्रबन्ध न रखें, म्युनिसिपल सम्पत्ति का अनधिकार उपयोग करें इत्यादि।

नगर पालिकाओं की शासन व्यवस्था

नगर पालिका का शासन प्रबन्ध सदस्यों तथा बोर्ड के कर्मचारियों द्वारा किया जाता है। इस दशा में, नगर पालिका के अध्यक्ष तथा ऐक्जीक्यूटिव आफिसर अथवा सेक्रेटरी को विशेष अधिकार प्राप्त होते हैं। नगर का शासन प्रबन्ध विभिन्न विभागों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। इन विभागों में निम्न विभाग मुख्य हैं :—

१. *शिक्षा विभाग*—यह विभाग एक शिक्षा सुपरिन्टेंडेंट के अधिकार में रहता है। इस विभाग का मुख्य कार्य लड़के व लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध करना होता है। एक विशेष आयु तक के बच्चों के लिए प्रायः प्रत्येक नगर पालिका में निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था होती है। शिक्षा विभाग नगर की पुस्तकालयों व वाचनालयों की भी देख भाल करता है तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

२. *इञ्जीनियरिंग विभाग*—यह विभाग एक सुयोग्य म्युनसिपल इञ्जीनियर के अधीन होता है। इस विभाग का मुख्य कार्य सड़कों, गलियों, नालियों, विश्राम घरों, अपाहिज घरों, तालाबों, बाजारों, पाठशालाओं तथा अन्य सार्वजनिक उपयोग के भवनों का निर्माण तथा उनकी देख रेख करना होता है।

३. *चुंगी विभाग*—यह विभाग एक मुख्य चुंगी अधिकारी के अधीन कार्य करता है। नगर के चारों ओर अनेक चुंगी वसूल करने के स्थान होते हैं। उन स्थानों की देख-रेख करना तथा ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करना जो चुंगी न दें, इस विभाग का मुख्य कार्य होता है।

सरकार को प्राप्त है। प्रान्तीय सरकार यदि यह समझे कि कोई नगर पालिका अपना कार्य ठीक प्रकार से नहीं कर रही है तो वह उसे भंग कर सकती है, उसके लिए नये चुनाव किये जाने की आज्ञा दे सकती है अथवा नगर पालिका का प्रबन्ध किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में दे सकती है जिसे वह ऐसा काम करने के लिए उपयुक्त समझे। अध्यक्ष तथा ऐसे सदस्यों को अपने पद से अलग करने का अधिकार भी प्रान्तीय सरकार को प्राप्त है जो अपने पद का उचित उपयोग न कर, नगर पालिका के कार्य में गड़बड़ी फैलावें। इस प्रकार के अधिकार प्रान्तीय सरकार के हाथ में रखे जाने उचित ही हैं, कारण अभी तक हमारे देश में जनता अपने कर्तव्यों को उचित प्रकार से नहीं समझती है। जब तक हमारे देश की जनता प्रजातान्त्रिक संस्थाओं के कार्य में अधिक अनुभव प्राप्त नहीं कर लेती, उसके ऊपर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण नितान्त आवश्यक है।

छावनी बोर्डों का शासन प्रबन्ध

(Administration of Cantonment Boards)

छावनियाँ उन क्षेत्रों को कहा जाता है जहाँ भारत सरकार की सेना रहती है। ऐसे क्षेत्रों में असैनिक जनता भी रहती है, परन्तु मुख्यतया वह ऐसा व्यापार करती है जिसका सेना की आवश्यकताओं से सम्बन्ध होता है। छावनियों का प्रबन्ध प्रान्तीय सरकार के अधीन न रहकर केन्द्रीय सरकार के अधीन होता है। उनके नागरिक प्रबन्ध के लिए जो समिति चुनी जाती है उसमें अधिकतर सेना के अधिकारी मनोनीत किये जाते हैं। कुछ सदस्य असैनिक जनता के प्रतिनिधि भी होते हैं परन्तु बोर्ड का अध्यक्ष, सेना का एक उच्च अधिकारी ब्रिगेडियर अथवा कपनी कमांडर होता है और सेना की सुविधा तथा आवश्यकताओं को ही बोर्ड के कार्यक्रम में महत्त्व दी जाती है। अंग्रेजों के काल में छावनियों के प्रबन्ध में असैनिक जनता के प्रतिनिधियों को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे, परतु अब हमारी सरकार उनके अधिकारों में शनै शनै. वृद्धि कर रही है।

छावनी बोर्डों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो नगर-पालिकाएँ करती हैं। उनकी कार्य-प्रणाली तथा आय के साधन भी प्रायः वैसे ही होते हैं।

. बन्दरगाहों का शासन प्रबन्ध (Port Trusts)

बन्दरगाहों के प्रबन्ध के लिए भी छावनियों की भाँति विशेष व्यवस्था की आवश्यकता होती है। बन्दरगाहों पर सवारियों तथा सामान के आयात व निर्यात का काम होता है। इस कारण बन्दरगाहों के प्रबन्धकों को नावों, छोटे जहाजों, माल उतारने के लिए क्रेनों, गोदामों, मजदूरों तथा इसी प्रकार की अनेक सुविधाओं का प्रबंध करना पड़ता है। यह प्रबंध एक विशेष समिति द्वारा किया जाता है जिसमें कुछ सदस्य कार्पोरेशन के

प्रतिनिधि होते हैं, कुछ सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते हैं तथा कुछ व्यापारिक संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। हमारे देश में तीन पोर्ट ट्रस्ट बम्बई, कलकत्ता तथा मद्रास में हैं। इन पोर्ट ट्रस्टों को माल के आयात व निर्यात सम्बन्धी कार्य के अतिरिक्त सफाई, स्वास्थ्य, रोशनी तथा बन्दर में काम करने वाले मजदूरों की भलाई सम्बन्धी अनेक वैसे ही काम करने पड़ते हैं जैसे म्युनिसिपैल्टियाँ करती हैं।

टाउन तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियाँ

हमारे प्रांत के उन क्षेत्रों के म्यूनिसिपल प्रबन्ध के लिए जिनकी जनसंख्या २०,००० से कम है, टाउन एरिया तथा नाटिफाइड एरिया कमेटियाँ हैं। प्रांतीय सरकार को अधिकार है कि वह किसी भी ऐसे क्षेत्र को नोटिफाइड एरिया या टाउन एरिया अथवा म्यूनिसिपल कमेटी के अधिकार क्षेत्र में दे दे जिसे वह उचित समझे।

टाउन एरिया तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियों को वही सब काम करने पड़ते हैं जो बड़े नगरों में नगर पालिकाएँ करती हैं। वह सड़कों का निर्माण करती हैं, स्वास्थ्य तथा सफाई सम्बन्धी कार्य करती हैं, कुओं व तालाबों की देखभाल करती हैं। पीने का पानी, रोशनी, बिजली, शिक्षा तथा इसी प्रकार की सार्वजनिक सुविधाएँ प्रदान करने के कार्य करती हैं। इन कमेटियों में सदस्यों की संख्या ५ और ७ के बीच में रहती है। इनमें अधिकतर सदस्य निर्वाचित होते हैं परन्तु कुछ सदस्य प्रांतीय सरकार द्वारा भी मनोनीत किये जाते हैं। नगर पालिकाओं की अपेक्षा नोटिफाइड तथा टाउन एरिया कमेटियों को कम अधिकार प्राप्त होते हैं, उनके कार्य में कलक्टर तथा कमिश्नर अधिक हस्तक्षेप कर सकते हैं, तथा उनकी आमदनी के स्रोत भी कम होते हैं। उनकी आर्थिक सहायता डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा प्रांतीय सरकार द्वारा की जाती है, कुछ थोड़े से कर भी वह स्वयं लगा सकती हैं।

हमारे प्रांत में इस प्रकार की कमेटियों की संख्या बराबर घटती जा रही है कारण, बहुत-सी टाउन तथा नोटिफाइड एरिया कमेटियों को नगर-पालिकाओं का पद दे दिया गया है। सन् १९४९-५० में ३४ नोटिफाइड तथा टाउन एरिया कमेटियों को या तो नगर पालिकाओं में मिला दिया गया या उन्हें स्वयं नगर पालिकाओं का अधिकार प्रदान कर दिया गया। सन् १९५० में हमारे प्रांत में केवल ८८ *नोटिफाइड एरिया कमेटियाँ* शेष रह गई थीं।

जिला मंडलियाँ

वह कार्य जो नगरों में म्यूनिसिपल बोर्डों द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं, ग्राम्य क्षेत्रों में डिस्ट्रिक्ट बोर्डों द्वारा किये जाते हैं। आसाम को छोड़कर भारत के शेष सब प्रांतों में जिला मंडलियों की व्यवस्था है। जिला मंडली का अधिकार क्षेत्र जिले की सीमा के

साथ साथ होता है। पंजाब और उत्तर प्रदेश को छोड़कर जिला मंडली के अधीन तालुका बोर्ड तथा सर्किल बोर्ड होते हैं। बंगाल, मद्रास तथा उड़ीसा में उन्हें यूनियन कमेटी कहा जाता है। कहीं कहीं तालुका बोर्डों के अधीन स्थानीय बोर्ड होते हैं जो ग्राम पंचायतों से बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। उनकी अधिकार सीमा एक गाँव या २ से ४ गाँव तक सीमित रहती है। हमारे अपने प्रांत में जिला मंडलियों के अधीन तालुका या स्थानीय बोर्डों की व्यवस्था नहीं है। उनके स्थान पर हमारे प्रांत में तहसील कमेटियाँ तथा ग्राम पंचायतें हैं। जिला मंडलियों की संख्या हमारे प्रांत में ५१ है। सन् १९५०-५१ में इनकी कुल आय ५ करोड़ रुपये थी।

जिला मंडलियों के आवश्यक कार्य

जिला मंडलियाँ नगर पालिकाओं के समान ही कार्य करती हैं। उत्तर प्रदेश के जिला मंडली कानून के अधीन उनके कार्यों को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) आवश्यक कार्य और (२) ऐच्छिक कार्य। आवश्यक कार्य वह हैं जो ग्राम निवासियों के स्वास्थ्य तथा रक्षा के लिए आवश्यक हैं। ऐच्छिक कार्य वह हैं जो ग्रामीण क्षेत्र के नागरिकों को जीवन की सुविधाएँ तथा एक उल्लासपूर्ण जीवन व्यतीत करने में सहायता प्रदान कर सकते हैं। जिला मंडलियों के आवश्यक कार्यों को हम निम्न चार भागों में विभक्त कर सकते हैं :

१. सार्वजनिक स्वास्थ्य—औषधालयों व चिकित्सालयों का स्थापित करना तथा उनका काम चलाना, सार्वजनिक कुओं व तालाबों का बनवाना तथा उनकी मरम्मत करना, संक्रामक रोगों जैसे हैजा, प्लेग इत्यादि की रोक थाम करना, गाँवों के लिए शिक्षित दाइयों का प्रबन्ध करना, जनता में स्वास्थ्य तथा सफाई सम्बन्धी शिक्षा का प्रसार करना और चेचक के टीके का प्रबन्ध करना।

२. सार्वजनिक रक्षा—भयानक तथा दूषित व्यापारों की रोक थाम करना, पीने के पानी को दूषित होने से बचाना, कुओं तथा तालाबों में लाल दवाई के प्रयोग के द्वारा उनके पानी को जहरीले कीटाणुओं से रक्षा करना, टूटे फूटे मकानों को गिराना इत्यादि।

३. सार्वजनिक सुविधाएँ—सड़क, पुल व गाँव के रास्तों को बनवाना, तथा उनकी देखभाल व मरम्मत कराना, पेड़ लगवाना, अपाहिज घरों तथा अनाथालयों का प्रबन्ध करना, बाजारों, हाटों, पैठों तथा मेलों का प्रबन्ध करना, पशु व मानव चिकित्सालयों की स्थापना करना, विश्राम गृहों व डाक बंगलों का बनवाना, जनता की सुविधा के लिए वाटिका व बागों की स्थापना करना, बिजली व नल के पानी का प्रबन्ध करना, काँजी हाउस बनवाना, कृषि, व्यापार व घरेलू उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए प्रदर्शनी व मेले इत्यादि लगाना।

४. सार्वजनिक शिक्षा—लड़के व लड़कियों की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में पाठशालाओं की स्थापना करना, विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना, शिक्षकों की ट्रेनिंग के लिए केन्द्र खोलना, शिक्षा कमेटियों द्वारा पाठशालाओं के निरीक्षण का प्रबन्ध करना, वाचनालयों तथा घूमने-फिरने वाले पुस्तकालयों का प्रबन्ध करना, औद्योगिक तथा कृषि शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षालयों का प्रबन्ध करना।

जिला मण्डलियों के ऐच्छिक कार्य—

इन कार्यों में हम निम्नलिखित कार्य सम्मिलित कर सकते हैं—नई सड़कें बनाने के लिए भूमि ग्रहण करना, अस्वास्थ्यप्रद स्थानों को स्वास्थ्यप्रद बनाना, ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पत्ति तथा मृत्यु के आँकड़े रखना, ग्रामीण जनता को यातायात की सुविधा प्रदान करने के लिए मोटर, बस, ट्राम गाड़ियों तथा छोटी रेलगाड़ियों का प्रबन्ध करना, सिंचाई सम्बन्धी प्रबन्ध करना, ग्रामीण जनता के मनोरञ्जन तथा शिक्षा के लिए रेडियो, सिनेमा, चलचित्र तथा ड्रामा का प्रबन्ध करना, पचायत बनाना तथा पचायत घरों का निर्माण करना इत्यादि।

हमारे देश की जिला मण्डलियाँ

दुर्भाग्यवश हमारे देश में आय के साधनों की कमी के कारण जिला मण्डलियाँ ऐच्छिक कार्यों का तो कहना ही क्या, अपने आवश्यक कार्य भी पूरे नहीं कर पातीं। जिला मण्डलियों के संरक्षण में जो सड़कें, रास्ते, नालियाँ इत्यादि होती हैं उनकी दशा देखते ही बनती है। ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा, सफाई व चिकित्सा का भी कोई सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं होता। समाज के पिछड़े हुए वर्ग जैसे हरिजन तथा स्त्रियों की शिक्षा के लिए जिला मण्डलियाँ किसी प्रकार का प्रबन्ध नहीं करतीं। भारतवर्ष में शायद ही कोई ऐसे गाँव हों जहाँ जिला मण्डली की ओर से पंचायत घर, उद्यान, वाटिका, थियेटर-हाल क्लब या आमोद-प्रमोद के केन्द्रों का प्रबन्ध किया जाता हो। दूसरे सभ्य देशों में ग्रामीण क्षेत्रों की शासन व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया जाता है। नगरों से भी अधिक उनकी स्वास्थ्य, सफाई तथा आमोद-प्रमोद के केन्द्रों में परिवर्तित करने का सतत् प्रयत्न किया जाता है। नगर के लोग शहर के कृत्रिमप्रद जीवन से तंग आकर प्रत्येक अवकाश के समय गाँवों की ओर ही अपने जीवन की कुछ सुखपूर्ण घड़ियाँ व्यतीत करने के स्वप्न देखते हैं। इंग्लैंड में प्रतिष्ठित घरानों के व्यक्ति—बड़े-बड़े सरकारी कर्मचारी, मन्त्री तथा हाउस आफ लार्ड्स के सदस्य, ग्रामीण क्षेत्रों में अपने आराम तथा स्वास्थ्य लाभ के लिए कोठियाँ इत्यादि बनाते हैं। वहाँ कोई भी ऐसा गाँव देखने में नहीं मिलता जिसमें अपना क्लब, ड्रामा सोसाइटी, पचायत घर, पुस्तकालय, वाचनालय अथवा कोई कला केन्द्र देखने को न मिले। हमारे देश में सर्वप्रथम तो जिला मण्डलियों के

आय के साधन बहुत कम हैं जिसके कारण स्थानीय संस्थाएँ अपने नागरिकों की सुविधा के लिए कुशल प्रबन्ध नहीं कर सकतीं, तिस पर हमारी जनता में नागरिक शिक्षा का इतना अभाव है कि वह अपने कर्त्तव्यों को भलाभाँति नहीं समझती और जिला मंडलियों के सदस्य जनता की सेवा करने के स्थान पर अपनी स्वार्थ सिद्धि के साधनों को अधिक महत्त्व देते हैं। इसलिए जिला मंडलियों के शासन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए आवश्यक है कि हम (१) जिला मंडलियों के आय के साधनों में वृद्धि करें, (२) उनके संगठन को अधिक कुशल तथा शक्तिशाली बनायें और (३) जनता को अधिक से अधिक नागरिक शिक्षा प्रदान करें।

जिला मण्डलियों का संगठन

निर्माण—उत्तर प्रदेश की जिला मंडलियों की व्यवस्था सन् १६२२ के जिला मंडलियों के कानून के अधीन निर्धारित थी, परन्तु सन १६४७ और १६४८ में इस कानून में कुछ आवश्यक संशोधनों द्वारा इस बात का प्रबन्ध कर दिया गया कि गाँवों की वयस्क जनता को मताधिकार मिल सके, जिला मण्डली में एक कार्यपालिका का निर्माण हो सके, जिला मंडली के अध्यक्ष का चुनाव बोर्ड के सदस्यों के स्थान पर सीधा जनता द्वारा किया जा सके तथा गाँवों के बीच से भी नगरों की भाँति दूषित पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त हो सके। विदित है कि जिला मंडलियों के कानून में इस प्रकार के संशोधन उसी आधार पर किये गये हैं जैसे वह नगरपालिकाओं के संगठन में किये गये हैं तथा जिनका वर्णन हम पीछे दे चुके हैं। संशोधित कानून में मुसलमानों तथा हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था कायम रक्खी गई है। ऐसा इसलिए किया गया कि जिस समय जिला मंडलियों का संशोधित कानून पास किया गया था उस समय तक हमारे देश की संविधान सभा ने मुसलमानों के लिए सुरक्षित स्थानों की प्रथा को निषिद्ध नहीं ठहराया था। परन्तु अब स्वतन्त्र भारत के धर्म निरपेक्ष स्वरूप को कायम रखने के लिए यह आवश्यक हो गया है कि केवल धर्म के आधार पर किसी जाति को विशेष सुविधाएं न दी जायें। हमारे प्रान्त की सरकार इसलिए नगर पालिकाओं तथा जिला मंडलियों के कानूनों में और आवश्यक परिवर्तन करने का शीघ्र ही विचार कर रही है।

सदस्य संख्या—सन् १६२२ के कानून के अधीन हमारे प्रान्त में जिला मंडलियों के सदस्यों की संख्या १५ और ४० के बीच निश्चित की जाती थी। संशोधित कानून में यह संख्या बढ़ाकर ३० और ८० के बीच कर दी गई है। एक और भारी परिवर्तन पहले कानून में यह किया गया है कि मनोनीत सदस्यों की प्रथा का तोड़कर उसके स्थान पर कोऑप्टेड सदस्यों की प्रथा को चालू किया गया है। १६२२ के कानून के अधीन प्रत्येक जिला मंडली में ३ सदस्य प्रान्तीय सरकार द्वारा मनोनीत किये जाते थे। संशोधित

कानून में इन मनोनीत सदस्यों के स्थान पर इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि प्रांतीय सरकार जिला मण्डलियों को अपने चुने हुए कुछ सदस्यों की संख्या का अधिक से अधिक दसवाँ भाग कोऑप्टेड सदस्यों के रूप में निर्वाचित करने का अधिकार दे सकती है। इन सदस्यों में, कानून में कहा गया है, कि कम से कम २ महिलाएँ तथा १ ऐसी जाति का व्यक्ति होना चाहिए जिसे आम चुनाव में प्रतिनिधित्व न मिला हो। तीसरा संशोधन कानून में यह किया गया है कि जिला मण्डली का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिए एक कार्य-समिति का आयोजन किया गया है। इस कमेटी के सदस्यों में जिला मण्डली का अध्यक्ष, २ दूसरे जिला मण्डली के सदस्य तथा सब कमेटियों के प्रधान होंगे। जिला मण्डल का मन्त्री इस कमेटी का मन्त्री होगा। यह कमेटी वह सारे कार्य भी करेगी जो पहले राजस्व कमेटी करती थी।

अध्यक्ष (President)—जिला मण्डल के अध्यक्ष के निर्वाचन के सम्बन्ध में भी संशोधित कानून में आमूल परिवर्तन किया गया है। सन् १९२२ के कानून के अधीन अध्यक्ष का चुनाव जिला मण्डली के सदस्यों द्वारा किया जाता था। यह सदस्य अध्यक्ष को जब चाहते, अविश्वास का प्रस्ताव करके निकाल सकते थे। इस प्रथा के अधीन जिला मण्डल साजिश तथा दलबन्दी का अखाड़ा बनी रहती थी और सदस्य एक अध्यक्ष को निकाल कर दूसरे व्यक्ति को उसके स्थान पर रखने का निरंतर प्रयत्न करते रहते थे। संशोधित कानून में इसलिए इस बात का आयोजन किया गया है कि जिला मण्डल के अध्यक्ष का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाय। इस चुनाव के लिए जिले में रहने वाला प्रत्येक वह व्यक्ति उम्मीदवार के रूप में खड़ा हो सकता है जिसका नाम मतदाता सूची में दर्ज हो तथा जिसकी आयु कम से कम ३० वर्ष हो। अध्यक्ष के पद की अवधि ३ वर्ष रखी गई है परन्तु जब तक नये अध्यक्ष का चुनाव नहीं हो जाता, पहला व्यक्ति ही उस पद पर कार्य करता रहेगा।

अविश्वास के प्रस्ताव के सम्बन्ध में मण्डलियों के संशोधित कानून में उसी प्रकार का प्रबन्ध किया गया है जैसा नगर पालिकाओं के साथ। यदि कोई जिला मण्डली अपने अध्यक्ष में अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे और अध्यक्ष को यह विश्वास हो कि जनता उसके साथ है तो वह प्रांतीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है कि जिला मण्डली को भङ्ग कर दिया जाय और नये चुनाव किये जायँ। इस प्रार्थना को स्वीकार या अस्वीकार करने का अन्तिम अधिकार प्रांतीय सरकार को ही है, परन्तु साधारणतया वह अध्यक्ष की सम्मति का पालन करेगी। आम चुनाव के पश्चात् यदि दूसरी चुनी हुई जिला मण्डली भी अध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास कर दे तो तीन दिन के अन्दर-अन्दर अध्यक्ष को अपने पद से त्याग पत्र देना होगा। यदि वह ऐसा न करे तो प्रांतीय सरकार उसे उसके पद से हटा सकती है। परन्तु यदि प्रांतीय सरकार अध्यक्ष की बात

न माने और अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने के पश्चात् जिला मडली को भङ्ग न करे तो कानून में कहा गया है कि अध्यक्ष को तीन दिन के अन्दर अपने पद से अलग हो जाना होगा। इस प्रकार खाली हुए अध्यक्ष पद के रिक्त स्थान के लिए दोबारा सीधा चुनाव किया जायगा, और उसमें पहले अध्यक्ष को यह अधिकार होगा कि वह चुनाव में खड़ा हो सके, परन्तु यदि अध्यक्ष अविश्वास का प्रस्ताव पास हो जाने के पश्चात्, प्रांतीय सरकार के कहने पर भी तीन दिन के अन्दर अपना पद त्याग न करे, तो उसे दोबारा होने वाले चुनाव में खड़ा होने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि सशोधित कानून के अनुसार जिला मडलियों के मुख्य अधिकारी एवं कार्यकर्ता अर्थात् अध्यक्ष को सदस्यों के षड्यन्त्रों से दूर रखने का समुचित प्रबन्ध किया गया है।

अवधि—जिला मडली की कार्य अवधि पहले के समान ही तीन वर्ष रखी गई है, परन्तु प्रांतीय सरकार को अधिकार दिया गया है कि यदि वह उचित समझे तो उसे पहले भी भंग कर सकती है अथवा उसकी अवधि को बढ़ा सकती है।

चुनाव—जैसा पहले बताया जा चुका है, चुनावों में मतदाताओं की योग्यता के सम्बन्ध में, कानून में कहा है कि यह योग्यताएं वही होंगी जो प्रांतीय विधान सभा के निर्वाचकों के लिए निश्चित हैं। नये सविधान में प्रत्यक्ष रूप से कहा गया है कि भारत के प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को चुनावों में भाग लेने का अधिकार होगा। इसलिए जिला मडलियों के चुनावों में भी गाँवों में रहने वाले प्रत्येक बालिग स्त्री व पुरुष को भाग लेने का अधिकार प्राप्त होगा।

पदाधिकारी—जिला मण्डली का सबसे मुख्य पदाधिकारी अध्यक्ष होता है। उसकी सहायता के लिए उच्च (सीनियर) तथा एक कनिष्ठ (जूनियर) अध्यक्ष की व्यवस्था होती है। यह दोनों सदस्य अध्यक्ष की अनुपस्थिति में काम करते हैं। इन तीन निर्वाचित पदाधिकारियों के अतिरिक्त जिला मण्डली के दिन प्रति दिन के प्रबन्ध-सम्बन्धी काम चलाने के लिए अनेक वैतनिक कर्मचारी नियुक्त किये जाते हैं। इनमें निम्न मुख्य होते हैं—(१) मन्त्री, (२) इञ्जीनियर, (३) स्वास्थ्य अधिकारी, (४) मुख्य-सफाई निरीक्षक और, (५) शिक्षा अधिकारी।

जिला मण्डलियों के विधान में इस बात की व्यवस्था है कि मडली के अधिवेशनों में अध्यक्ष की आज्ञा से जिले के कुछ सरकारी अधिकारी जैसे सिविल सर्जन, एक्जीक्यूटिव इञ्जीनियर, इन्सपेक्टर आफ स्कूल्स या कोई और ऐसे ही अधिकारी जिनको प्रांतीय सरकार इस बात की आज्ञा दे, सम्मिलित हो सकते हैं। इस प्रकार का प्रबन्ध इस दृष्टि से किया गया है जिससे इन विशेषज्ञों की राय से जिला मडली के कार्य में लाभ उठाया जा सके।

परन्तु वहाँ इन अधिकारियों को मण्डली के अधिवेशनों में उपस्थित रहने तथा बोलने का अधिकार दिया गया है, वहाँ उन्हें किसी प्रकार का मत देने का अधिकार नहीं दिया गया है।

जिला मण्डलियों की कमेटियाँ

नगरपालिकाओं की भाँति जिला मण्डलियाँ भी अपने कार्य का सम्पादन विशेष कमेटियों द्वारा करती हैं। पूरी जिला मण्डली का कार्य केवल नीति का संचालन करना होता है। शेष कार्य मंडली की कमेटियों द्वारा पूरा किया जाता है। प्रत्येक जिला मण्डली में निम्न कमेटियाँ मुख्य रूप से व्यवस्थित की जाती हैं—

(१) *राजस्व कमेटी*—जिला-मण्डली की यह सबसे मुख्य कमेटी समझी जाती है। यह कमेटी बजट बनाती है एवं आय व खर्च का हिसाब रखती है। इस कमेटी के ६ सदस्य होते हैं। जिला-मण्डली का अध्यक्ष, इस कमेटी का अध्यक्ष तथा उसका मन्त्री इस कमेटी का मन्त्री होता है। मंडली की कमेटियों में बाहर के सदस्य भी लिये जा सकते हैं परन्तु उनकी संख्या एक तिहाई से अधिक नहीं हो सकती।

(२) *तहसील कमेटी*—जिला मण्डली के अधीन प्रत्येक तहसील के लिए एक तहसील कमेटी होती है। यह कमेटी तहसील से सम्बन्ध रखने वाले समस्त कार्यों को पूरा करने में मण्डली की सहायता करती है। इस कमेटी के उस तहसील के निर्वाचित समस्त व्यक्ति सदस्य होते हैं। बाहर के लोग भी इस कमेटी में सहायक सदस्यों के रूप में मनोनीत किये जा सकते हैं।

(३) *शिक्षा-कमेटी*—राजस्व कमेटी के पश्चात् जिला मण्डली की यह सबसे महत्त्वपूर्ण कमेटी होती है। शिक्षा सम्बन्धी विषयों में इस कमेटी को पूर्ण अधिकार प्राप्त होते हैं। चुनाव के पश्चात् यह कमेटी मंडली से स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है। इसके १२ सदस्य होते हैं—८ जिला-मंडली के सदस्य तथा ४ बाहर से लिये हुए सहायक सदस्य। अन्तिम ४ सदस्यों में २ सदस्य प्रान्तीय शिक्षा विभाग के अधिकारी होते हैं, एक महिला तथा एक मुसलमानों का प्रतिनिधि होता है। इस कमेटी का सभापति, कमेटी के सदस्य स्वयं निर्वाचित करते हैं। वह कोई सरकारी नौकर नहीं हो सकता। कमेटी के मन्त्री पद पर जिले के डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स कार्य करते हैं। जिले की अमीण जनता की साधारण तथा औद्योगिक शिक्षा के लिए यही कमेटी उत्तरदायी होती है। इसके अधीन अनेक पाठशालाएँ तथा स्कूल कार्य करते हैं। प्राइवेट स्कूलों को भी यह कमेटी आर्थिक सहायता प्रदान करती है। सन् १९५०-५१ में हमारे प्रान्त में ऐसे मदरसों स्कूलों की संख्या २५,७०८ थी।

इस कमेटी के निर्णय जिला-मण्डली के अधिवेशनों में केवल सूचनार्थ रखे किये

जाते हैं। मण्डली को उनमें परिवर्तन करने का अधिकार प्राप्त नहीं होता। मण्डली का अध्यक्ष भी शिक्षा कमेटी के अध्यक्ष पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं रख सकता। शिक्षा कमेटी का अध्यक्ष स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है। वह जिला-मण्डली के अध्यक्ष के मातहत रह कर कार्य नहीं करता।

जिला-मंडलियों के आय के साधन

जिला मण्डलियों को अपना काम सुचारु रूप से चलाने के लिए, विधान द्वारा कुछ कर लगाने के अधिकार दिये गये हैं। इन करों के अतिरिक्त और भी कुछ स्रोतों से जिला मण्डलियों की आय होती है। इन सबका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

(१) *भूमि कर पर जिला मण्डली का टैक्स*—प्रांतीय सरकार द्वारा जो माल गुजारी जमींदारों से वसूल की जाती है, उस पर जिला-मण्डली का टैक्स लगाया जाता है। यह टैक्स प्रांतीय सरकार द्वारा वसूल किया जाता है, परन्तु इसकी आय जिला मण्डलियों को दे दी जाती है। जिला मण्डलियों की आय का यही सबसे मुख्य साधन है। पहले इस टैक्स की दर १ आना रुपया थी परन्तु १९४८ के संशोधित कानून द्वारा यह बढ़ाकर लगभग २ आने रुपया कर दी गई है।

(२) *हैसियत कर*—गाँवों में रहने वाले जो व्यक्ति मालगुजारी नहीं देते तथा जिनकी वार्षिक आय २०० रुपये से अधिक होती है, उन पर उनकी हैसियत के हिसाब से जिला मण्डली कर लगा सकती है। परन्तु इस कर की दर रुपये में ४ पाई से अधिक नहीं हो सकती। ऐसी रुकावट इसलिए लगाई गई है जिससे जिला मण्डलियाँ इनकम टैक्स की भाँति ही लोगों से कर वसूल न करने लगें।

(३) *फ़ैक्टरी कर*—जो कारखाने जिला मण्डली के अधिकार क्षेत्र में काम करते हैं उन पर वह उसी प्रकार टैक्स लगा सकती है जिस प्रकार नगरपालिकाएँ अपने क्षेत्र में कारखानों से कर वसूल करती हैं।

(४) यातायात के साधनों जैसे गाड़ियों, बैल, ठेलों, लद्दू पशुओं पर कर।

(५) बाजार लगाने अथवा पैंठ इत्यादि खोलने पर कर।

(६) जिला मण्डली की जायदाद से आय।

(७) पशुओं की बिक्री पर कर।

(८) मेलों से आय।

(९) पुल पार करने पर टैक्स या नावों से होने वाली आय।

(१०) जिला मंडली की भूमि में उगने वाले पेड़ों व फलों इत्यादि की बिक्री से आय।

(११) भूमि की बिक्री से आय।
(१२) काँजी हाउस से आय।
(१३) दलालों, आढ़तियों तथा तौलने वालों पर लाइसेंस कर।
(१४) प्रांतीय सरकार से आर्थिक सहायता।
(१५) ऋण।

जिला मंडलियों की आय-साधनों में वृद्धि के उपाय

नगर-पालिकाओं की भाँति भारतवर्ष में जिला मडलियों की आय के साधन एकदम अपर्याप्त हैं। भारत की समस्त जिला मडलियों की आय १५ करोड़ रुपये से अधिक नहीं है। इस आय का लगभग ४० प्रतिशत भाग अन्वाब अर्थात् मालगुज़ारी पर जिला मण्डली के टैक्स से वसूल होता है। दूसरे साधनों से आय बहुत कम होती है। जिला मण्डली के अधीन क्षेत्रों का विस्तार देखते हुए उनके शासन प्रबन्ध के लिए यह आय बहुत कम है। जिला मण्डलियाँ अपनी आय उन्हीं सब उपायों से बढ़ा सकती हैं जिनका वर्णन हमने नगरपालिकाओं की आय का वर्णन करते समय किया था। इसके अतिरिक्त मेले इत्यादि करके, प्रदर्शनियों की व्यवस्था द्वारा, पशुओं की बिक्री को प्रोत्साहन देकर, अपनी भूमि में कृषि के द्वारा अथवा फलों के पेड़ एव इमारती लकड़ी इत्यादि लगाकर, डाक बगलों, पिकनिक क्लब, विश्रांति गृह, बोट क्लब, डेरी, पोल्ट्री फ़ार्म, मोटर बस, छोटी रेलों इत्यादि की व्यवस्था के द्वारा भी जिला मण्डलियों की आय में समुचित बढ़ोत्तरी की जा सकती है। हमारे देश में अनेक ऐसे सुन्दर तथा आकर्षक गाँव हैं जहाँ यदि जीवन की वर्तमान सुविधाओं का प्रबन्ध किया जा सके तो हज़ारों परिवार प्रति वर्ष कुछ समय के लिए, अपना अवकाश का समय व्यतीत कर सकते हैं। यदि ऐसे स्थानों पर डाक बँगले, विशाल खेल के मैदान, बोट क्लब, शिकार के स्थान, होटल, रैस्ट्रां, आने-जाने आदि के साधनों इत्यादि का कुशल प्रबन्ध किया जा सके तो न केवल इससे स्थानीय संस्थाओं की आय में भी बढ़ोत्तरी हो सकती है वरन् नगर के थकानपूर्ण जीवन से भी लोग कुछ समय के लिए छुटकारा पाकर अपने जीवन में कुछ काल के लिए आनंद और उल्लास का अनुभव कर सकते हैं। गंगा, यमुना व भारत की दूसरी नदियों के किनारे एवं प्रकृति के सौन्दर्यमयी वातावरण के बीच पहाड़ों पर हमारे देश में सहस्त्रों ऐसे स्थान हैं, जहाँ इस प्रकार के आमोद-प्रमोद के स्थान बनाये जा सकते हैं। आशा है, हमारे देश की जिला मण्डलियाँ, स्वतन्त्रता के वातावरण में इस ओर ध्यान देंगी और भारतीय नागरिक जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक सिद्ध होंगी।

ग्राम पंचायतें

जैसा हम पहले ही देख चुके हैं, भारतवर्ष में ग्राम पंचायतें आदि काल से ही चली

आ रही है। सहस्रों वर्षों तक यह पंचायतें शासन की स्थिरता तथा समाज की कुशल व्यवस्था की आधार शिला थीं। वह समस्त स्थानीय विवादों का, चाहे वह सामाजिक हों अथवा नैतिक, आर्थिक हों अथवा न्याय सम्बन्धी, निर्णय करती थीं। वह केन्द्रीय सरकार से स्वतन्त्र रहकर कार्य करती थीं। केवल कर देने तथा सैनिक सहायता प्रदान करने के लिए वह केन्द्रीय सरकार के अधीन थीं। ब्रिटिश राज्य के आरम्भ काल में ही इन पंचायतों का जीवन उस समय समाप्त हो गया, जब सरकार ने शासन तथा न्याय क्षेत्रों में केन्द्रीयकरण की नीति का अवलम्बन कर लिया।

सन् १६०८ में प्रथम बार ब्रिटिश सरकार ने एक विकेन्द्रीयकरण कमीशन नियुक्त करके भारत में ग्राम पंचायतों को पुनर्जीवित करने की ओर निश्चित कदम उठाया। इस कमीशन की सिफारिशों के आधार पर विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने अपने यहाँ ग्राम पंचायत ऐक्ट बनाये और सन् १६१२ में पंजाब में, सन् १६२० में उत्तर प्रदेश में, तथा इसके पश्चात् दूसरे सभी प्रान्तों में ऐसे ऐक्ट पास कर दिये गये।

हमारे नव संविधान में ग्राम पंचायतों के संगठन का वही प्राचीन आदर्श अपनाने का प्रयत्न किया गया है जो भारतीय इतिहास के स्वर्णिम काल में लागू था, और इसी आधार पर राज्य की समस्त सरकारों को आदेश दिया गया है, कि वह अपने अपने अधिकार क्षेत्र में शीघ्रातिशीघ्र इस प्रकार की ग्राम पंचायतों का संगठन करें। इसी दृष्टि से हमारी देश की विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने अपने पुराने ग्राम पंचायत कानून में संशोधन किया है। नये कानूनों में ग्राम पंचायतों के अधिकार अधिक विस्तृत कर दिये गये हैं तथा उनका संगठन वयस्क मताधिकार के आधार पर किया गया है।

उत्तर प्रदेश में ग्राम पंचायतों का संगठन

हमारे अपने प्रान्त में ग्राम पंचायत सम्बन्धी कानून दिसम्बर सन् १६४७ में पास किया गया। इस कानून के अन्तर्गत ग्राम्य स्वराज्य की जो स्थापना की गई है उसकी रूप रेखा नीचे दी जाती है :—

निर्माण—इस कानून के अन्तर्गत प्रत्येक ऐसे गाँव के लिए जिसकी जनसंख्या १०० से अधिक है, एक ग्राम सभा बनाई है। यदि इससे छोटे गाँव हैं तो दो तीन गाँवों को मिलाकर एक ग्राम सभा बना दी गई है, परन्तु तीन मील से अधिक दूरी वाले गाँवों के लिए अलग सभा बनाई गई है। इस प्रकार यदि छोटे छोटे गाँव एक दूसरे से दूर हैं तो आबादी कम होने पर भी उनमें अलग ग्राम सभाएँ बना दी गई हैं।

सदस्यता—इस सभा का सदस्य गाँव का प्रत्येक व्यक्ति—स्त्री और पुरुष जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक है, होता है। परन्तु पागल, दिवालिया, भीषण अपराध में सजा पाये हुए अपराधी तथा सरकारी नौकरी करने वाले लोगों को इसकी सदस्यता के अधिकार से वंचित कर दिया गया है।

ग्राम पंचायत—ग्राम सभा अर्थात् गाँव के सभी बालिग स्त्री-पुरुष अपने गाँव का दिन-प्रति-दिन का प्रबन्ध करने के लिए एक कार्यकारिणी सभा का चुनाव करते हैं। यह कार्यकारिणी ग्राम पंचायत कहलाती है। ग्राम पंचायतों के पंचों की संख्या गाँव की जनसंख्या के आधार पर रक्खी गई है। यह संख्या गाँव सभा के सभापति तथा उपसभापति को छोड़कर ३० और ५१ के बीच रक्खी गई है। सभापति तथा उप-सभापति का चुनाव सीधा जनता द्वारा किया जाता है, पंचायत के सदस्यों द्वारा नहीं। सदस्यों के पद की अवधि ३ वर्ष निश्चित की गई है, परन्तु गाँव सभा के एक तिहाई सदस्य प्रति वर्ष रिटायर हो जाएँगे और उनके स्थान पर नये चुनाव किये जाएँगे। चुनावों में इस बात का प्रबन्ध किया गया है कि अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधियों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से हो। परन्तु हरिजनों के लिए यह नियम रक्खा गया है कि ग्राम पंचायतों के लिए जो प्रथम निर्वाचन होगा उसमें तो उनके सदस्य उनकी गाँव में संख्या के हिसाब से चुने जायेंगे परन्तु बाद में, उनके प्रतिनिधियों की संख्या प्रांतीय धारा सभा द्वारा निश्चित की जायगी। चुनाव प्रणाली संयुक्त रक्खी गई है अर्थात् हिंदू, मुसलमान, हरिजन, सिख, ईसाई सब मिल कर एक दूसरे को राय देते हैं। चुनावों में अल्पसंख्यक जातियों के लिए सीटें इसलिए सुरक्षित रक्खी गई हैं जिससे ग्राम के सभी वर्गों का पंचायत को विश्वास प्राप्त हो सके। सुरक्षित स्थान रखने पर भी पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त कर दिया गया है। इससे गाँव के सभी व्यक्ति एक दूसरे के साथ मेल जोल के साथ रह सकेंगे।

पंचायतों के कार्य—ग्राम पंचायतों के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं—सड़कें, पुल व पुलियाँ बनाना; चिकित्सा तथा सफाई का प्रबन्ध करना; अस्पताल व औषधालय, पाठशालाएँ, प्रायमरी स्कूल, पुस्तकालय तथा वाचनालय खोलना; उद्योग धंधों तथा कृषि की उन्नति का प्रबन्ध करना; मेला, हाट व बाजार का लगवाना; पशुओं की चिकित्सा व उन्नति, स्वास्थ्य की उन्नति के लिए अखाड़े व खेल-कूद का प्रबन्ध करना; जल की व्यवस्था करना, खाद इकट्ठा करने के लिए स्थान नियत करना; रास्तों के दोनों ओर पेड़ लगवाना, मवेशियों की नस्ल सुधारना; भूमि को समतल करना; स्वयंसेवक दल बनाना; रेडियो का प्रबन्ध करना; सब दलों में प्रेम भाव बढ़ाना तथा और इसी प्रकार का काम करना; जिनसे गाँव की जनता की भौतिक और नैतिक उन्नति हो सके।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ग्राम पंचायतों को वह सभी काम सौंपे गये हैं जो हमारे ग्रामीण जीवन को सुन्दर तथा समुन्नत बनाने के लिए आवश्यक हैं। ग्राम पंचायतें कृषि, व्यापार तथा उद्योग धंधों की उन्नति के लिए भी समुचित कार्य कर सकेंगी। वह सरकार के अन्य विभागों के कर्मचारियों की आलोचना तथा उनके विरुद्ध रिपोर्ट तथा लिखा-पढ़ी भी कर सकेंगी।

ग्राम सभा की बैठकें—ऐक्ट में कहा गया है कि ग्राम सभा की वर्ष में कम से कम दो बैठकें हुआ करेंगी—एक खरीफ कटने पर, दूसरी रबी के बाद। खरीफ की मीटिंग में बजट अर्थात् आगामी वर्ष की आमदनी तथा खर्च के आँकड़े पेश किये जायँगे। इस बजट को पास करने तथा उस पर बहस करने का अधिकार ग्राम सभा के सभी सदस्यों अर्थात् गाँव के प्रत्येक बालिग स्त्री और पुरुष को होगा। रबी की मीटिंग में पिछले साल के हिसाब पर विचार किया जायगा। इस मीटिंग में सदस्य यह पूछ सकेंगे कि रुपये का खर्च ठीक प्रकार से किया गया है अथवा नहीं, और क्या उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार गाँव सभा ने पहली मीटिंग में उसकी स्वीकृति दी थी। दोनों सभाओं में गाँवों के लोग अपनी ओर से प्रस्ताव पेश कर सकेंगे जिनमें वह गाँव की दशा सुधारने के लिए पंचों के सम्मुख अपनी योजना रख सकेंगे। गाँव सभा को यह अधिकार होगा कि वह दो तिहाई वोटों से सभापति को उनके पद से अलग कर दे। हर ग्राम पंचायत का एक सेक्रेटरी तथा और आवश्यक कर्मचारी होंगे जिनकी नियुक्ति पंचायत करेगी।

आमदनी के स्रोत—जो काम ग्राम सभाओं के सुपुर्द किये गये हैं उनको पूरा करने के लिए प्रत्येक गाँव सभा को कुछ टैक्स लगाने या कर आदि वसूल करने के अधिकार दिये गये हैं। ग्राम पंचायत किसानों के लगान पर एक आना फी रुपया और जमींदारों की मालगुजारी पर ६ पाई प्रति रुपया कर वसूल कर सकेगी। इसके अतिरिक्त उसे बाजारों तथा मेलों, व्यापार, कारोबार और पेशों तथा ऐसी इमारतों के स्वामियों पर भी टैक्स लगाने का अधिकार होगा जो दूसरे और टैक्स न देते हों। पंचायतों को प्रान्तीय सरकार तथा जिला बोर्डों से भी सहायता मिलेगी। इसके अतिरिक्त उनकी आमदनी का एक और बड़ा स्रोत न्याय पंचायतों द्वारा किये हुए जुर्माने होंगे। पंचायतों का कुछ नियन्त्रण के साथ ऋण लेने के भी अधिकार होंगे।

आदर्श पंचायतें

आरम्भ के दिनों में ग्राम सभाओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रांत की प्रत्येक तहसील में एक आदर्श ग्राम सभा बनाई गई है जिसका कार्य एक ऐसी कमेटी द्वारा किया जाता है जिसके सदस्य डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, जिला कांग्रेस तथा विकास बोर्ड के प्रधान, जिले का इन्स्पेक्टर आफ ऐजूकेशन, प्रांतीय रक्षा दल का कमाण्डर, हेल्थ आफिसर, सिंचाई विभाग, व सहकारी विभाग का अधिकारी, जिले का इंजीनियर तथा जिले के सूचना विभाग का सचिव होते हैं। इस सभा के मंत्री पद पर डिस्ट्रिक्ट पंचायत अफसर काम करता है। ऐसी आदर्श पंचायतों की संख्या २०७ है।

यह सभा इस प्रकार कार्य करती है कि तहसील की दूसरी सभी ग्राम सभाएँ उससे शिक्षा ग्रहण कर सकें। विशेष रूप से यह सभा गाँव में पंचायत घर, छोटे उद्योग-धंधे, अस्पताल, खाद बनाने के केन्द्र, शिक्षा का प्रबन्ध तथा गाँव की सफाई इत्यादि के लिए

आदर्श व्यवस्था करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार के कार्य से दूषित समाएँ नसीहत ले सकें, यही इन आदर्श पंचायतों का मुख्य उद्देश्य है।

पंचायती राज्य को सफल बनाने के लिए पंचों की शिक्षा तथा अधिकारियों की विशेष ट्रेनिंग का भी प्रबन्ध किया गया है। इस योजना को सफल बनाने के लिए ५०० पंचायत इंस्पेक्टरों की नियुक्ति भी की गई और लखनऊ में उन सब को अच्छी प्रकार ट्रेनिंग दी गई। प्रत्येक पञ्चायती अदालत के क्षेत्र के लिए ८००० वैतनिक सेक्रेटरियों की नियुक्ति का प्रबन्ध भी किया गया। यह सेक्रेटरी अदालती पञ्चायतों का रिकार्ड रखते हैं तथा ३४ ग्राम सभाओं के काम की देख भाल करते हैं। पञ्चायत के सभी कर्मचारियों के काम की देख भाल के लिए जिले में एक डिप्टी कलक्टर को जिला पञ्चायती अफसर नियुक्त किया गया।

न्याय पंचायतें

प्रान्त भर में कुछ ग्राम सभाओं को मिलाकर पंचायती अदालतें बनाई गई हैं। प्रायः तीन या चार ग्राम सभाओं के पीछे एक पंचायती अदालत है। इस पंचायती अदालत के चुनाव का तरीका यह है कि प्रत्येक गाँव सभा नियत योग्यता वाले ऐसे पाँच प्रौढ़ पञ्च चुनती है जो स्थायी रूप से उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर रहने वाले हैं। इस प्रकार एक अदालत क्षेत्र के अन्तर्गत सब ग्राम सभाएँ अलग अलग अपने पंचों का चुनाव करती हैं। सारे गाँवों को मिलाकर पंचों के सम्मिलित चुनाव की व्यवस्था इसलिए नहीं की गई है जिससे बड़े गाँव छोटे गाँव के ऊपर न छा जायँ और छोटे गाँवों के लोगों को अदालतों में प्रतिनिधित्व न मिले। अदालत के इस प्रकार चुने हुए सभी पञ्च जिनकी संख्या १५-२० के बीच होती है, एक सरपञ्च चुनते हैं। सरपञ्च एक ऐसा व्यक्ति होता है जो पढ़ने लिखने की योग्यता रखता हो। प्रत्येक पञ्च की कार्य-अवधि ३ वर्ष होती है। पञ्च अपने पद से त्याग पत्र दे सकता है।

पंचायती अदालत के काम का तरीका—सरपञ्च प्रत्येक मुकदमे, नालिश या कार्यवाही के लिए पञ्च मंडल में से पाँच पंचों का एक बेंच नियुक्त करता है। इनमें कम से कम एक पञ्च ऐसा होता है जो लिखने पढ़ने की योग्यता रखता हो। बेंच के इन पाँच पंचों में एक पञ्च उन दोनों ग्राम सभाओं के क्षेत्र से लिया जाता है, जिनमें मुद्दई मुद्दालेह दोनों फरीक रहते हों। कोई भी पञ्च या सरपञ्च ऐसे मुकदमे में भाग नहीं ले सकता जिसमें वह या उसका निकट सम्बन्धी, नौकर या मालिक हो।

पंचायती अदालतों के अधिकार—न्याय पंचायतों के अधिकार पहले की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ा दिये गये हैं। पहले उनको दाखिल खारिज व जमीन सम्बन्धी अधिकार नहीं थे, अब उन्हें यह अधिकार दे दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त उन्हें बहुत से फौजदारी मुकदमों की सुनवाई का अधिकार भी दे दिया गया है। इन मुकदमों में ५०

रुपया तक की चोरी या गबन या मामूली मारपीट या गाँव की सार्वजनिक इमारतों, जलाशय, तालाब, रास्ते इत्यादि को हानि पहुँचाने के अपराध भी शामिल हैं। न्याय पचायतों को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं दिया गया है, पर वे १०० रुपया तक जुर्माने का दंड दे सकती हैं। पुराने अपराधियों के मुकदमे की सुनवाई करने का भी इन अदालतों को अधिकार नहीं दिया गया है। यह अदालत ऐसे अभियुक्तों को छोड़ सकेंगी जिन्होंने प्रथम बार जुर्म किया हो। दीवानी मामलों में १०० रुपये तक की मालियत के मुकदमों का फैसला करने का पचायत को अधिकार दिया गया है।

न्याय पचायत के निर्णय पाँच पञ्चों की सम्मति से होते हैं। यदि वह सब सहमत न हों तो निर्णय बहुमत से होता है। इन अदालतों के निर्णय आखीरी होते हैं अर्थात् उनकी अपील नहीं होती। परन्तु मुंसिफ और सबडिविजनल आफिसर को यह अधिकार दिया गया है कि वह किन्हीं विशेष दशाओं में पचायतों के फैसलों की निगरानी कर सकें। पचायतों के सम्मुख वकील पेश नहीं हो सकते। इस प्रकार की रोक इसलिए लगाई गई है जिससे पचायती न्याय वकीलों की चालबाजियों के कारण दूषित न हो।

पचायत राज्य ऐक्ट के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में चुनाव

हमारे प्रान्त में कुल गाँवों की सख्या १,१५,२१५ और जनसंख्या ६३२,००,००० है। इन गाँवों के लिए ३४,७५५ गाँव सभाएँ बनाई गई हैं। गाँव सभाओं के सब सदस्यों की संख्या वयस्क स्त्री और पुरुषों को मिला कर २,७०,२०,७६० है। इनमें चुने हुए पञ्चों की सख्या १३,५०,००० से ऊपर है। ३५,००० गाँव सभाओं के लिए ८,२२५ पञ्चायती अदालतों का आयोजन किया गया है। इन अदालतों में पचों की संख्या लगभग १,२५,००० है। दोनों ग्राम सभाओं तथा पञ्चायती अदालतों में मिलाकर पचों की सख्या लगभग १५,००,००० है।

यू० पी० के ४६ जिलों में चुनाव फरवरी और मार्च सन् १९४९ में पूरे हो गये थे, परन्तु पहाड़ी इलाकों में चुनाव जून से पहले समाप्त न हो सके। चुनाव अत्यन्त ही शांतिपूर्वक समाप्त हुए और जैसा कि बहुत लोगों को डर था कि इन चुनावों म बड़े उपद्रव होंगे, गाँवों के अन्दर दलबन्दियाँ हो जायँगी, ऊँच नीच और छूत अछूत का प्रश्न उठाया जायगा, इत्यादि; ऐसा कुछ स्थानों को छोड़कर, शेष जगह देखने में नहीं आया। ३४,३१५ पञ्चायतों में से २१,८७८ पञ्चायतों का चुनाव सर्व सम्मति से हुआ, शेष स्थानों पर ३३ ग्रामों को छोड़ कर बाकी सब जगह चुनाव शांतिपूर्वक समाप्त हो गये। इन चुनावों में हरिजन और अल्पसख्यक जातियों के व्यक्ति भी समुचित सख्या में चुने गये। कुल मिलाकर, २,६०,८०० हरिजन तथा १,३७,३६७ मुसलमान ग्राम तथा अदालती पञ्चायतों के पञ्च चुने गये। बहुत से स्थानों पर हरिजन और मुसलमानों

को सरपञ्च भी चुना गया। कितने ही स्थानों में हरिजनों ने सवर्ण हिंदुओं को करारी हार दी और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों ने भी उनके पक्ष में वोट डाले। इस प्रकार इन चुनावों में अल्पसंख्यक और हरिजन जातियों को प्रधानता देकर हमारी जनता ने अपने विशाल हृदय का परिचय दिया।

पञ्चायतों की सफलता

प्रांत की सभी पञ्चायतों ने १५ अगस्त सन् १९४९ से कार्यारम्भ कर दिया। यह पञ्चायती राज कहाँ तक सफल होता है, अभी कहना कठिन है। परन्तु बहुत सी पञ्चायतों ने निस्सन्देह अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया है। देहरादून में एक पञ्चायत ने ४ मील लम्बी नहर बनाई जिससे २०१० एकड़ भूमि को पानी मिलता है। नैनीताल जिले में बहुत सी पञ्चायतों ने सड़क तथा पञ्चायतघर बनाये। आजमगढ़ जिले में, इसके अतिरिक्त पञ्चायतों ने गांधी चबूतरे, कुँए, सार्वजनिक शौचालय, खाद के गड्ढे, अस्पताल, नहर, बाँध, पुस्तकालय इत्यादि बनाये हैं। बहुत सी पञ्चायतों ने शारीरिक विकास के लिए अखाड़ों तथा खेल के मैदानों इत्यादि की भी व्यवस्था की है।

पञ्चायतों की कठिनाइयाँ

ग्राम पञ्चायतों की सबसे बड़ी समस्या अर्थ की समस्या है। हमारी ग्राम पञ्चायतों के आर्थिक साधन बहुत कम हैं। साधारण सभाओं की आय ५०० या ६०० रुपये वार्षिक से अधिक नहीं है। विदित है कि इतनी कम रकम से कोई भी पञ्चायत अपना काम सुचारु रूप से नहीं चला सकती। इसलिए हमारी सरकार को चाहिये कि वह उनके आर्थिक साधन बढ़ाने की ओर विशेष ध्यान दे। साथ ही गाँवों में शिक्षा प्रचार तथा दलबन्दी को तोड़ने के लिए विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिए।

भारत में स्थानीय स्वशासन की सफलता

इस अध्याय के आरम्भ में ही हमने उन उद्देश्यों का उल्लेख किया है, जिनको लेकर भारतवर्ष में स्वायत्त शासन संस्थाओं का संगठन किया गया था। हमें देखना है कि यह उद्देश्य कहाँ तक पूर्ण हुए हैं। स्थानीय संस्थाओं का प्रथम उद्देश्य केन्द्रीय शासन के कार्य-भार को कम करना था। हम कह सकते हैं कि यह उद्देश्य समुचित रूप में पूरा हुआ है, कारण कि सरकार के जिला अधिकारी अब उस भारी अरुचिकर तथा अप्रिय काम से मुक्त हो गये हैं, जो उन्हें विभिन्न क्षेत्रों की स्थानीय आवश्यकताओं को देखने तथा उन्हें पूरा करने के लिए करना पड़ता था। परन्तु स्थानीय संस्थाओं का सबसे महत्त्वपूर्ण उद्देश्य अर्थात् व्यक्तियों में नागरिक भावनाओं की जाग्रति उत्पन्न करना, पूरा नहीं हो सका है।

इसके विपरीत इन संस्थाओं ने हमारे देश के छोटे छोटे गाँव व नगरों में, स्वार्थ-सिद्धि की भावना से पूर्ण, दलबन्दी की प्रथा को जन्म दिया है। स्थानीय संस्थाओं के

चुनावों के समय देश में क्षुद्र जातीय, साम्प्रदायिक व पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर राय माँगी जाती है। योग्य व्यक्तियों को राय नहीं दी जाती, चुनावों में पारस्परिक वैमनस्य से काम लिया जाता है। एक दूसरे उम्मीदवार के विरुद्ध आरोप लगाये जाते हैं तथा बिना किसी सिद्धान्त के गाँवों व नगरों में विरोधी दल खड़े हो जाते हैं। चुनावों के पश्चात् भी यह दलबन्दियाँ कायम रहती हैं, और इससे नागरिक जीवन एक हर्ष और उल्लास का केन्द्र बनाने के स्थान पर कलह और विवाद का क्षेत्र बन जाता है। यही कारण है, कि स्थानीय संस्थायें हमारे देश में नागरिक जागृति उत्पन्न करने में सफल न हो सकी हैं। उन्होंने हमारे देश की जनता में उन भावनाओं को जन्म नहीं दिया है जिनके द्वारा ही किसी देश में प्रजातन्त्र शासन को सफलता प्राप्त होती है।

असफलता के कारण तथा उन्हें दूर करने के उपाय

भारत में स्वायत्त शासन संस्थाओं की असफलता के अनेक कारण हैं। इनमें सबसे बड़ा यह है कि हमारे देश में इन संस्थाओं की असफलता के लिए आवश्यक वातावरण वर्तमान नहीं है। स्थानीय स्वराज्य की संस्थाएँ केवल उस दशा में सफल हो सकती हैं जब कि उन मनुष्यों में जिन पर वह शासन करती हैं, निम्नलिखित गुण विद्यमान हों।

(१) प्रथम यह कि जनता में नैतिक सदाचार, ईमानदारी तथा सहयोग का उच्च आदर्श और सार्वजनिक कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना विद्यमान हो। यदि किसी देश की जनता सामाजिक हित के कार्यों के प्रति उदासीन रहती है या मुग्न, स्वार्थी तथा अभिमानी है तो स्वायत्त शासन संस्थाएं सफल नहीं हो सकतीं। इन गुणों का निर्माण करने के लिए जनता का शिक्षित होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए सरकार को चाहिये कि वह स्थानीय संस्थाओं की सफलता के लिए शिक्षा पर अत्यन्त जोर दे।

(२) दूसरे, स्थानीय संस्थाएँ उस समय तक सफल नहीं हो सकतीं जब तक नगरों की जनता अपने प्रतिनिधियों के कार्यों के प्रति पूर्ण रूप से जागरूक न हो। जनता को चाहिये कि वह म्युनिसिपल संस्थाओं के कार्य की सदा रचनात्मक दृष्टि से आलोचना करती रहे जिससे उनके प्रतिनिधि अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए नहीं वरन् जनता की भलाई के लिए काम करें।

इसी उद्देश्य से प्रत्येक नगर में मतदाताओं की सभाएँ तथा नागरिक संस्थाएँ बननी चाहिये जिससे वह स्वतन्त्र रूप से सार्वजनिक प्रश्नों पर विचार कर सकें और म्युनिसिपल सदस्यों को जनता के मत का बोध करा सकें।

(३) तीसरे, चुनाव के समय निर्वाचकों को चाहिये कि वह अपने प्रतिनिधियों को मत देते समय उनकी योग्यता का ध्यान रक्खें और पारिवारिक बंधनों से प्रभावित न हों।

(४) प्रांतीय सरकार को भी चाहिये कि वह स्थानीय संस्थाओं के काम में अधिक

हस्तक्षेप न करें। हस्तक्षेप केवल उसी दशा में किया जाना चाहिये जब कि स्थानीय संस्था का प्रबन्ध इतना दूषित हो जाय कि उसके सुधारने का और उपाय ही शेष न हो।

(५) स्थानीय संस्थाओं के पास आमदनी के भी समुचित साधन होने चाहिये जिससे वह नागरिकों की सुविधा के लिए अधिक से अधिक काम कर सकें। प्रायः भारतीय स्वायत्त शासन संस्थाएँ रुपये की कमी के कारण जनता की अधिक सेवा नहीं कर सकतीं।

यदि उपरोक्त सभी सुझावों को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया जाय तो कोई कारण नहीं कि भारत में स्वायत्त शासन संस्थाएँ वही सफलता प्राप्त न कर सकें जो उन्होंने दूसरे प्रगतिशील देशों में की है।

योग्यता प्रश्न

१. स्थानीय स्वशासन आप से क्या समझते हैं? अपने प्रांत में नगर पालिकाओं का संगठन तथा उनके कर्तव्यों का वर्णन कीजिये। (यू० पी० १९४२)

२. अपने प्रान्त की स्वायत्त शासन संस्थाओं के नाम बतलाइये और किसी एक के कार्यों की विवेचना कीजिये। (यू० पी०, १९४०)

३. जिला मण्डली या नगर-पालिका की कार्य-शैली का वर्णन कीजिये। इनका नागरिक जीवन में क्या स्थान है? (यू० पी, १९३८)

४. नगर पालिकाओं के मुख्य कार्य क्या हैं? वह कहाँ तक पूरे किये जाते हैं? इनके आर्थिक अधिकारों का वर्णन करो। (यू० पी०, १९३५)

५. भारतीय स्वायत्त शासन संस्थाओं के कार्य में कौन से दोष हैं? वह किस प्रकार दूर किये जा सकते हैं? (यू० पी, १९४६)

६. नगर-पालिकाओं के आय और व्यय के क्या मद होते हैं? उनकी आय कैसे बढ़ाई जा सकती है? (यू० पी,० १९२९, ३१, ३६)

७. जिला मण्डली का संगठन, उसके कार्य तथा आय के साधनों का विवरण दीजिये। (यू० पी०, १९३७, ४६)

८. ग्राम पंचायतों का संगठन कैसे किया गया है? उनके अधिकारों तथा कर्तव्यों का वर्णन कीजिये। (यू० पी०, १९५१)

९. भारत में स्वायत्त शासन संस्थाओं की असफलता के कारणों पर प्रकाश डालिये।

१०. हाल ही में नगर-पालिका तथा जिला मण्डलियों के विधान में क्या महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये गये हैं?

११. उत्तर प्रदेश में ग्राम पञ्चायतों के कार्यकारिणी पर छोटा सा निबंध लिखिये। (यू० पी० १९५२)

अध्याय १८

भारत में शिक्षा

शिक्षा का वास्तविक अर्थ

शिक्षा का अर्थ है, मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण विकास व उसकी सर्वोपरि उन्नति। वास्तविक शिक्षा वही है जो मनुष्य की सुप्त शक्तियों का विकास कर उसको समाज का एक उपयोगी व्यक्ति बनाने में सफल हो सके तथा उसे अपने सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, नागरिक, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय जीवन में सक्रिय भाग लेने के योग्य बनाये। शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुञ्जी है। यही मनुष्य में उन भावनाओं का सञ्चार करती है जिनके कारण ही एक सभ्य मनुष्य और पशु में अन्तर किया जाता है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य अपनी कुत्सित भावनाओं का अनुचित मार्ग पर जाने से रोक कर एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने में सफल होता है।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में नागरिकों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है उसके अन्तर्गत मनुष्यों के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास नहीं होता। हमारी शिक्षा प्रणाली चरित्र निर्माण व जीवन के सन्तुलित विकास की ओर ध्यान नहीं देती। हमारी शिक्षा संस्थाएँ मस्तिष्क के विकास का तो विचार अवश्य रखती हैं परन्तु वह विद्यार्थियों के हृदय व शरीर के शिक्षण की ओर समुचित ध्यान नहीं देतीं। यही कारण है कि बहुत कम शिक्षा संस्थाएँ हमारे देश में ऐसी हैं जहाँ मनुष्य को श्रम का आदर करना सिखाया जाय, जहाँ मनुष्य के हृदय को निर्मल व स्वच्छ विचारों से परिपूर्ण करने के लिए उसे सब धर्मों की समानता एवं एकरूपता का ज्ञान कराया जाय तथा जहाँ उसकी कर्मेन्द्रियों के शिक्षण के लिए हर प्रकार की ललित वस्तुओं जैसे,—चित्रकारी, संगीत, नृत्य, फोटोग्राफी, तथा भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योग धन्धों की शिक्षा प्रदान की जाय। आदर्श शिक्षा वह है जिसे प्राप्त कर मनुष्य-जीवन की सर्वोन्मुखी उन्नति हो सके तथा जो व्यक्ति के अन्दर श्रम का आदर, मानव व्यक्तित्व की महत्ता एवं आर्थिक संघर्ष की क्षमता प्रदान कर सके।

प्राचीन भारत में शिक्षा

प्राचीन भारत अपनी शिक्षा व सांस्कृतिक उन्नति के लिए संसार भर के देशों में अग्रगण्य था। हमारे देश के विश्वविद्यालय संसार के बड़े-बड़े पण्डितों व विद्वानों के ज्ञानोपार्जन के केन्द्र थे। काशी, नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, मिथिला, नवद्वीप,

नदिया व श्रीनगर इत्यादि स्थानों में हमारे देश की अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाएँ स्थापित थीं। इन विश्वविद्यालयों में संसार के कोने-कोने से सहस्रों विद्यार्थी आकर, मनमोहक प्राकृतिक सौन्दर्य के उपवन में, नगरों के कोलाहल व संघर्ष से दूर, अत्यन्त सुन्दर व सौम्य वातावरण के बीच शिक्षा ग्रहण करते थे।

प्राचीन भारत में शिक्षा का आदर्श मस्तिष्क व हृदय का विकास था। उस शिक्षा प्रणाली में औद्योगिक शिक्षा को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता था। शिक्षा के द्वारा पैसा कमाना या किसी व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिए उसे एक साधन बनाना, एक हेय आदर्श समझा जाता था। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य था मनुष्य जीवन की सर्वांगीण उन्नति। इस उन्नति के लिए आर्थिक क्षेत्र में सफलता कोई आवश्यक वस्तु नहीं समझी जाती थी। समाज में उन व्यक्तियों का अधिक मान था जो अत्यन्त ज्ञानवान, धर्मनिष्ठ, आचारवान व अपने धर्मशास्त्रों के पंडित थे। ऐसे व्यक्तियों का सर्वत्र सम्मान होता था। राजाओं के दरबार में भी उन्हें विशेष आदर का स्थान दिया जाता था।

वर्तमान युग में, समाज में आदर व सम्मान, किसी व्यक्ति के पांडित्य व ज्ञान पर निर्भर नहीं रहता, वह उसकी आर्थिक शक्ति के आधार पर निश्चित किया जाता है। आज का संसार धनिकों का संसार है। इसलिए समाज में केवल वही लोग बड़े समझे जाते हैं तथा उनका सब स्थानों पर आदर व सत्कार होता है जो बड़े-बड़े महलों में रहते हैं, मोटर गाड़ियों में सवारी करते हैं तथा जिनका घर धनधान्य से परिपूर्ण होता है। पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति धनिकों द्वारा अपनी न बुझने वाली धन-पिपासा को शांत करने के लिए केवल एक साधन (Tool) के रूप में काम में लाये जाते हैं। उनका कहीं सम्मान नहीं होता। उनका मूल्य इस बात से आँका जाता है कि उन्हें कितने रुपये मासिक वेतन मिलता है अथवा उनमें रुपया कमाने की कितनी शक्ति है। इसलिए स्वभावतः आजकल के युग में शिक्षा के आर्थिक पहलू पर विशेष जोर दिया जाता है।

परन्तु प्राचीन भारत में ये सब बातें न थीं। उस काल में समाज का सबसे महान् व प्रतिष्ठित व्यक्ति वह समझा जाता था जो धन व माया के जाल से दूर रहकर सरस्वती देवी का पुजारी था, जिसकी विद्वत्ता व चरित्र अद्वितीय था, जो रुपये-पैसे से प्यार न करता था तथा जो एक अत्यन्त सच्चा, अनुशासित, सादा एवं निर्मल जीवन व्यतीत करने की क्षमता रखता था। यही कारण था कि प्राचीन शिक्षा के आर्थिक व औद्योगिक दृष्टिकोण को अधिक महत्त्व प्रदान नहीं किया जाता था।

प्राचीन भारत के अध्यापक—हमारी वैदिक शिक्षा प्रणाली में इसलिए शिक्षा प्रदान करने का कार्य भी उन्हीं लोगों के हाथ में सौंपा जाता था जो अपने जीवन का ध्येय पैसा कमाना न बनाकर, विद्या-दान ही सबसे बड़ा धर्म समझते थे। उनके सम्मुख शिक्षा

प्रदान करना किसी और उद्देश्य की पूर्ति का साधन नहीं वरन् स्वयं एक आदर्श था। वह अपना सारा जीवन इसी कार्य के लिए अर्पण कर देते थे। पाठशालाओं में रहकर एक आश्रम में कुछ विद्यार्थियों को एकत्रित कर लेना और फिर उनको निःशुल्क शिक्षा प्रदान करना तथा उनके दैनिक जीवन के प्रत्येक पहलू पर स्वयं दृष्टि रखना, उस काल की शिक्षा प्रणाली का सबसे प्रमुख अङ्ग था। अधिकतर विद्यार्थी अपने घरों पर रहकर नहीं वरन् आश्रमों में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। इन आश्रमों में धनी और निर्धन, ऊँच और नीच, छोटे और बड़े विद्यार्थियों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं बरता जाता था। सबको एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी तथा उन्हें एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करना पड़ता था। यही कारण था कि प्राचीन भारत में कृष्ण और सुदामा एक ही पाठशाला में पढ़े और एक ही गुरु के चरणों में बैठ कर उन्होंने शिक्षा ग्रहण की। आश्रमों का व्यय नागरिकों व राज्य की दानशीलता के आधार पर चलता था। दिन प्रति-दिन के व्यय के लिए पाठशाला के शिष्य आसपास के गाँवों से भिक्षा माँग लेते थे। यह भिक्षा धनी और निर्धन, राजपुत्र और दासपुत्र सभी को माँगनी पड़ती थी। इस प्रकार विद्यालय में पढ़ने वाले छात्रों के जीवन से ऊँच नीच और छोटे बड़े का भेद-भाव नष्ट होकर उनमें भ्रातृभाव व समानता की भावना जन्म लेती थी।

शिक्षा की समाप्ति पर प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सामर्थ्य के अनुसार गुरु को भेंट देता था। यह उत्सव गुरु दक्षिणा उत्सव कहलाता था। इस अवसर पर गुरु अपने शिष्यों से रुपये-पैसे की भेंट नहीं माँगते थे। वह अपनी योग्यतानुसार उन्हें जन सेवा व लोक कल्याण के लिए कार्य करने की दीक्षा देते थे, और उसी कार्य की सफलता में वह अपनी सबसे बड़ी गुरु दक्षिणा मानते थे। महर्षि कणाद के आश्रम का एक स्थान पर वृतांत मिलता है। उनके तीन शिष्य जिस समय अपनी शिक्षा पूर्ण होने के पश्चात् अपने गुरु से गुरु दक्षिणा माँगने का आग्रह करने लगे तो उन्होंने अपने तीनों शिष्यों से अलग-अलग इस प्रकार गुरु दक्षिणा माँगी। उन्होंने एक शिष्य से कहा, "वत्स, तुमने वेद-वेदांतों की शिक्षा प्राप्त की है। जैसे मैंने निःस्वार्थ भाव से प्रेम के साथ तुम्हें पुत्रवत् शिक्षा दी है, तुम भी उसी प्रकार जाकर संसार के लोगों का कल्याण करो, उन्हें ज्ञान दो, उन्हें सत्य पथ पर चलाओ।"

दूसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "मेरी दक्षिणा यही है कि अपने ज्ञान के आधार पर तुम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व सन्यास आश्रमों के नियम बनाओ, जिनके द्वारा समाज की आदर्श व्यवस्था चल सके।"

तीसरे शिष्य से उन्होंने कहा, "तुम वैदिक यज्ञों का प्रचार करो।"

इस प्रकार प्राचीन भारत के गुरु त्याग, बलिदान और निःस्वार्थ सेवा का आदर्श

जनता के सम्मुख रखते थे। इसी काल में भारत में अनेक धर्म ग्रंथ लिखे गये। वैशेषिक साँख्य, न्याय, पूर्व मीमांसा, योग व दूसरे दर्शनों का इसी प्रकार निर्माण हुआ।

शिक्षा की श्रेणियाँ—प्राचीन भारत में आश्रमों के आधार पर विद्यार्थियों की शिक्षा २५ वर्ष की आयु तक होती थी। कुछ विद्यार्थी इसके पश्चात् भी २५ वर्ष की आयु तक विद्याध्ययन करते थे। विद्या का आरम्भ ५ वर्ष की आयु से होता था। इस अवस्था की प्राप्ति पर शिशु का अक्षरारम्भ संस्कार किया जाता था। इस संस्कार में गुरु बालक की जिह्वा पर सोने या चन्दन की लेखनी से ॐ मन्त्र लिखता था। आठ वर्ष की अवस्था में बालक का उपनयन संस्कार होता था। उपनयन का अर्थ है 'पास आना'। इस अवस्था की प्राप्ति के पश्चात् बालक इस बात का अधिकारी हो जाता था कि वह गुरु अथवा आचार्य के आश्रम में भर्ती होकर शिक्षा ग्रहण करे।

विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी वर्णों के विद्यार्थियों को प्राप्त था। शूद्र व चाण्डालों के बच्चों को गुरु के आश्रमों में उसी प्रकार भर्ती किया जाता था जैसे किसी राजपुत्र को। शूद्रों को वेदों की शिक्षा दी जाती थी। महीदास जिन्होंने ऐतरेय ब्राह्मण नामक ग्रंथ का निर्माण किया, जन्म से शूद्र थे।

शिक्षा का विभाजन तीन श्रेणियों में किया जाता था—प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा। उच्च शिक्षा के पश्चात् कुछ विद्यार्थी अनुसंधानात्मक अध्ययन करते थे और इसके लिए वह भारत के विभिन्न विश्वविद्यालयों में जाकर वहाँ के अध्यापकों तथा विद्वान् व्यक्तियों के साथ शास्त्रार्थ करते थे। इन शास्त्रार्थों के द्वारा नये-नये सिद्धांतों का प्रतिपादन होता था तथा अनेक नये ग्रंथ लिखे जाते थे।

प्रारम्भिक व माध्यमिक श्रेणियों में विद्यार्थियों को संस्कृत, व्याकरण, धर्मशास्त्र, आचारशास्त्र, उपनिषद्, साहित्य, इतिहास, गणित व भूगोल की शिक्षा दी जाती थी। इसके पश्चात् विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में प्रवेश करते थे। भिन्न भिन्न विश्वविद्यालयों में अलग अलग विषयों के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध था। उदाहरणार्थ तक्षशिला विद्यालय में आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, सैन्य शिक्षण व राजनीति की विशेष शिक्षा दी जाती थी। बनारस नृत्य, संगीत व शिल्प-कला का प्रधान केन्द्र था। नालन्दा शास्त्रों एवं नीति का विश्वविद्यालय था। इस अन्तिम विद्यालय में १५०० अध्यापक तथा ८५०० से अधिक छात्र थे। इनमें प्रतिदिन २०० से अधिक व्याख्यान दिये जाते थे।

इन विद्यालयों के अतिरिक्त नगरकोट, गान्धार पुष्कर, काश्मीर, जालन्धर, मथुरा, प्रयाग, अयोध्या, कौशाम्बी, कपिलवस्तु, सारनाथ आदि प्रदेशों में शिक्षा के केन्द्र थे। इन स्थानों में प्रति वर्ष सहस्रों छात्र बौद्ध तथा वैदिक धर्म की शिक्षा ग्रहण करते थे। उस समय भारत के विद्यालयों में सम्पूर्ण एशिया के विद्यार्थी पढ़ने आते थे और भारत के विद्वान् दूसरे देशों में शिक्षा देने जाते थे।

शिक्षा पद्धति—प्राचीन भारत की शिक्षा संस्थाओं में विद्यार्थियों के ऊपर बाहर का ज्ञान लादने का प्रयत्न नहीं किया जाता था। उन्हें सिखाया जाता था कि वह स्वयं अपने अन्दर विचारने व मनन करने की शक्ति किस प्रकार उत्पन्न कर सकते हैं। विचारों की स्वतन्त्रता उस शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा गुण था। विद्यार्थियों को शास्त्रों के गुण व दोष निकालने व उनकी विवेचना करने का पूर्ण अधिकार था। स्वयं आचार्य विद्यार्थियों के वाद विवाद में भाग लेते थे और किसी बात की सत्यता स्थिर होने पर अपने शास्त्रों में संशोधन कर लेते थे।

यही कारण था कि प्राचीन भारत में यदि एक ओर चारवाक जैसे विचारक हुए जिन्होंने शरीर के सुख के लिए प्रत्येक काम करना उचित ठहराया तो दूसरी ओर हमारे देश में शङ्कराचार्य जैसे ऋषि भी हुए जिन्होंने आत्मा की शांति को ही सबसे अधिक महत्ता दी और इसके लिए शरीर-सुख को अत्यन्त हेय समझा। शास्त्रार्थ करना तथा सत्य की खोज करना उस समय की शिक्षा का सबसे बड़ा आदर्श था। विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद जो विद्यार्थी ३५ वर्ष की आयु तक अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते थे उनके शिक्षण का ढङ्ग यही था कि वह देश के भिन्न भिन्न भागों में स्थित विश्वविद्यालयों व ऋषियों के आश्रमों में जाकर उनके आचार्यों से दर्शनों व धर्मशास्त्रों के सम्बन्ध में शास्त्रार्थ करते थे और इस प्रकार इन विवादों में अपनी योग्यता का परिचय देकर वह देश की सबसे उच्च शिक्षा की उपाधि से विभूषित किये जाते थे।

प्राचीन भारत के आश्रमों में शिक्षा देने का ढङ्ग अत्यन्त ही मनोरंजक था। प्रातः काल होते ही, नित्य कर्म से निवृत्त होने के पश्चात् विद्यार्थी अपने गुरु के सम्मुख उपस्थित होते थे। हवन, ईश्वर स्तुति व संध्या के पश्चात् वह अपना पिछला पाठ गुरु को सुनाते थे। गुरु प्रश्नों के द्वारा उनके ज्ञान की गहराई का पता लगाते थे। दोपहर में विद्यार्थी स्वयं अध्ययन करते थे और गुरु केवल उनकी कठिनाइयों को हल करने के लिए उनके पास आते थे। तीसरे पहर गुरु विद्यार्थियों को स्वयं शिक्षा देते थे तथा उन्हें धर्म ग्रंथों का ज्ञान कराते थे। साँझ ढले, सब विद्यार्थी अपने गुरु के साथ जङ्गलों की सैर करने जाते थे। वहाँ पर विद्यार्थियों को प्रकृति, विज्ञान, भूगोल, खगोल, ज्योतिष, आकाश, तारागण, वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र इत्यादि विद्याओं का ज्ञान कराया जाता था। इस अध्यापन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि विद्यार्थी अनुभव के द्वारा सब बातें बहुत आसानी से समझ जाते थे और खेल और मनोरंजन के साथ साथ उनके ज्ञान में समुचित वृद्धि हो जाती थी।

प्राचीन शिक्षा प्रणाली के गुण

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली आधुनिक शिक्षा-

प्रणाली से कहीं अच्छी थी। इसी शिक्षा-प्रणाली के गुणों का विचार रखते हुए हमारे यूनीवर्सिटी कमीशन ने जिसके अध्यक्ष डाक्टर सर राधाकृष्णन थे, यह सिफारिश की है कि भारत में ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किये जावें जिनमें प्राचीन आदर्शों के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था हो। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि हिंदुओं की शिक्षा पद्धति में निम्नलिखित गुण थे :—

(१) इस शिक्षा-पद्धति में मनुष्य के मस्तिष्क के शिक्षण पर ही जोर नहीं दिया जाता था वरन् उसके हृदय के शिक्षण को भी उतना ही आवश्यक समझा जाता था। यही कारण था कि शिक्षा का स्वरूप केवल मानसिक ही नहीं वरन् नैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक भी था।

(२) शिक्षा नगर के गन्दे तथा विलासी जीवन से परे ऐसे क्षेत्रों में दी जाती थी जहाँ विद्यार्थी प्रकृति की गोद में बैठकर अत्यन्त सुन्दर वातावरण में अपने ज्ञान की वृद्धि तथा अपने चरित्र का निर्माण कर सकते थे।

(३) शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी के मस्तिष्क को बाहरी ज्ञान से भर देना नहीं वरन् उसकी सुप्त शक्तियों एवं विचार-शक्ति का विकास था।

(४) इस प्रणाली के अन्तर्गत विद्यार्थी ऊँच-नीच, छोटे-बड़े और धनी-निर्धन का विचार छोड़कर एक दूसरे के साथ समानता एवं भाईचारे के भाव के आधार पर व्यवहार करते थे। वह आश्रम में रह कर अत्यन्त संयमी, सादा तथा सदाचारपूर्ण जीवन व्यतीत करते थे।

(५) सब विद्यार्थी एक दूसरे से सगे भाई के समान व्यवहार करते थे तथा एक दूसरे की सेवा-सुश्रूषा करने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

(६) गुरु किसी लोभवश शिक्षा का प्रचार नहीं करते थे। वह सारा जीवन ईश्वर की उपासना व विद्यादान में ही लगा देते थे। समाज में उनका बड़ा मान था। उनका त्यागमय तपस्वी जीवन सब विद्यार्थियों के लिए अनुकरणीय होता था।

(७) प्राचीन भारत में स्त्रियों व शूद्रों को भी शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था, परन्तु आगे चल कर, ब्राह्मणों के युग में उन्हें इस अधिकार से वंचित कर दिया गया।

मुस्लिम काल में शिक्षा

मुसल्मानों के काल में शिक्षा का स्वरूप मुख्यतः धार्मिक था। वैसे हिंदुओं के काल में भी धार्मिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता था; परन्तु इसके साथ-साथ उनके समय में दूसरी विद्याओं के अध्ययन का भी समुचित प्रबन्ध था। विचारों की स्वतन्त्रता हिंदुओं की शिक्षा प्रणाली का सबसे महान् गुण था। परन्तु मुसलमानों के काल में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी उसमें विचार स्वातन्त्र्य के लिए कहीं

भी स्थान नहीं था। उनके काल में शिक्षा का अर्थ कुरान मजीद की शिक्षा थी। यह शिक्षा बिना सोचे समझे सभी विद्यार्थियों को ग्रहण करनी पड़ती थी। कुरान की आयतों को रट कर याद कर लेना ही इस शिक्षा प्रणाली का मुख्य रूप था।

मुसलमानी शिक्षा मस्जिदों में दी जाती थी। उच्च शिक्षा के लिए दिल्ली, मुल्तान, बदायूँ, जौनपुर आदि स्थानों में मदरसे थे। इन मदरसों में धर्म, इतिहास, हदीस, राजनीति व यूनानी हिक्मत इत्यादि की पढ़ाई होती थी। मदरसों तथा मकतबों को सरकारी सहायता मिलती थी। हिंदुओं की शिक्षा पाठशालाएँ, टोल तथा विद्यापीठों में होती थीं। उन्हें किसी प्रकार की सरकारी सहायता नहीं मिलती थी। कुछ दानी व्यक्तियों की सहायता से ही उनका पूरा व्यय चलता था।

मुसलमानों के स्कूलों की शिक्षा में कई दोष थे। उनमें धर्म का प्रमुख स्थान था। संगीत तथा चित्र-कला आदि विद्याओं की अवहेलना की जाती थी, क्योंकि उन्हें इस्लाम धर्म के विरुद्ध समझा जाता था। दूसरे धर्मों का अध्ययन न होने से विद्यार्थियों में धार्मिक सङ्कीर्णता व असहिष्णुता आ जाती थी। इस पद्धति में रटाई को समझ से अधिक महत्त्व दिया जाता था और भारतीय भाषाओं की पढ़ाई नहीं होती थी।

ब्रिटिश काल में शिक्षा

भारत में शिक्षा का सबसे अधिक ह्रास उस समय हुआ जब मुगल सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् हमारे देश से केंद्रीय सत्ता का लोप हो गया और ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारत की राजनीति में भाग लेकर गृह युद्ध की ज्वाला को और भी अधिक भड़का दिया। उस समय कोई कुशल सरकारी व्यवस्था न होने के कारण, प्राय १०० वर्षों तक भारत में राज्य की ओर से जनता के शिक्षण में किसी प्रकार का भाग नहीं लिया गया और समस्त देश में अशिक्षा और अज्ञान का अंधकार फैल गया। ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रभुत्व स्थापित हो जाने के पश्चात् भी, १६वीं शताब्दी के आरम्भ तक भारत में शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष उन्नति सम्भव न हो सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि कंपनी के डाइरेक्टरों को भय था कि कहीं शिक्षा के प्रचार से भारतीयों में राजनैतिक चेतना का सञ्चार न हो जाय और उन्हें अपने साम्राज्य से उसी प्रकार हाथ न धोना पड़े जैसे अमरीका में हुआ था। अठारहवीं शताब्दी में इसलिए केवल इतना किया गया कि सन् १७६१ में कलकत्ते में एक फारसी मदरसा तथा काशी में एक संस्कृत पाठशाला खोल दी गई। इसके पश्चात् सन् १८३१ में प्रथम बार ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीयों के प्रति अपने कर्तव्य को समझ कर शिक्षा की वृद्धि के लिए सरकारी खजाने से एक लाख रुपया देना स्वीकार किया। तीस करोड़ व्यक्तियों के देश में, शिक्षा के कार्य के लिए एक लाख रुपये की रकम वैसे तो अत्यंत हास्यास्पद थी, परन्तु इस रकम की स्वीकृति का महत्त्व इसलिए था कि इस वर्ष के पश्चात् ब्रिटिश

सरकार की शिक्षा नीति में एक विशेष परिवर्तन हुआ और उसने अपना यह कर्तव्य समझा कि भारतीयों के शिक्षण में सहयोग देना उसका भी एक धर्म है।

भाषा का प्रश्न—शिक्षा के प्रचार के लिए हमारे देश में सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि समग्र भारत के लिए कोई ऐसी भाषा नहीं थी जिसके आधार पर सब देशवासियों को उच्च शिक्षा प्रदान की जा सके। प्राचीन भारत में संस्कृत भाषा उच्च शिक्षा का माध्यम थी। मुसलमानों के काल में इसका स्थान फारसी ने ले लिया था और वही हमारी न्यायालयों की भाषा बन गई थी। परन्तु इन दोनों भाषाओं में सबसे बड़ा दोष यह था कि १९वीं सदी में वह जनता की भाषा नहीं थी और उसके द्वारा शिक्षा प्रसार का कार्य नहीं किया जा सकता था। इसलिए विवाद यह उठ खड़ा हुआ कि भारत में उच्च शिक्षा संस्कृत और फारसी के माध्यम द्वारा दी जाय अथवा अँग्रेजी के द्वारा। इस समय के एक बहुत बड़े भारतीय नेता राजा राममोहन राय अँग्रेजी शिक्षा के पक्ष में थे। उनका विचार था कि अँग्रेजी के ज्ञान के द्वारा भारतवासी दूसरे प्रगतिशील देशों के साहित्य का अध्ययन एवं अंग्रेजी सरकार के नीचे उच्च सरकारी पद प्राप्त कर सकेंगे। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उन्होंने एक दूसरे अंग्रेज मित्र श्री डैविड हारे के साथ मिल कर सन् १८१६ में कलकत्ते में एक कालिज की स्थापना की। इसके पश्चात् बम्बई, मद्रास तथा बंगाल में दूसरे अंग्रेजी स्कूल खोले गये। इन स्कूल व कालिजों के छात्रों को तुरन्त ही अच्छी-अच्छी सरकारी नौकरियाँ मिल जाती थीं, इस कारण उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की कमी कभी न रहती थी।

लार्ड मैकाले का लेख—सन् १८३५ में भारत सरकार के न्याय सदस्य लार्ड मैकाले ने सरकार के सम्मुख एक योजना रक्खी जिसमें उन्होंने कहा कि भारत के सब स्कूल व कालिजों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी बना देना चाहिये। ऐसा उन्होंने इसलिए कहा जिससे हमारे देश में सदा के लिए ब्रिटिश सत्ता की जड़ें मजबूत हो जायें और जहाँ एक ओर सरकार को सस्ते क्लर्क और बाबू मिल जायें, वहाँ दूसरी ओर भारत में ऐसे प्रभावशाली व्यक्तियों की श्रेणी उत्पन्न हो जाय जो केवल जन्म-स्थान व अपने रंग के कारण तो भारतीय प्रतीत हों परन्तु और सभी बातों, जैसे बनाव-श्रृंगार, वेश, पहनावा, बोली, सभ्यता, धर्म, आचार विचार, खाना पीना इत्यादि में वह अंग्रेजों के समान ही आचरण करें। मैकाले का विचार था कि अँग्रेजी शिक्षा के द्वारा अनेक भारतवासी ईसाई बन जायेंगे और वह अपने धर्म और संस्कृति से घृणा करने लगेंगे। ऐसे व्यक्तियों से उन्हें आशा थी कि वह भारत में ब्रिटिश सरकार के सबसे बड़े मित्र व सहयोगी बन सकेंगे।

लार्ड मैकाले की यह नीति ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर ली गई और सन् १८४४ में उसने यह घोषणा कर दी कि सरकार के अधीन केवल उन्हीं लोगों को

नौकरी मिल सकेगी जो अँग्रेजी जानते होंगे। उसी वर्ष न्यायालयों की भाषा भी अँग्रेजी कर दी गई। इन दोनों बातों ने भारत में अँग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए विस्तृत क्षेत्र खोल दिये और सहस्रों विद्यार्थियों ने अंग्रेजी में शिक्षा प्राप्त करना आरम्भ कर दिया। सन् १८५५ तक भारत में अँग्रेजी स्कूलों की तादाद १५१ हो गई।

अँग्रेजी शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने समय-समय पर जो कमेटियाँ इत्यादि नियुक्त कीं तथा जिस प्रकार उनकी सिफारिशों के आधार पर कार्य किया उसका संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है :—

१. *१८५४ में वुड का शिक्षा सम्बन्धी पत्र*—सन् १८५३ में शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए भारत सरकार ने श्री वुड से एक योजना बनाने को कहा। यह योजना सन् १८५४ में सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की गई। इस योजना की, जिसके आधार पर आगे चल कर हमारे देश की शिक्षा संस्थाओं का संगठन किया गया, मुख्य मुख्य बातें इस प्रकार थीं :—

(१) भारत के प्रत्येक प्रान्त में एक डाइरेक्टर के अधीन शिक्षा विभाग खोला जाय।
(२) देश में जगह जगह विश्वविद्यालय स्थापित किये जायें।
(३) अध्यापकों की ट्रेनिंग के लिए शिक्षण संस्थाएँ खोली जायँ।
(४) प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा के प्रचार पर जोर दिया जाय।
(५) स्कूलों व कालिजों की संख्या बढ़ाई जाय।
(६) प्राइवेट शिक्षा संस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिए उन्हें सरकार की ओर से आर्थिक सहायता दी जाय।
(७) आरम्भ में शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।
(८) स्त्रियों की शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया जाय।

श्री वुड की योजना के अधीन सन् १८५७ में भारत में तीन विश्वविद्यालय कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास में स्थापित कर दिये गये।

(२) *हंटर कमीशन की नियुक्ति*—सन् १८८२ में भारत सरकार ने एक कमीशन की नियुक्ति की। इस कमीशन के प्रधान श्री हंटर थे और इसमें कई प्रमुख भारतीय व अंग्रेज विद्वान् सम्मिलित थे। कमीशन ने सिफारिश की कि सरकार को माध्यमिक शिक्षा की अपेक्षा प्रारम्भिक शिक्षा पर अधिक जोर देना चाहिये। प्राइवेट संस्थाओं को अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए भी उन्होंने सुझाव रक्खा।

(३) *१९०४ का युनिवर्सिटी कमीशन*—सन् १९०४ में लार्ड कर्जन के काल में एक यूनिवर्सिटी ऐक्ट पास किया गया जिसके द्वारा भारत सरकार ने विश्वविद्यालयों के ऊपर अपना नियन्त्रण बढ़ा लिया। साथ ही उसने विश्वविद्यालयों को इस बात की

स्वतन्त्रता दे दी कि वह माध्यमिक शिक्षा के स्तर को अपनी आवश्यकतानुसार बनाये रखने के लिए विशेष नियम बना सकें।

(४) १९१९ के सुधार—१९१९ में गवर्नर जनरल की कार्यकारिणी में एक शिक्षा सदस्य की नियुक्ति कर दी गई जिसका कार्य विभिन्न प्रान्तों की शिक्षा सम्बन्धी नीतियों का समन्वय करना था। सन् १९१९ के सुधारों के अधीन शिक्षा का विषय प्रान्तों में लोकप्रिय मन्त्रियों के हाथ में सौंप दिया गया। इसके पश्चात् विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा की समुचित प्रगति हुई। जगह-जगह पर विश्वविद्यालय खोले गये, स्कूल और कालिजों की संख्या बढ़ गई, व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया तथा माध्यमिक शिक्षा के नियन्त्रण का कार्य हाई स्कूल और इन्टरमीडियट बोर्डों को दे दिया गया। परन्तु इतना सब कुछ होने पर अगस्त सन् १९४७ तक जिस समय भारत स्वतन्त्र हुआ, हमारे देश में साक्षर जनता की संख्या केवल १४ प्रतिशत थी।

ब्रिटिश राज्य से उत्पन्न शिक्षा की कुछ समस्याएँ

भारत में अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध सबसे भीषण आरोप यह लगाया जाता है कि २०० वर्ष से भी अधिक लम्बे समय में अंग्रेज हमारी केवल १४ प्रतिशत जनता को साक्षर बनाने में सफल हो सके। रूसी, रूस और जापान में वहाँ की सरकारों ने दस वर्ष से भी कम समय में अपनी समस्त जनता को शिक्षित बना दिया। आधुनिक युग में शिक्षा प्रदान करने के इतने सुगम तथा प्रबल साधन हैं कि यदि उन सब की शरण ली जाय तो समस्त देश की जनता को कुछ ही वर्षों में साधारण शिक्षा प्रदान की जा सकती है। इतना सब कुछ होने पर भी हमारे विदेशी शासकों ने हमें शिक्षित बनाने का कोई शक्तिशाली प्रयत्न नहीं किया और जिस प्रकार की शिक्षा उन्होंने हमें दी, वह भारत की विशेष परिस्थिति व आवश्यकता के विचार से बिलकुल अनुपयुक्त थी। इसलिए अगस्त सन् १९४७ में जिस समय अंग्रेज हमारे देश से विदा हुए तो हमारे देश में शिक्षा की स्थिति इस प्रकार थी :—

(१) निरक्षरता—हमारे देश में सन् १९४१ की जन-गणना के अनुसार साक्षर जनता की संख्या केवल १४ प्रतिशत थी। इस संख्या में पुरुषों की संख्या २५ प्रतिशत तथा स्त्रियों की संख्या केवल ३ प्रतिशत थी। भिन्न भिन्न प्रान्तों में पढ़ी-लिखी जनता की संख्या अलग अलग थी। सबसे अधिक साक्षर ट्रावनकोर रियासत में थे और सबसे कम शिक्षा राजपूताना की रियासतों में थी।

(२) साधारण शिक्षा संस्थाएं—हमारे देश में शिक्षा संस्थाओं की भारी कमी थी। ३५ करोड़ जनता के शिक्षण के लिए हमारे देश में विश्वविद्यालयों की संख्या १८, डिग्री कालेजों की संख्या २३०, इण्टर कालेजों की संख्या १८८, हाई स्कूलों की संख्या ३,६३७, मिडिल स्कूलों की संख्या ४,७८८ तथा प्राइमरी स्कूलों की संख्या

१,३४,००० थी। इन सब शिक्षा संस्थाओं पर कुल मिला कर केवल ४५ करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता था। इङ्गलैंड में इसके विपरीत जहाँ की जनसंख्या केवल ८ करोड़ है *शिक्षा संस्थाओं पर ४८० करोड़ रुपया प्रति वर्ष व्यय* किया जाता है। जन-संख्या के विचार से यदि हमारे देश में एक विद्यार्थी पर २ रुपया ४ आना व्यय किया जाता है तो इंगलैंड में ८० रुपया और अमरीका में १२० रुपया व्यय किया जाता है।

(३) *व्यावसायिक शिक्षा*—हमारे देश में विद्यार्थियों को जिस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती थी उसे प्राप्त कर वह केवल सरकारी दफ्तरों में क्लर्कों का काम करते थे। उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न नहीं होती थी कि वह कारखानों में नौकरी कर सकें या किसी प्रकार का स्वतन्त्र व्यवसाय कर सकें। कला-कौशल व व्यावसायिक शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की हमारे देश में भारी कमी थी। सन् १९४७ ४८ में ऐसी संस्थाओं की संख्या इस प्रकार थी :—

	संस्था संख्या	विद्यार्थी संख्या
१. कृषि तथा वन कॉलिज	२३	४,०१५
२. व्यापारिक कॉलिज	१८	१४,६५८
३. इञ्जीनियरिंग कॉलिज	४५	६,४३७
४. मेडिकल कॉलिज	३२	१,३८२ (फाइनल कक्षा)
५. आर्ट स्कूल	१४	१,६६८
६. टेकनिकल स्कूल	५०६	३१,३१५
७. व्यापारिक स्कूल	३०२	१५,०८५
८. मैडीकल स्कूल	२०	४,३८७

(४) *स्त्री शिक्षा*—स्त्रियों की शिक्षा की हमारे देश में और भी हीन अवस्था थी। कुल मिला कर स्त्रियों के लिए हमारे देश में केवल ३१ आर्ट्स कॉलिज, ६ व्यावसायिक कॉलिज, ४१० हाई स्कूल, १०३० मिडिल तथा ३२,००० प्राइमरी स्कूल थे। यह देखते हुए कि हमारे देश में सहशिक्षा का अधिक रिवाज नहीं है, इन संस्थाओं की संख्या बहुत ही कम थी। किसी भी देश में प्रजातन्त्र शासन उस समय तक सफल नहीं हो सकता जब तक पुरुषों के साथ साथ उस देश की स्त्रियों को भी शिक्षित न बनाया जाय। यह शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जिससे स्त्रियाँ कुशल गृहिणी बनने के साथ साथ समाज के नागरिक जीवन में भी उपयोगी भाग ले सकें। परन्तु दुर्भाग्यवश जिस प्रकार की शिक्षा हमारे स्कूल और कालिजों में स्त्रियों को दी जाती थी उससे दोनों में से कोई भी आदर्श पूर्ण नहीं होता था।

(५) *शिक्षा प्रणाली*—हमारे अंग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली

हमारे देश पर लादनी चाही वह हम री आवश्यकताओं के अनुकूल न थी। हमारी शिक्षा संस्थाओं में हमें अपने देश की संस्कृति सभ्यता, धर्म, आचार विचार, इतिहास व साहित्य की बातें नहीं पढ़ाई जाती थीं। हम शेक्सपियर और मिल्टन, बायरन और कीट्स का साहित्य पढ़ते थे, परन्तु हमें अपने प्राचीन कवियों व साहित्यिकों के सम्बन्ध में हमें कुछ भी ज्ञान प्रदान नहीं किया जाता था। हम अन्य देशों के इतिहास से अनभिज्ञ रहते थे। हम 'श्रम का आदर' करना नहीं सीखते थे और पश्चात् शिक्षा प्राप्त कर अपने पारिवारिक व्यवसाय व हाथ के काम से घृणा करने लगते थे।

(६) *शिक्षा का माध्यम*—अंग्रेजों के काल में हमें माध्यमिक व उच्च शिक्षा अंग्रेजी के माध्यम के द्वारा दी जाती थी। इससे न केवल हम अपनी भाषा व अपने साहित्य से ही अपरिचित रहते थे वरन् अपने विद्यार्थी जीवन का अमूल्य समय, ज्ञानोपार्जन के स्थान पर अंग्रेजी व्याकरण के नियमों को रटने में ही लगा देते थे। यह सच है कि अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमें दूसरे देशों के साहित्य को पढ़ने का अवसर मिलता था, परन्तु इसके लिए यदि अंग्रेजी भाषा को अनिवार्य विषय न बनाकर उसे केवल एक ऐच्छिक विषय ही बनाया जाता तो अधिक उपयुक्त होता। आज भी अंग्रेजी हमारे विश्वविद्यालयों में अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाई जाती है, परन्तु आशा है बहुत शीघ्र हमारी अपनी राष्ट्रभाषा उसका स्थान ग्रहण कर लेगी।

(७) *योजना का कमी*—अंग्रेजों के काल में हमारी शिक्षा प्रणाली का एक और बड़ा दोष यह था कि शिक्षा का प्रसार किसी विशिष्ट योजना के अधीन नहीं किया गया। जिस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी को अपने आरम्भ काल में बहुत से सस्ते भारतीय क्लर्कों की आवश्यकता प्रतीत हुई तो उसने बहुत से स्कूल और कॉलिज खोल दिये। बाद में इन स्कूलों और कॉलिजों में तैयार होने वाले क्लर्कों की संख्या शासन की माँग से कहीं अधिक बढ़ गई। फल यह हुआ कि हमारे देश में बेकारी निरन्तर बढ़ती गई, परन्तु उसे कम करने के लिए शिक्षा योजना में किसी प्रकार का सुधार नहीं किया गया। भारत के विभिन्न प्रान्तों में शिक्षा का प्रसार अलग अलग ढङ्ग से हुआ और समस्त देश के लिए एक ही प्रकार की शिक्षा नीति का अवलम्बन नहीं किया गया। इसी प्रकार प्रारम्भिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा का स्तर, अलग अलग प्रान्तों में अपने ही ढङ्ग का रहा और सब प्रान्तों में उसे एक ही स्वरूप प्रदान करने का प्रयत्न नहीं किया गया।

स्वतन्त्र भारत में इन समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न

इस प्रकार हम देखते हैं कि जिस समय अंग्रेज हमारे देश से गये तो उन्होंने एक इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था हमारे देश में छोड़ी जो हर प्रकार से दोषपूर्ण थी और जो भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल नहीं थी। आज हमारे देश को स्वतन्त्र हुए

कुछ ही वर्ष हुए हैं। इतने थोड़े समय में भी भारत सरकार ने अपनी शिक्षा प्रणाली को सुधारने का समुचित प्रयत्न किया है। परन्तु सैकड़ों वर्षों के दोष किसी जादू के प्रयोग से दूर नहीं किये जा सकते। उन्हें दूर करने के लिए वर्षों के सतत् एवं निरन्तर परिश्रम की आवश्यकता पड़ेगी। अभी तक भारत सरकार एवं हमारे देश की प्रांतीय सरकारों ने इस दिशा में जो रचनात्मक कार्य किया है उसका विवरण इस प्रकार है —

(१) *साक्षरता आंदोलन*—भारत से निरक्षरता दूर करने के लिए प्रायः प्रत्येक प्रांत की सरकार ने साक्षरता आंदोलन आरंभ किया है जिसके अन्तर्गत प्रौढ़ व्यक्तियों को अक्षर ज्ञान तथा सामाजिक शिक्षा प्रदान की जाती है। इस आंदोलन में रेडियो, सिनेमा, मैजिक लैंटर्न, थियेटर स्टेज, संगीत, पोस्टर, चार्ट प्रदर्शनी व हर प्रकार के उपायों को काम में लाया जा रहा है। देश के प्रायः प्रत्येक भाग में ही प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र स्थापित कर दिये गये हैं और प्रत्येक प्रांतीय सरकार ने इस प्रकार की योजनाएँ बनाई हैं जिनके अन्तर्गत लगभग १० वर्ष में हमारे देश की अधिकतर जनता शिक्षित हो सकेगी।

प्रारंभिक शिक्षा के दोष

(२) *प्रारंभिक शिक्षा*—हमारे देश की प्रारंभिक शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि जिस प्रकार के स्कूलों में ४ वर्ष तक यह शिक्षा प्रदान की जाती थी उन स्कूलों में विद्यार्थियों के आचरण व उनके व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण विद्यमान नहीं था। हमारी पाठशालाएँ हर्ष और उल्लास का केन्द्र नहीं थीं। उनमें विद्यार्थियों का ज्ञानेन्द्रियों के शिक्षण के लिए उपयुक्त साधन नहीं थे। उनके अध्यापक शिक्षा के आधुनिक तरीकों से अपरिचित थे, उन्हें इतना वेतन नहीं दिया जाता था कि वे अपने काम में पूर्ण रुचि ले सकें और बालकों को शिक्षा प्रदान करने के लिए नये-नये उपाय काम में लायें अथवा नये नये प्रयोगों का उपयोग करें। शिक्षा को जीवन की आवश्यकता से सम्बन्धित कराने का भी कोई प्रयत्न नहीं किया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों के बालक स्कूलों में पढ़ने के पश्चात् खेती व घरेलू उद्योग धन्धों से घृणा करने लगते थे। अनिवार्य शिक्षा न होने के कारण केवल २० प्रतिशत बालक ही चौथी कक्षा तक पहुँच पाते थे। शेष बच्चे बीच में ही शिक्षा छोड़ देते थे। इसका परिणाम यह होता था कि वर्षों का प्रयत्न निष्फल हो जाता था और अधपढ़े-लिखे बालक शीघ्र ही पढ़ा लिखा भूल कर अशिक्षितों की श्रेणी में मिल जाते थे। इन सब दोषों के अतिरिक्त प्रारंभिक शिक्षा में सबसे बड़ा दोष यह था कि उनका प्रबन्ध नगर पालिकाओं और जिला मंडलियों के हाथ में छोड़ दिया जाता था। इन संस्थाओं के पास रुपयों की कमी होती थी और वह शिक्षा के प्रसार में अधिक धन व्यय नहीं कर सकती थीं।

सुधार के उपाय—प्रारंभिक शिक्षा के इन सभी दोषों को दूर करने के लिए हमारी प्रांतीय सरकारों ने समुचित कार्य किया है। उन्होंने अनेक क्षेत्रों में अनिवार्य शिक्षा की घोषणा कर दी है जिससे विद्यार्थी कुछ वर्षों पश्चात् विद्याध्ययन का कार्य न छोड़ दें। अनेक स्कूलों में बुनियादी शिक्षा (Basic Education) के आधार पर शिक्षा दी जाती है। इन स्कूलों में ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया है। अक्षर ज्ञान के अतिरिक्त इन स्कूलों में विद्यार्थियों को कृषि, पौधों की रक्षा, कताई, बुनाई, ग्रामीण अर्थशास्त्र व विविध उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है। अध्यापकों के वेतन में समुचित बढ़ोत्तरी कर दी गई है तथा उन्हें नई तालीम की शिक्षा देने के लिए स्थान-स्थान पर शिक्षण केन्द्र खोल दिये गये हैं। नगर-पालिकाओं और जिला मडलियों को भी प्रांतीय सरकारें शिक्षा प्रसार के कार्य के लिए विशेष आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं।

यह सच है कि अभी तक आर्थिक साधनों की कमी के कारण हमारे देश की प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन नहीं हुआ है परन्तु इस ओर धीरे धीरे अत्यन्त ठोस कार्य किया जा रहा है और आशा है कि कुछ ही वर्षों में हमारे देश के सभी प्रारम्भिक स्कूल बुनियादी शिक्षा के आधार पर बालकों को ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा प्रदान कर सकेंगे। सन् १९४९-५० में प्रारम्भी स्कूलों की संख्या बढ़ कर २०७,०२८ हो गई थी। इनमें लगभग १½ करोड़ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

(२) *माध्यमिक शिक्षा*—प्रारम्भिक शिक्षा के अतिरिक्त हमारी प्रांतीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली में भी सुधार करने का प्रयत्न किया है। माध्यमिक शिक्षा वर्नाक्युलर मिडिल, इङ्गलिश मिडिल, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडियेट कालेजों में दी जाती है। विभिन्न प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा की श्रेणियों का विभाजन अलग अलग प्रकार से किया जाता है। कहीं चौथी कक्षा से दसवीं कक्षा तक, कहीं सातवीं से १२वीं तक और कहीं पाँचवीं से ११वीं तक माध्यमिक शिक्षा का क्षेत्र माना गया है। देहली प्रांत में ५वीं कक्षा से ११वीं कक्षा तक माध्यमिक शिक्षा दी जाती है। उत्तर प्रदेश में यही शिक्षा बारहवीं कक्षा तक दी जाती है। कुछ प्रान्तों में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध हाई-स्कूल बोर्डों के हाथ में है, कुछ दूसरे प्रान्तों में यही प्रबन्ध रजिस्ट्रार आफ डिपार्टमेंटल एक्जा मनेशन्स के द्वारा किया जाता है। कहीं-कहीं इण्टरमीडियेट शिक्षा का प्रबन्ध यूनिवर्सिटियों के हाथ में भी है। हमारे अपने प्रांत में माध्यमिक शिक्षा का प्रबन्ध एक 'शिक्षा बोर्ड' द्वारा किया जाता है। वर्नाक्युलर फाईनल की परीक्षा के लिए हमारे प्रांत में एक दूसरी संस्था है। यह संस्थाएँ अपने अधीन सभी स्कूलों का निरीक्षण करती हैं,

विभिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्यक्रम का निश्चय करती है, परीक्षाओं का आयोजन करती है तथा विभिन्न श्रेणियों के लिए पुस्तकों का चुनाव करती है।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

हमारी इस शिक्षा प्रणाली में सबसे बड़ा दोष यह है कि भिन्न भिन्न प्रांतों में माध्यमिक शिक्षा का संगठन अलग-अलग ढंग से किया जाता है। इसीलिए विद्यार्थियों को एक प्रांत से दूसरे प्रांत में शिक्षा प्राप्त करने में भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इस दोष को दूर करने के लिए भारत सरकार ने सारे देश की माध्यमिक शिक्षा प्रणाली की जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की है। जिसके अध्यक्ष श्री लक्ष्मी स्वामी मुदालियर हैं। हमारी वर्तमान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली के दूसरे दोष ये हैं :

(१) माध्यमिक शिक्षा का सम्बन्ध विद्यार्थियों के बाहरी जीवन से नहीं है। जिस प्रकार की शिक्षा हमारे स्कूलों में दी जाती है उसे प्राप्त कर विद्यार्थी अपने व्यावहारिक जीवन में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(२) शिक्षा प्रदान करते समय विद्यार्थियों की रुचि व उनके मानसिक दृष्टिकोण का विचार नहीं रक्खा जाता। सभी विद्यार्थियों को प्रायः एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। हमारे स्कूलों में मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञों का नौकर नहीं रक्खा जाता जो विद्यार्थियों की योग्यता व उनकी विशेष विषयों में रुचि का पता लगा सकें।

(३) वर्तमान शिक्षा प्रणाली विद्यार्थियों के सांस्कृतिक विकास में सहायता प्रदान नहीं करती, न उसके द्वारा उनमें साधारण ज्ञान के प्रति रुचि ही उत्पन्न होती है। विद्यार्थियों को ऐसे विषयों की शिक्षा कम दी जाती है जिसे प्राप्त कर वह अपने देश के सांस्कृतिक स्तर को ऊँचा उठा सकें अथवा उनमें इस बात की योग्यता उत्पन्न हो जाय कि वह अपने देश व संसार की समस्याओं पर स्वतंत्र रूप से विचार कर सकें।

(४) हमारी वर्तमान शिक्षा पद्धति में परीक्षाओं को विशेष महत्त्व दिया जाता है। विद्यार्थी किसी प्रकार पुस्तकों को रट कर परीक्षाओं को पास कर लेने में ही शिक्षा की इतिश्री समझ लेते हैं। वह वास्तविक ज्ञान व सत्य की खोज में नहीं निकलते। उनका ज्ञान अत्यन्त सीमित होता है। उनमें तार्किक शक्ति का विकास नहीं होता।

(५) इस शिक्षा प्रणाली में अँग्रेजी को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता है। पाठ्य पुस्तकें अधिकतर अँग्रेजी में होती हैं। इससे विद्यार्थियों का बहुत सा अमूल्य समय विषय को समझने की अपेक्षा अँग्रेजी समझने में लग जाता है।

(६) स्कूल के अध्यापकों को बहुत कम वेतन दिया जाता है जिससे वह पूरी रुचि के साथ अपने काम में भाग नहीं लेते। स्कूलों में केवल ऐसे ही लोग अध्यापक का कार्य करते हैं जो दूसरे हर स्थान में नौकरी प्राप्त करने के प्रयत्न में निराश होकर

अंतिम दशा में अध्यापक बनना स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे लोग सदा इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि किसी प्रकार उन्हें सरकारी नौकरी मिल जाय। वह अध्यापन के कार्य को अपने जीवन का आदर्श नहीं बनाते। इससे न केवल शिक्षा संस्थाओं के कार्य में ही रुकावट पड़ती है वरन् अध्यापकों को बदलते रहने से विद्यार्थियों की शिक्षा पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थियों के हृदय में अपने गुरु के प्रति श्रद्धा का निर्माण नहीं होता है और वह समझने लगते हैं कि उनके गुरु विद्या की अपेक्षा रुपये से अधिक प्रेम करते हैं।

(७) माध्यमिक शिक्षा में व्यावहारिक शिक्षा पर जोर नहीं दिया जाता। हमारी शिक्षा संस्थाओं में इस बात का प्रबन्ध नहीं है कि जो विद्यार्थी पाठ्य विषयों में रुचि न लें उन्हें विभिन्न उद्योग धंधों व ललित कलाओं की शिक्षा दी जा सके। हमारे देश के कितने ही होनहार नवयुवक ज्योमेट्री, गणित, अंग्रेजी, भूगोल, विज्ञान व इसी प्रकार के विषयों में प्रवीण न होने के कारण प्रति वर्ष परीक्षाओं में फेल हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों की योग्यता का उन्हें किसी प्रकार के उद्योग धंधों व कला कौशल के काम में लगा कर उपयोग नहीं किया जाता।

सुधार के उपाय

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश की प्रान्तीय सरकारों ने माध्यमिक शिक्षा के इन दोषों को दूर करने का सक्रिय प्रयत्न किया है। देहली प्रान्त में जो केंद्रीय सरकार के अधीन है, माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया गया है। इस प्रान्त में आठवीं कक्षा के पश्चात् विद्यार्थी के माता-पिता को इस बात का निश्चय करना पड़ता है कि वह अपने बालक को क्या बनाना चाहता है, इंजीनियर, डाक्टर, कारीगर, व्यापारी, वैज्ञानिक अथवा साधारण ग्रेजुएट। आठवीं कक्षा के पश्चात् ३ वर्ष तक विद्यार्थी को ऐसे विषयों की शिक्षा दी जाती है जिसका ज्ञान प्राप्त कर वह एक विशेष दिशा में अपने जीवन का मार्ग निश्चित कर सकता है। परन्तु इस प्रान्त में भी अभी तक विद्यार्थियों के औद्योगिक शिक्षण के लिए समुचित प्रबन्ध नहीं किया गया है। देहली में केवल एक ही "पोलीटेकनिक" संस्था है। हमारे देश में इस प्रकार की सहस्रों संस्थाओं की आवश्यकता है जिससे विद्यार्थी पढ़ाई के समय विभिन्न उद्योग धंधों का अध्ययन करें और फिर अपने मन में इस बात का निश्चय कर सकें कि उन्हें किस प्रकार का कार्य अधिक रुचिकर प्रतीत होता है? बहुत से उद्योग-धंधों व कला-कौशल के कामों को स्वयं देखे बिना हम विद्यार्थियों से किस प्रकार आशा कर सकते हैं कि वह अपने माता-पिता को यह बता सकेंगे कि उनकी रुचि अमुक काम में है। सरकार को चाहिये कि वह प्रत्येक शिक्षा संस्था में इस प्रकार के प्रवीण मनोवैज्ञानिक रक्खे जो पाँचवीं से आठवीं कक्षा के बीच प्रत्येक विद्यार्थी के कार्य की जाँच पड़ताल करें और फिर

उसके आधार पर बच्चों के माता-पिताओं को इस बात का परामर्श दें कि उनका बालक किस उद्योग व विषय में प्रवीणता प्राप्त कर सकता है।

उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा भी माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था में समुचित परिवर्तन किया गया है। वहाँ पर हायर सेकेंडरी स्कूलों की योजना स्वीकार कर ली गई है। सरकार ने निश्चय किया है कि वह इंटरमीडिएट कॉलिजों को तोड़ कर उन्हें हायर सेकेंडरी स्कूलों में बदल देगी। परन्तु दिल्ली प्रान्त की भाँति वहां पर हायर सकेंडरी स्कूलों का पाठ्य क्रम ३ वर्ष का नहीं रक्खा गया। उसके स्थान पर यह पाठ्य क्रम ४ वर्ष का ही निश्चित किया गया है। हायर सेकेंडरी स्कूलों के नीचे जूनियर हाई स्कूलों की व्यवस्था की गई है जिनमें ८वीं कक्षा तक पढ़ाई होगी। शिक्षा का माध्यम हिंदी कर दिया गया है और अँग्रेजी को केवल एक ऐच्छिक विषय बना दिया गया है। गणित को भी अँग्रेजी के समान ऐच्छिक विषय का स्थान दिया गया है। अध्यापकों के वेतनों में भी बढ़ोत्तरी करने का प्रयत्न किया गया है और जगह-जगह उनके शिक्षण के लिए ट्रेनिंग कॉलेज खोल दिये गये हैं।

भारत के दूसरे प्रांतों में भी इसी प्रकार के सुधार किये गये हैं, परन्तु उन सुधारों से केवल उस समय विशेष लाभ हो सकता है जब भारतीय सङ्घ के अन्तर्गत सभी राज्यों में एक ही योजना के अधीन कार्य किया जाय। इसी बात को दृष्टि में रख कर जैसा पहले भी बताया जा चुका है, भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की जाँच के लिए एक विशेषज्ञों की कमेटी नियुक्त की है। आजकल हमारे देश में समस्त सेकेंडरी स्कूलों की संख्या १६,६६६ है और उनमें ४८ लाख विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

उच्च शिक्षा

विश्वविद्यालय

हमारे देश के विश्वविद्यालयों में जिनकी संख्या ३१ है, कला, विज्ञान, कामर्स, इञ्जीनियरिंग, कानून व डाक्टरी की शिक्षा प्रदान की जाती है। स्वतन्त्रता प्राप्त से पहले हमारे देश में विश्वविद्यालयों की संख्या केवल १८ थी। इस समय हमारे देश में जो विश्वविद्यालय हैं उनके नाम इस प्रकार हैं :—

आगरा (१६२७), अलीगढ़ (१६२०), इलाहाबाद (१८८७), आन्ध्र (१६२६), अन्नामलाई (१६२६), बड़ौदा (१६४६), बम्बई (१८५७), कलकत्ता (१८५१), दिल्ली (१६२२), पंजाब (१८८२), गोहाटी (१६४८), काश्मीर (१६४६), लखनऊ (१६२०), मद्रास (१८५७), मैसूर (१६१६), नागपुर (१६२३), उस्मानिया (१६१८), पटना (१६१७), पूना (१६४६), गुजरात (१६५०), श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठैकर से इंडियन विमिंस यूनीवर्सिटी बम्बई

(१६५१), बिहार (१६५२), बनारस (१६१६), महाराष्ट्र (१६५२), कर्नाटक (१६५०), राजपूताना (१६४७), रुड़की (१६४६), सागर (१६४६), ट्रावनकोर (१६३८), उत्कल (१६४८), विश्वभारती शान्तिनिकेतन (१६५१) ।

इन विश्वविद्यालयों में गोहाटी, काश्मीर, पूना, राजपूताना, रुड़की, सागर व उत्कल की यूनिवर्सिटियाँ अभी हाल में बनाई गई हैं । रुड़की यूनिवर्सिटी इंजीनियरिंग की शिक्षा प्रदान करने के लिए भारत की प्रथम यूनिवर्सिटी है । गोरखपुर में एक और यूनिवर्सिटी बनाई जा रही है जिसका उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राचीन आदर्श पर, ग्रामीण वातावरण में शिक्षा प्रदान करना होगा । बनारस में एक और संस्कृत यूनिवर्सिटी बनाने की भी योजना है । मध्य भारत में भी एक यूनीवर्सिटी स्थापित करने का प्रयत्न हो रहा है । सोमनाथ में संस्कृत की एक और यूनिवर्सिटी स्थापित की जा रही है ।

भारत के विश्वविद्यालयों को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं—(१) शिक्षक (टीचिंग) विश्वविद्यालय और (२) सम्मेलक (ऐफ्लिएटिंग) विश्वविद्यालय । कुछ विश्वविद्यालय दोनों ही प्रकार के काम करते हैं—शिक्षा प्रदान करने का कार्य और अपने अधीन कॉलिजों में परीक्षा लेने व उनकी देख-भाल करने का कार्य । कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, नागपुर, आंध्र व जयपुर के इसी प्रकार के विश्वविद्यालय हैं । हमारे अपने प्रान्त में इलाहाबाद, लखनऊ, बनारस, अलीगढ़ व रुड़की में शिक्षक विश्वविद्यालय हैं जहाँ विद्यार्थियों को शिक्षा दी जाती है । आगरा का विश्वविद्यालय केवल सम्मेलक विश्वविद्यालय है जिसका मुख्य कार्य कॉलिजों को स्वीकृति प्रदान करना, उनका निरीक्षण करना एवं उनमें परीक्षाओं की व्यवस्था करना है । सम्मेलक विश्वविद्यालयों की अपेक्षा शिक्षक विश्वविद्यालयों में अध्यापन व अनुसन्धान के कार्य का स्तर ऊँचा होता है और वहाँ पर अत्यन्त योग्य व अनुभवी आचार्यों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है ।

विश्वविद्यालयों का प्रबन्ध एक 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' द्वारा किया जाता है जिसके कुछ सदस्य निर्वाचित होते हैं और कुछ मनोनीत । प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक वाइस-चांसलर होता है जिसका चुनाव 'सीनेट' अथवा 'कोर्ट' के सदस्यों द्वारा किया जाता है और जिसे विश्वविद्यालय का दिन प्रति दिन का कार्य चलाने के लिए हर प्रकार के अधिकार प्राप्त होते हैं । विश्वविद्यालय स्वतन्त्र संस्थाओं के रूप में कार्य करते हैं और प्रान्तीय व केंद्रीय सरकार उनके काम में हस्तक्षेप नहीं करतीं । देहली, अलीगढ़ व बनारस के विश्वविद्यालयों का सीधा सम्बन्ध केंद्रीय सरकार से है । दूसरे विश्वविद्यालय प्रान्तीय कानूनों के अन्तर्गत कार्य करते हैं । विश्वविद्यालय का व्यय सरकारी सहायता व फ़ीस के आधार पर चलता है । सब प्रान्तों में मिला कर यूनिवर्सिटी की शिक्षा पर ३

करोड़ ४० लाख रुपया प्रति वर्ष व्यय किया जाता है। इसके अतिरिक्त केंद्रीय सरकार अपने कोष में से ४६ लाख रुपया वार्षिक विश्वविद्यालयों की शिक्षा पर व्यय करती है।

सन् १९४९-५० में हमारे देश के विश्वविद्यालयों तथा ७३२ कॉलिजों में कुल विद्यार्थियों की संख्या ३,३७,००० थी। इसी वर्ष मैट्रिक की परीक्षा में ५,१०,००० विद्यार्थी प्रविष्ट हुए। इसका अर्थ यह हुआ कि मैट्रिक की परीक्षा पास करने के पश्चात् लगभग ४० प्रतिशत विद्यार्थी अपनी पढ़ाई जारी नहीं रखते।

दूसरे देशों में विश्वविद्यालय

कुछ लोगों का विचार है कि हमारे देश में बहुत अधिक विद्यार्थी विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करते हैं और उनकी संख्या कम करने के लिए हमें विश्वविद्यालयों व कॉलिजों की संख्या कम कर देनी चाहिये। इस सम्बन्ध में कुछ दूसरे देशों के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं। इन्हें देखने से प्रतीत होगा कि हमारा देश यूनिवर्सिटी शिक्षा के क्षेत्र में कितना पिछड़ा हुआ है और विश्वविद्यालयों अथवा कॉलिजों की संख्या कम करने के स्थान पर हमारे देश में ऐसी और अनेक संस्थाओं की आवश्यकता है।

नाम देश	जनसंख्या जिसके पीछे एक विद्यार्थी विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करता है
भारत	२,८००
इंगलैण्ड	८८५
फ्रांस	५१७
दक्षिणी अफ्रीका	२३८
कैनाडा	२२७
अमरीका	१२४

उच्च शिक्षा के दोष

(१) हमारे देश में सबसे अधिक कमी इञ्जीनियरिंग कॉलिज, मेडिकल कॉलिज एवं टैक्निकल संस्थाओं की है। सब मिलाकर हमारे देश में केवल २,५०० विद्यार्थियों को प्रति वर्ष इञ्जीनियरिंग शिक्षा प्रदान की जाती है। अमरीका में इस प्रकार की संस्थाओं में २,४०,००० विद्यार्थी प्रतिवर्ष शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(२) हमारे विश्वविद्यालयों में पुस्तकों का ज्ञान सैद्धान्तिक होता है व्यावहारिक नहीं। रसायन शास्त्र से एम० एस०-सी की परीक्षा पास करने के पश्चात् भी विद्यार्थियों में इतना व्यावहारिक ज्ञान नहीं आता कि वह अपने घर के लिए साधारण साबुन अथवा बूट पालिस भी बना सकें। इसी प्रकार अर्थशास्त्र, व्यापार शास्त्र, राजनीति, नागरिक शास्त्र इत्यादि विषयों का अध्ययन मनुष्य के व्यावहारिक जीवन में अधिक सहायक सिद्ध नहीं होता।

(३) विश्वविद्यालयों में अधिकतर विद्यार्थी इसलिए भर्ती होते हैं कि उनके पास कुछ और काम करने के लिए नहीं होता। उन्हें यूनिवर्सिटी के शिक्षा में रुचि नहीं होती, फिर भी वह बेकारी की समस्या को कुछ वर्षों के लिए स्थगित करने के लिए पढ़ने के कार्य में लग जाते हैं। वह कभी विज्ञान पढ़ते हैं तो कभी समाजशास्त्र, कभी एक विषय में एम० ए० की परीक्षा पास करते हैं तो कभी किसी दूसरे विषय में। कभी वकालत पढ़ते हैं तो कभी जर्नलिज्म। और इसी प्रकार वह बेकारी के भूत से बच निकलने का सतत् प्रयत्न करते रहते हैं।

(४) हमारे विश्वविद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं में इतने विद्यार्थी होते हैं कि अध्यापक भाषण देने के अतिरिक्त उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकते। बहुत बार अध्यापकों को यह भी पता नहीं होता कि अमुक विद्यार्थी उनके कॉलिज में भी पढ़ता है अथवा नहीं। सच्ची शिक्षा प्रदान करने के लिए विद्यार्थियों तथा उनके अध्यापकों के बीच का सम्पर्क नितान्त आवश्यक है। यही कारण है कि जहाँ प्राचीन भारत के आश्रमों में विद्यार्थियों के जीवन पर उनके गुरु के चरित्र की गहरी छाप पड़ती थी, वहाँ आजकल के कॉलिज व यूनिवर्सिटियों के विद्यार्थी एक सच्चे गुरु के अभाव में अपने व्यक्तित्व का विकास करने में सफल नहीं होते।

(५) विश्वविद्यालयों में अन्दर शिक्षा प्राप्त करने में इतना अधिक धन व्यय होता है कि गरीब माता-पिताओं के बच्चे कभी उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा तक नहीं कर सकते। इतना ही नहीं, हमारे कॉलिजों और यूनिवर्सिटी के छात्रों का जीवन इतना फैशन प्रिय और विलासी बनता जाता है कि परीक्षा पास करने के पश्चात् जब उन्हें नौकरी नहीं मिलती तो वह अपने पारिवारिक जीवन के साथ सामंजस्य पैदा नहीं कर सकते। इस दशा में न केवल उनका अपना ही जीवन निरर्थक हो जाता है वरन् वह अपने माता पिताओं के लिए भार स्वरूप हो जाते हैं।

(६) हमारी यूनिवर्सिटियों में अंग्रेजी की शिक्षा को बहुत अधिक प्रधानता दी जाती है। प्राय: सभी विषय अंग्रेजी के माध्यम द्वारा ही पढ़ाए जाते हैं। इससे विद्यार्थियों की समस्त शक्ति अङ्गरेजी का ज्ञान प्राप्त करने में लग जाती है और उन्हें इतना अवकाश नहीं मिलता कि वह अपने विषय का वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर सकें।

(७) परीक्षाओं को यूनिवर्सिटी शिक्षा में अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है। विद्यार्थी अपनी कक्षा में दिन प्रति दिन क्या कार्य करता है, वह अपने विषय में कितनी रुचि लेता है, उसके अध्यापक उसके कार्य के विषय में क्या राय रखते हैं, इन बातों की ओर परीक्षा के समय कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। परिणाम यह होता है कि परीक्षा से कुछ ही महीने पहले विद्यार्थी कुछ आवश्यक प्रश्नों के उत्तर रट लेते हैं और

फिर उन्हें परीक्षा के समय दोहरा कर पास हो जाते हैं। ऐसे विद्यार्थियों में अपने विषय की वास्तविक योग्यता नहीं होती और वह जीवन में सच्ची सफलता प्राप्त नहीं कर सकते।

(८) सब विश्वविद्यालयों में एक ही प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाती है। उनमें इस बात का प्रयत्न नहीं किया जाता कि अलग अलग विषयों में विशेषता प्राप्त की जाय। उदाहरणार्थ यदि एक यूनिवर्सिटी में अर्थशास्त्र के विशेषज्ञ तैयार हों तो दूसरी यूनिवर्सिटी में राजनीति के और तीसरे में दर्शनशास्त्रों के इत्यादि। प्राचीन भारत में विश्वविद्यालयों में जैसा हम पहले देख चुके हैं, इसी प्रकार की व्यवस्था थी।

यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट—दोषों को दूर करने के उपाय

हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली के इन्हीं दोषों का विचार रखते हुए भारत सरकार ने सन् १९४८ में सर राधाकृष्णन के नेतृत्व में एक कमेटी बिठाई थी और उसे आदेश दिया था कि वह इन दोषों को दूर करने के लिए अपने रचनात्मक सुझाव सरकार के सम्मुख रक्खे। इस यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट मार्च सन् १९५० में प्रकाशित कर दी गई। संक्षेप में हम कमीशन के सुझावों का विवरण इस प्रकार दे सकते हैं :—

(१) भारत में प्राचीन आदर्श पर ग्राम्य यूनिवर्सिटियाँ खोली जायँ, जहाँ विद्यार्थियों को कृषि व ग्राम सुधार सम्बन्धी इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय कि वह परीक्षा पास करने के पश्चात् भारतीय गाँवों के जीवन में सक्रिय भाग ले सकें।

(२) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में केवल ऐसे ही विद्यार्थियों को भरती किया जाय जो वहाँ के विषयों की पढ़ाई से वास्तविक लाभ उठा सकें। शेष विद्यार्थियों के लिए औद्योगिक व टेकनिकल शिक्षा का समुचित प्रबन्ध किया जाये।

(३) यूनिवर्सिटी व उसके अधीन कॉलिजों में विद्यार्थियों की अधिक से अधिक संख्या क्रमशः ३,००० व १,५०० निश्चित की जाय जिससे अध्यापक अपने शिष्यों के साथ वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित कर सकें।

(४) विश्वविद्यालयों में छुट्टियों की संख्या कम की जाय जिससे अधिक पढ़ाई की जा सके।

(५) विद्यार्थियों के साथ अध्यापकों का वैयक्तिक सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रत्येक यूनिवर्सिटी व कॉलिज में ट्यूटोरियल क्लास खोले जायँ। इन क्लासों में अध्यापक विद्यार्थियों के लिखित काम की जाँच करें एवं उन्हें पुस्तकालय से अधिक से अधिक पुस्तक पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दें।

(६) यूनिवर्सिटी कक्षाओं में किन्हीं विशेष पुस्तकों के द्वारा पढ़ाई नहीं की जाय। अध्यापकों को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को उस विषय की सभी उपयोगी पुस्तकों को पढ़ने के लिए बाध्य करें।

(७) यूनिवर्सिटी में विद्यार्थियों का प्रवेश स्कूल की १२ कक्षाओं को पास करने के पश्चात् किया जाय। प्रथम डिगरी कोर्स तीन वर्ष का रक्खा जाय। आनर्स की परीक्षा पास कर लेने के पश्चात् एम० ए० की परीक्षा का समय एक वर्ष हो और बी० ए० की परीक्षा पास करने के पश्चात् दो वर्ष।

(८) राष्ट्रभाषा हिंदी का अध्ययन प्रत्येक छात्र के लिए अनिवार्य कर दिया जाय। अंगरेजी साहित्य का अध्ययन एक ऐच्छिक विषय बना दिया जाय। कमीशन ने अभी यह उचित नहीं समझा कि सभी विषयों का अध्ययन हिन्दी के माध्यम के द्वारा ही किया जाय। इस सम्बन्ध में कमीशन को सबसे बड़ा डर यह था कि हिंदी में प्रामाणिक पुस्तकों का अभाव है और जब तक भिन्न भिन्न विषयों की बहुत-सी पुस्तकें हिन्दी में नहीं लिखी जातीं, उस समय तक राष्ट्रभाषा को सभी विषयों के पठन पाठन के लिए माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

(९) यूनिवर्सिटी के अध्यापकों का वेतन बढ़ाने के सम्बन्ध में भी कमीशन ने अपने सुझाव रक्खे हैं। उसने कहा है कि किसी कॉलिज के अध्यापक को १५० रुपये मासिक से कम और यूनिवर्सिटी के अध्यापक को २०० रुपये मासिक से कम वेतन नहीं मिलना चाहिये।

भारत सरकार ने यूनिवर्सिटी कमीशन की उपरोक्त सभी सिफारिशें मान ली हैं और आशा है कि अब शीघ्र ही हमारे देश में यूनिवर्सिटी शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ होगा।

निष्कर्ष

भारत की प्राथमिक, माध्यमिक व उच्च शिक्षा के विवरण से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि हमारे अँग्रेज शासकों ने जिस प्रकार की शिक्षा प्रणाली हमारे देश में छोड़ी वह भारत की विशेष परिस्थिति के प्रतिकूल थी। हमारे देश की प्रान्तीय सरकारों व केन्द्रीय सरकार ने इस अवस्था में सुधार करने का समुचित प्रयत्न किया है, परन्तु कोई भी सरकार इस प्रकार का कार्य कुछ ही दिनों में पूर्ण नहीं कर सकती। यह सच है कि शिक्षा अच्छे सामाजिक जीवन की कुंजी है। उसी के आधार पर किसी देश में प्रजातन्त्र शासन की सफलता निर्भर करती है। वह किसी राष्ट्र के चरित्र का निर्माण करती है। उसी के द्वारा नागरिकों को अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों का ज्ञान होता है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि हमारी शिक्षा प्रणाली से उन दोषों को शीघ्रातिशीघ्र दूर किया जाय, जिनके कारण हम अपनी नव प्राप्त स्वतन्त्रता से पूर्ण लाभ उठाने में असमर्थ हैं। हमारी शिक्षा प्रणाली ऐसी होनी चाहिये जो हमारे जीवन का सर्वाङ्गीण विकास कर सके। हमें अपनी शिक्षा पद्धति में प्राचीन भारत व आधुनिक

समाज की सभी अच्छी बातों का समन्वय करना चाहिये। हमें अपने नागरिकों को इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करनी चाहिये जिसके द्वारा हम अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता से प्रेरणा प्राप्त कर सकें। साथ ही हमारी शिक्षा प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिये जो हममें किसी भी प्रकार के संकीर्ण विचार व संकुचित भावना का संचार न करे। विचारों की स्वतन्त्रता हमारी शिक्षा पद्धति का सदा से गुण रहा है और इस गुण का किसी दशा में भी हमें परित्याग नहीं करना चाहिये। हमारे नव संविधान के नियामक सिद्धान्तों में स्पष्ट आदेश दिया गया है कि भारत सरकार संविधान लागू होने के १० वर्ष के अंदर इस बात का प्रयत्न करेगी कि भारत का प्रत्येक नागरिक १४ वर्ष की आयु तक निःशुल्क और अनिवार्य रूप में एक इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सके जिसका आधार विचारों की स्वतन्त्रता, मानव व्यक्तित्व की गरिमा, धर्म, विश्वास और उपासना की स्वतन्त्रता और राष्ट्र की एकता हो। हमें पूर्ण आशा है कि बहुत शीघ्र हमारी प्रान्तीय व केन्द्रीय सरकारें इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में सफल होंगी और हमारे देश में एक इस प्रकार की आदर्श शिक्षा प्रणाली का प्रादुर्भाव होगा जिस पर हमारी आने वाली पीढ़ियाँ गर्व कर सकेंगी।

शिक्षा विभाग का संगठन

वैसे तो शिक्षा का विषय एक प्रांतीय विषय है और भारतीय संघ के अन्तर्गत राज्यों की सरकारों को इस बात का पूर्ण अधिकार है कि वह अपने अधिकार क्षेत्र में जिस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था रखना चाहें रखें, परन्तु केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत भी सारे राज्यों के शिक्षा सम्बन्धी कार्य का समन्वय करने तथा समस्त देश के लिए एक ही शिक्षा नीति का संचालन करने के लिए, एक शिक्षा विभाग होता है। यह विभाग शिक्षा मंत्री के अधीन कार्य करता है। वैसे तो सन् १९११ के पश्चात् से वायसराय की कार्यकारिणी में सदा एक शिक्षा सदस्य नियुक्त किया जाता था, परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले उसे शिक्षा के अतिरिक्त तीन और विभागों की देख भाल करनी पड़ती थी। पिछले तीन वर्षों में शिक्षा का विषय पूर्ण रूप से एक कैबिनेट मंत्री के अधीन सौंप दिया गया है। भारत सरकार इस विषय को कितना महत्त्व प्रदान करती है तथा किस प्रकार समस्त देश के लिए एक ही शिक्षा नीति का संचालन करना चाहती है, यह परिवर्तन उसी बात का द्योतक है।

शिक्षा मंत्री की सहायता के लिए उनके अधीन एक पूरा सचिवालय कार्य करता है जिसका अध्यक्ष शिक्षा सचिव (Education Secretary) एवं शिक्षा सलाहकार कहलाता है। उसके अधीन संयुक्त शिक्षा सलाहकार, डिप्टी शिक्षा सलाहकार तथा कई सहायक शिक्षा सलाहकार कार्य करते हैं।

केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय को उनके नीति सम्बन्धी कार्य में सहायता प्रदान करने के लिए कई समितियाँ होती हैं। इन समितियों में सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों ही प्रकार के सदस्य होते हैं।

दूसरे देशों में भारतीय विद्यार्थियों की सहायता करने के लिए शिक्षा सचिवालय अपने प्रतिनिधि नियुक्त करता है। विदेशों में स्थित भारतीय दूतावासों में अपने सांस्कृतिक दलों की नियुक्ति करना भी केन्द्रीय शिक्षा सचिवालय का ही कार्य है।

केन्द्रीय सरकार अपनी ओर से कई शिक्षा संस्थाओं का स्वयं संचालन करती है, उदाहरणार्थ पब्लिक स्कूल लवडेल, मद्रास, प्रिंस आफ वेल्स स्कूल, देहरादून, केन्द्रीय शिक्षा इन्स्टीट्यूट (Central training ins itute) देहली इत्यादि। इसके अतिरिक्त अलीगढ़, बनारस व देहली के विश्वविद्यालयों का सीधा सम्पर्क केन्द्रीय सरकार से है। वह उन्हें स्वयं आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

आजकल देश की कठिन आर्थिक स्थिति के कारण हमारी केन्द्रीय सरकार भारत में शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक कार्य नहीं कर रही है परन्तु जैसे ही इस स्थिति में सुधार होगा, वह अनेक योजनाओं पर एक साथ कार्य करेगी।

शिक्षा की प्रान्तीय व्यवस्था

केन्द्र की भाँति भारतीय संघ के अन्तर्गत प्रत्येक राज्य के मन्त्रिमण्डल में एक शिक्षा मन्त्री होता है। उसके अधीन एक शिक्षा सचिवालय कार्य करता है जिसका सर्वोच्च अधिकारी *डाइरेक्टर आफ एजुकेशन* कहलाता है। डाइरेक्टर आफ एजूकेशन का मुख्य कार्य राज्य की समस्त सरकारी एवं गैर सरकारी माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं की देखभाल करना होता है। वह बोर्ड आफ हाई स्कूल तथा इण्टरमीजिएट एजूकेशन का प्रधान होता है। स्कूलों का निरीक्षण, उनमें पढ़ाई का उचित प्रबन्ध करना एवं अध्यापकों के अधिकारों की रक्षा करना भी उसी का काम है। उसकी सहायता के लिए कई डिप्टी तथा असिस्टेंट डाइरेक्टर होते हैं। शिक्षा प्रबन्ध की दृष्टि से सारा राज्य कुछ डिवीजनों, जिलों तथा तहसीलों में बाँट दिया जाता है। इन भागों के शिक्षा कर्मचारी क्रमशः इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स, डिस्ट्रिक्ट इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स तथा सब डिप्टी इंस्पेक्टर आफ स्कूल्स कहलाते हैं। प्रान्तीय सरकार अपनी ओर से कितने ही इण्टरमीजिएट कॉलिज, हाई स्कूल तथा व्यावसायिक स्कूलों का स्वयं प्रबन्ध करती है। इसके अतिरिक्त प्राइवेट संस्थाओं द्वारा भी अनेक हाई स्कूल, मिडिल स्कूल, प्राइमरी स्कूल तथा कॉलिज इत्यादि खोले जाते हैं। इन सब संस्थाओं पर नियन्त्रण रखना भी प्रान्तीय शिक्षा विभाग का कार्य है।

प्रायः प्रत्येक राज्य में ही प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध नगरपालिकाओं व जिला मंडलियों द्वारा किया जाता है। शिक्षा विभाग के अधिकारियों का काम इन संस्थाओं के

कार्य की देख रेख करना होता है। माध्यमिक शिक्षा की देख भाल हाई स्कूल व इन्टरमीजियेट शिक्षा बोर्ड द्वारा की जाती है। उच्च शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालय करते हैं।

दूसरे प्रगतिशील देशों की अपेक्षा हमारे अपने देश में शिक्षा विभाग एवं शिक्षा संस्थाओं की स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। शिक्षा विभाग को सरकार के दूसरे सभी विभागों से कम आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है। जब कभी कटौती का प्रश्न उठता है तो सबसे पहले उसका प्रभाव शिक्षा विभाग पर ही पड़ता है। हमारे देश की अधिकतर शिक्षा संस्थाओं की स्थिति भी इस प्रकार की है। उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त खराब होती है और वह इस प्रकार की व्यवस्था नहीं कर सकतीं जिसके अन्तर्गत विद्यार्थी एक सुन्दर वातावरण में अत्यन्त योग्य तथा अनुभवी अध्यापकों के द्वारा आदर्श शिक्षा ग्रहण कर सकें। भारतवर्ष के परिवर्तित वातावरण में हमें पूर्ण आशा है कि अब इन दोषों को शीघ्र ही दूर करने का प्रयत्न किया जायगा और हमारे देश में एक इस प्रकार की शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा दिया जायगा जिनमें शिक्षा प्राप्त कर भारत के भावी नागरिक अपने चरित्र का निर्माण एवं अपने राष्ट्र की अधिकाधिक सेवा कर सकेंगे।

उत्तर प्रदेश में पिछले कुछ वर्षों में शिक्षा की प्रगति

पिछले कुछ वर्षों में उत्तर प्रदेश में शिक्षा के क्षेत्र में समुचित प्रगति हुई है। इस प्रान्त में सन् १९४६ में शिक्षा पर कुल ५.५७ करोड़ रुपया व्यय किया जाता था, सन् १९५२ में यह व्यय बढ़कर ७.३७ करोड़ हो गया था। सन् १९४८ में हमारे प्रांत में प्राइमरी स्कूलों की संख्या १६,०१७ थी, सन् १९५२ में यह संख्या बढ़कर ३३,००० हो गई थी, इसी प्रकार सेकण्डरी स्कूलों की संख्या सन् १९४६ में २१३६ थी, सन् १९५२ में वह २७०० हो गई थी। यूनिवर्सिटी शिक्षा के क्षेत्र में भी कौंसिलों की संख्या १७ से बढ़कर ४८ हो गई थी। टेक्निकल शिक्षा की ओर भी हमारे राज्य में विशेष ध्यान दिया गया है। सन् १९४२ में ऐसी संस्थाओं की संख्या ७८ थी, सन् १९५२ में वह बढ़कर १३५ हो गई। सैनिक शिक्षा पर भी इस राज्य में विशेष प्रबंध किया गया है।

योग्यता-प्रश्न

१ अपने प्रान्त की शिक्षा प्रणाली के मुख्य लक्षण बताओ। इस प्रणाली में सुधार किस प्रकार किया जा सकता है? (यू० पी० १९३६, ४४)

२ भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में क्या गुण थे? उन्हें आजकल की शिक्षा प्रणाली में किस प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है?

३. कहा जाता है कि हमारा आधुनिक शिक्षा-सङ्गठन, भारत की आवश्यकताओं के प्रतिकूल है। इसमें सुधार कैसे किया जा सकता है? (यू० पी० १९३३)

४. आधुनिक शिक्षा प्रणाली के क्या दोष हैं? उन्हें कैसे दूर किया जा सकता है? (यू० पी० १९४३)

५. भारत की उच्च शिक्षा प्रणाली के क्या दोष हैं? यूनिवर्सिटी कमीशन की रिपोर्ट में उन्हें किस प्रकार दूर करने का प्रयत्न किया गया है?

६. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शिक्षा विभागों के सङ्गठन की विवेचना कीजिये।

७. बुनियादी शिक्षा किसे कहते हैं? भारत में इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने के क्या साधन हैं?

८. भारत तथा दूसरे देशों की शिक्षा प्रणाली की तुलना कीजिये।

९. उत्तर प्रदेश में १९४७ से अब तक शिक्षा में जो उन्नति हुई है उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन कीजिये। (यू० पी० १९५२)

१०. शिक्षा के डाइरेक्टर पर संक्षिप्त नोट लिखो। (यू० पी० १९५३)

अध्याय १६

धर्म तथा धर्म सुधार आन्दोलन

संसार के आरम्भ से ही मनुष्य समाज धर्म को विशेष महत्त्व देता रहा है। यदि धर्म के वास्तविक तत्व को समझा जाय तो यह मनुष्य को मानसिक वेदना, क्लेश और सांसारिक दुःखों से छुड़ाकर उसे संतोष, प्रसन्नता और शांति प्रदान करता है। गार्हस्थ्य जीवन का स्थायित्व और अस्तित्व धर्म के परिणामस्वरूप ही होता है। धर्म के प्रभाव से ही मनुष्य परमात्मा की सर्वज्ञता में विश्वास रखते हैं और परस्पर वैर भाव और द्वेष को छोड़कर प्रेमपाश में बँध जाते हैं। धर्म में आस्था रखने वाले पुरुष मृत्युलोक को तुच्छ मानकर परलोक और अक्षय जीवन की बातें सोचते हैं और पाप और पुण्य के सिद्धान्तों को मानकर अच्छे कामों में प्रवृत्त होते हैं जिससे उन्हें मृत्यु के पश्चात् स्वर्ग तथा मुक्ति की प्राप्ति हो सके।

परन्तु शोक है कि मतवादियों ने धर्म को बिगाड़कर उसके मिथ्या अर्थ निकाले हैं। प्रेम और सहानुभूति के स्थान पर वैर भाव और निष्ठुरता तथा स्वार्थसिद्धि का साधन बना दिया है। अपने मनमाने सिद्धान्तों, भ्रमात्मक रीतियों, धर्मांधता और साम्प्रदायिकता जैसे दुर्गुणों का प्रयोग आज धर्म की दुहाई देकर ही किया जाता है। सब प्रकार के पाप और कुकर्म आज धर्म के नाम पर ही होते हैं। यहाँ तक कि रक्तपात, मनुष्यों की बलि, मदिरापन, जुआ, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार और अस्पृश्यता आदि भी धर्म के नाम पर ही स्तुत्य ठहराये जाते हैं।

धर्म का वास्तविक स्वरूप

भारत में, जो कि मतमतान्तरों का केंद्र है, उपरोक्त बुराइयाँ सर्वत्र फैली हुई हैं। हमारा देश जो कभी संसार का गुरु था, आज अधःपतन की पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यहाँ के लोग बाल विवाह, देवदासीपन, स्त्रियों का परदा, जात पाँत तथा बाल्यकाल में भी विधवा होने पर पुनर्विवाह का विरोध केवल धर्म का आश्रय लेकर ही करते हैं। हम यह भूल गये हैं कि धर्म, अविद्या, भय और दुराग्रह का नाम नहीं। धर्म तो वह जीवन है जो कि स्त्री-पुरुषों की आत्मा में उस शक्ति और उष्णता का संचार करता है जो उन्हें ऊँचे और उत्तम काम करने में सहायक होती है। वास्तव में धर्म, रीति रिवाज, आचार शास्त्र तथा लोक मत का नाम भी नहीं है। यह तो वह ज्योति है जो मनुष्य को उसके अपने अन्दर निहित परमात्मा का साक्षात्कार कराती है और उसे बताती है कि

यदि वह अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचाने तो वह इस मृत्युलोक को भी स्वर्गलोक बना सकता है।

भारत में धर्म का प्रभाव

भारतीय जनता धर्म के तत्त्व को भूलकर आडम्बरवाद में फँस गई है। धर्म की बाहरी वेशभूषा का यहाँ इतना प्रभाव है कि करोड़ों लोगों की जीवनचर्या का आधार यही धार्मिक आडम्बर ही है। हम समझते हैं कि सन्ध्या, गंगास्नान, दरिद्रों को दान और बड़े बूढ़ों की आज्ञा पालन करके पांडित्य के युग में बद्ध हो जाना ही धर्म के मुख्य अङ्ग हैं। इसी कल्पित धर्म के प्रसाद में हम छूत अछूत, बाल विवाह, मूर्ति पूजा और चूल्हे चौके की पवित्रता को भी सम्मिलित कर लेते हैं। धर्म यह नहीं है। धर्म वह है जो कि प्रत्येक समय की परिस्थिति के अनुसार हमें ठीक मार्ग पर चलने का आदेश दे। वह काल और समय के साथ-साथ परिवर्तित हो जाय। जात पाँति की पद्धति उस समय तो ठीक थी जब कि जाति की परम्परागत एक ही कार्य करने वालों की आवश्यकता थी। परन्तु आजकल इस कला और यन्त्र के युग में, इस जर्जरित विधान से चिमटे रहना मूर्खता मात्र ही तो है। इस प्रकार बाल विवाह, घूँघट, बुरका, छूतछात और सनुकरण पद्धति भी समय के प्रतिकूल है।

हम यह तो भूल ही जाते हैं कि धर्म एक वैयक्तिक विषय है। वह परमात्मा और सत्य को पाने का मार्ग है। हमारी सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक समस्याओं से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन कितने दुःख की बात है कि भारत में उपरोक्त सब समस्याएँ भी धार्मिक दृष्टिकोणों से ही देखी जाती हैं।

हमारे देश में हिंदू और मुसलमान आपस में इसलिए नहीं मिल सके कि उनका धर्म अलग-अलग है। वह एक दूसरे के पर्व, त्यौहारों, शादी और सहभोज अथवा सामाजिक और धार्मिक समागमों में सम्मिलित नहीं होते। मुसलमान का छुआ पानी हिंदू नहीं पीते। वह मुसलमानों की बस्ती में रहना पसन्द भी नहीं करते। अपने ही हिंदू भाइयों के साथ उनका व्यवहार सद्भावरहित नहीं होता। हरिजन अर्थात् अछूत हिंदुओं से मेल-जोल नहीं रखते। अपनी उपजाति से बाहर वह शादी-ब्याह नहीं करते। शादी तो दूर रहा, कई ऊँची जाति वाले अपनी जाति छोड़कर दूसरे के हाथ का खाना भी ग्रहण करना पसन्द नहीं करते। कुछ साल पहले समुद्र यात्रा को भी वर्जित समझा जाता था।

परन्तु अब धीरे-धीरे काल और परिस्थिति के प्रभाव से यह सब भयानक रुकावटें हटती जाती हैं। परन्तु ग्रामीण लोगों में अब भी जागृति नहीं हो पाई है।

आर्थिक क्षेत्र में भी कौन सी जाति को क्या-क्या काम-धंधा करना है, इसका निर्णय भी धर्म-परम्परा ने किया है। कोई अछूत (हरिजन), ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों का

व्यापार नहीं कर सकता। धर्माचार्यों ने उसके भाग्य में सदा के लिए पानी भरना और मार खाना ही लिख दिया है।

राजनीतिक क्षेत्र में स्वराज्य प्राप्ति के लिए भी हिन्दू और मुसलमान एक नहीं हो सके क्योंकि वे धार्मिक भेदभाव के कारण एक दूसरे को सन्देह की दृष्टि से देखते रहे। देश में इसी सन्देह के कारण और धार्मिक सन्देहों को भड़काने से हिन्दू मुसलिम बलवे होते रहे। इसी धर्मान्धता के कारण पाकिस्तान की रचना हुई और इससे पूर्व पृथक् निर्वाचन प्रणाली का आरम्भ हुआ।

हिन्दू विश्वविद्यालय और मुसलिम कॉलिज, हिन्दू अनाथालय और मुसलिम यतीम-खाना, हिंदू पानी और मुस्लिम पानी की जड़ में भी यही भेद काम करता है।

भारत में धर्म से एक दूसरे को विभक्त करने का ही काम लिया गया है। यहाँ धर्म के नाम पर ही कत्ल होते हैं। आरती और नमाज के कारण महाउपद्रव होते हैं। यह भुला दिया गया है कि धर्म का आधार तो प्रेम और सहिष्णुता है। कोई भी धर्म एक दूसरे के सिर फाड़ने या पीठ में छुरा भोंकने की शिक्षा नहीं देता। धर्म का सच्चा अनुगामी तो वह है जो मनुष्य मात्र से प्रेम करता है।

धर्म के कारण भारत में आर्थिक तथा राजनीतिक अवनति

हमारी राजनीतिक दासता और पराजय के कारणों में हिंदू धर्म की वैराग्य और त्याग भाव की शिक्षा का भी बहुत कुछ हाथ था। हमारे आचार्य सांसारिक जीवन और उसके वैभव को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखते रहे। सदैव परलोक पर ही उनकी दृष्टि लगी रही। इस संसार के सुखों का त्याग कर जङ्गलों, वनों अथवा तीर्थस्थानों पर जाकर भगवान् का चिंतन करना ही उनका अन्तिम लक्ष्य रहा आया। हमारे पूर्वजों ने हमें अलौकिक शक्तियों और दिव्य सिद्धियों में विश्वास करना सिखलाया। इस प्रकार हमारा दृष्टिकोण यथार्थवाद से बहुत परे हट गया। इसलिए जब मुसलमान इस देश में लूट-मार करते आये तो उनका सङ्गठित विरोध करने के स्थान पर हम देवी-देवताओं से रक्षा की याचना करने लगे। इससे पहले जब भारतवासी स्वतन्त्र थे, तो उन्होंने समुद्र-यात्रा की छूत के भय से विदेश विजय का प्रयत्न नहीं किया। जब अंग्रेज आये तो हमने अपनी धर्म पुस्तकों को छोड़कर मुसलमानों के साथ मिल कर उनका मुकाबिला नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि अंग्रेजों ने भी यहाँ लगभग डेढ़ सौ वर्ष तक राज्य किया।

आर्थिक क्षेत्र में भी धर्म ने हमें सन्तोष का पाठ पढ़ाकर रुपये पैसे की ओर से मुँह मोड़े रखने का उपदेश दिया। उसने हमें सिखाया कि भगवान् तो दरिद्रों के घर में वास करते हैं। चारों वर्णों के लिए स्थाई धर्म नियत करके उसने लोगों को स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने के मार्ग में बाधा डाली। लोग पराक्रम और साहस छोड़कर दब्बू और एक

स्थानवासी बन गये। धर्म ने हमें भाग्य पर आश्रित करके कर्म करने से रोका। परिणाम यह हुआ कि हम दरिद्रता से प्रसन्न और दुर्भाग्य में सन्तुष्ट रहने वाले बन गये।

भारतीय धार्मिक आंदोलन

आंदोलनों के कारण—मुसलमानों के भारत में आने से पूर्व ही हिंदू धर्म में इतनी कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं कि लोग इस धर्म के अपनाने में लज्जा का अनुभव करने लगे थे। इसलिए जब अंग्रेजी राज्य के काल में ईसाई मत के सीधे सादे सिद्धांतों का प्रचार हुआ तो हिंदू नवयुवक उससे अति प्रभावित हुए। सहस्रों की संख्या में वह ईसाई धर्म में प्रविष्ट होने लगे। ऐसा प्रतीत होने लगा कि हिंदू धर्म की इतिश्री हो जायगी। ऐसे समय में भारत में ऐसे हिंदू सुधारक और विचारक पैदा हुए जिन्होंने हिंदू धर्म की पुरानी विचारमाला का संशोधन करके उसे वास्तविक नींव पर ला खड़ा किया। यह धार्मिक क्रांति उन्नीसवीं सदी में हुई।

अब हम कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण धार्मिक आंदोलनों का वर्णन करते हैं जो हिंदू धर्म के सुधार के कारण हुए।

ब्रह्म समाज

१६वीं शताब्दी में सबसे पहली धर्म सुधारक संस्था ब्रह्म समाज थी। इसके प्रवर्तक उस काल के अद्वितीय महापुरुष राजा राममोहन राय थे। इनका जन्म सन् १८७२ में बंगाल के एक कुलीन ब्राह्मण घराने में हुआ था। जिसका बंगाल के शाही घराने से पुराना सम्बन्ध था। राजा राममोहन राय हिंदी, अरबी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, यूनानी भाषाओं के भारी विद्वान् थे। आप ईसाई, मुसलिम और हिंदू धर्म की पूरी जानकारी रखते थे। उन्होंने देखा कि प्राचीन हिंदू धर्म और उपनिषदादि ग्रन्थों में जाति पाँति, छुआ-छूत, मूर्तिपूजा, बहु-विवाह, भ्रूण हत्या और सती आदि की कुप्रथाओं की कहीं भी आज्ञा नहीं है। इसलिए उन्होंने इनका घोर विरोध किया। उन्होंने अपने अनुयायियों को बताया कि वैदिक हिंदू धर्म बड़ा सरल, सम्पूर्ण और युक्ति-संगत है। राजा राममोहन राय ने हिंदू धर्म को ईसाइयों के आक्रमणों से बचाया जिसके प्रभाव से हजारों हिंदू ईसाई बनते चले जा रहे थे। वह एक बहुत बड़े सुधारक थे। उन्होंने विधवा विवाह का प्रचार किया। सती प्रथा, पशुओं की बलि और मूर्ति पूजा का भी खण्डन किया। लार्ड विलियम बैंटिक ने भी सती प्रथा का कानून राजा राममोहन के आग्रह से ही लागू किया था।

राजा राममोहन राय पर ईसाई मत का काफी प्रभाव पड़ा था। परन्तु उन्होंने ईसाई धर्म और अंग्रेजी शिक्षा से लाभदायक अंश ही अपनाये। बन्दरों की तरह विदेशियों की नकल को वह बहुत बुरा समझते थे। पराई अच्छी बातों को स्वीकार करने पर भी आप पूरे भारतीय थे।

आप नये युग के ऋषि थे। आपने अपनी जाति को पुनर्जीवित करने और सामाजिक तथा जातीय पुनरुत्थान के लिए यूरोप की सब अच्छी बातों को सङ्कलित करने की शिक्षा दी। इसी कार्य के प्रोत्साहन के लिए उन्होंने अगस्त सन् १८२८ में ब्रह्म समाज की नींव डाली।

ब्रह्म समाज के नियम

ब्रह्म समाज के मुख्य मुख्य नियम निम्नलिखित हैं :—

१. परमात्मा एक व्यक्ति है जो कि सम्पूर्ण सद्गुणों का केन्द्र और भंडार है।

२. परमात्मा ने कभी जन्म नहीं लिया न देह ही धारण किया है।

३. परमात्मा प्रार्थना सुनता है और स्वीकार करता है।

४. सब जाति और वर्णों के लोग परमात्मा की पूजा कर सकते हैं। परमात्मा की पूजा और भक्ति के लिए मन्दिर, मस्जिद और आडम्बर की आवश्यकता नहीं। केवल आत्मा से उसकी पूजा होनी चाहिये।

५. पाप का त्याग और पाप कर्म से पश्चात्ताप ही मोक्ष के साधन हैं।

६. मानसिक ज्योति और विशाल प्रकृति ही परमात्मा के ज्ञान के साधन हैं। किसी पुस्तक के दैवी मानने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि कोई पुस्तक त्रुटिरहित नहीं होती।

ब्रह्म समाज की स्थापना के चार वर्ष बाद ही राममोहन राय का इङ्गलैंड में देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के पश्चात् ब्रह्म समाज में फूट पड़ गई और उसमें दो दल बन गये। एक दल के नेता जगद्विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता श्री देवेन्द्र नाथ टैगोर थे। वह हिंदू धर्म के अधिक निकट थे और उपनिषदों में विश्वास रखते थे। वह जाति पाँति तोड़ने पर अधिक बल न देते थे। दूसरा दल श्री केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ईसाई मत के अधिक निकट था और वह ईसा की बहुत प्रशंसा करते थे। यह हिंदू समाज में समूल परिवर्तन करना चाहते थे, इस दल को 'प्रार्थना समाज' भी कहते हैं। श्री टैगोर की शाखा को आदि समाज कहते हैं।

ब्रह्म समाज एक विचार सुधारक संस्था थी जिस पर कि ईसाई धर्म का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए यह आन्दोलन सर्वसाधारण में लोकप्रिय नहीं हुआ। आजकल इसके अनुयायी केवल बंगाल में ही हैं और वह भी पाँच छः हजार से अधिक नहीं।

ब्रह्म समाज के कृत्य

ब्रह्म समाज ने ऐसे काल में हिन्दू समाज की बहुत सेवा की, जब बाहरी और आन्तरिक आक्रमणों से वह अत्यन्त पीड़ित थी। उसने उसे ईसाई मत का आहार बनने से बचाया। 'सती' की प्रथा का बंदीकरण, स्त्रियों का उद्धार और अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार उसी के प्रयत्न के फल हैं।

आर्य समाज

आर्य समाज की स्थापना गुजरात, काठियावाड़ के रहने वाले एक सन्यासी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने की। वह एक अत्यन्त शक्तिशाली तथा प्रभावशाली वक्ता थे। ब्रह्म समाज ने तो बंगाल के अंग्रेजी पठित समाज पर ही अपना प्रभाव डाला था, परन्तु आर्य समाज का प्रभाव सर्वसाधारण में फैला।

स्वामी दयानन्द काठियावाड़ प्रान्त के साधारण से ग्राम (टंकरा) में सन् १८२४ में उत्पन्न हुए थे। बाल्यकाल से ही वह धर्म के प्रेमी और वैदिक ग्रन्थों के रसिक थे। उनके पिता पंडित अम्बाशङ्कर ने २२ वर्ष की आयु में ही उन्हें ब्याहने की योजना रची। परन्तु, नवयुवक मूलशङ्कर चोरी चोरी घर से भाग निकला और एक सद्गुरु की खोज में भारत का चक्कर लगाने लगा। अन्त में १४ वर्ष के अनुसन्धान के पश्चात् सन् १८६० में उसे एक अन्धे दण्डी सन्यासी मथुरा में मिले जिनका नाम पंडित वृजानन्द सरस्वती था। इनकी शिक्षा से दयानन्द को सन्तोष और सान्त्वना प्राप्त हुई। वृजानन्द ने कहा कि वेद में पूर्ण सत्य विद्यमान है और पाश्चात्य शिक्षा ने संसार में मिथ्याचार मतावों का प्रचार किया है।

स्वामी दयानन्द ने सन् १८६३ की मई में अपने गुरु से विदा ली और उत्तरी भारत में विशेष उत्साह और पराक्रम से प्रचार कार्य आरम्भ किया। उन्होंने हिन्दी और संस्कृत में कई पुस्तकें लिखीं। सत्यार्थ प्रकाश में, जो कि उनकी सबसे महत्त्वपूर्ण रचना है, उन्होंने हिन्दू धर्म की सब दूसरे धर्मों से श्रेष्ठता सिद्ध की है। उन्होंने यह भी सिद्ध किया कि वेदों में मूर्ति पूजा, जन्म पर निर्भरित जाति पाँति, छूत-छात, सती प्रथा इत्यादि का कहीं भी बखान नहीं है और केवल एक परमात्मा की पूजा का ही आदेश है जो कि निराकार, सर्वज्ञ चिन्मन, न्यायकारी और दयालु है। स्वामी दयानन्द राजा राममोहन राय से अधिक प्रभावशाली सुधारक सिद्ध हुए। उन्होंने जाति-पाँति हटाने, विधवाओं के पुनर्विवाह और आपस में सम्मिलित खान-पान पर बहुत बल दिया। उन्होंने हिंदू धर्म को प्रचारक और अन्य धर्मावलम्बियों को शुद्ध करके मिलाने वाला धर्म बना दिया। उन्होंने लोगों में आत्म-सम्मान, देश प्रेम, स्वतन्त्रता और अपने पूर्वजों पर गौरव करने का भाव भर दिया। यही भाव बाद में स्वतन्त्रता आन्दोलन के कारण हुए।

स्वामी दयानन्द समाज सुधार कार्य में तो ब्रह्म समाज, थियोसॉफिकल सोसाइटी और ईसाई पादरियों से सहमत थे परन्तु धार्मिक सिद्धांतों में उनके पूर्ण विरोधी थे। उनका नाद था "वेद की शरण लो"। ब्रह्म समाज को 'वेदों में परमात्मा की वाणी है' इस सिद्धांत में विश्वास नहीं था। ईसाई केवल बाइबिल को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे

और थियोसॉफिस्ट सब धर्मों की पुस्तकों को ईश्वरीय मानते हैं। परन्तु स्वामी जी ने कहा कि वेद की संहिता ही ईश्वरीय ज्ञान है और परमात्मा के अंतिम वाक्य। ब्रह्म समाज पर ईसाइयत का बहुत प्रभाव था, परन्तु स्वामी दयानन्द केवल प्राचीन हिंदू सभ्यता के पुनरुत्थान के पक्षपाती थे।

स्वामी जी ने पहली आर्य समाज बम्बई में सन् १८७५ में खोली। दो वर्ष पश्चात् लाहौर में भी आर्य समाज की स्थापना हुई। लाहौर वाली समाज की बहुत उन्नति हुई और यह सारे आर्य समाज आंदोलन का केन्द्र बन गई।

आर्य समाज के नियम

आर्य समाज के दस नियम इस प्रकार हैं :—

(१) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल-परमेश्वर है।

(२) ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करने योग्य है।

(३) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

(४) सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिये।

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिये।

(६) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य व्यवहार करना चाहिये।

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से संतुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन करने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में स्वतन्त्र।

आर्य समाज के कृत्य

आज उत्तरी भारत के कोने-कोने में आर्य समाज की शाखाएँ विद्यमान हैं। यह एक जीवित संस्था है जिसके कार्यकर्ताओं का समूह उत्साह से परिपूर्ण है। आर्य समाज ने हिंदुओं को व्यर्थ के भ्रमजाल और मिथ्या आडम्बरों से मुक्त करा कर अपने पुरातन

धर्म में निष्ठावान होना सिखाया है। शुद्धि करना और अन्य मतावलम्बियों को हिन्दू धर्म में मिलाना इसी ने दर्शाया है। जातीय ज्योति का जागरण और सुव्यवस्थित सामाजिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सुधार इसी के प्रताप से आविर्भूत हुए हैं। गुरुकुल, दयानन्द कालिज और अन्य संस्थाएँ स्थापित करके इसने वैदिक शिक्षा और अध्ययन का प्रचार किया है। लड़कियों और अछूतों को शिक्षित करने में भी इसका बहुत बड़ा हाथ है। विधवा आश्रम और अन्य आश्रम स्थापित करके विधवाओं और अनाथों को अन्य धर्मों में जाने से रोकना और हिंदुओं के मरण जीवन, शादी-ब्याह आदि की रीतियों को सरल करने के कार्य भी इसी ने किये हैं।

थियोसॉफिकल सोसाइटी

थियोसॉफिकल सोसाइटी की स्थापना मैडम ब्लैवट्स्की और कर्नल अल्काट ने ७ दिसम्बर, १८५७ को न्यूयार्क में की। इसके चार साल पश्चात् दोनों संस्थापक भारत में आये और मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत अड्यार में उन्होंने अपना मुख्य केन्द्र स्थापित किया।

थियोसोफी समस्त धर्मों की मौलिक सत्यता में विश्वास रखती है। इसकी दृष्टि में सब धर्मों की शिक्षा और सार एक ही है। परन्तु वह बौद्ध तथा हिंदू धर्म को सब का सबसे उत्तम तथा पूर्ण रूप मानती है। यह धर्म परिवर्तन में विश्वास नहीं रखती और सब धर्मावलम्बी इसके सदस्य बन सकते हैं। यह आवागमन और कर्म के सिद्धांत में भी विश्वास रखती है और जाति पाँति, ऊँच नीच, काले-गोरे के भेद को नहीं मानती। यह एक ऐसे भेद-भाव रहित व्यक्तियों के समाज की रचना करना चाहती है जो कि सत्य का अनुसंधान और मनुष्य मात्र की सेवा करना चाहते हैं। इसके निम्न तीन ध्येय हैं :—

१. जाति, उपजाति, धर्म और रङ्ग के भेद को हटा कर विश्वव्यापी भ्रातृत्व के लिए एक केन्द्र स्थापित करना।

२. समस्त धर्मों, सिद्धांतों और विज्ञान का संक्षेप अध्ययन करना।

३. मनुष्य की गुप्त शक्तियों और प्रकृति के गूढ़ नियमों का स्पष्टीकरण करना।

थियोसॉफिकल सोसाइटी को जगद्विख्यात करने में एक आयरिश महिला श्रीमती एनी बीसेंट का बहुत बड़ा हाथ है। वह भारत को अपनी मातृ भूमि मान कर हिन्दू बन गई थीं। *उन्होंने हिंदू धर्म की ईसाइयों के आक्रमणों से रक्षा की और भारत के लिए* राजनीतिक और सामाजिक सुधार का बहुत काम किया। पूरे ४० वर्ष तक इस महान् महिला ने भारत में रह कर अपनी समस्त शक्तियाँ हिंदू जाति की सेवा में लगा दीं। उसने मूर्ति पूजा आदि का भी जिसे युक्तियुक्त सिद्ध करना कठिन था, प्राचीन और अर्वाचीन विज्ञान की सहायता से मंडन किया। सत्य तो यह है कि किसी भी

एक व्यक्ति ने हिंदू धर्म की श्रेष्ठता स्थापित करने में इतना काम नहीं किया जितना एनी बीसेंट ने।

थियोसॉफिकल सोसाइटी के कृत्य

थियोसॉफिकल सोसाइटी ने भारतीय समाज की बड़ी सेवाएँ की हैं। इसने सब धर्मों में सद्भाव बढ़ाने के लिए सहिष्णुता का प्रचार किया और अपनी सभ्यता पर हमें गर्व करना सिखाया। इसने संसार भर में हिन्दुत्व का प्रचार किया। इसके नेताओं ने राजनीतिक क्षेत्र में भी काम किया।

वेदान्त समाज

थियोसॉफिकल सोसाइटी यद्यपि हिन्दू धर्म और भारत की प्राचीन संस्कृति का मण्डन करती थी, परन्तु वह समस्त हिन्दू धर्म का व्याख्यान न करती थी और न अपने कथन का आधार वेदांत पर स्थापित ही करती थी। यह काम एक बङ्गाली साधु श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस और उनके शिष्य स्वामी विवेकानंद ने किया। उन्होंने सारे संसार में उपनिषदों की शिक्षा का प्रचार किया और संसार को हिंदू फिलासफी का प्रशंसक बना दिया। उन्होंने जिस समाज की स्थापना की वह वेदांत समाज कहलाता है।

स्वामी रामकृष्ण—श्री स्वामी रामकृष्ण परमहंस सन् १८३४ में हुगली परगने के एक धनहीन ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए थे। बाल काल से ही उनकी स्मृति तीव्र और धर्म प्रेम असाधारण था। वह बहुत पंडित नहीं थे और इसलिए एक साधारण पुजारी के व्यवसाय से ही अपना निर्वाह करते थे। काली देवी को वह संसार की और अपनी माता समझते थे और उनके चिंतन में लीन होकर तन-मन की सुधि भुला देते थे। उनका विश्वास था कि परमात्मा का साक्षात्कार हो सकता है, इसलिए कई वर्षों तक उन्होंने कठिन तपस्या और भक्ति का जीवन बिताया। एक बार ६ मास तक समाधि अवस्था में रहे और इसके पश्चात् उन्हें अनुभव हुआ कि उन्हें भगवान् कृष्ण के साक्षात दर्शन हुए हैं। उनको इस सिद्धि में उन्हें एक परम विद्वान् ब्राह्मण साध्वी सन्यासी तोतापुरी महंत से बहुत सहायता मिली। उन्होंने परमहंस जी को वेदान्त और योग के गूढ़ रहस्य बतलाये।

परमात्मा के दर्शन के पश्चात् श्री रामकृष्ण ने अछूतों और अन्य मतावलम्बियों से घृणा दूर करने का अभ्यास किया। इसलिए उन्होंने चांडाल की वृत्ति धारण की और पाखाना और गन्दी नालियाँ साफ कीं। मुसलमान और ईसाइयों का धर्म समझने के लिए उन्होंने उन जैसा रहन सहन अख्तियार किया। अन्त में उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि सब धर्म सच्चे हैं और एक ही स्थान पर पहुँचने के वे भिन्न-भिन्न साधन हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी—परमहंस श्री रामकृष्ण के सबसे योग्य शिष्य स्वामी

विवेकानन्द हुए जो कलकत्ता के एक बड़े घराने के उच्च शिक्षा पाये हुए नवयुवक थे। सन् १८८६ में गुरु के स्वर्गवास पर उन्होंने गुरु के संदेश को चारों ओर फैलाने का भार अपने कन्धे पर लिया। यह कालम्बो होते हुए अमेरिका, कनेडा और इंगलैंड पहुँचे और इन सब देशों में उन्होंने हिन्दू धर्म का प्रचार किया। सन् १८९३ में शिकागो के सर्व धर्म सम्मेलन में अपने हिन्दू सिद्धान्तों का वह महत्त्व बताया कि समस्त सदस्य उनकी भारी प्रशंसा करने लगे। इसी समय न्यूयार्क हेरल्ड पत्र ने लिखा :—

"सर्व धर्म सम्मेलन में विवेकानन्द का दिव्य मूर्ति ही समस्त सभा मण्डल पर छा रही है। उनके प्रवचन सुनने के बाद हम ऐसा अनुभव करते हैं कि इतनी महान् शिक्षित जाति को इसाई मिशन भेजने में हम कितनी मूर्खता करते हैं।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु के नाम पर रामकृष्ण मिशन की स्थापना की और प्रचारक तैयार करने के लिए कलकत्ता के निकट वैलूर और अलमोड़ा के निकट मायावती में मठ स्थापित किये। जब कभी देश में कहीं अकाल, बाढ़ या महामारी पड़ जाती है तो यही मठ सन्यासी पीड़ितों की सहायता के लिए सबसे आगे होते हैं।

स्वामी रामतीर्थ—वेदान्त के प्रचार कार्य में स्वामी रामतीर्थ ने भी बहुत बड़ी सहायता दी। वह आरम्भ में लाहौर के गवर्नमेंट कॉलेज में प्रोफेसर थे परन्तु बाद में नौकरी छोड़कर वह सन्यासी हो गये। उन्होंने जापान, अमेरिका तथा यूरोप में भ्रमण करके वेदान्तवाद का प्रचार किया। उनके भाषण की शैली इतनी प्रभावयुक्त तथा मनमोहिनी थी कि हजारों की संख्या में पुरुष और स्त्रियाँ उनका भाषण सुनने के लिए उतावली रहती थीं। अमेरिका के पूर्व प्रधान रूजवेल्ट भी आपके भक्त बन गये थे। इनकी मृत्यु सन् १९०३ में बहुत अल्प आयु में ही हो गई जब वह केवल ३३ वर्ष के ही थे।

वेदान्तवाद के मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं :—

१ सब धर्म एक समान अच्छे और सत्य हैं। अतः हर व्यक्ति को अपने ही धर्म में रहना चाहिये।

२ परमात्मा अव्यक्त, अज्ञेय और प्रतिबन्ध रहित है। उसका साक्षात्कार संसार के किसी भी भाग में सभी मनुष्यों को हो सकता है। मनुष्य की आत्मा सचमुच ईश्वरीय है। सब मनुष्य स्वतन्त्र हैं। मूर्ति पूजा, अति शुद्ध और उच्चकोटि की आत्मिक पूजा है। हिंदू धर्म के सब ग्रन्थ सच्चे और उत्तम हैं।

३. हिंदू सभ्यता, अति प्राचीन और सुन्दर है तथा आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है।

४. पाश्चात्य सभ्यता, स्थूल, स्वार्थी और लम्पट है, इसलिए एक हिंदू को अपने धर्म, जाति और समाज को पाश्चात्य सभ्यता के विष से बचाने के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

वेदान्तवादियों के कृत्य

वेदान्तवादियों ने भारत के पढ़े लिखे नवयुवकों को बहुत प्रभावित किया है। उन्होंने भारतीयों को अपने पाँव पर खड़ा होना और स्वावलम्बी बनना सिखलाया है। उन्होंने हिंदू संस्कृति का पोषण किया है। उन्होंने रोगियों की सेवा और शिक्षा के प्रचार का भी बहुत बड़ा कार्य किया है। अमेरिका के नगरों न्यूयार्क, बोस्टन, वाशिंगटन, पिट्सबर्ग और सैं फ्रांसिस्को में भी वेदान्त सभा विद्यमान है।

राधास्वामी मत

राधास्वामी विचार धारा उन मतों में से एक है जिसका कार्य क्षेत्र अधिक विस्तृत नहीं और इसने सार्वजनिक रूप धारण नहीं किया है। राधास्वामी सत्सङ्ग की स्थापना सन् १८६१ में आगरा के एक खत्री श्री शिवदयाल जी महराज ने की थी। उन्होंने घोषणा की कि परमात्मा ने स्वयं उनको राधास्वामी का सन्त सत्गुरु बना कर भेजा है। उनका देहान्त १८७६ में हो गया।

इसके पश्चात् राय सालिग्राम और श्री ब्रह्म शङ्कर जी गुरु की गद्दी पर बैठे। चौथे गुरु आनन्द स्वरूप जी ने धार्मिक शिक्षा के अनन्तर औद्योगिक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया और दयालबाग आगरे का सुन्दर नगर बनाया जहाँ इन्जिनियरिंग कॉलिज, गोशाला और कई अन्य प्रकार के कारखाने हैं।

सत्सङ्ग की शिक्षा सदस्यों के अतिरिक्त और किसी को नहीं बताई जाती। सत्सङ्गी गुरु को ही सब क्रियाओं का केन्द्र तथा भगवान् का अवतार और सांसारिक विकास का उत्तम स्वरूप मानते हैं। वह हर पदार्थ को जिसे गुरु छू लेता है अति पवित्र मानते हैं। वह समझते हैं कि गुरु की पूजा से ही भगवान् की प्राप्ति हो सकती है।

सत्सङ्गी जाति पाँति में विश्वास नहीं रखते और आपस में भ्रातृ भाव से बर्ताव करते हैं। यह धर्म सनातन धर्म का एक अंग है। इसके सदस्य भक्ति मार्ग में विश्वास रखते हैं।

राधास्वामियों ने औद्योगिक विकास के लिए कई उद्योगशालाएँ स्थापित की हैं। जात पाँत का भाव नष्ट करने तथा स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने कार्य किया है। हिंदुओं के भक्ति मार्ग को पुनर्जीवित करने में भी उनका हाथ है।

सब धार्मिक आन्दोलनों में समान बातें

१९वीं शताब्दी में हिंदू धर्म और सभ्यता का अधःपतन पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। ऐसे समय में देश में कई धार्मिक प्रचारक और समाज सुधारक प्रकट हुए जिन्होंने हिंदू धर्म का पुनरुत्थान किया। इन धार्मिक आन्दोलनों का संक्षिप्त वर्णन हमने ऊपर दिया है। अब हम इन आन्दोलनों की मौलिक समानताओं का वर्णन करेंगे।

१. सब आन्दोलनों ने प्राचीन हिंदू संस्कृति से प्रेरणा ली है।

२. अधिकांश आंदोलनों का ध्येय हिंदू धर्म से कुरीतियों तथा अन्ध विश्वास को दूर करना था।

३. एक परमात्मा की पूजा सब आंदोलनों का ध्येय था।

४. सबने शुद्ध आचार और निराकार ईश्वर की पूजा सिखाई।

५. आर्य समाज को छोड़ कर, सब आदोलनों ने सब धर्मों की एकता तथा सहिष्णुता का प्रचार किया है।

६. सब मतों ने भारतीय स्त्रियों को उनका वास्तविक ऊँचा स्थान दिलवाने का प्रयत्न किया है।

७. सब ने जात-पाँति के कड़े प्रतिबन्धों को हटाकर समयानुकूल युक्ति-युक्त समाज निर्माण करने का प्रयत्न किया है।

८. सब आन्दोलनों ने भारतीय विचार धारा और हिंदू विचार-धारा को प्रगतिवाद की ओर अग्रसर किया है।

९. इनका प्रभाव भारत की समस्त जातियों को संगठित करने और उनके भेद-भावों को मिटाने में परिणत हुआ।

१०. भारत में राष्ट्रीयता के निर्माण के लिए उन्होंने बहुत बड़ा कार्य किया है।

धर्म और राष्ट्रीय भावना

हम बता चुके हैं कि सामाजिक, राजनीतिक और भारत के आर्थिक जीवन में धर्म का बड़ा भारी प्रभाव है। हम यहाँ देखने का प्रयत्न करेंगे कि वास्तविक धर्म राष्ट्रीय भावना का विरोधी है या पोषक।

सच्चा धर्म राष्ट्रीयता अथवा अन्तर्राष्ट्रीय का विरोधी नहीं वरन् उसका रक्षक होता है। वह हमें एक अच्छा अनुशासनपूर्ण, सेवाभाव से ओत प्रोत, ईश्वर-भक्त नागरिक बनना सिखाता है। वह हममें सहानुभूति, सेवा, सौन्दर्य तथा त्याग के भाव उत्पन्न करता है जो कि एक देशभक्त व्यक्ति के लिए आवश्यक गुण हैं।

भारत में अज्ञानवश लोग धर्म का वास्तविक अर्थ नहीं समझते। वह धर्म के नाम पर एक दूसरे का सिर फोड़ते हैं। संसार का कोई भी धर्म घृणा और असहिष्णुता की शिक्षा नहीं देता। सब धर्म परमात्मा की प्राप्ति का उपदेश देते हैं। धर्म को राजनीतिक क्षेत्र में न लगाकर उसे परमात्मा और आत्मा के सम्बन्ध तक ही सीमित रखना चाहिये। इस दृष्टिकोण से यदि हम धर्म को देखें तो वह राष्ट्रीय भावना का शत्रु नहीं वरन् उसका पोषक है।

योग्यता प्रश्न

१. उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक आन्दोलनों में किन्हीं दो आंदोलनों की मुख्य बातें बताइये। (यू० पी०, १६३२)

२. विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों में आप क्या समानता पाते हैं? (यू० पी०, १६३०)

३. भारतीय नागरिक जीवन पर धर्म का क्या प्रभाव पड़ा? (यू० पी०, १६३५)

४. भारत के विभिन्न धार्मिक आन्दोलनों का वर्णन कीजिये तथा उनके प्रभाव की व्याख्या कीजिये। (यू० पी०, १६४२)

५. भारत के प्राचीन धर्म को सुधारने के लिए उन्नीसवीं शताब्दी में कौन से धार्मिक आन्दोलन हुए? (यू० पी०, १६३६)

६. धर्म का वास्तविक स्वरूप क्या है? क्या धार्मिक दृष्टिकोण के कारण भारत की आर्थिक और राजनीतिक अवनति हुई है?

७. क्या धर्म राष्ट्रीय भावना का विरोधी है?

८. पिछले पचास वर्षों में भारतीय समाज सुधार की प्रगति का वर्णन कीजिये। उसका नागरिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है? (यू० पी०, १६५१)

६. थियोसोफिकल समाज पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (यू० पी०, १६५३)

को भी प्रभावित करती हैं और जीवन में एक धार्मिक दृष्टिकोण को बनाये रखने में सहायता देती हैं।

परन्तु, कैसे दुर्भाग्य की बात है कि ऐसे धर्मपरायण देश में भी अधिकतर व्यक्ति ऐसे हैं जो इन रीति रिवाजों, उत्सव व त्यौहारों को किसी विशेष धार्मिक भावना श्रद्धा व भक्ति भाव से नहीं देखते, और न इन कार्यों को करने से पहले वह यह ही सोचते हैं कि उनका वास्तविक महत्त्व क्या है या वह इस प्रकार क्यों मनाये जाते हैं या उनके पीछे क्या इतिहास छिपा है या समाज की वर्तमान दशा में उनमें किसी परिवर्तन की आवश्यकता है अथवा नहीं, या हमारी बुद्धि की कसौटी पर वह रीति रिवाज अथवा रस्म पूरे उतरते हैं कि नहीं। पढ़े लिखे, शिक्षित और बुद्धिवादी नवयुवक भी इन सब बातों को अपने जीवन का साधारण अंग मानकर उदासीन वृत्ति से उनको मना लेते हैं। परन्तु आज तक इतने विशाल जन समाज में किसी संस्था अथवा व्यक्ति ने यह प्रयत्न नहीं किया कि वह हमारे विभिन्न रीति रिवाजों, रस्मों, उत्सवों इत्यादि का वैज्ञानिक विश्लेषण करें, उनके इतिहास अथवा उद्गम की खोज करें, उनकी उपयोगिता के विषय में अनुसंधानात्मक अध्ययन करें तथा संसार के शिक्षित एवं सभ्य समाज को समझने का प्रयत्न करें कि भारत के धार्मिक जीवन का आधार कितना वैज्ञानिक है अथवा उसमें बदलते हुए जमाने में किन्हीं परिवर्तनों की आवश्यकता है अथवा नहीं। हमें ऐसे अध्ययन की आवश्यकता है जिससे धर्म की वास्तविकता का ज्ञान हो सके और हम उन सभी घास-फूस तथा कूड़े करकट को अपने धार्मिक कृत्यों के ऊपर से दूर कर सकें जिनके कारण हमारे धर्म का वास्तविक निर्मल स्वरूप छिप गया है और हम बाहरी दिखावे, रीति रिवाजों, रहन सहन, पूजा, माला, मन्दिर, उत्सव व तीर्थों में ही अपने धार्मिक कर्तव्यों की इतिश्री समझने लगे हैं।

भारत एक राष्ट्र

बहुत से लोग भारत में विभिन्न धर्मों, मत मतान्तरों तथा विश्वासों के लोगों की बहुतायत देखकर कहते हैं कि हमारा देश एक राष्ट्र नहीं वरन् विभिन्न जातियों एवं उपजातियों का अजायबघर है। वास्तव में ऐसे लोग यह भूल जाते हैं कि हमारे देश की सबसे बड़ी विशेषता "अनेकता में एकता" है। यह सच है कि हमारे देश में अनेक मत-मतान्तरों, धर्म, भाषा, नस्ल तथा जातियों के लोग रहते हैं, परन्तु हमारे देश ने उन सब को एक रूप करके एक ही संस्कृति का अविच्छिन्न अंग बना लिया है। हमारे देश की संस्कृति में विभिन्न जातियों तथा धर्मों का सामंजस्य होकर एक मिली जुली संस्कृति का निर्माण हो गया है। सब लोग जानते हैं कि एशिया के भिन्न भिन्न हिस्सों से द्रविड़, आर्य, शक, मङ्गोल, अरब, तुर्क, तातार, अफगान आदि जातियाँ हमारे देश में आई,

परन्तु वह सब यहाँ आकर एक रूप हो गईं। आज हम में से कोई यह नहीं कह सकता कि वह शुद्ध आर्य, या शुद्ध तुर्क या शुद्ध मुसलमान है और उसकी जाति के रक्त में किसी दूसरे जाति के रक्त का मिश्रण नहीं हुआ है। हमारे संगीत, चित्रकला, मन्दिर व भवन निर्माण कला में सब धर्मों व जातियों की कलाएँ सम्मिलित हैं, और उन सब की विशेषताएँ विद्यमान हैं। भारत के किसी भी प्रान्त में रहने वाले हिन्दू विभिन्न भाषाओं तथा रीति रिवाज में विश्वास रखते हुए भी सब समान मूलगत सिद्धान्तों में विश्वास रखते हैं। वह सब वेदों, स्मृतियों, ब्राह्मण ग्रन्थों तथा गीता को पवित्र धर्म पुस्तक मानते हैं, सब राम और कृष्ण की पूजा करते हैं। गऊ को अपनी माता के तुल्य मानते हैं। सब गंगा, यमुना तथा गोदावरी के जलों को पवित्र समझते हैं। उनके तीर्थ-स्थान भारत के सभी प्रान्तों में स्थित हैं और सब प्रान्तों के लोग अपनी आत्मा की शान्ति के लिए इन स्थानों पर जाना अपना धर्म समझते हैं। पुरी, द्वारिका, बद्रीनाथ तथा रामेश्वर हमारे देश के पावन तीर्थ हैं। राष्ट्रीय एकता के निर्माण की दृष्टि से यह तीर्थ देश के चार कोने में बसे हुए हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न प्रान्तों में रहते हुए, विभिन्न रीति रिवाजों पर चलते हुए तथा विभिन्न भाषा बोलते हुए भी सब हिंदू एक विशाल हिंदू समाज के अविभाज्य अंग हैं। वह सब गंगा, गायत्री, गीता और गौ को पवित्र मानते हुए, एकादशी, अमावस्या व पूर्णिमा के पुण्य पर्वों में विश्वास रखते हुए तथा एक ही धर्म की डोरी पिरोये हुए एक राष्ट्र के अंग हैं।

इसी प्रकार बाहर से देखने पर चाहे हिंदू और मुसलमान ऐसे लगें कि उनमें किसी प्रकार की समानता नहीं है और वह भिन्न राष्ट्रों के सदस्य हैं, परन्तु यदि गूढ़ दृष्टि से देखा जाय तो पता चलेगा कि उनके रीति रिवाज, विश्वास, रहन सहन, खान पान तथा संस्कारों में एक दूसरे के धर्म का गहरा पुट है। हिन्दू और मुसलमानों की कला, आर्ट, भाषा, रीति रिवाज, उत्सव, मेले, शादी विवाह, पूजा के तरीकों, पहनाव, व्यवहार तथा रहन सहन पर एक दूसरे धर्म का गहरा प्रभाव पड़ा है। हमारे गाँवों में रहने वाले हिंदू और मुसल्मानों में कोई आदमी किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं कर सकता है। दोनों एक ही प्रकार के वस्त्र पहनते हैं, एक ही प्रकार की वन्दना करते हैं, एक ही प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं तथा सब एक दूसरे के उत्सवों, त्यौहारों तथा मेलो ठेलों में भाग लेते हैं। मुस्लिम लीग की साम्प्रदायिक नीति के कारण हमारे देश के हिंदू और मुसलमानों में कुछ मनमुटाव हो गया था, परन्तु पाकिस्तान बन जाने के पश्चात् मुसलमान समझ गये हैं कि वह एक ही राष्ट्र के घटक हैं और उन सबके समान हित हैं।

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन

हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में दो बातें मुख्य रूप से पाई जाती हैं। (१) जाति व्यवस्था और (२) सम्मिलित कुटुम्बों की प्रथा।

जाति प्रथा (Caste System)

जाति पाँति की प्रथा हमारे समाज की एक अत्यन्त प्राचीन परम्परा है। इस प्रथा का वेदों में तो वृत्तान्त नहीं मिलता, परन्तु स्मृतियों में इसका वर्णन किया गया है। जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक स्मृति में कहा गया है कि ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से, क्षत्री उसकी भुजाओं से, वैश्य जङ्घा से तथा शूद्र पैरों से उत्पन्न हुए हैं। ब्रह्मा के पुत्र होने के कारण प्राचीनकाल में सब वर्णों में समानता थी। एक वर्ण दूसरे से नीचा नहीं समझा जाता था। सब वर्णों के लोगों को बराबर के अधिकार प्राप्त थे। वर्णों का विभाजन काम करने की योग्यता तथा कार्य विभाजन के सिद्धांत पर किया गया था। ब्राह्मण शिक्षा देने तथा ज्ञान का प्रसार करने का कार्य करते थे। क्षत्रियों पर राष्ट्र के शासन तथा उनकी रक्षा का भार था। वैश्य कृषि, व्यापार व व्यवसायों को संगठित करते थे और शूद्रों के जिम्मे दूसरे वर्णों की सेवा का कार्य था। इस काल में वर्ण व्यवस्था का निश्चय जन्म से नहीं वरन् कर्म से किया जाता था। यदि किसी शूद्र की सन्तान ब्राह्मण कर्म के योग्य होती थी तो वह ब्राह्मण वर्ण में सम्मिलित मान ली जाती थी। सभी वर्णों में सहयोग और पारस्परिक प्रेम की भावना थी।

जाति भाँति की व्यवस्था के लाभ

इस वर्ण व्यवस्था के मुख्य रूप से निम्न लाभ थे।

(१) *कार्य कुशलता*—सर्व प्रथम इस व्यवस्था के कारण प्राचीन काल में समाज कार्य अत्यन्त सुचारु रूप से चलता था और प्रत्येक वर्ण के लोग अपना निर्दिष्ट काम करते थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् पुत्र का काम पहले से ही निश्चित रहता था। वह वंश परम्परागत से होने वाले कार्यों को ही करता था इससे प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य में अत्यन्त दक्ष तथा कुशल होता था। इस काल में शिक्षा संस्थाओं के अभाव में वर्ण व्यवस्था के कारण ही लोग एक प्रकार की टैक्निकल शिक्षा प्राप्त करते थे।

(२) *सामाजिक उन्नति*—वर्ण व्यवस्था के कारण एक जाति व बिरादरी के लोगों में अधिक प्रेम तथा सहानुभूति देखने को मिलती थी। जाति के लोग एक दूसरे से भली भाँति परिचित रहते थे तथा एक दूसरे के दुःख व सुख में काम आते थे। जाति एक प्रकार के क्लब तथा बीमे कंपनी की संस्था का काम करती थी। जाति के लोग अपने सदस्यों की सुविधा के लिए अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद के केंद्र, धर्मशाला, मन्दिर, सार्वजनिक कुएँ इत्यादि बनाते थे। एक वर्ण के लोग दूसरे की सहायता करना ही अपना परम धर्म समझते थे।

(३) *व्यक्तित्व का विकास*—जाति पाँति की प्रथा के कारण जनता को अपने व्यक्तित्व का विकास करने का भी अधिक अवसर मिलता था। कारण, एक जाति के लोग आज की तरह एक व्यक्तिगत नहीं वरन् सामूहिक जीवन व्यतीत करते थे। जाति

के बड़े वयोवृद्ध नेता, छोटे बच्चों, असहाय परिवारों तथा निर्धन कुटुम्बों की सहायता करना अपना सबसे बड़ा धर्म समझते थे। एक जाति के अन्दर पूर्ण समानता का व्यवहार किया जाता था। सब व्यक्ति धन-दौलत, मकान, जायदाद, बड़े छोटे के भेदभाव के बिना बराबर समझे जाते थे और जाति की संस्था इस बात का प्रबन्ध करती थी कि प्रत्येक छोटे से छोटे व्यक्ति के लिए शिक्षा तथा रोजगार की पूर्ण सुविधा प्राप्त होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जब तक वर्ण व्यवस्था ने जटिल रूप धारण नहीं किया था, इस प्रथा से बहुत से लाभ थे। परन्तु धीरे धीरे हिंदुओं की यह वर्ण व्यवस्था अत्यन्त जटिल रूप धारण करती चली गई। वर्णों का विभाजन कर्म के स्थान पर जन्म से किया जाने लगा और प्रत्येक वर्ण में सहस्रों जातियाँ और उप जातियाँ उत्पन्न हो गईं। आजकल इन जातियों की संख्या तीन हजार से चार हजार के बीच आँकी जाती है। जाति पाँति के बन्धनों में कठोरता आ जाने से शादी विवाह, लेन देन तथा गोद इत्यादि की रस्मों में जाति पाँति का विचार रक्खा जाने लगा और एक जाति के लोग दूसरी जाति को अपने से नीचे मानने लगे। इसी काल में शूद्रों का पतन हुआ और उन्हें हर प्रकार के अधिकारों से वंचित कर दिया गया।

जाति-पाँति की व्यवस्था के दोष—वर्तमान युग में जाति-पाँति की प्रथा से लाभ तो बहुत कम हैं परन्तु दोषों की भरमार है :—

(१) सर्व प्रथम, यह प्रथा अप्रजातन्त्रवादी है। यह मनुष्य के दृष्टिकोण को अत्यन्त संकुचित बना देती है। यह एक ही समाज के व्यक्तियों में एक गहरी खाई उत्पन्न कर उनमें मेल जोल तथा परस्पर प्रेम की भावना को कम कर देती है।

(२) यह समानता के सिद्धांत का विरोधी है और ऊँच नीच तथा छोटे-बड़े की भावना का पोषक है।

(३) इसके कारण, समाज की आर्थिक उन्नति में भी बाधा पड़ती है, कारण सब व्यक्ति स्वतन्त्र रूप से कोई भी व्यवसाय नहीं कर सकते। उनका पेशा उनकी जाति के आधार पर निश्चित किया जाता है। अनेक लोग जो अपनी जाति के बाहर का पेशा करके देश की दौलत व पैदावार को बढ़ा सकते हैं, स्वतन्त्र रूप से कार्य नहीं कर पाते। उनके रास्ते में तरह-तरह के रोड़े अटकाये जाते हैं।

(४) इस प्रथा के अधीन सब लोग बराबर का काम नहीं करते। कुछ लोग जीवन भर काम करते हैं फिर भी भूखों मरते हैं और कुछ दूसरे आराम से खाला बैठकर मौज उड़ाते हैं। हमारे देश के ब्राह्मण, पंडे, पुजारी व साधुओं का उदाहरण हो ले लीजिये। यह लोग अपने उच्च वर्ण के कारण बिना काम किये ही दान पुण्य के सहारे मौज उड़ाते हैं और किसी प्रकार का काम नहीं करते। इससे न केवल समाज ही निर्धन बनता है वरन् परोपजीवी व्यक्तियों का चरित्र भी भ्रष्ट हो जाता है।

(५) इस प्रथा के कारण उच्च वर्ण के लोगों में व्यर्थ का दम्भ तथा घमंड उत्पन्न हो जाता है और वे केवल उच्च जाति में जन्म लेने के कारण अपने आपको बड़ा समझने लगते हैं।

(६) चुनावों में इस प्रथा के कारण साम्प्रदायिकता का खुला खेल खेला जाता है। उम्मीदवार मतदाताओं से यह कह कर राय माँगते हैं कि हम उन्हीं की बिरादरी के सदस्य हैं और इसलिए हमको राय पड़नी चाहिये। नौकरियों के क्षेत्र में भी इसी प्रकार की माँग दोहराई जाती है कि वह अपनी ही बिरादरी के लोगों को नौकरी पर लगायें।

(७) अन्त में, इस प्रथा के कारण स्त्रियों को उनके अधिकारों से वञ्चित कर दिया जाता है। जाति के ठेकेदार उन्हें किसी प्रकार की स्वतन्त्रता नहीं देते। उन्हें घर की चहारदिवारी में बन्द रक्खा जाता है। स्त्रियों के स्वतन्त्र रूप से विवाह करने या अपने पति का स्वयं चुनाव करने की तो इस प्रथा के अन्तर्गत बात ही नहीं उठती।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान मशीन, विज्ञान तथा प्रजातन्त्र शासन के काल में यह प्रथा अत्यन्त हानिकारक बन गई है। वर्तमान युग में इस प्रथा के साथ चिमटे रहने से कोई भी लाभ नहीं। इस प्रथा का जितना ही शीघ्र अन्त हो जाय उतना ही अच्छा है।

शिक्षा की प्रगति से हमारे जाति पाँति के बन्धन स्वयं टूटते जा रहे हैं परन्तु यदि यह भीषण दोष हमारे सामाजिक संगठन से समूल नष्ट नहीं हो सका है तो इसके मुख्य रूप से दो कारण हैं। एक यह कि हम अपने नामों के सम्मुख शर्मा, वर्मा, गुप्ता, टंडन कक्कड़, ठाकुर, मित्तल; बाल्मीकि इत्यादि लिखने से परहेज नहीं करते और इस कारण, हमें सदा इस बात का आभास रहता है कि हम एक विशेष जाति के सदस्य हैं। दूसरे कायस्थ सभा, भटनागर सभा, माथुर सभा, राजपूत सभा, जाट सभा, वैश्य सभा इत्यादि—एक जाति के लोगों में पृथक्करण की भावना बनाये रखती हैं और उन्हें समाज के दूसरे अंगों के साथ घुल मिल कर रहने नहीं देतीं। शादी, विवाह, जन्म, मरण इत्यादि अवसरों पर जाति बिरादरी के लोगों को ही निमन्त्रित किया जाता है और इस कारण हमारा आपसी भेद भाव दूर नहीं हो पाता। परन्तु, अब धीरे धीरे शिक्षा के प्रसार से यह बन्धन भी ढीले पड़ते चले जा रहे हैं। इन बन्धनों को तोड़ने में हम बहुत बड़ी सहायता कर सकते हैं यदि हम सब अपने नाम के आगे अपनी जाति लिखना बन्द कर दें और विवाह के अवसर पर अपनी जाति की कन्या से ही रिश्तेदारी करने पर जोर न दें। आशा है हमारी आगे आने वाली संततियाँ इन दोनों सुझावों पर अवश्य विचार करेंगी।

हमें यह पूर्ण रूप से समझ लेना चाहिये कि यदि भारत में हमें एक सच्चे प्रजातन्त्र

राज्य को जन्म देना है और अपने नये विधान को सफल बनाना है तो हमें जाति-पाँति के भेद भावों को भुलाना पड़ेगा। डा० अम्बेदकर ने विधान सभा में ठीक ही कहा था, "यदि हमारा समाज सहस्रों जाति में विभक्त रहा, और चुनावों में हमने जाति पाँति की भावना से काम किया तो फिर हमारे देश में कागजी विधान कितना ही अच्छा हो, एक सच्चे जन-राज्य की स्थापना नहीं हो सकती।" प्रत्येक भारतवासी विशेषकर आज के विद्यार्थियों का इसलिए परमधर्म है कि वह हिन्दू समाज के इस कलंक को मिटाने का सतत् प्रयत्न करे।

संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली

हमारे सामाजिक जीवन की दूसरी बड़ा विशेषता सम्मिलित कुटुम्बों की प्रणाली है। सम्मिलित कुटुम्ब के अन्तर्गत एक ही परिवार में कई दम्पति तथा बच्चे रहते हैं। उन सब का एक दूसरे के साथ बहुत घनिष्ठ रक्त का सम्बन्ध होता है, उदाहरणार्थ एक परिवार में माता पिता, बाबा-दादी, चाचा-चाची, भाई भाभी, चचेरे भाई तथा बहिन और इसी प्रकार के सम्बन्धित लोग रहते हैं। परिवार के सभी व्यक्तियों का भोजन एक ही चौके में बनता है तथा वह सब मिल कर एक ही मकान में रहते हैं तथा एक ही व्यवसाय करते हैं। कुटुम्ब के सबसे प्रौढ़ व्यक्ति पर परिवार के पालन की सारी जिम्मेदारी रहती है। सम्पूर्ण कुटुम्ब का भरण-पोषण, बच्चों की शिक्षा तथा विवाहों का प्रबन्ध करना उसी का कार्य होता है। कुटुम्ब की मर्यादा तथा प्रथाओं की रक्षा करना भी उसी का काम होता है। परिवार के दूसरे सभी व्यक्ति उसकी आज्ञा के अनुसार कार्य करते हैं।

प्रथा के लाभ—संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली के अनेक लाभ हैं :—

(१) सर्व-प्रथम ऐसे कुटुम्ब में नागरिकता के कतिपय गुणों की विशेष शिक्षा मिलती है। इस प्रथा के कारण कुटुम्ब के सदस्यों में सहयोग मेल-जोल, सहिष्णुता, त्याग, बलिदान, प्रेम, सहानुभूति, तथा आज्ञापालन के यह सभी भाव विद्यमान हो जाते हैं जो एक अच्छे सामाजिक जीवन की जड़ हैं और जिनके कारण ही एक मनुष्य अच्छा नागरिक बन सकता है।

(२) दूसरे, संयुक्त परिवार बुढ़ापे, बीमारी, बेकारी, तथा दुर्घटना के समय एक बीमे की संस्था का काम देता है। परिवार के दूसरे सदस्य सङ्कट के समय एक दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझते हैं। आजकल जब हमारी सरकार, दूसरे प्रगतिशील देशों की भाँति, सामाजिक बीमे (Social Insurance) का प्रबन्ध नहीं करती तो संयुक्त परिवार प्रणाली ही इस काम को पूरा करती है।

(३) संयुक्त परिवार में खर्चे की भारी बचत होती है। थोड़े ही धन के खर्चे से

सारी गृहस्थी का काम चल जाता है। यदि घर के सभी व्यक्ति अलग अलग खाना पकायें, अलग अलग मकान किराये पर लें, इत्यादि तो इससे खर्चे में भारी बढ़ोतरी हो जाती है।

(४) संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली से घर की इज्जत तथा शान अधिक कायम रहती है। परिवार के सभी व्यक्ति अपना धन एक ही जगह जमा करते हैं, सब मिल कर एक साथ कमाते हैं, जायदाद खरीदते हैं तथा दान पुण्य करते हैं। इससे उनकी इज्जत बढ़ती है और परिवार का समाज में नाम होता है।

(५) संकट तथा मुसीबत के समय परिवार के सदस्य ही सबसे अधिक एक दूसरे की मदद करते हैं। अकेला मनुष्य अपने आपको असहाय तथा मित्रहीन पाता है।

हानि—परन्तु इन लाभों के होते हुए भी वर्तमान युग में संयुक्त परिवार की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त होती चली जा रही है। इसके अनेक कारण हैं :—

(१) सर्व प्रथम इस प्रथा के कारण परिवार के सदस्यों को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर नहीं मिलता। गृहकर्ता पर निर्भर रहने के कारण उनमें नेतृत्व तथा स्वतन्त्र निश्चय की भावना नष्ट हो जाती है।

(२) दूसरे, परिवार के भरण-पोषण की सारी जिम्मेदारी घर के सबसे बड़े व्यक्ति पर होने के कारण, दूसरे सदस्य अपने उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से अनुभव नहीं करते और वह आलसी, सुस्त, काहिल तथा परोपजीवी बन जाते हैं।

(३) इस प्रथा के अन्तर्गत परिवार के सभी सदस्यों पर बराबर का भार नहीं पड़ता। घर के कर्ता को गृहस्थी का सारा भार सहना पड़ता है। उसे दूसरों के सुख के लिए बहुत बड़ा त्याग करना पड़ता है। उसकी बीमारी या मृत्यु के कारण सारा प्रबन्ध गड़बड़ हो जाता है।

(४) सम्मिलित कुटुम्बों में अक्सर छोटी-छोटी बातों पर झगड़े हुआ करते हैं। विशेषकर स्त्रियाँ परस्पर सहयोग से नहीं रह पातीं। किसी एक भाई का परिवार बड़ा है, दूसरे का छोटा, एक भाई थोड़ा कमाता है, दूसरा अधिक, एक अधिक खर्चीला है, दूसरा कम—ऐसी छोटी छोटी बातों पर आये दिन झगड़े होते रहते हैं और परिवार एक शान्ति और सुख के केन्द्र के स्थान पर संघर्ष और कलह का घर बन जाता है।

(५) इस प्रथा के कारण घर की स्त्रियों को स्वतन्त्र वातावरण में रहने का अवसर नहीं मिलता। उन्हें सदा सास, श्वसुर तथा जेठ, जिठानी के कड़े नियन्त्रण में रहना पड़ता है। पर्दा प्रथा की भी यही प्रणाली पोषक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि लाभ के स्थान पर संयुक्त कुटुम्ब से हानि अधिक हैं। आजकल के युग में वैयक्तिक जीवन व्यतीत करने की भावना के कारण संयुक्त कुटुम्बों की प्रथा धीरे-धीरे नष्ट होती चली जा रही है। भारत की नव विवाहित स्त्रियाँ साथ

तथा श्वसुर के कड़े नियन्त्रण में रहना पसन्द नहीं करतीं। वह अपने पति के साथ रहकर एक स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करना चाहती हैं। यह मुख्य कारण है जिससे संयुक्त परिवार की संख्या बराबर कम होती चली जा रही है। आर्थिक कठिनाइयों तथा स्वतन्त्र-व्यवसाय को छोड़कर पढ़े-लिखे नवयुवकों में नौकरी करने की भावना से भी इन परिवारों का नाश हो रहा है।

जिस तेजी तथा जिन कारणों से हमारे संयुक्त परिवार नष्ट होते चले जा रहे हैं उन सब पर एक सक्षेप की नजर डालना कोई अच्छी बात नहीं। कारण, हमारे जीवन में स्वार्थपरता तथा वैयक्तिक भावना का विकास कोई वाञ्छनीय प्रगति नहीं। यदि हम अपने माता-पिता, सगे भाई-बहिन तथा निकट सम्बन्धियों के साथ प्रेम के साथ मिल कर नहीं रह सकते तो फिर हम किस प्रकार अपने समाज या राष्ट्र की सेवा कर सकते हैं? आज हम देखते हैं कि नगर में रहने वाले लोग अपने पड़ोसी का नाम नहीं जानते। उन्हें यह पता नहीं होता कि उन्हीं के मकान के दूसरे हिस्से में कौन सा किरायेदार रह रहा है। हम अपने स्वतः के जीवन में ही मस्त रहते हैं और कभी अपने पड़ास, नगर, जाति अथवा राष्ट्र की समस्याओं पर विचार नहीं करते। स्वार्थपरता, वैयक्तिक भावना, त्याग की कमी तथा संकुचित दृष्टिकोण—यह मुख्य कारण हैं जिनसे हमारे संयुक्त परिवार टूटते चले जा रहे हैं। हमें चाहिये कि हम इन परिवारों के दोषों को दूर करें न कि इतनी लाभदायी तथा उपयोगी प्राचीन संस्था को ही कुछ बुराइयों के कारण जड़-मूल से नष्ट कर दें।

भारतीय जीवन में स्त्रियों का स्थान

प्राचीन भारत—हमारे देश के प्राचीन इतिहास में स्त्रियों का स्थान अत्यन्त उच्चतम रहा है। वैदिक काल में स्त्रियों को ऊंचा से ऊँची शिक्षा दी जाती थी। वह ऋषियों के आश्रमों में शिक्षा प्राप्त करती थीं। उन्हें धार्मिक ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार था। वह शास्त्रार्थों में भाग लेती थीं। स्वयंवरों में उन्हें अपने पति स्वयं चुनने का अधिकार था। वह परदा नहीं करती थीं और पुरुषों के समान स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करती थीं। देश के शासन, राजनीति, साहित्य तथा कला के क्षेत्र में उनका स्थान ऊँचा था। गार्गी, मैत्रेयी, लीलावती, शकुन्तला, सीता, दमयन्ती, जैसी स्त्रियों के नाम आज भी हमारे इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित हैं।

जिस समय संसार के दूसरे देश अभी मध्यकालीन युग के अन्धकार में पड़े भूत और प्रेतों में ही विश्वास करते थे तो भारत में एक ऐसी संस्कृति का विकास हो चुका था जिसके अन्तर्गत, पुरुष ही नहीं, स्त्रियाँ भी वेद मन्त्रों की व्याख्या तथा धर्म ग्रन्थों का भाष्य करती थीं। उन्हें यह लक्ष्मी तथा शक्ति का अवतार मान कर उनकी पूजा की जाती

थी। परन्तु, भारत के इतिहास में एक समय ऐसा भी आया जब ब्राह्मणों के अत्याचार के कारण हमारी स्त्रियों को अज्ञानता व अधकार के गर्त में ढकल दिया गया। उन्हें सभी अधिकारों से वन्चित कर दिया गया। उच्च शिक्षा प्राप्त करना, धर्म ग्रंथों का अध्ययन करना, यज्ञोपवीत धारण करना, सामाजिक कार्यों में भाग लेना—उनके लिए निषिद्ध ठहरा दिया गया। बौद्ध धम ने उनकी स्थिति सुधारने का कुछ प्रयत्न किया, परन्तु शङ्कराचार्य ने आकर तथा उन्हें 'नरक क द्वार' क नाम से सम्बोधित करके एक बार फिर उन्हें घरेलू जीवन की चहारदीवारी में बन्द कर दिया।

मुसलमानों क काल में स्त्रियों की स्थिति और भी खराब हो गई। आततायियों के भय से छोटी आयु म ही उनकी शादियाँ की जाने लगीं। इसी काल म परदा प्रथा का भी रिवाज हुआ और स्त्रियों को घर की नौकरानी तथा बच्चो के पालन पोषण क लिए दासी का स्थान दे दिया गया।

स्त्रियों की दशा को सुधारने के लिए आन्दोलन

इस हीन अवस्था में स्त्रियों का उद्धार करने के लिए हमारे समाज सुधारकों ने अनेक प्रयत्न किये। कारण, हमारी प्राचीन संस्कृति और सभ्यता सदा से ही स्त्रियों के अधिकारों तथा समाज म उनके एक अत्यन्त ऊंचे स्थान की पोषक रही है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि जिस घर में स्त्रियों का आदर नहीं होता वहाँ देवता नहीं बसते। अर्द्धांगिनी क बिना हमारे गृहस्थ धम का कोई जप, तप अथवा यज्ञ सफल नहीं होता। इसलिए स्त्रियों का वही प्राचीन वैभव दिलाने क लिए हमारे इन समाज सुधारकों ने भरसक यत्न किया। परन्तु उन्हें अपने काय म विशेष सफलता नहीं मिली। इसका मुख्य कारण यह था कि हमारी अपनी स्त्रियाँ, अशिक्षित होने क कारण अपने अधिकारों के प्रति स्वत जागरूक नहीं थीं। इसलिए हमारी स्त्रियों की अवस्था म उस समय तक कोई विशेष सुधार नहीं हुआ जब तक बीसवीं शताब्दी के आरम्भ म महात्मा गांधी क नेतृत्व क कारण हमारे देश क नर और नारियों म एक नई राजनीतिक चेतना का सचार नहीं हुआ। हमारे राष्ट्रपिता क सत्याग्रह आंदोलन ने जनता में कुछ ऐसी नव शक्ति का सञ्चार किया कि पुरुष ही नहीं उसके प्रभाव से स्त्रियाँ भी न बच सकीं। सन् १९२१, ३०, ३२ तथा ४२ के सत्याग्रह आंदोलन म हमारे देश की सख्या स्त्रियाँ जेलों में गई और उन्होंने पुरुषों क साथ कधे से कधा मिला कर देश के स्वतन्त्रता सग्राम में भाग लिया। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, शराब व विलायती कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग, पुलिस की लाठियाँ व गालियाँ सहने का काम, जलसों व जुलूसों के नेतृत्व—अर्थात् स्वातन्त्र्य सग्राम के प्रत्येक क्षेत्र में ही उन्होंने भाग लिया। यही सबसे मुख्य कारण था कि शताब्दियों से त्रस्त तथा अधिकारहीन स्त्रियों की अवस्था म २० वर्ष से भी कम समय म एक ऐसा क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ कि हमारी नारियों को

प्रायः वही अधिकार प्राप्त हो गये जो आज पुरुषों को प्राप्त हैं। दूसरे देशों की स्त्रियों को अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक नहीं, न जाने कितनी लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। इंगलैंड में ही स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त करने के लिए ६० वर्ष तक (सन् १८६० से लेकर १९२६ तक) निरन्तर आंदोलन करना पड़ा। आज भी कितने ही देशों जैसे फ्रांस, स्विट्ज़रलैंड इत्यादि देशों में स्त्रियों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं और दूसरे देशों में वहाँ के सामाजिक व राजनीतिक जीवन में स्त्रियाँ इतना प्रमुख भाग नहीं लेतीं जितना आज वह भारत में ले रही हैं।

स्त्रियों की संस्थाएँ

देश के स्वातन्त्र्य संग्राम में भाग लेने के अतिरिक्त दूसरा मुख्य कारण जिससे हमारी स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन हुआ, वह यह था कि स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार करने के लिए, आर्य समाज तथा स्त्रियों की अनेक महिला संस्थाओं ने उनके लिए जगह-जगह स्कूल व कॉलिज खोले, जिनमें शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ स्वयं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हो गईं और उन्होंने अपनी अवस्था को सुधारने के लिए स्वयं प्रयत्न किया तथा कई संस्थाएँ स्थापित कीं। इन संस्थाओं में जिन्होंने स्त्रियों की ओर से उनके अधिकारों की रक्षा के लिए विशेष रूप से आंदोलन किया, निम्न मुख्य हैं :—

(१) वीमेंस इंडियन एसोसियेशन, जिसकी स्थापना सन् १९१७ में हुई; (२) नेशनल कौंसिल आफ़ वीमेंस, जिसकी स्थापना १९२५ में की गई तथा (३) आल इंडिया वीमेंस कान्फ्रेंस—जिसका संगठन सन् १९२६ में किया गया। इनमें से अंतिम संस्था ने स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए सबसे अधिक भाग लिया है। इस संस्था का नेतृत्व जिन नारियों ने किया है उनमें भारत की अनेक घरानों की देवियाँ सम्मिलित हैं। इनमें से कुछ के नाम ये हैं :—श्रीमती सरोजिनी देवी, मिसेज़ एनीबिसेन्ट, सरला देवी चौधरानी, श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित, हंसा मेहता, कमला देवी चट्टोपाध्याय, अनुसूया बाई काले, लेडी रामा राव, श्रीमती रामेश्वरी नेहरू, लेडी अब्दुल कादिर, भोपाल की बेगम तथा बड़ौदा की महारानी। भारत के विभिन्न नगरों तथा प्रांतों में इस संस्था की २०० से अधिक शाखाएँ हैं तथा इसके सदस्यों की संख्या २०,००० से अधिक बताई जाती है। इस संस्था की राष्ट्र संघ द्वारा भी सराहना की गई है।

विधान में स्त्रियों का स्थान

आज भारत की प्रत्येक नारी को नये विधान में पुरुषों के समान ही अधिकार प्रदान किये गये हैं। विधान में कहा गया है कि स्त्रियों को समान कार्य के लिए पुरुषों के समान ही वेतन मिलेगा। वह पुरुषों के समान सरकार के प्रत्येक विभाग में नौकरी कर सकेंगी। वह देश की ऊँची से ऊँची ऐडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस में अधिकारी का आसन ग्रहण कर सकेंगी। चुनावों में उन्हें पुरुषों के समान ही राय देने का अधिकार होगा।

लिंग, जाति, धर्म, नस्ल, विश्वास अथवा विचार के कारण किसी व्यक्ति के साथ किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं किया जायगा और सब स्त्री पुरुषों को बराबर के अधिकार प्राप्त होंगे तथा उन्हें हर प्रकार की व्यक्तिगत, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि कलम की एक खरोंच से हमारे नये विधान में स्त्रियों को पूर्ण सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार प्रदान कर दिये गये हैं।

आज के समाज में स्त्रियों का स्थान

भारत में आज हम देखते हैं कि स्त्रियाँ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में भाग ले रही हैं। परदे की प्रथा अब एक पुरानी बात हो गई है। कुछ कट्टर पंथी पुराने विचार वाले मुट्ठी भर लोगों को छोड़ कर, शेष जनता इस प्रथा में विश्वास नहीं करती। हमारे दक्षिण के प्रांतों में तो कभी से परदा प्रथा थी ही नहीं, गाँवों में भी स्त्रियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक खेतों में तथा घरों से बाहर काम करती थीं। उत्तर के प्रदेशों में भी, सिंध तथा पञ्जाब के प्रभाव के कारण, जहाँ की स्त्रियाँ पाश्चात्य देशों की नारियों की भाँति स्वतन्त्र जीवन में विश्वास रखती हैं, इस प्रथा का प्रायः पूर्ण रूप से ही लोप हो गया है। स्त्रियों में शिक्षा का प्रचार निरन्तर बढ़ रहा है और वह न केवल अपनी संस्थाओं में ही शिक्षा ग्रहण करती हैं वरन् लड़कों के साथ भी उन्हीं की संस्थाओं में सह शिक्षा प्राप्त करती हैं। पढ़े लिखे घरों में, प्रायः प्रत्येक माता-पिता अपनी कन्याओं को शिक्षित बनाने का प्रयत्न करते हैं। और कुछ नहीं तो, पञ्जाब यूनिवर्सिटी की भूषण तथा प्रभाकर, और प्रयाग विद्यापीठ की विद्याविनोदिनी, विदुषी, साहित्यरत्न इत्यादि परीक्षाएँ तो अधिकतर लड़कियाँ पास कर लेती हैं। आज हमारे देश की स्त्रियाँ उच्च से उच्च सरकारी पदों पर विद्यमान हैं। हमारी अपनी एक बहिन श्रीमती राजकुमारी अमृत कौर हमारी केन्द्रीय सरकार की मन्त्री हैं। दूसरी बहिन श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित कुछ काल पहले, अमरीका में हमारे देश की राजदूत थीं। श्रीमती सरोजिनी नायडू, अपनी मृत्यु से पहले, उत्तर प्रदेश की गवर्नर थीं। अनेक स्त्रियाँ प्रांतीय धारा सभा व केन्द्रीय संसद् की सदस्या हैं। उनमें से अनेक प्रांतों में मन्त्रियों तथा इसी प्रकार के उच्च पदों पर कार्य कर रही हैं। हमारी नारियाँ अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेती हैं तथा राष्ट्र सङ्घ की बैठकों में भारत का प्रतिनिधित्व करती हैं। अभी कुछ समय पहले राष्ट्र सङ्घ के सम्मेलन में श्रीमती सुचेता कृपलानी हमारे देश के प्रतिनिधि मण्डल की सदस्या एम. एल. ए. (केन्द्र) भेजी गई थीं।

नौकरियों के क्षेत्र में हमारी स्त्रियाँ अब केवल डाक्टर, नर्स, तथा अध्यापिका का कार्य ही नहीं करतीं, वह दफ्तरों में क्लर्क, सुपरिन्टेन्डेन्ट, तथा उच्च अफसरों का कार्य करती हैं, पुलिस में भर्ती होती हैं, सेना में अनेक पदों पर कार्य करती हैं, मजिस्ट्रेट

तथा न्यायाधीशों की कुर्सियों पर बैठ कर मुकदमों की सुनवाई करती हैं, वकील तथा बैरिस्टर का कार्य करती हैं, कारखानों में नौकरियाँ करती हैं, इञ्जीनियर, सम्पादक, कला विशेषज्ञ, लेखिका, साहित्यकार का कार्य करती हैं तथा पुरुषों के समान ही प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयत्न करती हैं।

हिन्दू कोड बिल तथा स्त्रियों के आर्थिक अधिकार

हमारे नये विधान में स्त्रियों को सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकार तो पूर्णतः प्रदान कर दिये गये हैं परन्तु अभी तक हमारे समाज में उन्हें पुरुषों के समान आर्थिक अधिकार प्राप्त नहीं हुए हैं। उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति में भाइयों के समान भाग नहीं दिया जाता, अपने पति के देहावसान पर उन्हें उसकी छोड़ी हुई जायदाद पर पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं होता, वह स्वेच्छा से किसी लड़के को गोद नहीं ले सकती। वह स्त्री धन को छोड़कर शेष जमीन जायदाद को नहीं बेच सकती। यह सब अधिकार स्त्रियों को प्रदान करने के लिए हिन्दू कोड बिल बनाया गया है जो इस समय केन्द्रीय संसद् के विचाराधीन है। इस बिल के पास हो जाने पर स्त्रियों को पुरुषों के समान ही आर्थिक अधिकार भी प्राप्त हो जायेंगे। वह अपने पिता की सम्पत्ति में साझेदार बन जायगी तथा उन्हें जमीन-जायदाद बेचने अथवा खरीदने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जायगा। विवाह विच्छेद के लिए भी हिंदू कोड बिल में प्रबन्ध किया गया है, परन्तु दूसरे देशों की भाँति नहीं, जहाँ एक स्त्री को ब्याहना और दूसरी को छोड़ देना फैशन समझा जाता है। विवाह विच्छेद का अधिकार केवल उस दशा में है जब किन्हीं विशेष कारणों से गृहस्थ जीवन एक सुख और उल्लास के केन्द्र के स्थान पर आये दिन के लिए कलह, विषाद, संघर्ष तथा लड़ाई झगड़े का क्षेत्र बन जाए।

स्त्रियों की आज की माँगें

हिंदू कोड बिल के पास हो जाने के पश्चात् भारत की स्त्रियों को कानूनी तथा वैधानिक दृष्टि से वह हर प्रकार के अधिकार प्राप्त हो जायेंगे जिनके लिए अखिल भारतीय महिला सम्मेलन, सन् १९४७ के पश्चात् से निरन्तर आन्दोलन करता आ रहा है। अपने सन् १९४८ के ग्वालियर अधिवेशन में इस संस्था ने निम्न और माँगें देश के सम्मुख रक्खीं :—

(१) भारत सरकार तथा प्रांतीय सरकारों के अन्तर्गत एक ऐसे मंत्री की नियुक्ति की जाय जिसका कार्य समाज सेवा संस्थाओं के कार्य का संचालन तथा निरीक्षण करना हो। सरकार के इस विभाग को 'मिनिस्ट्री आफ सोशल एफेयर्स' कहा जाए। इस विभाग का मुख्य कार्य सामाजिक क्षेत्र से प्रत्येक प्रकार की असमानता तथा संघर्ष की भावना को दूर करना हो।

(२) लड़कियों को अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा प्रदान करने के लिए देश के हर प्रांत, नगर तथा गाँव में प्रबन्ध किया जाय।

(३) हाई स्कूल की श्रेणी तक लड़कियों को उसी प्रकार शिक्षा दी जाय जैसे लड़कों को, जिससे वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पदार्पण कर सकें तथा प्रतियोगिता परीक्षाओं इत्यादि में बैठकर हर प्रकार की सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकें।

(४) विवाहित स्त्रियों के लिए बहुत अधिक संख्या में जच्चाघर तथा शिशु गृह खोले जायें जिससे उन स्त्रियों तथा बच्चों को मौत के मुँह से बचाया जा सके जो आज-कल शिक्षित दाइयों तथा चिकित्सालयों के अभाव के कारण सहस्रों की संख्या में प्रतिवर्ष काल की भेंट हो जाते हैं।

(५) गर्भवती स्त्रियों की देख भाल के लिए देश भर में सेंटर खोले जायें।

(६) परिवारों के योजनात्मक विकास के लिए देश भर में गर्भ निरोधक संस्थाएँ (Birth Control Centres) स्थापित किये जायें जिनसे अशिक्षित स्त्रियाँ भी लाभ उठा सकें।

(७) स्कूल और कॉलिजों में लड़कों तथा लड़कियों को परिवार सम्बन्धी शिक्षा प्रदान की जाय जिससे भारत की बढ़ती हुई जनसंख्या, गरीबी तथा दुखी परिवारों की समस्या हल की जा सके।

(८) हिन्दू कोड बिल को शीघ्र स्वीकार किया जाय।

यह ऐसी माँगें हैं जिनका अधिकतर सम्बन्ध सैद्धांतिक नहीं व्यावहारिक कार्यों से है और प्रांतीय तथा केन्द्रीय सरकारें, स्वतः ही अपने साधनों के अनुसार, इन कार्यों की पूर्ति के लिए निरन्तर प्रयत्न कर रही हैं।

सावधानी की आवश्यकता—यहाँ यह बतला देना आवश्यक है कि जहाँ भारत सरकार तथा देश की जनता स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए सतत् प्रयत्न कर रही है वहाँ हमारे देश की स्त्रियों में एक ऐसी भावना दृष्टिगोचर हो रही है जिसके कारण समाज के प्रतिष्ठित तथा वयोवृद्ध व्यक्ति यह समझने लगे हैं कि स्त्रियाँ अपना स्वाभाविक कार्य छोड़कर एक स्वच्छन्द, विलासितापूर्ण तथा फैशन प्रिय जीवन व्यतीत करने की ओर अधिक अग्रसर हो रही हैं। आजकल जहाँ देखिये स्त्रियाँ, अपने घर का काम छोड़ कर, बच्चों को नौकरानियों के सुपुर्द करके, लिपस्टिक तथा गालों पर सुर्खी लगा कर तथा उत्तेजनात्मक वस्त्र पहिन कर, सिनेमाओं, बाजारों तथा मेले ठेलों में घूमती हुई नजर आती हैं। स्त्रियाँ अच्छी प्रकार रहें, स्वच्छ वस्त्र पहिनें, शृङ्गार भी करें; इन सब का विरोध करने का हमारा प्रयोजन नहीं, परन्तु हम यह उचित नहीं समझते कि बिना सोचे समझे, स्त्रियाँ अपनी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता को भूल कर, पाश्चात्य देशों की स्त्रियों की भाँति, नैतिकता की दृष्टि से गिरा हुआ आचरण करें। सिगरेट पीती

हुई बाजारों में घूमें, होटलों में बैठकर शराब पियें, नाच व रंगेलियाँ मनायें, दूसरे पुरुषों के साथ स्वच्छन्द रूप से घूमें, अपने बच्चों की परवाह न करें, उन्हें आयाओं के सहारे छोड़ दें, घर के काम से घृणा करें तथा अपने सास श्वसुर, पति व सम्बन्धियों का आदर-सत्कार न करें। आजकल कुछ इसी प्रकार की प्रवृत्ति हमारी पढ़ी लिखी स्त्रियों में देखने को मिलती है। प्रतीत होता है कि नव स्वतन्त्रता के नशे में स्त्रियाँ अपना सन्तुलन खो बैठी हैं और ऐसा आचरण करने लगी हैं जो हमारी प्राचीन संस्कृति तथा सभ्यता के बिल्कुल प्रतिकूल है। हमारी देवियों को चाहिये कि वह शिक्षा तथा स्वतन्त्रता का वास्तविक अर्थ समझें और इस प्रकार का आचरण करें जिस पर सम्य समाज गर्व करे तथा जिससे संसार की दूसरी महिलाएँ भी शिक्षा ग्रहण कर सकें।

हरिजनों की समस्या

स्त्रियों की भाँति कुछ काल पहले तक हमारे देश में हरिजनों के साथ अत्यन्त अत्याचारपूर्ण व्यवहार किया जाता था। उन्हें हर प्रकार के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक अधिकारों से वंचित रक्खा जाता था। अस्पृश्यता की प्रथा हमारे हिन्दू धर्म का सबसे महान् कलङ्क थी। जिस धर्म ने विश्व को शान्ति, अहिंसा, प्रेम तथा अध्यात्मवाद का पाठ पढ़ाया, जिसकी शिक्षा, ज्ञान तथा दार्शनिक ज्योति के आगे सारा संसार नतमस्तक हो गया, जिसके अन्दर ज्ञान भण्डार की चमक ने दुनिया के धर्म विरोधियों को चकाचौंध कर दिया, कैसे आश्चर्य की बात है कि उसी धर्म की दुहाई देकर, सहस्रों वर्षों तक, हमारी जनता ने अपने समाज के एक सब से आवश्यक अंग को बहिष्कृत तथा तिरस्कृत होते देखा। हरिजनों के साथ हमने पशुओं से भी बुरा व्यवहार किया। जो जाति दूसरी सब जातियों की सेवक थी, जो जनता के दूसरे सदस्यों के आराम तथा सुविधा की खातिर नीच से नीच काम करने में भी परहेज नहीं करती थी, जो हमारा मैला कुचैला, गन्दगी तथा नर्क साफ करती थी, जो हमें इस योग्य बनाती थी कि हम महलों, प्रासादों तथा नगरों में रह कर ऐश और आराम से अपना जीवन व्यतीत कर सकें; कितने दुःख की बात है कि उसी को हमने अपने गले से लगाने के बजाए, दूध की मक्खी की तरह निकाल कर अवनति के गर्त में ढकेल दिया। उस जाति की छाया मात्र से हम अनुभव करने लगे कि हम अपवित्र हो जायँगे, उसे मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार देकर हमारे देवता रूठ जायँगे, उसे धार्मिक ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकार देकर हमारा ज्ञान भण्डार लुट जायगा, उसे अपनी बस्तियों में रहने की सुविधा देकर हम नीच बन जायँगे। आज पिछली यह सब बातें याद करके हमें विश्वास नहीं होता कि हमारे पूर्वज या माता पिता या कुछ काल पहले हम स्वयं इतने निर्दयी, पिशाच या हृदयहीन थे।

हरिजनों की अवस्था

हरिजनों के साथ इस प्रकार के व्यवहार की कहानी कोई बहुत पुरानी नहीं है। आज भी भारत में ऐसे पिछड़े हुए भाग हैं जहाँ हमारे अछूत कहे जाने वाले भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता है। नगरों और नई रोशनी के नौजवानों में चाहे इस दशा में भारी परिवर्तन हो गया हो, परन्तु आज भी हमारे देश की अधिकांश गाँवों में रहने वाली तथा अशिक्षित जनता ऐसी है जो हरिजनों को महापातकी समझती है। उसके साथ छू जाने पर घर लौटकर स्नान करती है। उनके हाथ की छुई हुई वस्तु को ग्रहण करने में मरने-मारने पर उद्यत हो जाती है। उनको पानी पिलाने के समय नलकी का प्रयोग करती है। उनके बीच रास्ते में आ जाने पर दुर दुर करके उन्हें पीछे हटा देती है। उनके जमीन या जायदाद खरीदने या पक्का हवादार मकान बनवाने पर उनके विरुद्ध तरह तरह के लाछन लगाती है। उनको दावतें करने, बरात चढ़ाने, स्वच्छ वस्त्र पहनने या अच्छा जीवन व्यतीत करने से रोकती है। उत्तर के प्रांतों में तो हमारे हरिजन भाइयों की अवस्था कुछ अच्छी है; परन्तु दक्षिण के प्रदेशों में तो उनकी दशा बहुत ही बुरी है। वहाँ के ब्राह्मण किसी अछूत को दूर से आता देख, दो फर्लांग के परे से ही चिल्लाते हैं, "दूर हट जाओ, हम आते हैं।" यदि दक्षिण के किसी पाखण्डी ब्राह्मण पर अछूत की परछाई पड़ जाय तो फिर वह नर्मदा या गोदावरी में स्नान किये बिना पवित्र नहीं होता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे हरिजन भाइयों की कितनी हीन दशा है।

हरिजन सुधार आंदोलन

हरिजनों की इस दयनीय दशा को सुधारने के लिए हमारे समाज सुधारकों ने सदा से प्रयत्न किया है। आरंभ में महात्मा बुद्ध तथा महावीर जी ने वर्ण सम्बन्धी मिथ्याओं को दूर कर हरिजनों की व्यवस्था सुधारने का प्रयत्न किया। इसके पश्चात् चौदहवीं शताब्दी में रामानन्द स्वामी ने जाति व्यवस्था के थोथेपन को सिद्ध किया। मुसलमानों के काल में कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ तथा नामदेव इत्यादि भक्ति मार्ग के प्रवर्तकों ने हरिजनों की अवस्था सुधारने के लिए भारी आन्दोलन किया। उन्नीसवीं शताब्दी में राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानद ने उनके उद्धार का बीड़ा उठाया। आर्य समाज की संस्थाओं ने इस कार्य पर सबसे अधिक जोर दिया और देश भर में उनकी शिक्षा तथा उन्नति के लिए स्कूल, पाठशालाएँ तथा अछूत उद्धार सभाएँ स्थापित कीं। इसके पश्चात् महात्मा गांधी ने अपने जीवन की सारी शक्ति इस कार्य में लगा दी। उन्होंने हिंदू धर्म से इस कलंक को मिटाने के लिए, कितने ही बार आमरण अनशन किये, देश के कोने-कोने का दौरा किया, मंदिर-प्रवेश आंदोलन चलाया, हरिजन बस्तियों

में बाहर रहे, अपने आप को भंगी कह कर पुकारा, हरिजन सेवक संघ की स्थापना की, हरिजन पत्र चलाया, लाखों व करोड़ों रुपया जमा करके, उनके लिए शिक्षा तथा दूसरी संस्थाएँ खोलीं, परन्तु जाति पाँति का भेद-भाव हमारे सामाजिक संगठन में इतना घर कर चुका था कि उसका जड़-मूल से अन्त न हो सका। 'बापू' के प्रयत्नों के फलस्वरूप हरिजनों की सामाजिक अवस्था में तो काफी प्रगति हुई, सैकड़ों हिंदू मन्दिरों के द्वार उनके लिए खुल गये। उनके प्रति घृणा का भाव दूर हो गया। सवर्ण हिंदू उनके साथ मिलने और बैठने लगे। उनके लिए नये-नये उद्योग-मंदिर और पाठशालाएँ खोली गईं, परन्तु उनकी आर्थिक अवस्था में अधिक सुधार न हो सका, और जहाँ-तहाँ हिंदू धर्म के पंडे और पुजारी उन पर तरह तरह के अत्याचार करते ही रहे।

हमारा नया विधान और हरिजन

जो काम सहस्रों वर्षों में सतत् तथा निरन्तर परिश्रम के पश्चात् भी हमारे अनेक समाज सुधारक तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी न कर सके, भारत के नये विधान के अन्तर्गत उसे पूर्ण कर दिया गया है। भारतीय विधान की १५वीं धारा में कहा गया है कि :—

"राज्य धर्म, नस्ल, जाति पाँति, स्त्री पुरुष या इनमें से किसी भेद भाव के बिना प्रत्येक व्यक्ति को बराबर के अधिकार प्रदान करेगा। भारत के प्रत्येक नागरिक को अधिकार होगा कि वह—

(१) दूकानों, चाय घरों, होटलों तथा मनोरंजन के स्थानों में बिना किसी रोक-टोक के आ जा सके।

(२) कुओं, तालाबों, सड़कों और सार्वजनिक स्थानों का उपयोग कर सके।

(३) किसी भी प्रकार का व्यवसाय या व्यापार करे।

(४) सरकारी संगठन में उच्च से उच्च पद प्राप्त करे।"

इस प्रकार नये संविधान में हरिजनों को सामाजिक समानता का अधिकार प्रदान किया गया है। इसके पश्चात् विधान की १७वीं धारा में 'अस्पृश्यता' का बीज जड़-मूल से ही नष्ट कर दिया गया है। इस धारा में कहा गया है, "भारतवर्ष से छुआछूत का अन्त कर दिया जाता है, छुआछूत बरतने की मनाही की जाती है। छुआछूत के आधार पर यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे पर किसी भी प्रकार की रोक-टोक लगायेगा तो उसे राज्य की ओर से दंड दिया जायगा।"

आगे चल कर विधान में जहाँ राजनीति के नियामक सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है वहाँ पर ४६वीं धारा में कहा गया है, "राज्य विशेष रूप से जनता की पिछड़ी हुई जातियों जैसे हरिजन, कबीली जातियाँ इत्यादि के अधिकारों की रक्षा करेगा और उन्हें हर प्रकार के सामाजिक शोषण से बचावेगा।"

नौकरियों तथा व्यवस्थापिका सभाओं में हरिजनों के अधिकारों की रक्षा के लिए, भारतीय विधान में विशेष रूप से व्यवस्था की गई है। उसमें कहा गया है —

"प्रत्येक प्रांत की विधान सभा में हरिजनों के लिए उनक आबादी के हिसाब से स्थान सुरक्षित रक्खे जायेंगे। नौकरियाँ देते समय उनके हितों का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जायगा।"

इसके अतिरिक्त यह देखने के लिए कि विधान में दिये गये हरिजनों के प्रत्येक अधिकार की समुचित रक्षा की जाती है, राज्य द्वारा केंद्रीय तथा प्रांतीय सरकारों में ऐसे अफसरों की नियुक्ति की जायगी जो यह देखें कि उनके अधिकारों की सुचारु रूप से रक्षा की जाती है या नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नव विधान द्वारा हमारे देश में एक ऐसे समाज की रचना करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें किसी भी प्रकार के ऊँच नीच, छुआ छूत तथा छोटे बड़े का प्रश्न न हो, प्रत्येक नागरिक बराबर हो तथा वह अपनी इच्छानुसार किसी भी प्रकार का व्यवसाय करके अपना जीवन निर्वाह कर सके तथा अपने व्यक्तित्व का पूर्णरूप से विकास कर सके।

स्वयं हरिजनों का कर्तव्य

भारतीय विधान ने हिंदू धर्म से 'अस्पृश्यता' का कलंक तो मिटा दिया परन्तु भारतीय विधान की इन धाराओं का हरिजन कहाँ तक लाभ उठाते हैं तथा कहाँ तक दूसरे मनुष्यों का मुँह ताकने के बजाय अपने पैरों पर खड़ा होना सीखते हैं, यह अब उन्हीं का काम है। प्रत्येक हरिजन का धर्म है कि वह अब अपने मन से छोटेपन को निकाल दे और यह समझने लगे कि समाज की दूसरी ऊँची जाति के मनुष्यों की भाँति वह भी मनुष्य है और समाज के सङ्गठन में ऊँचे से ऊँचे पद प्राप्त करने का उसको भी उतना ही अधिकार है जितना किसी दूसरे मनुष्य को।

हरिजनों को चाहिये कि वह अपने बीच से भी छोटे-बड़े का भेद भाव मिटा दें। आज हमारे कितने ही हरिजन भाई अपनी ही बीच की जातियों को ऊँचा नीचा मानते हैं। धाबी समझते हैं कि चमार नीच है, चमार समझते हैं कि मेहतर बुरे हैं, मेहतर समझते हैं कि हमसे तो कञ्जर घृणित हैं, इत्यादि। सबसे पहले हरिजनों को आपस का भेद भाव मिटाना होगा, इसी के पश्चात् यह सवर्ण हिंदुओं के सम्मान का पात्र बन सकेंगे। हरिजनों को अपनी बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिये, तभी हरिजन समाज में अपना खोया हुआ मान पा सकते हैं। नये भारत में हरिजनों का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है, परन्तु इसकी कुंजी उन्हीं के हाथ में है।

हिन्दू समाज की दूसरी सामाजिक कुरीतियाँ

जात पाँति, संयुक्त कुटुम्ब तथा हरिजनों की समस्या के अतिरिक्त हमारे सामाजिक

जीवन भी कुछ और कुरीतियाँ भी हैं जो हिन्दू धर्म की जड़ों को खोखला कर रही हैं और हमारे देश में एक सच्चे प्रजातन्त्रवादी शासन की स्थापना की विरोधी हैं। इन कुरीतियों में हम बाल विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, पर्दा-प्रथा, देवदासी प्रथा, चौका-प्रथा, विधवापन, दहेज प्रथा इत्यादि के नाम ले सकते हैं। विवाह विच्छेद, गर्भ निरोध तथा वैज्ञानिक पारिवारिक संगठन के अभाव का उल्लेख भी हम इन्हीं कुरीतियों में कर सकते हैं। यह सच है कि धीरे धीरे शिक्षा के प्रसार से यह कुरीतियाँ स्वतः ही हमारे सामाजिक संगठन से दूर होती जाती हैं, उदाहरणार्थ बाल विवाह, पर्दा प्रथा, देवदासी प्रथा, चौका प्रथा इत्यादि। सामाजिक कुरीतियाँ अब इतिहास का विषय रह गई हैं। बहुत कम लोग अब ऐसे हैं जो इन प्रथाओं में विश्वास रखते हैं या उन्हें अच्छा समझते हैं। जो थोड़-बहुत उदाहरण बाल विवाह अथवा पर्दा इत्यादि के देखने को मिलते भी हैं वह नहीं के बराबर हैं और हमारी नई पीढ़ी के लोग जिन्होंने हाल हा में अपने जीवन में पदार्पण किया है, उन कुरीतियों को जड़-मूल से नष्ट कर देंगे। परन्तु दुर्भाग्य तो यह है कि हमारे समाज से एक कुरीति दूर नहीं होती कि दूसरी सामने आ खड़ा होती है। हमने पर्दा प्रथा को दूर किया परन्तु इस लिपस्टिक और पेट तक ब्लाउज पहनने की प्रथा का क्या करें! हमने मन्दिरों से देवदासी प्रथा को दूर किया, परन्तु इन बनी-ठनी, पाश्चात्य फैशन प्रिय सड़कों पर घूमने वाली देवदासियों का क्या करें! हमने बाल विवाह की कुरीति को नष्ट किया परन्तु यह लम्बे-चौड़े दहेज माँग कर लड़कों को बेचने की प्रथा का क्या करें! आज हमारा सामाजिक संगठन कुछ इतना खोखला हो गया है कि हम संयमी, नियमित तथा नैतिक जीवन व्यतीत करने में घोर कष्ट का अनुभव करते हैं। हम यह समझने का प्रयत्न नहीं करते कि स्वतन्त्रता नियंत्रण का नाम है, अधिकार कर्तव्य पूर्ति का नाम है। अपनी स्त्री के मरने पर चाहे हमारी कितनी ही अवस्था हो, हम चाहते हैं कि और विवाह कर लें, परन्तु यदि हमारी अपनी ही कोई जवान बहन घर में विधवा बनी बैठी हुई है तो हम उससे नहीं पूछते, "बहिन, तुम्हारे लिए कोई योग्य वर तलाश कर दें!" हम स्त्री से रुग्ण होने या उसमें और किसी प्रकार के दोष होने पर उसे घर से निकालने पर उतारू हो जायेंगे, परन्तु हम हिंदू कोड में वर्णित स्त्रियों के अपने पति को त्याग देने के अधिकार का विरोध करेंगे।

हम अपने हिंदू समाज से सामाजिक कुरीतियों को केवल उस समय दूर कर सकते हैं जब हम अधिकारों तथा कर्तव्यों का पारस्परिक सम्बन्ध समझ लें।

मुसलमानों का सामाजिक जीवन

हिंदू और मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भारी अन्तर है, यद्यपि हिंदुओं की भाँति उनका जीवन भी धार्मिक भावना से अधिक प्रभावित होता है। हिंदू धर्म एक अत्यन्त सनातन और प्राचीन धर्म होने के नाते उसके अनुयायियों में अंध-विश्वास तथा

कट्टरपन की भावना कम होती जा रही है, परन्तु मुसलमानों का धर्म केवल १३०० वर्ष पुराना है। दूसरे उनके अनुयायी अधिकतर अशिक्षित हैं। यही कारण है कि धर्म के नाम पर जहाँ अधिकतर हिंदुओं में कोई हलचल पैदा नहीं होती वहाँ मुसलमान हर प्रकार के नीच काम करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

अंध-विश्वास के अतिरिक्त हिंदुओं की भाँति मुसलमानों के सामाजिक जीवन में भी अनेक सामाजिक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई हैं। वैसे तो मुसलमानों का धर्म हिन्दू धर्म की अपेक्षा अधिक जनतन्त्रवादी है, उसमें किसी प्रकार का जाति बन्धन नहीं, सब मुसलमान ऊँच नीच, छोटे-बड़े, निर्धन, मालदार के विचार के बिना बराबर समझे जाते हैं, वह एक ही थाली में बैठकर खाना खा सकते हैं, सब एक ही हुक्के का प्रयोग करते हैं, साथ मिलकर एक ही मस्जिद में नमाज पढ़ते हैं, परन्तु हिन्दुओं के रीति रिवाजों का उन पर भी प्रभाव पड़ा है और वह भी एक प्रकार की जाति व्यवस्था में विश्वास करने लगे हैं। शिया और सुन्नी एक दूसरे को अलग तथा विरोधी मतों का सदस्य समझते हैं। इसके अतिरिक्त पठान, मुगल, मेव, सैयद और शेख एक प्रकार से अपने आपको भिन्न-भिन्न जातियों का सदस्य मानते हैं। वह एक दूसरे के साथ विवाह सम्बन्ध नहीं करते। इसके अतिरिक्त हिन्दू धर्म से परिवर्तित मुसलमानों को भी नीचा समझा जाता है।

मुसलमानों में बहु विवाह की प्रथा का भी बहुत अधिक जोर है। चार स्त्रियाँ तो प्रत्येक मुसलमान हदीस की आज्ञानुसार ही रख सकता है। स्त्रियों के साथ अक्सर मुसलमान अच्छा व्यवहार नहीं करते। उनके धर्म में हिंदुओं की भाँति अर्धांगिनी को जीवन साथी तथा विवाह को दो आत्माओं का मेल नहीं माना जाता वरन् स्त्री को पुरुष की वासना की तृप्ति का साधन माना जाता है। उनके धर्म में विवाह एक प्रकार का 'ठेका' है जो इच्छानुसार तोड़ा जा सकता है। यही कारण है कि बहुत से मुसलमानों में 'मुता' विवाह का भी प्रचार है जिसके अनुसार कोई पुरुष किसी स्त्री से एक सप्ताह, एक माह अथवा एक वर्ष के लिए भी विवाह कर सकता है। वैसे तो मुसलमानों के धर्म म विवाह विच्छेद की प्रथा है, स्त्रियों को सम्पत्ति में भी अधिकार दिया जाता है; परन्तु विवाह विच्छेद की आज्ञा केवल पुरुषों को है, स्त्रियाँ अपने पति का त्याग नहीं कर सकतीं, उन्हें पर्दे के पीछे रक्खा जाता है और घर से बाहर बिना बुर्का ओढ़े निकलने की आज्ञा नहीं दी जाती। यही कारण है कि अधिकतर मुसलमानियाँ तपेदिक के रोग से पीड़ित पाई जाती हैं।

मुसलमानों में बाल विवाह तथा निकट सम्बन्धियों से विवाह का भी बहुत बुरा रिवाज प्रचलित है। छोटी छोटी लड़कियों की शादी सगे भाई और बहिन को छोड़ कर, और किन्हीं के साथ हो सकती है। यह प्रथा न केवल नैतिक दृष्टि से बुरी है वरन मेडिकल

विज्ञान की दृष्टि से भी घृणित समझी जाती है। इसके कारण मुसलमानों का मानसिक विकास रुक जाता है और वह प्रायः हिंदुओं की अपेक्षा कम बुद्धिमान पाये जाते हैं।

मुसलमानों में से सामाजिक कुरीतियाँ दूर करने के लिए राज्य अधिक प्रयत्न नहीं कर सकता, कारण मुसलमान भारतवर्ष में एक अल्पसंख्यक जाति हैं और सरकार कितनी ही अच्छी नीयत से उनके उद्धार के लिए काम करना चाहे, मुसलमान यही समझेंगे कि उनके धर्म में हस्तक्षेप किया जा रहा है। दूसरे नव विधान के अन्तर्गत हमारा राज्य असाम्प्रदायिक है। उस दृष्टि से भी वह किसी धर्म के सिद्धान्तों में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। सामाजिक सुधार की अन्तिम जिम्मेदारी इसलिए स्वयं हमारी जनता तथा उसकी धार्मिक व शिक्षा संस्थाओं पर है।

योग्यता प्रश्न

१. क्या भारत एक राष्ट्र है? राष्ट्रीयता के विकास में कौन सी बाधाएँ हैं? (यू० पी० १६२६)

२. जाति व्यवस्था के लाभ तथा हानि समझाइये।

३. भारतीय सामाजिक जीवन की दो क्या विशेषताएँ हैं? आधुनिक समय में उनकी क्या अवस्था है?

४. भारतीय सामाजिक जीवन में स्त्रियों का क्या स्थान है? आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से उनकी अवस्था में किस प्रकार सुधार किया जा सकता है? (यू० पी० १६६८, ३६, ३८)

५. भारत के नव संविधान में स्त्रियों तथा हरिजनों को क्या अधिकार प्रदान किये गये हैं?

६. वर्तमान काल में स्त्रियों की क्या माँगें हैं? उनका औचित्य समझाइये।

७. हिन्दू समाज की सामाजिक कुरीतियों का वर्णन कीजिए। यह कुरीतियाँ कहाँ तक दूर हो सकी हैं?

८. मुसलमानों के सामाजिक जीवन की क्या विशेषताएँ हैं? उनमें कौन सी कुरीतियाँ घर कर गई हैं?

९. संविधान में दलित वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए क्या विशेष प्रबन्ध है? (यू० पी० १६५२)

१०. भारतीय महिलाओं के पिछड़ी रहने के प्रधान कारण समझाइये। उनकी दशा सुधारने के लिए वर्तमान काल में क्या प्रयत्न किये गये हैं? (यू० पी० १६५२)

११. "अस्पृश्यता हमारे समाज का एक बहुत बड़ा अभिशाप है" व्याख्या कीजिए। पिछले बीस वर्षों में इस अभिशाप को दूर करने के लिए क्या उपाय किये गये हैं? (यू० पी०, १६५३)

अध्याय २१

भारत में राष्ट्रीय आंदोलन

हम पिछले अध्याय में बता चुके हैं कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनेक विभिन्नतायें होते हुए भी, हमारा देश सदा एक संयुक्त राष्ट्र ही रहा है। सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा राजनीतिक दृष्टिकोण से हम एक राष्ट्र हैं। यह सच है कि एक अविच्छिन्न राष्ट्रीयता की भावना, अभी हाल तक हमारी जनता में अधिक घर नहीं कर पाई थी। यही कारण है कि विदेशियों के आक्रमण के समय सारे भारतवासी एक होकर, आततायियों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा कायम कर सके। आपसी द्वेष भाव तथा राष्ट्रीय एकता की भावना की कमी के कारण ही हमने मुसलमानों के हाथों अपनी स्वतन्त्रता खोई और इसके पश्चात् जब अंग्रेज ईस्ट इण्डिया कंपनी के रूप में, हमारे देश में आये तो हम आपसी भेद-भाव को भुला कर उनका मुकाबला न कर सके। हमारी राजनीतिक दासता ने हमारे नैतिक चरित्र को और भी नीचे गिरा दिया। हम अपनी प्राचीन परम्परा, सभ्यता तथा संस्कृति को भूल गये और बन्दरों की तरह अपने विदेशी शासकों के रहन-सहन, रीति रिवाज, खान पान तथा बोल-चाल के तरीकों को अपनाने लगे। बहुत से भारतीयों ने अपने धर्म को छोड़ कर ईसाई धर्म भी अपनाना आरम्भ कर दिया। इन्हीं सब कारणों से उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में हमारे देश में एक धार्मिक तथा सामाजिक क्रांति का प्रादुर्भाव हुआ। इस क्रांति के जन्मदाता हमारे धर्म सुधारक नेता श्री राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द तथा रामकृष्ण परमहंस थे, जिन्होंने न केवल भारतवासियों को उनके वास्तविक धर्म तथा प्राचीन संस्कृति, गौरव और सभ्यता का ही ज्ञान कराया वरन् जनता में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में भी अत्यन्त सहायता प्रदान की। इसी बीच हमारे देश में श्री बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे लेखक जिन्होंने 'वन्दे मातरम्' गीत लिखा तथा अनेक और पत्रकारों ने जन्म लिया। इन सब नेताओं ने भारतवर्ष में राष्ट्रीय चेतना की भावना जाग्रत करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भाग लिया।

राष्ट्रीय जागृति के विभिन्न कारण

भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में जिन तत्वों ने भाग लिया उनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है :—

१. राजनीतिक एकता की स्थापना—ईस्ट इण्डिया कंपनी के राज्य में प्रथम बार

भारत में काश्मीर से कन्याकुमारी और आसाम से द्वारिका तक राजनीतिक एकता का प्रादुर्भाव हुआ। इस एकता के कारण सारा देश एक ही शासन-सूत्र में बँध गया और भारत की ३० करोड़ जनता को सहस्रों वर्ष के खण्डित इतिहास के पश्चात् प्रथम बार अंग्रेजी काल में अपने देश का प्राचीन विशाल स्वरूप देखने को मिला।

२. *अंग्रेजी शिक्षा*—भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में दूसरा महत्त्वपूर्ण भाग अँग्रेजी शिक्षा का था। इस शिक्षा के द्वारा सारे भारतवासियों को एक दूसरे पर अपने विचार प्रकट करने की सुविधा प्राप्त हो गई। इससे पहले हमारे देश के विभिन्न प्रान्तों में अलग-अलग भाषाएँ चली आती थीं और सब भारतवासी एक ही भाषा के द्वारा दूसरों पर अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकते थे। दूसरे, अंग्रेजी के ज्ञान के कारण हमारे देशवासियों को दूसरे देशों का साहित्य तथा इतिहास पढ़ने का अवसर मिला। उन्होंने देखा कि संसार के दूसरे देशों ने अपनी स्वाधीनता किस प्रकार प्राप्त की थी। उन्हें स्वतन्त्र देशों की जनता के राजनीतिक अधिकारों का भी ज्ञान हुआ और वह समझने लगे कि प्रजातन्त्र शासन का क्या अर्थ होता है।

३. *पश्चिमी सभ्यता*—पश्चिमी सभ्यता के सम्पर्क ने भी भारतवासियों में एक ऊँचे रहन सहन तथा सभ्य जीवन व्यतीत करने की आवश्यकता का ज्ञान कराया और वे समझने लगे कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बिना वह एक समृद्धिशाली तथा प्रगतिशील जीवन व्यतीत न कर सकेंगे।

४ *विदेशी यात्रा*—अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवक जब दूसरे देशों में गये और वहाँ उन्होंने स्वतन्त्रता के वातावरण में साँस लिया तो उन्हें अनुभव हुआ कि अपने देश की हीन अवस्था का वास्तव में क्या कारण है और दूसरे देशों के लोग भारतवासियों को इतनी घृणा की दृष्टि से क्यों देखते हैं! मन ही मन ऐसे नवयुवकों ने अपने देश को स्वतन्त्र करने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली, और उनमें से कितनों ने ही हमारे देश के राष्ट्रीय आंदोलन का नेतृत्व धारण किया।

५. *धार्मिक सुधार आंदोलन तथा भारत की प्राचीन संस्कृति का पुनरुत्थान*—उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक सुधारकों ने जिनमें राजा राममोहन राय तथा स्वामी दयानन्द मुख्य थे, भारतवासियों के हृदय में अपनी प्राचीन हिंदू संस्कृति तथा सभ्यता के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की। उन्होंने भारतीयों को बताया कि किस प्रकार उनका अपना देश संसार का गुरु तथा विश्व का सबसे गौरवशाली देश था। इस प्रकार इन नेताओं द्वारा जाग्रत धार्मिक भावना ने राष्ट्रीयता को जन्म दिया।

६. *आर्थिक असंतोष तथा बढ़ती हुई गरीबी*—आरम्भ से ही हमारे अंग्रेज शासकों ने भारत में एक ऐसी आर्थिक नीति का अवलम्बन किया जिसके कारण हमारा देश दरिद्रता, अकाल तथा भुखमरी की ज्वाला में झुलसता चला गया। 'उनके काल में

प्राचीन उद्योग-धंधे नष्ट हो गये और हमारे बाजारों में विदेशों की बनी हुई सस्ती चीजें बिकने लगीं। हमारा व्यापार भी नष्ट हो गया और हमारे देश में बेकारी और गरीबी बढ़ती चली गई। इन्हीं सब कारणों से जनता में विदेशी शासन के विरुद्ध एक भारी असंतोष की लहर दौड़ गई।

७. *भारतीय समाचार पत्र तथा साहित्य की प्रगति*—अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओं के समाचार पत्रों तथा हिंदी के साहित्य ने भी राजनीतिक चेतना के कार्य में भारी सहयोग दिया। उन्नीसवीं शताब्दी में हमारे देश में अनेक समाचार पत्र प्रकाशित किये गये और छापेखाने के आविष्कार से अनेक पुस्तकें लिखी गईं। इसी काल में बङ्किम, टैगोर, सरला देवी तथा रजनीकान्त सेन जैसे साहित्यिक, कवि और लेखकों ने जन्म लिया। उन्होंने देश भक्ति से ओत प्रोत साहित्य को जन्म देकर भारतीय जनता में राष्ट्रीय भावना निर्माण करने के कार्य में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग लिया।

८. *यातायात के साधनों में उन्नति*—अंग्रेजों के काल में हमारे देश में आने-जाने तथा परस्पर सम्पर्क के साधनों जैसे—रेल, तार, डाक तथा सड़कों इत्यादि की भी भारी उन्नति हुई जिसके कारण सारा देश एक सूत्र में बँध गया और जनता को इस बात का अवसर मिला कि वह सारे देश की समस्याओं पर विचार कर सके। राष्ट्रीय नेताओं को भी इन्हीं सुविधाओं के कारण सारे देश में भ्रमण तथा राजनीतिक आंदोलन करने का अवसर प्राप्त हो सका।

९. *१८५७ का प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम*—सन् १८५७ में भारतवासियों ने अपने विदेशी शासकों के विरुद्ध प्रथम बार एक संयुक्त मोर्चा कायम किया। यह सच है कि इस स्वाधीनता संग्राम में भारतवासियों को सफलता प्राप्त न हुई और आजादी के सिपाहियों को बुरी तरह कुचल डाला गया। उनके दल के दलों को रस्सियों से बाँध कर पेड़ों की डालियों पर लटका कर फाँसी दे दी गई और इस प्रकार उनकी आजादी की भावना को बिलकुल पीस डालने का प्रयत्न किया गया। परन्तु, इन सब दमनों से अंग्रेज, भारतीयों के हृदय से देश प्रेम की भावना का अन्त न कर सके और रह रह कर सन् १८५७ की याद भारतीयों के हृदय में टीस उत्पन्न करती रही।

१०. *लार्ड लिटन का शासन*—सन् १८८० के लगभग, जिस समय लार्ड लिटन भारत के गवर्नर जनरल थे, तो अंग्रेजी शासकों ने कुछ ऐसी भीषण गलतियाँ भारत के शासन के सम्बन्ध में कीं कि उनके कारण भारतीय जनता में अङ्गरेजी शासन के विरुद्ध असन्तोष की लहर फैल गई। इसी समय सन् १८७७ में दिल्ली में दरबार किया गया। यह वह समय था जब सारे देश में भीषण अकाल फैला हुआ था और लाखों मनुष्य भूख और प्यास की ज्वाला से तड़प-तड़प कर अपने प्राण खो चुके थे। इसी समय अफगानिस्तान के विरुद्ध भारतीय कोष से भारी रकम खर्च करके युद्ध लड़ा

गया। लार्ड लिटन के ही काल में समाचार पत्रों पर तरह-तरह की रोकें लगाई गईं। उसी ने लंकाशायर के कपड़े के व्यापारियों को प्रसन्न करने के लिए, इङ्गलैंड के कपड़े पर से आयात कर उठा लिया। उसी ने भारतीय सेना के खर्चे को बढ़ाया।

११. एलबर्ट बिल आन्दोलन—सन् १८८३ में लार्ड रिपन के काल में कानूनी सदस्य मि० एलबर्ट ने वायसराय की कौंसिल में एक बिल रक्खा जिसके द्वारा न्याय के क्षेत्र से जाति, नस्ल और रङ्ग का भेद भाव मिटाने का प्रयत्न किया गया था। इस बिल के द्वारा भारतीय जजों को इस बात की आज्ञा दी गई थी कि वह अङ्गरेजों के विरुद्ध भी मुकदमों का फैसला कर सकें। परन्तु, इस बिल ने भारत के समस्त अङ्गरेजों को एक क्रोध और आवेग की भावना से भर दिया और उन्होंने इस बिल का विरोध करने के लिए जगह-जगह योरोपियन डिफेंस एसोसियेशन बनाये। उनके द्वारा बिल को रद्द करने का आंदोलन किया। लार्ड रिपन की सरकार इस आंदोलन का सामना न कर सकी और उसे एलबर्ट बिल वापस लेना पड़ा। परन्तु, अङ्गरेजों की इस हलचल ने भारतीयों को भी आन्दोलन का मार्ग सिखा दिया और उन्होंने यह समझ लिया कि जब तक वह अपने अधिकारों की रक्षा के लिए किसी संस्था का जन्म नहीं देंगे तब तक वह अङ्गरेज शासकों के नीचे इसी प्रकार पिसते रहेंगे।

१२. पूर्व के देशों में राजनीतिक जागृति—जिस समय उपरोक्त कारणों से भारत में अङ्गरेजों के विरुद्ध एक अप्रसन्तोष की लहर दौड़ रही थी तो पूर्व के देशों में कुछ इस प्रकार की राजनीतिक घटनाएँ हुईं जिनसे भारतीयों के हृदय में एक नव उत्साह तथा विश्वास का निर्माण हुआ। सन् १८९६ में एबीसीनिया जैसे छोटे हब्शियों के देश ने इटली को हरा दिया और सन् १९०४ में जापानियों ने रूसियों को एक युद्ध में पराजित कर दिया। इन दोनों घटनाओं से भारतीयों को विश्वास हो गया कि यूरोप के देशों की सेनाओं को हराना कोई असम्भव बात नहीं। इसी समय यूनान, टर्की तथा इटली के देशों में स्वतन्त्रता संग्राम हुए और उनकी सफलता के पश्चात् भारतवासियों ने भी सोचा कि उन्हें अपने देश को स्वतन्त्र करने के लिए आंदोलन करना चाहिये।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपरोक्त सभी कारणों से भारतवासियों के हृदय में एक राजनीतिक चेतना का संचार हुआ और उन्हें इस बात का अनुभव होने लगा कि उनके अपने देश के लिए एक ऐसी अखिल भारतीय संस्था की आवश्यकता है जो अंग्रेजी शासन के विरुद्ध लोहा ले सके और भारतवासियों को राजनीतिक अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन कर सके। यहाँ यह समझ लेने की आवश्यकता है कि इस प्रकार राजनीतिक जागृति भारतीयों के हृदय में एकदम नहीं उत्पन्न हो गई। यह जागृति धीरे-धीरे हुई। जिस समय सन् १८८५ में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई तो उसके

पश्चात् इस संस्था ने स्वयं देश में राजनीतिक चेतना को बलशाली बनाने में भारी सहयोग दिया।

कांग्रेस की स्थापना के पहले हमारे देश में कुछ प्रांतीय संस्थाएँ तो थीं जैसे ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन (१८५१), इंडियन एसोसियेशन (१८७६), पूना पब्लिक एसोसियेशन (१८७०), मद्रास महाजन सभा, बाम्बे प्रेसिडेंसी एसोसियेशन इत्यादि, परन्तु सारे भारतवर्ष के लिए कोई अखिल भारतीय संस्था नहीं थी। इसलिए जब १८८५ में इस संस्था का जन्म हुआ तो सब देशवासियों ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया।

कांग्रेस का इतिहास

कांग्रेस का जन्म सन् १८८५ में हुआ। इसके पूर्व इसके संगठन की योजना सन् १८८४ में मद्रास में दीवान बहादुर रघुनाथ राव के घर पर बनाई गई थी जहाँ आदियार के थियासॉफिकल सम्मेलन के पश्चात् उनके घर पर कुछ लोग जमा थे। इन लोगों ने निश्चय किया कि वह एक अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना करेंगे। रिटायर्ड अंग्रेज सिविलियन एलन आक्टेवियन ह्यूम ने इस कार्य में अत्यन्त दत्तचित्तता से काम किया। बहुत से लोग तो इसीलिए ह्यूम को कांग्रेस का जन्मदाता भी कहकर पुकारते हैं। मार्च सन् १८८५ में इस संस्था का विधान बनाने के लिए एक छोटी सी कमेटी बना दी गई जिसका निश्चय था कि कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन पूना में दिसम्बर के मास में बुलाया जाय।

मि० ह्यूम ने कांग्रेस के संगठन में भाग लेने से पहले भारत के वायसराय लार्ड डफरिन से सलाह ली थी कि वह इस प्रकार की संस्था में भाग लें अथवा नहीं। लार्ड डफरिन ने यह समझ कर कि कांग्रेस भारत में वही कार्य कर सकेगी जो इंगलैंड की पार्लियामेंट में विरोधी दल करता है और इस प्रकार अँग्रेज शासकों को भारतीय जनता की राजनीतिक आकांक्षाओं का भी पता चल जायगा, मि० ह्यूम को कांग्रेस का कार्य करने की अनुमति दे दी।

कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन—कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हैजे के प्रकोप के कारण पूना में न हो सका। इसलिए कांग्रेस की पहली सभा श्री उमेश चन्द्र बनर्जी के सभापतित्व में गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कॉलेज हाल, बम्बई में हुई। इस सम्मेलन में समस्त भारत के ७२ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें ह्यूम, दादाभाई नारोजी, फिरोजशाह मेहता, रानाडे, दिनशाह वाचा तथा चन्दावरकर मुख्य थे। आरम्भ में कांग्रेस ने अपना ध्येय स्वराज प्राप्ति नहीं बनाया वरन् राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए अंग्रेजों से प्रार्थना करने तथा आवेदन पत्र भेजने के मार्ग का अवलम्बन किया। इसलिए आरम्भ में सरकार ने कांग्रेस को सहयोग दिया और मि० ह्यूम के

अतिरिक्त और बहुत से अँग्रेज तथा सरकारी कर्मचारी इसमें सम्मिलित हो गये। महात्मा गांधी के कांग्रेस में पदार्पण करने से पहले, इस राष्ट्रीय संस्था का अधिवेशन भारत के बड़े-बड़े नगरों में किया जाता था। इनमें अधिकतर अँग्रेजी पढ़े-लिखे वकील बैरिस्टर, डाक्टर, प्रोफेसर, बड़े-बड़े जमींदार और व्यापारी भाग लेते थे। यह लोग वार्षिक सम्मेलनों के अवसर पर तो बड़े-बड़े भाषण देते थे और प्रस्ताव पास करते थे, परन्तु इसके पश्चात् दूसरे अधिवेशन के आरम्भ होने तक वह और किसी प्रकार का कार्य नहीं करते थे।

कांग्रेस के प्रस्तावों में ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की जाती थी कि वह भारतीयों को देश की सेना, सिविल सर्विस, न्यायालय तथा व्यवस्थापिका सभाओं में भाग लेने का अधिक अवसर प्रदान करे तथा उन्हें उच्च सरकारी नौकरियों पर पहुँचने की सुविधाएँ दे।

सन् १८९० में कांग्रेस ने सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में एक प्रतिनिधि मंडल लंदन भेजा और इस प्रकार प्रथम बार उस वर्ष कांग्रेस ने अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए राजनीतिक आंदोलन का मार्ग पकड़ा। सन् १८८९ में कांग्रेस की एक शाखा भी लंदन में खोली गई। इन सब आंदोलनों का यह परिणाम हुआ कि सन् १८९२ में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने इंडियन कौंसिल ऐक्ट पास किया जिसके द्वारा भारतीयों को लेजिस्लेटिव कौंसिल की सदस्यता का अधिकारी बना दिया गया।

कांग्रेस के सदस्यों को इस ऐक्ट से अत्यन्त निराशा हुई। कारण, वह समझते थे कि ब्रिटिश सरकार कुछ थोड़े से मुट्ठी भर भारतीयों को कौंसिल की सदस्यता बख्शने के अतिरिक्त कुछ वास्तविक राजनीतिक अधिकार भी प्रदान करेगी। कांग्रेस चाहती थी कि प्रांतों में धारा सभाएँ स्थापित की जावें। आई० सी० एस० की परीक्षा में भारतीयों को अंग्रेजों के समान ही भाग लेने का अवसर दिया जाय, कार्यकारिणी तथा न्याय विभाग को अलग किया जाय। स्थानीय स्वराज्य की नींव डाली जाय तथा भारतीयों को उच्च पदों पर नियुक्त किया जाय। १८९२ के ऐक्ट में कांग्रेस की यह माँगें स्वीकार नहीं की गईं। परिणाम यह हुआ कि देश में अँग्रेजों के विरुद्ध राजनीतिक असंतोष बढ़ने लगा और कांग्रेस ने देश की राजनीति में सक्रिय रूप से अधिक भाग लेना आरम्भ कर दिया। सन् १८९० में कांग्रेस को अपने हाथों से निकलता हुआ देख कर अंग्रेजों ने सरकारी नौकरों को उसके अधिवेशनों में भाग लेने की मनाही कर दी। परंतु इसके पश्चात् भी जब राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव कम न हुआ तो उसने एक दूसरी चाल सोची। उसने मुसलमानों को हिन्दुओं के विरुद्ध भड़काना आरम्भ कर दिया और कहा, 'कांग्रेस तो हिंदुओं की संस्था है।' इस प्रकार अँग्रेजों की यह पाकर मुसलमानों के एक

नेता सर सैयद अहमद ने धार्मिक आधार पर मुसलमानों की एक अलग संस्था बना डाली।

असंतोष की प्रगति—इधर अनेक कारणों से देश में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक घोर असंतोष की भावना जाग्रत हो रही थी। सन् १८९७ में हमारे देश में एक भीषण अकाल पड़ा जिसमें लाखों नर और नारी भूख और प्यास से तड़प तड़प कर परलोक सिधार गये। इसी के थोड़े दिन पश्चात् हमारे देश में प्लेग की महामारी फैली। सरकार इन दोनों अवसरों पर जनता के दुख को दूर करने के लिए कुछ भी उपाय न कर सकी। इधर दक्षिणी अफ्रीका में भारतीय नागरिकों पर वहाँ की सरकार तरह तरह के जुल्म ढा रही थी और भारतीय सरकार चुप खड़ी यह सब तमाशा देखती जा रही थी। पूना में इसी समय दो अँग्रेज अफसरों को किसी ने कत्ल कर दिया। भारतीय सरकार को गोरी चमड़ी के इन दो लोगों की जानें इतनी प्यारी थीं कि उसने सैकड़ों भारतवासियों को मौत के घाट उतार कर बदला लिया। इसके पश्चात् राजनीतिक असंतोष को दबाने के लिए उसने राजद्रोह का कानून पास किया। इन सब कारणों से भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में एक गरम दल का जन्म हुआ। इसके नेता लोकमान्य तिलक, लाला लाजपत राय तथा विपिनचन्द्र पाल थे। इन तीनों नेताओं ने नरम दलीय कांग्रेस जनों से राष्ट्रीय संस्था की बागडोर अपने हाथों में लेने का प्रयत्न किया। कांग्रेस के बाहर भी बंगाल में एक क्रान्तिकारी बम पार्टी का सङ्गठन किया गया जिसने अँग्रेज शासकों को मारना तथा सरकार के पिट्ठुओं को भयभीत करना अपना ध्येय बना लिया।

बंग भंग आन्दोलन—सन् १८९८ में लार्ड कर्जन गवर्नर जनरल बन कर भारत में आये। उनकी नीति ने सारे देश में राजनीतिक ज्वाला को और भी भड़का दिया। वह भारतीय सभ्यता तथा संस्कृत को अत्यन्त हेय समझते थे। उन्होंने भारतीयों के आत्म गौरव को भारी ठेस पहुँचाई और अन्त में मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए बंगाल के दो टुकड़े करने की योजना रक्खी। इस योजना ने सारे देश में एक ऐसे शक्तिशाली आन्दोलन को जन्म दिया कि उसके रोष तथा प्रताप के सम्मुख ब्रिटिश सरकार के पैर न जम सके और उसे बंगाल के दो टुकड़ों को दो वर्ष पश्चात् ही एक कर देना पड़ा।

कलकत्ता अधिवेशन—इधर सरकार की दमन नीति के कारण कांग्रेस नरम दल के नेताओं के हाथों से निकल कर गरम दलीय कांग्रेस जनों के हाथों में चली जा रही थी। सन् १९०६ में कांग्रेस का जो अधिवेशन कलकत्ते में हुआ उसमें 'लाल' 'बाल' 'पाल' की पार्टी का बहुमत था। इस अधिवेशन में डर था कि कहीं नरम दल और उग्र दल में संघर्ष न हो जाय परन्तु दादा भाई नौरोजी के नेतृत्व के कारण, जो इस समय

कांग्रेस के प्रधान थे, इन दोनों दलों में मुठभेड़ न हो सकी और यह अधिवेशन विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव पास करके निर्विघ्न समाप्त हो गया। नरम दल के नेता सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा सर फिरोजशाह मेहता इस प्रस्ताव से सहमत नहीं थे परन्तु उन्हें गरम दल के बहुमत के सामने झुकना पड़ा।

कांग्रेस में फूट—सन् १९०७ में कांग्रेस का अगला अधिवेशन सूरत में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस के नरम दल के नेता अपने पूरे दल बल के साथ सम्मेलन में सम्मिलित हुए। वह गरम दल के नेताओं से टक्कर लेना चाहते थे। इसलिए इस अधिवेशन में उन्होंने कलकत्ता अधिवेशन में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार सम्बन्धी प्रस्ताव को बदलना चाहा। इस प्रस्ताव से कांग्रेस में खूब गड़बड़ी मची। गरम दल के नेताओं ने पूरी शक्ति के साथ प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु इस अधिवेशन में वह नरम दल वालों की भाँति अपनी पूरी तैयारी के साथ जमा नहीं हुए थे। परिणाम यह हुआ कि नरम दल के नेताओं की विजय हुई और उन्होंने गरम दल के नेताओं को कांग्रेस से निकाल दिया। कांग्रेस का विधान बदल दिया गया और उसमें इस प्रकार के नियम बनाये गये, जिससे उग्रदलीय कांग्रेस जन उसमें सम्मिलित न हो सकें।

गरम दलीय कांग्रेसजनों का दमन—ब्रिटिश सरकार कांग्रेस की इस फूट से अत्यन्त प्रसन्न हुई। उसने अब एक दोहरी नीति का आश्रय लिया। नरम दल वाले कांग्रेस नेताओं को तो उसने मिन्टो मार्ले के सन् १९०९ के सुधारों का प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया और गरम दल वाले कांग्रेसी नेताओं को उसने तरह-तरह के अभियोग लगा कर दबाना आरम्भ कर दिया। इसी बीच उसने तिलक को छै वर्ष के लिए माँडले की जेल में नजरबन्द कर दिया। लाला लाजपत राय को बिना मुकदमा किये ही हिन्दुस्तान से निकाल कर अमरीका भेज दिया गया और विपिनचन्द्र पाल को छै महीने की सख्त सजा देकर जेल में बन्द कर दिया गया। इसके अतिरिक्त उसने राष्ट्रीय आन्दोलन की पीठ में छुरा भोंकने के लिए मुसल्मानों को हिन्दुओं के विरुद्ध खुली सहायता देनी आरम्भ कर दी। इस समय के स्थानापन्न गवर्नर जनरल ने नवाब मोहसिन उल्मुल्क और आगा खाँ को अपने पास बुलाया और कहा कि तुम एक अलग मुस्लिम लीग सस्था की स्थापना करो और सरकार से कहो कि वह तुम्हें हिन्दुओं से अलग धारा सभाओं में सुरक्षित स्थान तथा पृथक् निर्वाचन का अधिकार दे। अंग्रेजों के इन पिट्ठुओं ने ऐसा ही किया और भारत में सदा के लिए साम्प्रदायिकता का वह विष बो दिया जिसके कारण हमारे देश के दो टुकड़े हो गये। उन्होंने सरकार से पृथक् निर्वाचन प्रणाली की माँग की। यह माँग तुरन्त ही स्वीकार कर ली गई। सन् १९०६ में मुस्लिम लीग का जन्म हुआ और सारे प्रतिक्रियावादी मुसलमानों ने कांग्रेस के विरुद्ध मोर्चा कायम करने तथा ब्रिटिश सरकार का साथ देने के लिए इसको सहयोग दिया।

सन् १९१६ तक कांग्रेस नरम दलीय कांग्रेस जनों के हाथ में रहती आई। कारण इस समय तक सब गरम दल वाले नेता जेलों में थे। इसलिए नरम दल के नेताओं ने मिन्टो मार्ले सुधारों को कार्यान्वित करने में पूरा सहयोग दिया।

प्रथम महायुद्ध—परन्तु नरम दल के नेताओं की इस सरकार परस्त नीति से देश पूरी तरह ऊब चुका था और भारत के कोने कोने में एक असंतोष की लहर फैल रही थी। इसी बीच सन् १९१४ में संसार में प्रथम महायुद्ध आरम्भ हो चुका था। इस के कुछ दिन पश्चात् ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों से सरकार को युद्ध में सहयोग देने की अपील की। तिलक जेल से छोड़ दिये गये और महात्मा गांधी इस समय दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की ओर से एक सफल नेतृत्व करने के पश्चात् भारत लौटे। ब्रिटिश सरकार के सङ्कट के समय सभी कांग्रेस के नेताओं ने सरकार को सहयोग देना ही उचित समझा और उन्होंने जनता से प्रार्थना की कि वह सरकार की पूरी मदद करें। नेताओं की इस अपील के कारण, भारतवासियों ने अपनी अतुल धन-सम्पत्ति तथा लाखों नवयुवकों से अंग्रेजों का लड़ाई में साथ दिया।

युद्ध के पश्चात्—भारतवासियों को आशा थी कि युद्ध में इस प्रकार सहयोग देने के बदले उन्हें राजनीतिक क्षेत्र में कुछ वास्तविक अधिकार प्रदान कर दिये जायँगे। भारत मन्त्री मि० मान्टेग्यू की सन् १९१७ की उस घोषणा से जिसमें उन्होंने भारत को धीरे धीरे उत्तरदायी शासन देने का वचन दिया था उसकी यह आशा और भी प्रबल हो गई थी। परन्तु, युद्ध के तुरन्त पश्चात्, जिस समय राष्ट्र के नवयुवक स्वराज्य प्राप्ति का सुखद स्वप्न देख रहे थे, तो भारतवासियों को मिला रौलट ऐक्ट और पंजाब का वह निर्मम हत्याकांड जिसमें देश प्रेम के अपराध में पंजाब के सहस्रों व्यक्तियों को *मार्शल लॉ* के अधीन गोलियों का शिकार बना कर मौत के घाट उतार दिया गया। इसी समय अमृतसर में जलियाँवाला बाग का वह नारकीय दृश्य भी रचा गया जिसमें दो अँग्रेज अफसरों के मारे जाने के बदले में २०,००० व्यक्तियों की एक शांतिपूर्ण सभा पर गोलियों की बौछार कर दी गई और जनता के भागते हुए व्यक्तियों की पीठों में गोलियाँ दाग दी गईं। सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार जलियाँवाला बाग में ३७९ व्यक्ति मारे गये और १२०० व्यक्ति जख्मी हुए। इस जुल्म ने जनता को एक क्रोध तथा प्रतिकार की भावना से भर दिया। महात्मा गांधी ने इस समय देश की बागडोर अपने हाथों में सँभाल ली। नवम्बर सन् १९१८ में नरम दल वाले नेता कांग्रेस की उग्र नीति से तङ्ग आकर उससे पहले ही अलग हो चुके थे और उन्होंने अपनी एक अलग लिबरल पार्टी बना ली थी। १ अगस्त, सन् १९२० को लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक भी इस संसार से चल बसे। गांधी जी ही इस समय ऐसे नेता थे जिन पर देश की दृष्टि लगी थी। उन्होंने तुरन्त मुसलमानों को राष्ट्रीय आन्दोलन में सम्मिलित करने के

लिए तथा ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध एक संयुक्त मोर्चा प्रस्तुत करने के लिए मुसलमानों के खिलाफत आंदोलन का साथ दिया। पिछले महायुद्ध में टर्की के लड़ाई में हार जाने के कारण मुसलमानों के धार्मिक पैगम्बर खलीफा को उस देश की गद्दी से उतार दिया गया। हिन्दुस्तान के मुसलमान, अँगरेजों के इस कृत्य से अत्यंत क्रोधित थे और उन्होंने अली बन्धुओं के नेतृत्व में कांग्रेस का साथ देने का निश्चय किया।

असहयोग आन्दोलन—कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन सन् १९२० में कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने धारा सभाओं, कचहरियों, शिक्षा संस्थाओं तथा विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार तथा अंग्रेजी सरकार से असहयोग का प्रस्ताव कांग्रेस के सम्मुख रक्खा। प्रस्ताव पास हो गया। इसके तुरन्त पश्चात् देश भर में आंदोलनों की आग धधक उठी। हजारों नर और नारियों ने हँसते हँसते जेल की यातनाएँ सहीं। जगह-जगह विलायती कपड़ों की होली जलाई गई। परन्तु जिस समय आंदोलन इस प्रकार जोरों पर चल रहा था तो दुर्भाग्यवश ५ फरवरी सन् १९२२ को उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में एक ऐसी घटना हो गई जिसने इस विशाल आंदोलन का पासा ही पलट दिया। उन दिनों चौरीचौरा गाँव में एक कांग्रेसी जुलूस निकला और पुलिस के हस्तक्षेप करने पर जुलूस की भीड़ ने आवेश में आकर थानेदार और २१ सिपाहियों समेत थाने को जला डाला। उधर मद्रास में भी युवराज के स्वागत समारोह के अवसर पर एक ऐसा हिंसाकांड हुआ। महात्मा गान्धी, जो असहयोग आंदोलन का नेतृत्व अहिंसात्मक उपायों से करना चाहते थे, हिंसा के इस प्रदर्शन से बेचैन हो गये और १२ फरवरी १९२२ को उन्होंने असहयोग आंदोलन को स्थगित कर दिया। गांधी जी ने ऐसा उस समय किया जब २२,००० से अधिक व्यक्ति जेलों में जा चुके थे और जनता एक वर्ष के अन्दर स्वराज प्राप्ति का स्वप्न पूरा होते देखने के लिए अपना तन-मन और धन स्वातन्त्र्य संग्राम में न्यौछावर कर रही थी। गांधी जी के सत्याग्रह वापस लेने के प्रस्ताव से जनता रुष्ट, उग्र और गिरफ्तार नेताओं में पंडित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपत राय ने गांधी जी के इस काम की घोर निन्दा की। सफलता की ओर बढ़ते हुए आन्दोलन को पीछे हटाने से बहुत से गांधी भक्त लोग भी उनके विरोधी बन गये और बंगाल और महाराष्ट्र के लोग उन पर खुल्लम खुल्ला आक्रमण करने लगे।

गांधीजी को जेल और साम्प्रदायिकता का ताण्डव नृत्य—भारत सरकार ने जब यह देखा कि गांधी जी की लोकप्रियता काफी घट गई है तो उसने १३ मार्च, सन् १९२२ को उन्हें गिरफ्तार करके राजद्रोह के अपराध में छै साल की सजा सुना दी। गांधी जी की इस गिरफ्तारी के पश्चात् देश में निराशा का वातावरण छा गया और राजनीतिक क्षेत्र में एक प्रकार की उदासी आ गई। सरकार ने इस अवसर को देश में साम्प्रदायिक

द्वेष की भावना भड़काने के लिए अत्यन्त उपयुक्त समझा। इसी काल में हिन्दू सभा की नींव डाली गई और मुस्लिम लीग का नेतृत्व मि० जिन्ना ने अपने हाथों में ले लिया। सरकार की चालबाजी का यह फल हुआ कि देश में जगह जगह साम्प्रदायिक झगड़े हुए। मुल्तान में भीषण उपद्रव हुए और हिन्दू मुसलमानों का खूब रक्त बहा।

कांग्रेस का कौंसिल प्रवेश कार्यक्रम—इधर कांग्रेस के कुछ नेताओं ने जनता को साम्प्रदायिक संस्थाओं के फेर से बचाने के लिए देश के सम्मुख 'कौंसिल प्रवेश' का कार्यक्रम रक्खा। इस आंदोलन के नेता मोतीलाल नेहरू व देशबन्धु चित्तरंजन दास थे। आरम्भ में कांग्रेस के अपरिवर्तनवादी नेताओं ने इस कार्यक्रम का विरोध किया, परन्तु बाद में जब नेहरू और दास ने मिलकर अपनी एक अलग स्वराज्य पार्टी बना ली तो कांग्रेस के दूसरे नेताओं ने भी उसे सहयोग देना आरम्भ कर दिया। इस पार्टी को कौंसिल प्रवेश के कार्यक्रम में भारी सफलता मिली और कई प्रांतों में कांग्रेस के उम्मीदवार जबर्दस्त बहुमत से धारा सभाओं में चुने गये। केंद्रीय असेम्बली में भी श्री विट्ठल भाई पटेल धारा सभा के अध्यक्ष बन गये।

सन् १६२५ में देशबन्धु श्री चित्तरंजन दास की मृत्यु हो गई और इससे स्वराज्य पार्टी के काम में भारी धक्का लगा। इधर हिन्दू मुस्लिम फसाद बराबर बढ़ते जा रहे थे और देश में ऐसे दलों की लोकप्रियता बढ़ रही थी जिनका आधार साम्प्रदायिकता था। सन् १६२६ के कौंसिल के चुनावों में इसलिए स्वराज्य पार्टी को पहले की भाँति सफलता प्राप्त नहीं हुई।

साइमन कमीशन का आगमन—सन् १६२७ में ब्रिटिश सरकार की ओर से शासन सम्बन्धी सुधारों की जाँच पड़ताल करने के लिए एक श्वेत साइमन कमीशन भारत में आया। इस कमीशन के आगमन पर देश में फिर एक बार राजनीतिक चेतना की लहर दौड़ गई। देश के सभी राजनीतिक दलों ने इस पूर्ण गौरांग कमीशन का बहिष्कार करने का बीड़ा उठाया। हर जगह इस कमीशन के सदस्यों का काले झंडे से स्वागत किया गया। इस समय ब्रिटिश सरकार ने भारतवासियों से कहा कि तुम आपस में मिलकर एक संयुक्त माँग सरकार के सम्मुख रक्खो। अँगरेज जानते थे कि भारत में हिन्दू और मुसलमान एक होकर काम नहीं कर सकते। इसलिए उन्होंने भारत की जनता को यह कह कर एक प्रकार की 'ललकार' दी थी।

नेहरू रिपोर्ट—परन्तु कांग्रेस के नेताओं ने ब्रिटिश सरकार की यह ललकार स्वीकार की और लखनऊ में सर्वदलीय सम्मेलन बुलाया गया जिसमें पंडित मोतीलाल नेहरू की रिपोर्ट के आधार पर हिंदू और मुसलमानों ने मिलकर कुछ संयुक्त माँगें ब्रिटिश सरकार के सम्मुख रक्खीं; परन्तु सदा की भाँति ब्रिटिश सरकार ने यह सिफारिशें भी स्वीकार न कीं।

पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा—सन् १६२६ में कांग्रेस का अधिवेशन लाहौर में हुआ। इसके सभापति पंडित जवाहरलाल नेहरू थे। ३१ दिसम्बर की अर्द्धरात्रि को इस अधिवेशन में महात्मा गांधी ने कांग्रेस का पूर्ण स्वतन्त्रता ध्येय सम्बन्धी वह प्रस्ताव सम्मेलन के सम्मुख रक्खा जिसकी पूर्ति अभी हाल ही में २६ जनवरी, सन् १६५० को हमारे देश में हुई है। इस प्रस्ताव द्वारा ब्रिटिश सरकार से कहा गया है कि यदि वह ३१ दिसम्बर तक भारत को स्वतन्त्रता प्रदान नहीं करेगी तो देश में महात्मा गांधी के नेतृत्व में एक असहयोग आंदोलन आरम्भ कर दिया जायगा।

१६३० का असहयोग आन्दोलन—ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की माँग नहीं मानी और ६ अप्रैल, १६३० को महात्मा गांधी ने सारे देश में 'सविनय अवज्ञा' आरम्भ कर दी। जगह जगह नमक कानून तोड़े गये, मद्रास व पेशावर में गोलियाँ चलीं, अगणित स्थानों पर लाठी प्रहार हुए, शोलापुर में मार्शल लॉ जारी किया गया, कांग्रेस कमेटियाँ गैरकानूनी करार दी गईं, एक लाख से अधिक आदमियों से ब्रिटिश सरकार की जेलें भर गईं, विदेशी कपड़े का बहिष्कार किया गया और जगह-जगह शराब की दूकानों पर पिकेटिंग लगाया गया।

गांधी-इरविन समझौता—इन सब आंदोलनों का प्रभाव यह हुआ कि अंग्रेजी सरकार का तख्त हिलने लगा और १६३१ में ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधि लार्ड इरविन को गांधी जी से समझौता करना पड़ा। सारे राजनीतिक बन्दी जेलों से मुक्त कर दिये गये और महात्मा गांधी दूसरी गोल मेज सभा में सम्मिलित होने के लिए अगस्त के अंतिम सप्ताह में लंदन के लिए रवाना हो गये।

फिर असहयोग आंदोलन—परन्तु ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के साथ समझौता किसी अच्छी नियत से नहीं किया था। वह तो उसकी एक चाल मात्र थी। समझौते के तुरन्त पश्चात् लार्ड इरविन के स्थान पर एक कट्टरपंथी लार्ड विलिंगडन को वायसराय बना कर भारत भेज दिया गया। उधर, दूसरी गोल मेज सभा में ब्रिटिश सरकार ने महात्मा गांधी से कहा, 'तुम मुसलमानों के साथ मिलकर धारा सभाओं में सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में आपस में समझौता कर लो, उसके पश्चात् हम तुम्हारे साथ बात करेंगे'। यह समझौता न हो सका, दूसरी गोल मेज सभा से इस लिए महात्मा गांधी खाली हाथ भारत लौटे। यहाँ आकर उन्होंने देखा कि ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र पूरे वेग से चल रहा है और उनकी अनुपस्थिति में अनेक देशभक्त नेता जेल के सींकचों के पीछे बन्द कर दिये गये हैं। उन्होंने वायसराय से मिलने की प्रार्थना की परन्तु, लार्ड विलिंगडन को तो इंगलैंड की टोरी सरकार ने यही कह कर भारत भेजा था कि तुम्हें कांग्रेस को पूर्ण रूप से कुचल डालना है और किसी दशा में कांग्रेस के उस जादूगर महात्मा गांधी से नहीं मिलना है, जो व्यक्तियों पर कुछ ऐसा प्रभाव डालता है

कि उसकी बात टाले नहीं टाली जाती। वायसराय ने इसलिए महात्मा गांधी से मिलने से इन्कार कर दिया और इसके बजाय उन्हें गिरफ्तार करके जेल भेज दिया। इसके पश्चात् अत्याचार और दमन का खुला नृत्य रचा जाने लगा। कांग्रेस को गैर कानूनी करार दे दिया गया, देश में आर्डिनेंसों का राज्य लागू कर दिया गया। गिरफ्तार शुदा लोगों पर भारी जुर्माने किये गये और उनकी जायदादें जब्त कर ली गईं। पुत्र के जुर्म पर बाप को जेल भेजा जाने लगा और कितने ही सरकारी नौकरों को उनके सम्बन्धियों द्वारा राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के कारण नौकरी से अलग कर दिया गया। परन्तु, इन सब दमन चक्रों की जबदस्त आँधी के चलने पर भी दूसरा "सविनय अवज्ञा आन्दोलन" पूरे वेग से चला। विलायती माल का बहिष्कार पहले से भी अधिक हुआ। 'लगान बन्दी आन्दोलन' ने भी जोर पकड़ा। सन् १९३२ और ३३ में कांग्रेस के गैर कानूनी घोषित होने पर भी उसके वार्षिक अधिवेशन दिल्ली और कलकत्ते की सड़कों पर हुए।

पूना समझौता—अगस्त सन् १९३२ में जब महात्मा गांधी जेल में बन्द थे तो ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री मि० रैमजे मैकडानल्ड ने अपना साम्प्रदायिक निर्णय प्रकाशित कर दिया। इस निर्णय में पृथक् निर्वाचन प्रणाली के आधार पर अछूतों को हिंदुओं से अलग करने का प्रयत्न किया गया। महात्मा गांधी को जिस समय जेल के अन्दर इस निर्णय का पता चला तो उन्होंने हिंदू समाज की एकता को कायम रखने के लिए आमरण व्रत रखने का एलान किया। गांधी जी के जीवन को बचाने के लिए हिन्दू और हरिजन नेता पूना में जमा हुए और वहाँ उन्होंने एक ऐसे समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये जिसके द्वारा हरिजन हिंदू समाज के अन्दर रह कर ही अपने अधिकारों की रक्षा कर सकें। इसके पश्चात् महात्मा गांधी ने हिंदू समाज से 'अछूतपन' का कलंक दूर करने के लिए २१ दिन का एक और व्रत रक्खा। ८ मई १९३३ को वह जेल से मुक्त कर दिये गये और १ वर्ष पश्चात् उन्होंने 'अवज्ञा आन्दोलन' वापस ले लिया।

फिर कौंसिल प्रवेश—राजनीतिक क्षेत्र में शिथिलता आ जाने से सन् १९३३ की भाँति फिर कांग्रेस ने कौंसिल प्रवेश की ओर ध्यान दिया। उसने केन्द्रीय धारा सभा के चुनावों में भाग लेने का निश्चय किया। इस चुनाव में उसे अत्यन्त सफलता प्राप्त हुई और उसके ४४ सदस्य केन्द्रीय धारा सभा में चुन लिये गये।

कांग्रेस में समाजवादी दल का जन्म—इसी वर्ष कांग्रेस के अन्दर उसके कार्यक्रम में समाजवादी दृष्टिकोण लाने के लिए श्री जयप्रकाश नारायण, आचार्य नरेन्द्र देव, यूसुफ मेहर अली, डा० लोहिया, अशोक मेहता तथा श्री अच्युत पटवर्धन द्वारा एक समाजवादी दल का सङ्गठन किया गया।

प्रान्तों में कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल का निर्माण—सन् १९३५ में ब्रिटिश सरकार ने तीन गोलमेज सभा करने के पश्चात् भारत का नया विधान पास कर दिया। इस

विधान के अन्तर्गत केन्द्र में द्वैध शासन प्रणाली का आरम्भ किया गया तथा प्रान्तों में गवर्नरों के हाथ विशेष अधिकार सौंप गये। सारे देश ने इसलिए इस विधान के विरुद्ध आन्दोलन किया। सन् १६३७ में इस नये विधान के अनुसार प्रान्तों में चुनाव लड़े गये। कांग्रेस ने इन चुनावों में इस दृष्टि से भाग लिया कि कहीं राष्ट्रीय विरोधी शक्तियाँ प्रान्तीय धारा सभाओं में जाकर देश को हानि न पहुँचायें। चुनावों के पश्चात् कांग्रेस ने देखा कि उसे देश के छः प्रान्तों में बहुमत प्राप्त है और शेष प्रान्तों में भी उसके उम्मीदवार भारी संख्या में चुने गये हैं। आरम्भ में कांग्रेस का यह विचार नहीं था कि वह प्रान्तों में मन्त्रिमण्डल बनाये परन्तु फिर गवर्नरों के यह आश्वासन देने पर कि वह मन्त्रियों के काम में अनुचित हस्तक्षेप नहीं करेंगे उसने पहले छः और फिर आठ प्रान्तों में अपने मन्त्रिमण्डल बनाये। इन मन्त्रिमण्डलों ने देश की आर्थिक तथा सामाजिक दशा को सुधारने के लिए अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य किया।

द्वितीय महायुद्ध का आरम्भ—परन्तु सितम्बर सन् १६३६ में संसार में द्वितीय महायुद्ध आरम्भ हो गया। इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों की सलाह लिये बिना ही भारत को युद्ध की अग्नि में झोंक दिया। इस पर कांग्रेस के सभी मन्त्रियों ने अपने पदों से त्याग पत्र दे दिये और नवम्बर सन् १६४० में कांग्रेस ने 'वैयक्तिक सविनय अवज्ञा आन्दोलन' आरम्भ कर दिया। इस आन्दोलन का उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश सरकार को मालूम हो जाय कि कांग्रेस लड़ाई में उसके साथ नहीं है।

क्रिप्स आगमन—मार्च सन् १६४१ में सर स्टैफर्ड क्रिप्स कुछ सुधार सम्बन्धी योजनाओं के साथ भारत आये। कांग्रेस ने यह सुझाव स्वीकार नहीं किया।

१६४२ का भारत छोड़ो आन्दोलन—क्रिप्स मिशन के पश्चात् देश में राजनातिक असंतोष इतना बढ़ गया था कि सन् १६४२ में कांग्रेस ने फिर ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने की ठानी। बम्बई के अधिवेशन में उसने अपना 'भारत छोड़ो' आन्दोलन और 'करो या मरो' प्रस्ताव पास किया। इस प्रस्ताव के पास होने के तुरन्त पश्चात् हमारे देश में सरकार की ओर से जो नृशंस एवं अमानुषिक, हिंसा और अत्याचार का ताँडव नृत्य रचा गया वह कल की कहानी है। इस आन्दोलन में ६०,२२६ व्यक्तियों को जेल भेजा गया, १८,००० आदमियों को बिना मुकदमे 'भारत रक्षा कानून' के अधीन नजरबन्द किया गया, ६५७० व्यक्तियों को गोलियों का शिकार बनाया गया, ५३८ अवसरों पर पुलिस ने गोलियाँ चलाईं, ६० स्थानों पर फौजी शासन कायम किया गया, कुछ स्थानों पर हवाई जहाजों से भी बम गिराये गये, देश के प्रायः सभी राष्ट्रवादी पत्रों को बन्द कर दिया गया, कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के सदस्यों को अहमदनगर जेल में बन्द कर दिया गया और महात्मा गांधी को आगा खाँ महल में नजरबन्द रक्खा गया।

गांधी जी का व्रत—महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के अत्याचारपूर्ण दृष्टिकोण

में परिवर्तन लाने के लिए आगा खाँ जेल में २१ दिन का व्रत करने की घोषणा की। इस व्रत द्वारा महात्मा जी यह सिद्ध करना चाहते थे कि कांग्रेस अहिंसात्मक सिद्धान्तों में विश्वास रखती है और अगस्त सन् १९४२ के पश्चात् होने वाले उपद्रवों की सारी जिम्मेदारी सरकार की उत्तेजनात्मक नीति पर है। जिस समय भारतीय जनता को गांधी जी के इस निश्चय का पता चला तो देश के कोने कोने से वायसराय से प्रार्थना की जाने लगी कि वह गान्धी जी को छोड़ दें। वायसराय के कौंसिल के तीन सदस्यों ने भी सरकार पर दबाव डालने के लिए अपने पद से त्याग पत्र दे दिया। परन्तु ब्रिटिश सरकार टस से मस न हुई और ईश्वर ने ही भारतवासियों के भाग्य पर कृपा करके महात्मा गान्धी के प्राण बचाये।

बंगाल का भीषण दुर्भिक्ष—सन् १९४३ के अन्त में भारत के बंगाल प्रान्त में एक भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। यह दुर्भिक्ष अनाज की कमी से इतना नहीं जितना सरकारी कुप्रबन्ध के कारण था। इस दुर्भिक्ष में बंगाल की ३०,००,००० जनता ने अपने प्राण गँवाये। कलकत्ते की गली गली में इन दिनों अस्थि और हड्डियों के नर पञ्जर देखने को मिल सकते थे, जिन पर कुत्ते और जङ्गली जानवर अपनी क्षुधा शान्त करते थे। यह नारकीय दृश्य उस समय दृष्टिगोचर होता था जब उसी स्थान के बड़े बड़े होटलों, महलों तथा धनिकों के प्रासादों में बड़ी बड़ी दावतें, नाच और रंगरेलियाँ मनाई जाती थीं और नाचे सड़कों पर भूख और प्यास से पीड़ित चलते फिरते हड्डियों के ढाँचे अन्न के एक एक दाने की तलाश में कूड़ों के ढेर और सड़क पर पड़े हुए गंदगी के ढ़ेरों को घण्टों तलाश करते रहते थे। यह दुर्भिक्ष ईश्वरकृत नहीं वरन् मनुष्यकृत था। इस दुर्भिक्ष के कारण जनता को पता चल गया कि ब्रिटिश सरकार कितनी निकम्मी है और उसकी दृष्टि में भारतीयों के जीवन का क्या मूल्य है।

लार्ड वेवेल का आगमन—सन् १९४४ में लार्ड लिनलियगो के स्थान पर लार्ड वेवेल वायसराय नियुक्त होकर भारत आये। लार्ड वेवेल ने आकर तुरन्त ही दुर्भिक्ष की समस्या को सुलझाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया। मई सन् १९४४ में उन्होंने गान्धी जी को जेल से मुक्त कर दिया। जेल से रिहाई के तुरन्त पश्चात् महात्मा गांधी ने मि० जिन्ना से मिलकर हिंदू मुस्लिम समझौते के लिए प्रयत्न किया, परन्तु यह वार्ता सफल न हो सकी।

वेवेल सुझाव—मार्च सन् १९४४ में लार्ड वेवेल भारत के राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने इंगलैंड गये। वह जून में भारत लौटे और तुरन्त ही उन्होंने भारत के राजनीतिक नेताओं से प्रार्थना की कि वह उनकी कार्यकारिणी में सम्मिलित हो जायँ। अपने सुझाव में लार्ड वेवेल ने कहा कि वह अपनी कौंसिल में कांग्रेस को ६ और मुस्लिम लीग को ५ सीटें देने को तैयार हैं। कांग्रेस इस

सुझाव को मानने के लिए तैयार थी परन्तु मुस्लिम लीग के नेता इस बात पर अड़ गये कि कांग्रेस किसी राष्ट्रवादी मुसलमान को वायसराय की कौंसिल में मनोनीत न करे। यह बात कांग्रेस को अमान्य थी। कारण, वह सदा से ही देश के सभी धर्मावलम्बियों तथा हितों की संस्था रही थी। वह केवल हिन्दू प्रतिनिधियों को वायसराय की कौंसिल में नामज़द करके अपने आपको हिन्दू संस्था घोषित नहीं करना चाहती थी। परिणाम यह हुआ कि लार्ड वेवेल की योजना असफल रही और राजनीतिक दलों के नेता वायसराय की कार्यकारिणी में सम्मिलित नहीं हुए।

आम चुनाव—इसके तुरन्त पश्चात् देश की प्रांतीय तथा केन्द्रीय धारा सभाओं के लिए चुनाव लड़ गये। इन चुनावों में प्रायः सभी हिन्दू सीटें पर कांग्रेस की विजय प्राप्त हुई। सीमा प्रान्त, पञ्जाब तथा यू० पी० में बहुत-सी मुस्लिम सीटें भी कांग्रेस के हाथ लगीं। परन्तु मुसलमानी निर्वाचन क्षेत्रों में अधिकतर विजय मुस्लिम लीग की ही हुई। चुनावों के पश्चात् कांग्रेस ने ८ प्रान्तों में अपने मन्त्रिमण्डल बनाये। पञ्जाब में यूनियनिस्ट पार्टी के सहयोग से एक मिला-जुला मन्त्रिमंडल बनाया गया। मुस्लिम लीग केवल सिंध और बङ्गाल में ही अपने मन्त्रिमण्डल बना सकी।

इङ्गलैंड में आम चुनाव—जिस समय भारत में आम चुनाव हो रहे थे तो इंग्लैंड में भी पार्लियामेंट को तोड़ कर चुनावों की घोषणा की गई। इन चुनावों में चर्चिल की अनुदार सरकार हार गई और इसके स्थान पर मि० एटली के नेतृत्व में मजदूर दल की सरकार बनी। मजदूर दल के नेता सदा से ही कांग्रेस के स्वतन्त्रता संग्राम के पक्षपाती रहे थे। मि० एटली ने इसलिए सरकार का कार्य भार सँभालने के तुरन्त पश्चात् भारत में राजनीतिक अवरोध को दूर करने के लिए एक रचनात्मक कार्रवाई की। आरम्भ में उन्होंने दिसम्बर सन् १९४५ में एक शिष्ट मण्डल भारत भेजा और थोड़े दिन पश्चात् एक मन्त्री प्रतिनिधि मण्डल भारत आया। इसी प्रतिनिधि मण्डल के सदस्य लार्ड पैथिक लारेंस, सर स्टैफोर्ड क्रिप्स तथा मि० अलेक्जेंडर थे। प्रतिनिधि मण्डल ने भारत आकर राजनीतिक नेताओं से समझौते की बातचीत की। उन्होंने मुस्लिम लीग को समझाया कि पाकिस्तान की माँग अव्यावहारिक है। अपने १६ मई, १९४६ के बयान में भी उन्होंने यही बात दुहराई। उन्होंने कहा कि कांग्रेस तथा लीग को मिलकर भारत में एक ऐसी सरकार की स्थापना करनी चाहिये जिसके अन्तर्गत प्रान्त पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हों और केन्द्रीय सरकार को केवल विदेशी नीति, रक्षा तथा यातायात सम्बन्धी अधिकार प्राप्त हों। प्रतिनिधि मण्डल ने वायसराय की कौंसिल में भी परिवर्तन करने की बात कही। कांग्रेस तो कैबिनेट मिशन की यह शर्तें मानने को बहुत कुछ तैयार हो गई परन्तु मुस्लिम लीग पाकिस्तान की माँग पर अड़ी रही।

संविधान सभा के चुनाव—नवम्बर सन् १९४६ में प्रतिनिधि मण्डल की योजना

के अन्तर्गत भारत की संविधान सभा के लिए चुनाव किये गये। इन चुनावों में कांग्रेस को २०५ तथा मुस्लिम लीग को केवल ७३ सीटें मिलीं। परन्तु चुनाव लड़ने के पश्चात् भी मुस्लिम लीग के नेताओं ने संविधान सभा में भाग लेने से इन्कार कर दिया और उसने ब्रिटिश सरकार के सम्मुख यह माँग रक्खी कि भारत तथा पाकिस्तान के लिए दो अलग-अलग संविधान सभाएँ बनाई जायँ।

अन्तरिम सरकार में कांग्रेस का सहयोग—चुनाव के पश्चात् ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास हो गया कि कांग्रेस ही भारत की सबसे शक्तिशाली संस्था है। इसलिए वायसराय ने कांग्रेस के प्रधान, जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की कि वह उनकी अन्तरिम सरकार बनाने में सहायता करें। पं० जवाहरलाल नेहरू ने यह सरकार २ सितम्बर, १९४६ को बना ली। इसके कुछ दिन पश्चात् खीझे हुए मुस्लिम लीग के ५ सदस्य भी इस सरकार में सम्मिलित हो गये। परन्तु, इन सदस्यों ने सरकार में आकर उसके काम में सहयोग देने के बजाय हर जगह रोड़े अटकाने शुरू कर दिये।

लार्ड माउन्टबैटन का आगमन—मार्च सन् १९४७ में लार्ड वेवेल के स्थान पर लार्ड माउन्टबैटन गवर्नर जनरल बन कर भारत आये। उन्होंने आते ही देश की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया और कांग्रेस के नेताओं को समझाया कि देश में शान्ति बनाये रखने के लिए बँटवारे के अतिरिक्त दूसरा चारा नहीं है। परिस्थिति से बाध्य होकर कांग्रेस को लार्ड माउन्टबैटन का यह सुझाव स्वीकार करना पड़ा और ३ जून, १९४७ को भारत के सब राजनीतिक दलों ने देश के विभाजन की योजना स्वीकार कर ली।

ध्येय-प्राप्ति—१५ अगस्त, १९४७ को यह योजना कार्यान्वित हुई और उसी दिन २०० वर्ष की घोर परतन्त्रता के पश्चात्, भारत स्वतन्त्र हो गया और इस प्रकार कांग्रेस का ध्येय पूरा हो गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस प्रकार ६२ वर्ष के प्रयत्न के पश्चात् कांग्रेस अपने ध्येय में सफल हुई और भारत स्वतन्त्र हो गया। स्वाधीनता प्राप्ति के पश्चात् महात्मा गांधी चाहते थे कि कांग्रेस तोड़ दी जाय और उसके स्थान पर वह एक 'लोक सेवक संघ' का रूप धारण कर ले। इसीलिए उन्होंने कांग्रेस के पुनर्संगठन के लिए एक योजना ३० जनवरी, १९४८ को देश के सम्मुख रक्खी, परन्तु, उसी दिन शाम को ५ बजे एक कायर हिन्दू हत्यारे ने उनके सीने पर तीन गोली दाग कर उनके प्राण हर लिये और अहिंसा, शान्ति और सत्य के अटल पुजारी को सदा के लिए सुख की नींद सुला दिया।

महात्मा गान्धी तो स्वर्ग सिधार गये परन्तु उन्होंने अपने जीवन की बलि देकर कांग्रेस के अन्दर एक नयी जान फूँक दी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् कांग्रेस के सदस्य

देश के शासन की बागडोर अपने हाथ में लेकर कुछ ऐसे मदान्ध हो गये थे कि उन्होंने जनता की सेवा और सुश्रूषा का भाव अलग रख कर शक्ति संचय तथा पद लोलुपता का मार्ग अपना लिया था। जगह-जगह कांग्रेस कमेटियों में दलबन्दियाँ होने लगी थीं और कांग्रेस के नेताओं का एक मात्र कार्य धारा-सभाओं में सीटें ग्रहण करना तथा उच्च सरकारी पदों पर नियुक्ति प्राप्त करना रह गया था। इन्हीं दोनों कारणों से स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जनता का कांग्रेस व नेताओं पर से विश्वास उठ गया। महात्मा गान्धी के बलिदान से कांग्रेस में फिर एक बार नव शक्ति आ गई। परन्तु कांग्रेसी जन अपने अनैतिक आचरण के कारण इस वातावरण से अधिक काल तक लाभ न उठा सके। कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन जयपुर में हुआ। इस अधिवेशन में फिर एक प्रस्ताव के द्वारा कांग्रेस के सदस्यों से प्रार्थना की गई कि वह महात्मा जी की निःस्वार्थ सेवा की भावना का अपने जीवन का आदर्श बनायें और क्षुद्र स्वार्थपूर्ति के लिए सत्ता हस्तान्तरित करने का मार्ग छोड़ दें।

कांग्रेस का नया उद्देश्य—इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने अपना नया विधान भी स्वीकार किया जिसमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उसने अपने नये उद्देश्य को इस प्रकार अपनाया :—

"भारत की राष्ट्रीय महासभा का उद्देश्य जनता की भलाई और उसकी प्रगति है और वह देश में शान्तिपूर्ण तथा वैध उपायों द्वारा एक ऐसे सहयोगी राष्ट्र की स्थापना करना चाहती है जो सबको समान अवसर और राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक अधिकार देने पर आधारित हो और जो विश्व शान्ति और विश्व बन्धुत्व का ध्येय रखता हो।"

नासिक अधिवेशन—जयपुर के पश्चात् कांग्रेस का अगला अधिवेशन सितम्बर सन् १९५० में नासिक में हुआ। इसके सभापति राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन थे। इस अधिवेशन में कांग्रेस के अन्दर भारी फूट पड़ गई। आचार्य कृपलानी जो कांग्रेस के सभापति पद के लिए पुरुषोत्तमदास टण्डन के विरुद्ध खड़े हुए थे अपनी हार को न सह सके। उन्होंने कांग्रेस के अन्दर रहकर एक डैमोक्रैटिक फ्रन्ट खड़ा कर दिया। यह बात कांग्रेस के विधान के विरुद्ध थी। जब उनसे इस गुट को तोड़ने के लिए कहा गया तो उन्होंने कांग्रेस से ही त्याग पत्र दे दिया और अपने समर्थकों के साथ मिलकर, पहले में, जुलाई सन् १९५१ में, एक नया दल बना लिया जिसका नाम उन्होंने किसान मजदूर प्रजा पार्टी या के० एम० पी० पी० रक्खा।

इधर कांग्रेस में भ्रष्टाचार निरंतर बढ़ता जा रहा था। संस्था के बहुत से तपे हुए महारथी, दूषित वातावरण से दुखी होकर, संस्था को छोड़ने लगे थे। सितम्बर सन् १९५१ में इसलिए पं० जवाहरलाल नेहरू ने निश्चय किया कि वह कांग्रेस में सुधार

करने के लिए उसकी कार्यकारिणी से अलग हो जायँगे। पंडित नेहरू के बिना कांग्रेस संस्था का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जाता। राष्ट्र के सब से महान् नेता होने के कारण आम जनता पंडित नेहरू को ही कांग्रेस मानती थी। सरदार पटेल की मृत्यु के पश्चात् तो विशेषकर भारतीय जनता की समस्त आशाएँ उन्हीं में केन्द्रित थीं। इसके अतिरिक्त दिसम्बर जनवरी में समस्त देश में आम चुनाव होने वाले थे। इन चुनावों में भी पंडित नेहरू के नेतृत्व के बिना सफलता प्राप्त करना असम्भव था। इसलिए कांग्रेस के प्रधान श्री टंडन ने यही निश्चय किया कि वह पं० नेहरू का त्यागपत्र स्वीकार करने के स्थान पर स्वयं ही कांग्रेस के सभापति पद से त्याग पत्र दे देंगे। सितम्बर सन् १९५१ में दिल्ली में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का अधिवेशन बुलाया गया। इस बैठक में सर्व सम्मति से पं० नेहरू को ही कांग्रेस का सभापति निर्वाचित कर दिया गया।

दिल्ली अधिवेशन—इसके पश्चात् नवम्बर में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नई दिल्ली में हुआ। इस अधिवेशन में कांग्रेस का चुनाव सम्बन्धी घोषणा पत्र स्वीकार किया गया और पं० नेहरू ने उन सभी नेताओं से प्रार्थना की जो कांग्रेस को छोड़ कर चले गये थे कि वह वापस अपनी पुरानी संस्था में आ जायँ। इस प्रार्थना के फलस्वरूप श्री रफी अहमद किदवई, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा बहुत से दूसरे के० एम० पी० पार्टी के लीडर पुनः कांग्रेस में सम्मिलित हो गये। परन्तु आचार्य कृपलानी, डाक्टर पी० सी० घोष, श्री टी० प्रकाशम इत्यादि नेता के० एम० पी० दल में ही रह गये।

आम चुनाव—इसके पश्चात् दिसम्बर जनवरी के आम चुनावों में कांग्रेस उम्मीदवारों की सफलता के लिए पं० नेहरू ने समस्त देश का दौरा किया। लगभग ५ सप्ताहों में उन्होंने ४०,००० मील क्षेत्र का दौरा हवाई जहाज, मोटर, रेल, नाव, घुड़सवारी तथा पैदल चल कर किया। उन्होंने लगभग १५०० आम सभाओं में भाषण दिया जिसे भारत की अनुमानतः ४½ करोड़ जनता ने सुना। उनके तूफानी दौरे तथा आकर्षक व्यक्तित्व का जनता पर यह प्रभाव पड़ा कि कांग्रेस के ही अधिकतर उम्मीदवार सब जगह कामयाब हुए। कांग्रेस ने अपनी ओर से समस्त देश की विधान सभाओं इत्यादि के लिए लगभग ४००० उम्मीदवार खड़े किये थे। इनमें से २२६४ उम्मीदवार राज्यों में तथा ३६२ उम्मीदवार लोक सभा की सदस्यता के लिए सफल हो गये। इसका अर्थ यह हुआ कि कांग्रेस को समस्त देश में लगभग ६६ प्रतिशत सीटों पर विजय प्राप्त हुई। पेप्सू, ट्रावनकोर-कोचीन तथा मद्रास राज्यों को छोड़कर शेष सब राज्यों में कांग्रेस दल को बहुमत प्राप्त हुआ। इन राज्यों में भी यद्यपि कांग्रेस दल को बहुमत प्राप्त न था, परन्तु उसके सदस्यों की संख्या ही दूसरे सभी दलों से अधिक थी। पेप्सू को छोड़कर इसलिए सभी राज्यों में कांग्रेस दल की सरकारें बन गई।

हैदराबाद सम्मेलन—सन् १९५२ में कांग्रेस का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ।

इस सम्मेलन में कांग्रेस दल के संविधान में कुछ संशोधन पास किये गये तथा कांग्रेस से आयत्ता पुनः निकालने के प्रश्न पर विचार किया गया। इस सम्मेलन के अध्यक्ष भी पं० जवाहरलाल नेहरू ही थे।

आज की कांग्रेस—आजकल कांग्रेस की आंतरिक स्थिति अधिक अच्छी नहीं है। इस संस्था के अन्दर अपनी स्वार्थसिद्धि की पूर्ति के लिए, अधिकतर ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हो गये हैं जिनका नैतिक चरित्र अत्यन्त निम्न कोटि का है। पं० नेहरू के व्यक्तित्व के कारण ही आम जनता कांग्रेस को श्रद्धा की दृष्टि से देखती है। उनके आदेश पर सब कुछ करने को उद्यत हो जाती है। परन्तु अधिकतर नगरों में संस्था पर ऐसे लोगों ने अधिकार जमा लिया है जिन्होंने अपना चार बाजारी को कमाई से कुल कार्यकर्ताओं को खरीद लिया है और इस प्रकार वह दल के महत्त्वपूर्ण पदों पर सवार हो गये हैं। हमारे नेता पं० नेहरू कांग्रेस के अन्दर से इन सभी बुराइयों का अन्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं।

कांग्रेस का विधान

आजकल कांग्रेस के सदस्यों की संख्या लगभग ३ करोड़ है। अखिल भारतीय कार्यकारिणी में २० सदस्य हैं। उनके नीचे २२ प्रान्तों में प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियाँ कार्य करती हैं। नये विधान के अन्तर्गत कांग्रेस में तीन प्रकार के सदस्य हैं:—(१) प्राथमिक सदस्य (Primary Members), (२) योग्य सदस्य (Qualified Members), (३) कर्मठ सदस्य (Active Members)।

कांग्रेस का प्राथमिक सदस्य देश का वह प्रत्येक व्यक्ति बन सकता है जिसकी आयु २१ वर्ष से अधिक हो तथा जो कांग्रेस के ध्येय में विश्वास रखता हो। योग्य सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते हैं जो आदतन खादी पहनते हों, मादक द्रव्यों का उपयोग न करते हों तथा जो सब धर्मों की एकता में विश्वास रखते हों। 'कर्मठ' सदस्य केवल वह व्यक्ति बन सकते हैं जो कांग्रेस द्वारा निर्धारित किसी प्रचार या रचनात्मक कार्य में नियमित रूप से अपना कुछ समय लगाते हों। कांग्रेस के केवल कर्मठ सदस्य ही कांग्रेस कमेटियों के चुनाव में भाग ले सकते हैं, दूसरे प्रकार के सदस्य नहीं।

सर्वोदय समाज

कांग्रेस से भिन्न, महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम में विश्वास रखने वाले कार्यकर्ताओं ने, उनकी मृत्यु के पश्चात्, मार्च सन् १९४८ में एक ऐसी संस्था की स्थापना की जिसके सदस्य राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लेते, तथा जो राष्ट्रपिता के बताये हुए मार्ग पर चल कर समाज में आर्थिक एवं सामाजिक क्रांति लाना चाहते हैं। इस संस्था के नेताओं में आचार्य विनोबा भावे, श्री किशोरीलाल मशरूवाला, डा० जे० सी० कुमारप्पा, श्री शंकरराव देव तथा श्री प्यारेलाल के नाम मुख्य हैं। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य,

सत्य तथा अहिंसा पर आधारित ऐसी समाज की स्थापना है जिस में किसी प्रकार के जाति विभेद या शोषण की भावना न हो, और जिस में प्रत्येक स्त्री और पुरुष को अपने व्यक्तित्व का पूर्ण रूप से विकास करने की सुविधाएँ उपलब्ध हों। संस्था के सदस्य वह व्यक्ति बन सकते हैं जो सामाजिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार का रचनात्मक कार्य करते हों, जैसे हिन्दू-मुसलिम एकता, खादी प्रचार, ग्राम उद्योग, मद्य निषेध, ग्राम सुधार, हरिजन उद्धार, गौ रक्षा, राष्ट्रीय एकता इत्यादि। संघ का वार्षिक अधिवेशन प्रति वर्ष जनवरी के मास में होता है। इस अधिवेशन में संस्था का प्रत्येक सदस्य भाग ले सकता है। सर्वोदय समाज के अन्तर्गत उन सभी संस्थाओं का एकीकरण कर दिया गया है जो महात्मा गाँधी ने आरम्भ की थीं, जैसे अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ, चरखा संघ, हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, हिंदुस्तानी प्रचार सभा, गो सेवा संघ, प्राकृतिक चिकित्सा संघ, नव जीवन ट्रस्ट, कस्तूरबा ट्रस्ट, हिन्द मजदूर संघ इत्यादि।

आजकल सर्वोदय समाज के सबसे बड़े नेता आचार्य विनोबा भावे एक भूमिदान यज्ञ रचा रहे हैं। इस यज्ञ का उद्देश्य यह है कि देश के गरीब तथा भूमिहीन किसानों में समाज के उन समृद्ध जमींदारों से भूमिदान लेकर जमीन बाँटी जाय, जिनके पास अपनी आवश्यकता से कहीं अधिक भूमि है तथा जो उसका स्वयं उपभोग न कर, उसके द्वारा गरीब किसानों का शोषण करते हैं। अपने इस यज्ञ की पूर्ति के लिए आचार्य जी ३० लाख एकड़ भूमि इकट्ठा करना चाहते हैं। इसी उद्देश्य को सामने रख कर वह समस्त देश की पैदल यात्रा कर रहे हैं।

सर्वोदय समाज अपने उद्देश्य की पूर्ति में हिंसात्मक उपायों का घोर विरोधी है। वह प्रेम तथा हृदय-परिवर्तन के आधार पर अपने कार्यक्रम की पूर्ति चाहता है। यही कारण है कि यह जमींदारी प्रथा का अन्त करने के लिए भी कानून का सहारा न लेकर, केवल प्रेम के आधार पर ही सामाजिक क्रान्ति लाना चाहता है।

समाजवादी दल

कांग्रेस के पश्चात् हमारे देश में दूसरी राजनीतिक संस्था जिसका प्रभाव जनता पर धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है, समाजवादी दल है। मार्च सन् १९४८ से पहले जब तक प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों के प्रधान तथा मन्त्रियों के एक सम्मेलन ने अपनी इलाहाबाद की बैठक में यह निश्चय नहीं कर लिया था कि राष्ट्रीय महासभा के अन्तर्गत किसी ऐसे दल का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जा सकता जिसके अपने अलग सदस्य, कोष तथा उद्देश्य हों, यह संस्था कांग्रेस के अन्दर ही रह कर एक अलग 'ग्रुप' के रूप में काम करती थी। परन्तु मई सन् १९४९ से अपने पटने के अधिवेशन के पश्चात् यह उससे अलग हो गई।

भारत की समाजवादी दल जनतन्त्रात्मक, समाजवाद में विश्वास रखता है। वह

ऐसे साम्यवाद का हामी नहीं जिसमें जनता पर एक निरङ्कुश शासन लाद दिया जाय। उसका ध्येय है कि किसानों को जमीन दी जाय और उनको पंचायतों के रूप में संगठित किया जाय। उद्योग के क्षेत्र में वह राष्ट्रीयकरण की नीति में विश्वास रखता है। राष्ट्र मंडल के साथ भारत के सम्बन्ध के विषय में उसका विश्वास है कि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र औपनिवेशिक स्थिति स्वीकार नहीं करनी चाहिये। विदेशी नीति के सम्बन्ध में उसका विश्वास है कि ऐंग्लो अमरीकन तथा सोवियत रूस, दोनों से अलग रह कर, भारत को एक तीसरी शक्ति का निर्माण तथा नेतृत्व करना चाहिये।

सर्व प्रथम कांग्रेस के अन्दर समाजवादी दल का निर्माण सन् १६३४ में हुआ था। इससे पहले इस दल की नींव नासिक जेल में उस समय रक्खी गई थी जब १६३० के सत्याग्रह आन्दोलन के फलस्वरूप श्री जयप्रकाश नारायण, अच्युत पटवर्धन तथा अशोक मेहता उस समय जेल में थे। वहाँ उन्होंने सर्व प्रथम इस दल को बनाने का निश्चय किया था।

इस दल के नेताओं में, उनके अतिरिक्त जो नासिक जेल में थे, आचार्य नरेन्द्र देव, डॉ० राममनोहर लोहिया तथा श्रीमती कमला देवी चट्टोपाध्याय हैं। इसके सदस्यों की संख्या लगभग ५०,००० बताई जाती है। इस दल के अपने २२ साप्ताहिक-पत्र हैं जिनमें 'जनता' मुख्य है। इस दल का विशेष प्रभाव बम्बई प्रान्त में है। दूसरे प्रान्तों के किसानों तथा मजदूरों में भी इसका प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

पिछले आम चुनावों में समाजवादी दल ने समस्त देश में अपनी ओर से लगभग २८०० उम्मीदवार खड़े किये। इनमें से केवल १५५ सदस्य राज्यों की विधान सभाओं में तथा ८२ सदस्य लोक सभा के चुनाव में सफल हुए। समाजवादी दल के बहुत से प्रमुख नेता जैसे श्री अशोक मेहता, पुरुषोत्तम दास त्रिकमदास, आचार्य नरेन्द्र देव, दामोदर स्वरूप सेठ इत्यादि भी इन चुनावों में हार गये। समस्त देश में पार्टी के उम्मीदवारों को लगभग ६ प्रतिशत मत मिले परन्तु स्थानों के विचार से उन्हें केवल ४ प्रतिशत सीटें मिलीं। इसके विपरीत साम्यवादी दल के उम्मीदवारों को समस्त देश में ४·७ प्रतिशत वोट मिले और उन्हें २२२ स्थानों पर अधिकार प्राप्त हो गया। समाजवादी दल के उम्मीदवारों की असफलता के मुख्य रूप से निम्न कारण थे :—

(१) *कार्यक्रम में स्पष्टता का अभाव*—कांग्रेस, के० एम० पी० पी० तथा समाजवादी दल के कार्यक्रमों में कोई विशेष अन्तर नहीं था।

(२) *बहुत अधिक संख्या में उम्मीदवारों का खड़ा करना*—पिछले आम चुनावों में वह दल अधिक सफल हुए जिन्होंने केवल थोड़े ही स्थानों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये तथा अपने समस्त साधनों से उन्हीं स्थानों पर विजय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न किया। इसीलिए छोटे छोटे दलों जैसे गणतन्त्र परिषद्, तामिलनाड टाय-

लर्स पार्टी, ट्रावनकोर तामिलनाड कांग्रेस इत्यादि को चुनावों मे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई।

(२) अनेक वामपक्षी दलों में मतों का विभाजन—समाजवादी दल ने दूसरे वाम पक्षीय दलों से मिल कर चुनाव सम्बन्धी समझौता नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस विरोधी मत बहुत से दलों में बँट गये और इस से अधिकतर कांग्रेसी उम्मीदवारों को ही लाभ हुआ।

आम चुनावों के पश्चात् समाजवादी दल ने कम्यूनिस्ट पार्टी को छोड़ कर, दूसरे वाम पक्षी दलों को एक जगह संगठित करने का कार्य आरम्भ किया। इसके लिए उन्होंने के० एम० पी० दल के नेता आचार्य कृपलानी से मिल कर इस बात का प्रयत्न किया कि दोनों दलों में किसी प्रकार का समझौता हो जाय और वह एक ही संस्था के नीचे मिल कर काम कर सकें। इस प्रकार का समझौता सन् १९५२ में हो गया और दोनों दलों को मिला कर एक संयुक्त प्रजा समाजवादी दल बना दिया गया। आजकल इस दल के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी हैं। अब फारवार्ड ब्लाक दल भी इसी पार्टी में सम्मलित हो गया है।

किसान मजदूर प्रजा पार्टी

इस पार्टी का जन्म, जैसा पहले बताया जा चुका है, जुलाई सन् १९५१ में, पटना में हुआ था। इस दल में कांग्रेस की वर्तमान नीति से असन्तुष्ट वह सब पुराने कांग्रेसी कार्यकर्ता सम्मिलित थे जो गांधीवादी विचारधारा के आधार पर, सर्वोदय योजना के अधीन, देश का संगठन करना चाहते थे। इस दल के नेताओं का कहना था कि कांग्रेस में इतना भ्रष्टाचार फैला हुआ है तथा उसमें ऐसे लोगों का आधिपत्य है जो अनुचित उपायों से भी इस संस्था पर अपना प्रभुत्व जमाये रखना चाहते हैं। वैसे प्रजा पार्टी तथा कांग्रेस के कार्यक्रम में विशेष अन्तर नहीं था। प्रजा पार्टी का कहना था: "वह देश के शासन में ईमानदारी तथा राजनीति में प्रजातन्त्रात्मक दृष्टिकोण को लाना चाहती है। आर्थिक क्षेत्र में वह भूमि और बड़े कारखानों के राष्ट्रीयकरण की नीति में विश्वास करती है तथा औद्योगिक क्षेत्र में महात्मा गांधी की योजना के अनुसार देश भर में छोटे-छोटे घरेलू उद्योग धन्धों का जाल बिछा देना चाहती है"। इस दल के नेताओं में मुख्य आचार्य कृपलानी, पी० सी० घोष, टी० प्रकाशन तथा श्री शिब्बन लाल सक्सेना थे।

पिछले आम चुनावों में समाजवादी दल की भाँति के० एम० पी० दल को भी अधिक सफलता नहीं मिली। इसने ६४६ सीटों पर अपने उम्मीदवार खड़े किये जिनमें से केवल ८६ स्थानों पर उसे सफलता मिली। मतों के विचार से समस्त देश में पार्टी के प्रतिनिधियों को केवल ४ प्रतिशत मत ही प्राप्त हुए। इस दल की असफलता के भी

मुख्यतः वही कारण थे जो समाजवादी दल के। स्वयं आचार्य कृपलानी, पी० सी० घोष तथा प्रकाशम चुनावों में हार गये।

जैसा ऊपर बताया गया है, आजकल के० एम० पी० पी० तथा समाजवादी दल को मिला कर एक संयुक्त दल बना दिया गया है जिसका नाम प्रजा समाजवादी दल है। विधान सभाओं तथा संसद् में भी दोनों दलों के सदस्य एक ही प्रजा समाजवादी दल में सम्मिलित हो गये हैं। पिछले कुछ राज्यीय तथा संसदीय उप चुनावों में इस दल को विशेष सफलता मिली है।

सामयवादी दल

साम्यवादी दल की स्थापना सन् १६२४ में हुई थी। आरम्भ के १६ वर्षों में इस संस्था ने एक भूमिगत दल (Underground) के रूप में काम किया, कारण जन्म से ही यह ब्रिटिश अधिकारियों के कोप का भाजन रहा। सन् १६४१ में जिस समय रूस ने साथी सरकारों के साथ मिल कर जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की तो साम्यवादी दल ने उसे 'जनता का युद्ध' (People's War) घोषित करके, अंग्रेजी सरकार का साथ दिया। उस समय संस्था के विरुद्ध प्रतिबन्ध हटा लिया गया और वह एक वैध दल के रूप में कार्य करने लगी। जिस समय तक साम्यवादी दल के नेता, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोधी थे तथा वह भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के लिए अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध लड़ते थे, तब तक उनका भारत के राजनीतिक क्षेत्रों में बहुत अधिक सम्मान था और जनता उनके कार्यक्रम को श्रद्धा और सराहना की दृष्टि से देखती थी। परन्तु सन् १६४१ में, जिस समय, कांग्रेस की घोषणा के विरुद्ध, साम्यवादियों ने महायुद्ध में, अंग्रेजों का साथ देना आरम्भ कर दिया तो देश की जनता उनके विरुद्ध हो गई और उन्हें अवसरवादी कहकर पुकारने लगी। युद्ध की समाप्ति पर, कम्यूनिस्ट दल के उन नेताओं को जो कांग्रेस के भी सदस्य थे, राष्ट्रीय संस्था से निकाल दिया गया। परन्तु इसके पश्चात् बहुत दिनों तक जनता का समर्थन प्राप्त करने के लिए, साम्यवादी नेता, कांग्रेस का साथ देते रहे और उनकी स्वाधीनता सम्बन्धी माँग का समर्थन करते रहे। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् दल का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ते में हुआ। इस अधिवेशन में श्री पी० सी० जोशी को जो पिछले १२ वर्षों से पार्टी के प्रधान मन्त्री थे, दल की कार्यकारिणी से निकाल दिया गया और उनके स्थान पर श्री बी० टी० रणदिवे को दल का मन्त्री चुना गया। श्री रणदिवे ने एक नया कार्यक्रम पार्टी के सम्मुख रक्खा। इसमें उन्होंने कहा कि कांग्रेस ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ समझौता किया है और भारतवर्ष की स्वतन्त्रता झूठी और अपूर्ण है। उन्होंने कांग्रेस के विरुद्ध, जिसे पूँजीपतियों तथा जमींदारों की संस्था बताया गया, युद्ध की घोषणा कर दी और कहा कि वह भारत की राष्ट्रीय सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग नहीं

करेंगे। इसी अधिवेशन में हिंसा तथा तोड़ फोड़ का कार्यक्रम अपनाया गया। हड़तालों तथा उपद्रवों के कार्यक्रम को बढ़ता देखकर, सरकार ने बहुत से प्रांतों में कम्यूनिस्ट पार्टी को अवैध घोषित कर दिया और उसके नेता जेलों में बन्द कर दिये गये।

सन् १६५१ में पार्टी ने फिर एक बार अपना कार्यक्रम बदला और कहा कि वह तोड़ फोड़ तथा हिंसा की नीति को छोड़ कर, वैधानिक उपायों का अवलम्बन करेगी। नव संविधान के अन्तर्गत आम चुनावों में भाग लेने के लिए ही उसने इस नई नीति को अपनाया। इन चुनावों में दल को अभूतपूर्व सफलता मिली। कुल मिला कर दल के २२२ सदस्य लोक सभा तथा राज्य विधान सभाओं में चुन लिये गये। दल की ओर से कुल, ५६३ उम्मीदवार खड़े किये गये थे। इनमें से लगभग एक तिहाई सफल हो गये। आजकल कांग्रेस के पश्चात् साम्यवादी दल के सदस्यों का ही विधान सभाओं तथा लोक सभा में दूसरा नम्बर है। इस दल के नेताओं में श्री ए० के० गोपालन, श्री नम्बियार, श्री अजय घोष, श्री पी० सुन्दरैया, श्रीमती रेनू चक्रवर्ती तथा प्रो० हीरेन मुकर्जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दूसरे वामपक्षी दल

उपरोक्त वर्णित तीन दलों के अतिरिक्त और भी बहुत से छोटे-छोटे वामपक्षी दल हमारे देश में विद्यमान हैं। इन दलों में प्रोफेसर रंगा की कृषिकार लोक पार्टी, फारवर्ड ब्लाक, रिवोल्यूशनरी सोशलिस्ट पार्टी, रिवोल्यूशनरी कम्यूनिस्ट पार्टी, बोल्शैविक पार्टी, तामिलनाड टायलर्स पार्टी तथा पेजेन्ट्स एण्ड वर्कर्स पार्टी के मुख्य हैं। अधिकतर इन दलों का प्रभाव कुछ छोटे छोटे क्षेत्रों में सीमित है। पिछले आम चुनावों में इन दलों के भी कुछ सदस्य विधान सभाओं में चुने गये हैं। इन दलों का कार्यक्रम समाजवादी तथा साम्यवादी पार्टियों के साथ ही मिलता-जुलता है। इनमें से इसलिए अब कुछ दल या तो साम्यवादी दल के साथ मिल गये हैं, या फिर प्रजा समाजवादी दल के साथ।

सेन्ट्रीय दल (Centre Party)

लिबरल दल—वामपक्षीय दलों के अतिरिक्त हमारे देश में बहुत से दक्षिण पक्षीय दल भी हैं और इन सब से भिन्न एक केंद्रीय दल है जिसकी विचारधारा अत्यन्त सरल तथा जिसका कार्यक्रम विकासवादी है। इस संस्था के नेतागण बहुत हैं परन्तु उसके जनता में अनुयायी बहुत कम हैं। इस संस्था का नाम 'नेशनल लिबरल फ़ेडरेशन" है। इसके नेताओं में प० हृदयनाथ कुंजरू, मि० चिमनलाल सीतलवाड़, कावसजी जहाँगीर, सर महाराज सिंह, रामस्वामी मुदालियर तथा सर अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर मुख्य हैं। यह सब नेता समाज के अत्यन्त प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। अपने अनुभव, बुद्धि चमत्कार तथा गूढ़ अध्ययन के कारण इनको सारे देश में मान्यता है। इसलिए ने

भी इन नेताओं का सहयोग प्राप्त करने के लिए संविधान सभा के चुनावों में इनमें से अनेक व्यक्तियों को नामजद किया था। भारत का संविधान बनाने में इन नेताओं ने काफी भाग लिया। परन्तु जिस नरम विचारधारा का यह लोग प्रतिनिधित्व करते हैं उसके आज हमारे देश में अधिक अनुयायी नहीं हैं। भारत की भूख और प्यास से पीड़ित कोटि कोटि जनता आज देश में एक आर्थिक क्रान्ति चाहती है। इसलिए वह कांग्रेस तथा वामपक्षी संस्थाओं का साथ देती है। 'लिबरल पार्टी' की विकासवादी योजना पर कार्य करने के लिए आज के वातावरण में हमारे देश की जनता तैयार नहीं है। यही कारण है कि लिबरल नेताओं का व्यक्तिगत दृष्टि से अत्यन्त मान होने पर भी उनकी संस्था के लिए अभी हमारे देश में कोई स्थान नहीं है। पिछले आम चुनावों में इस संस्था ने अपनी ओर से कोई भी उम्मीदवार खड़े नहीं किये, परन्तु इसके वयोवृद्ध नेता पं० हृदयनाथ कुञ्जरू राज्य परिषद् की सदस्यता के लिए, उत्तर प्रदेश विधान सभा के स्वतन्त्र सदस्यों की ओर से चुन लिये गये।

दक्षिण पक्षीय दल (Rightist Parties)

हिन्दू महासभा—दक्षिण पक्षीय दलों में, हिन्दू सभा का नाम सबसे प्रमुख है। वैसे तो हमारे देश के हिन्दुओं में साम्प्रदायिकता की भावना बहुत कम है, अधिकतर हिन्दू राष्ट्रवादी विचारधारा के ही पाये जाते हैं, परन्तु २८ करोड़ की जनसंख्या में कुछ ऐसे हिन्दू भी अवश्य हैं जो भारत में एक हिन्दू राज्य की स्थापना का स्वप्न पूरा होता देखना चाहते हैं। ऐसे हिन्दुओं ने हमारे देश में हिन्दू महासभा की संस्था को स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भी एक राजनीतिक संस्था के रूप में जीवित रक्खा है। इस संस्था का अस्तित्व उस समय समझ में आता था जब हमारा देश गुलाम था और मुसलमानों के आक्रमण के विरुद्ध हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए इस प्रकार की संस्था की कुछ आवश्यकता थी। इसी दृष्टि से हिन्दू महासभा के जन्मदाता हमारे राष्ट्रीय नेता लाला लाजपत राय तथा पंडित मदनमोहन मालवीय थे। उन्होंने सन् १९२३ में हिंदुओं का संगठन करने तथा हिंदू धर्म से सामाजिक कुरीतियों का विनाश करने के लिए इस संस्था को जन्म दिया। परन्तु आरम्भ से ही यह संस्था कुछ ऐसे प्रतिक्रियावादी नेताओं के हाथ में रही कि उन्होंने इसके द्वारा राजनीतिक आकाँक्षाओं को पूर्ण करना चाहा और सुधार तथा संगठन के कार्य के बजाय 'हिन्दू धर्म खतरे में' का नारा लगा कर समाज की पिछड़ी हुई धर्मान्ध जनता की सहानुभूति प्राप्त करनी चाही। इसी कारण यह संस्था हमारे देश के स्वतन्त्रता संग्राम के काल में कांग्रेस के साथ मिलकर नहीं चली वरन् सदा राष्ट्रवादी शक्तियों का विरोध करती रही।

महात्मा गांधी की मृत्यु के पश्चात् कुछ काल के लिए हिन्दू महासभा ने राजनीति के क्षेत्र से अलग रहने की नीति को अपना लिया था। परन्तु सितम्बर सन् १९४८ के

अपने कलकत्ते के अधिवेशन में उसने फिर यह घोषणा कर दी कि वह सक्रिय रूप से राजनीति में भाग लेगी और चुनावों में अपने उम्मीदवार खड़ा करेगी। इस संस्था के वर्तमान नेताओं में वीर सावरकर, डा० खरे, मि० भोपटकर, आशुतोष लाहिड़ी, एन० सी० चटर्जी तथा गोकुलचंद नारंग के नाम मुख्य हैं।

पिछले आम चुनावों में इस संस्था के १० सदस्य विधान सभाओं तथा ५ सदस्य लोक सभा में चुन लिये गये। लोक सभा के सदस्यों में डाक्टर खरे, श्री वी० जी० देश पांडे, तथा श्री एन० सी० चटर्जी के नाम मुख्य हैं। आजकल हिंदू महासभा जन संघ तथा रामराज्य परिषद् के साथ मिलकर प्रजा समाजवादी वामपक्षी दल की भाँति दक्षिण पक्षी शक्तियों को एक ही दल के नीचे संगठित करने का विचार कर रही है।

भारतीय जनसंघ

इस दल का जन्म सन् १६५१ में हुआ। इसके अधिकतर सदस्य ऐसे लोग हैं जो राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की विचारधारा में विश्वास रखते हैं। एक प्रकार से इस दल को हम आर० एस० एस० का राजनीतिक बाहु (Political arm) कह सकते हैं। यह संस्था भारत की अखण्डता, पाकिस्तान के विरुद्ध कठोर नीति तथा हिन्दुओं की संस्कृति की रक्षा एवं उसकी पुष्टि में विश्वास रखती है। इस संस्था के एकमात्र नेता डा० श्यामा प्रसाद मुकर्जी थे। जून सन् १६५३ में अभी उनकी मृत्यु के पश्चात् अब इस दल की स्थिति डावाँडोल हो गई है।

पिछले आम चुनावों में इस संस्था के ३३ सदस्य विधान सभाओं तथा ३ सदस्य लोक सभा में चुने गये। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की सहायता से इस दल को आशा थी कि उसके और भी अनेक नेता चुनावों में सफल हो जायँगे। परन्तु इस दिशा में उसे घोर निराशा का मुँह देखना पड़ा और कुछ राज्यों में तो, जहाँ इस दल का बहुत अधिक प्रभाव समझा जाता था, एक भी सदस्य विधान सभा अथवा लोक सभा के लिए न चुना जा सका। ऐसे राज्यों में पंजाब, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आसाम तथा उड़ीसा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

दूसरे दक्षिण पक्षीय दल

हिन्दू महासभा तथा भारतीय जनसंघ के अतिरिक्त दूसरे दक्षिण पक्षीय दलों में हम उड़ीसा की गणतन्त्र परिषद्, शेड्यूल्ड कास्ट फिडरेशन, रामराज्य परिषद् तथा बिहार की झारखंड पार्टी के नाम ले सकते हैं। गणतन्त्र परिषद् उड़ीसा के भूतपूर्व नरेशों की संस्था है। इसके नेता पन्ना के महाराजा हैं। यह संस्था जमींदारों के अधिकारों की रक्षा चाहती है। शेड्यूल्ड कास्ट फिडरेशन के नेता डा० अंबेदकर तथा श्री पी० एन० राजभोज हैं। यह संस्था साम्प्रदायिक आधार पर हरिजनों के अधिकारों की रक्षा चाहती है। पिछले आम चुनावों में इसे करारी हार खानी पड़ी और स्वयं डा० अंबेदकर बम्बई

के निर्वाचन में असफल रहे। रामराज्य परिषद् के नेता स्वामी करपात्री जी हैं। इस संस्था का अधिकार प्रभाव राजस्थान में है। वहीं से इस संस्था के अधिकतर सदस्य विधान सभा और लोक सभा के चुनावों में सफल हुए। झारखंड पार्टी के नेता आदिवासी श्री जयपाल सिंह हैं। यह दल पिछड़ी हुई कबायली जातियों के अधिकारों की रक्षा चाहता है। बिहार में इस संस्था का सबसे अधिक प्रभाव है।

मुसलमानों के राजनीतिक दल

मुस्लिम लीग—मुस्लिम लीग का जन्म जैसा हम कांग्रेस के इतिहास में देख चुके हैं, सन् १९०६ में हुआ था। इस संस्था के जन्म के पीछे अँग्रेजों का स्पष्ट हाथ था और जब तक भारतवर्ष के दो टुकड़े नहीं हो गये इसके नेता सदा प्रतिक्रियावादी, अँग्रेजों के हाथों में खेलते रहे। आरम्भ में इस संस्था का मुख्य ध्येय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति प्रदर्शित करना था, परन्तु सन् १९१३ में उसने अपना उद्देश्य बदल कर औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति बना लिया। इसके पश्चात् कांग्रेस और लीग ने मिलकर कार्य किया। १९१६ में दोनों संस्थाओं में एक प्रकार का समझौता भी हो गया, परन्तु यह मैत्री अधिक समय तक कायम न रह सकी। लीग का शक्तिशाली संगठन मि० जिन्ना द्वारा सन् १९३७ के आम चुनावों के पश्चात् किया गया। उससे पहले लीग केवल कुछ पढ़े लिखे मध्यम श्रेणी के मुसलमानों की संस्था थी परन्तु इन चुनावों के तुरन्त पश्चात् मुस्लिम लीग की हर प्रान्त और नगर में शाखाएँ खोल दी गईं। इसके कार्य को सबसे अधिक प्रोत्साहन अँग्रेजों की हिन्दू विरोधी नीति से मिला। मुस्लिम लीग के नेताओं ने अँग्रेजों से शह पाकर हिन्दुओं के विरुद्ध ज़हर उगला तथा कांग्रेस को भला बुरा कहना अपना ध्येय बना लिया। लीग ने कभी भारतीय स्वतन्त्रता के संग्राम में सहयोग नहीं दिया। इसके नेता कभी जेलों में नहीं गये, उसने किसी सार्वजनिक आन्दोलन का नेतृत्व नहीं किया। उसने केवल एक कार्य किया और वह था कांग्रेस की प्रत्येक स्वतन्त्रता सम्बन्धी माँग के विरुद्ध मोर्चा खड़ा करना और अँग्रेजों से कहना कि 'भारत को उस समय तक स्वतन्त्र न किया जाय जब तक मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र मान कर उनके लिए एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना न कर दी जाए।" अँग्रेज तो चाहते ही थे कि भारतवासियों की स्वतन्त्रता सम्बन्धी माँग के पूरा होने में जितना विलम्ब लगे उतना ही अच्छा है। स्वभावतया उसने मुस्लिम लीग का खुल्लमखुल्ला साथ दिया और अन्त में यह कह कर कि देश में शान्ति बनाये रखने के लिए कोई दूसरा चारा नहीं है, भारत के दो टुकड़े कर दिये।

पाकिस्तान के बन जाने के पश्चात् मुस्लिम लीग का प्रभाव हमारे देश से कम हो गया है। कारण इसके प्रायः सभी नेता पाकिस्तान चले गये हैं और १५ अगस्त सन् १९४७ के पश्चात् भारत में जो देशव्यापी साम्प्रदायिक झगड़े हुए, जिनके कारण

लाखों स्त्री और पुरुषों की निर्मम हत्या की गई, करोड़ों रुपये की सम्पत्ति नष्ट हुई, नव-यवान लड़कियों के साथ व्यभिचार किया गया, स्त्रियों और बच्चों को भगाया गया, उसकी सारी जिम्मेदारी मुस्लिम लीग के सिर पर रक्खी गई। इन सब हत्याकांडों के पश्चात् भारत की जनता को आशा थी कि हिन्दुस्तान के मुसलमान अब 'लीग' का नाम न लेंगे और इस संस्था को स्वतः तोड़ देंगे; परन्तु आज भी हमारे देश में अनेक ऐसे मुसलमान हैं जिनकी मनोवृत्ति पहले की भाँति साम्प्रदायिक है और जो इस असांप्रदायिक राष्ट्र में भी लीग के ढाँचे को पहले के समान ही बनाये रखना चाहते हैं। यही कारण है कि इस संस्था को अभी तक नहीं तोड़ा गया है और पिछले आम चुनावों में इस दल के कुछ सदस्य बम्बई की विधान सभा तथा लोक सभा में चुन लिये गये।

मुसलमानों की दूसरी संस्थाएँ

लीग के अतिरिक्त मुसलमानों की दूसरी संस्थाओं में जमायत उल उल्मा्ए हिंद, शिया राजनीतिक सम्मेलन, मोमिन पार्टी तथा अहरार पार्टी के नाम मुख्य हैं। मुस्लिम लीग की प्रभुता के काल में इनके सदस्यों की संख्या बहुत थोड़ी थी और मुस्लिम जनता पर इसका प्रभाव अत्यंत सीमित था। परन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मुसलमानों की इन संस्थाओं का प्रभाव धीरे धीरे बढ़ता जा रहा है। इन संस्थाओं में अधिकतर जमायत-उल-उल्मा्ए हिंद, मौलाना आजाद, हफीजुर्रहमान और हुसैन अहमद मदनी के नेतृत्व के कारण अधिक लोकप्रिय है। अपने लखनऊ के मार्च सन् १९४९ के अधिवेशन में जमायत ने निश्चय कर लिया था कि वह राजनीति में भाग न लेगी और उसका एकमात्र कार्य मुसलमानों की सामाजिक तथा सांस्कृतिक उन्नति करना होगा। इसी कारण पिछले आम चुनावों में इस दल ने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया।

सिखों के राजनीतिक दल

सिक्खों में मुख्यतया तीन विचार धाराओं के लोग पाये जाते हैं, एक वह जो पूर्ण रूप से राष्ट्रवादी दृष्टिकोण रखते हैं और कांग्रेस के साथ मिलकर भारत में एक जनसत्तात्मक असाम्प्रदायिक राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। इस विचार के नेताओं में बाबा खड़ग सिंह, सरदार प्रताप सिंह तथा ज्ञानी गुरुमुख सिंह मुसाफिर हैं। दूसरे, वह लोग हैं जो इस विचार के बिलकुल विपरीत सिक्खों के लिए भारत में एक अलग राज्य की स्थापना करना चाहते हैं। इन लोगों के विचार में सिक्ख हिंदुओं से अलग एक धार्मिक जाति है, जिसका एक अलग इतिहास, संस्कृति तथा भाषा है। इन हितों की रक्षा के लिए वह भारत में एक अलग सिख प्रांत की माँग करते हैं। इस विचार धारा के लोगों को 'अकाली' भी कहा जाता है। इनके नेता मास्टर तारा सिंह तथा ज्ञानी करतार सिंह हैं। तीसरे, सिखों में वह लोग हैं जो इन दोनों विचार धाराओं के बीच के मार्ग का अवलम्बन करते हैं। वह सिखों के लिए किसी अलग राज्य अथवा प्रांत की

माँग तो नहीं करते परंतु सिख पंथ की एकता बनाये रखने के लिए कांग्रेस से कुछ विशेष अधिकारों की प्राप्ति चाहते हैं। इस दल के नेताओं में सरदार ऊधम सिंह नगोके तथा महाराजा पटियाला हैं। नये विधान के अन्तर्गत सिखों की पिछड़ी हुई जातियों को छोड़ कर जिनमें रामदासी तथा कबीर पंथी सिख शामिल हैं, शेष सिखों के लिए धारा सभाओं अथवा नौकरियों में सुरक्षित स्थानों की व्यवस्था नहीं की गई है। पिछले आम चुनावों में, इसी कारण अकाली दल को, जिसने केवल साम्प्रदायिकता के आधार पर ही जनता से राय माँगी, अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई। पंजाब में कांग्रेस उम्मीदवारों के विरुद्ध इस दल के नेताओं को करारी हार खानी पड़ी। केवल पेप्सू में थोड़े से अकाली विधान सभा के सदस्य चुन लिये गये। आशा है, साम्प्रदायिकता का भूत इस उदाहरण के पश्चात्, सिखों के बीच से नष्ट हो जायगा और मास्टर तारा सिंह अधिक दिनों तक सिखों का पथभ्रष्ट न कर सकेंगे।

योग्यता प्रश्न

१ पश्चिमी शिक्षा ने भारत में राजनीतिक जागृति उत्पन्न करने में क्या कार्य किया? (यू० पी० १६३०)

२. यह कहाँ तक सच है कि धार्मिक आंदोलनों ने भारत में राष्ट्रीय जागृति की नींव डाली? (यू० पी० १६३४)

३. उन्नीसवीं शताब्दी में, भारत में राष्ट्रीय जागृति के क्या विभिन्न कारण थे? (यू० पी० १६३८)

४. भारत में राष्ट्रीय आंदोलन का इतिहास लिखिये। (यू० पी० १६३६)

५. १६०६ से १६३५ तक देश में कांग्रेस की क्या नीति थी? इस पर प्रकाश डालिये। (यू० पी० १६४०)

६. कांग्रेस के क्या उद्देश्य हैं? वह उद्देश्य किस प्रकार पूरे किये जाते हैं? (यू० पी० १६४६)

७. भारत की मुख्य राजनीतिक पार्टियों का कार्यक्रम तथा उद्देश्य समझाइये। (यू० पी० १६३८)

८ पिछले कुछ दिनों भारत में कौन से नये राजनीतिक दल बने हैं? उनके कार्यक्रम तथा उद्देश्यों पर प्रकाश डालिये।

६. कांग्रेस दल में फूट के क्या कारण हैं?

१०. 'नये दलों के बनने से भारत की स्वतन्त्रता को खतरा है।' क्या यह कथन सच है?

११. साम्यवादी दल पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (यू० पी० १६५३)

अध्याय २२

हमारा आर्थिक जीवन

किसी देश की जनता के नागरिक जीवन पर उसकी आर्थिक स्थित का बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। कोई भी व्यक्ति उस समय तक एक सभ्य तथा समुन्नत जीवन व्यतीत नहीं कर सकता जब तक उसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समुचित आय का प्रबंध न हो। निर्धन, बेकार तथा रोगी की समस्या से त्रस्त लोग न केवल वैयक्तिक दृष्टि से ही एक अच्छे सामाजिक जीवन व्यतीत करने के अयोग्य होते हैं वरन् वह समाज की शान्ति तथा स्थिरता के लिए भी एक खतरा बन जाते हैं। प्राय ऐसे ही लोगों की श्रेणी में से हमारे समाज के अधिकतर शत्रु—चोर, डाकू, लुटेरे, जालसाज, धोखेबाज, हत्यारे इत्यादि—भर्ती होते हैं। वह सामाजिक संगठन अथवा उसके नियमों का विचार किये बिना ही चाँदी के कुछ थोड़े से टुकड़ों के लोभ से नीच से नीच काम करने पर उतारू हो जाते हैं। इस प्रकार विदित है कि समाज की शान्ति तथा प्रगति और नागरिक जीवन की अच्छाई के लिए आर्थिक साधनों की प्रचुरता तथा उनका उचित विभाजन नितांत आवश्यक है।

हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं कि भारतीयों के नागरिक जीवन का स्तर अत्यंत नीची कोटि का है। हमारे सामाजिक जीवन में अनेक कुरीतियाँ, अंधविश्वास, अविद्या, साम्प्रदायिकता की भावना, आडम्बरवाद, व्यर्थ के रीति रिवाज, घर कर गये हैं। इन सब बुराइयों के दो मुख्य कारण हमारी अशिक्षितता तथा निर्धनता हैं। निर्धनता के कारण न हम अपने बच्चों को शिक्षित बना सकते हैं, न अपने रहन सहन के स्तर को ऊँचा कर सकते हैं, न एक सभ्य तथा सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर सकते हैं और न समाज के सभ्य तथा शिक्षित लोगों की श्रेणी में बैठ कर उनकी अच्छी आदतों को ग्रहण कर सकते हैं।

इस अध्याय में इसलिए हम उन कारणों पर प्रकाश डालेंगे जिनसे हमारा आर्थिक जीवन इतना असंतोषप्रद है और हमारी जनता संसार के सभ्य देशों में सबसे अधिक निर्धन और गरीब है।

भारतीय कृषि

हमारे देश की अधिकतर जनता खेती-क्यारी से अपना जीवन निर्वाह करती है। पिछले ५० वर्षों म अनेक उद्योग धंधों के स्थापित हो जाने पर भी हमारी ७५ प्रतिशत

जनसंख्या खेती पर ही निर्भर है। कृषि की उन्नति पर ही हमारे उद्योग-धन्धों तथा व्यापार की भी प्रगति निर्भर रहती है।

परन्तु कैसे दुर्भाग्य की बात है कि सहस्रों वर्षों से यह व्यवसाय करने पर भी हमारी कृषि की उत्पत्ति दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत कम है और इतने अधिक व्यक्तियों के इस व्यवसाय में लगे रहने पर भी हमारे देश की जनता को अपनी क्षुधा शान्त करने के लिए करीब ४० लाख मन अन्न विदेशों से मँगाना पड़ता है। हमारे देश की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है, सिंचाई के साधन भी अब बढ़ते जा रहे हैं, धूप तथा वर्षा की भी कोई कमी नहीं, परन्तु फिर भी हम कृषि के क्षेत्र में कितने पिछड़े हुए हैं। इसके मुख्य रूप से निम्न कारण हैं :—

(१) किसानों की अशिक्षितता तथा उनके खेती के क्षेत्र में नये तरीकों—मशीनों, रहट, बीज इत्यादि को उपयोग में लाने के प्रति उदासीनता।

(२) किसानों की भाग्यवादिता या कट्टरपन जिसके कारण अपनी आर्थिक दशा को सुधारने के लिए उनमें आन्तरिक प्रेरणा उत्पन्न नहीं होती।

(३) हमारे किसानों की जमीनों का जगह-जगह बिखरा हुआ तथा छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटा रहना।

(४) जिन स्थानों पर वर्षा की कमी है वहाँ सिंचाई के साधनों की कमी।

(५) किसानों की निर्धनता तथा गाँवों में सहकारी समितियों, बैंकों तथा उचित ब्याज पर ऋण देने वाली संस्थाओं की कमी।

(६) कृषि अनुसंधान संस्थाओं की कमी जो नये नये आविष्कारों तथा प्रयोग द्वारा खेती की उपज बढ़ाने के लिए सुझाव दे सकें तथा उपज को बीड़ों, कीटाणुओं, चूहों इत्यादि के प्रकोप से बचा सकें।

इन दशाओं में सुधार के लिए हमारे प्रांतों की सरकारों ने अनेक प्रयत्न किये हैं। जगह-जगह सरकारी समितियाँ किसानों को ऋण देने, उपज की बिक्री का उचित प्रबन्ध करने, अच्छा बीज एवं लोहे के हल तथा मशीनें इत्यादि देने, जमीनों को इकट्ठा करने इत्यादि का कार्य करती हैं। सरकार का कृषि विभाग नये खेती के तरीकों को लोकप्रिय बनाने का प्रबन्ध करता है। प्रांतों में जमींदारी प्रथा का उन्मूलन भी किया जा रहा है जिससे किसानों को उनकी जमीन का मालिक बनाया जा सके तथा वह उनमें रुपया लगा कर स्थायी सुधार कर सकें। पञ्चवर्षीय योजना में भी सबसे अधिक महत्त्व कृषि को ही दिया गया है। सरकार का विचार है कि अगले पाँच वर्षों में १९२ करोड़ रुपया व्यय करके वह ७२ लाख टन अनाज, २१ लाख गाँठ जूट, १२ लाख गाँठ रुई, ४ लाख टन तेल के बीज तथा ७ लाख टन चीनी का उत्पादन बढ़ाने में सफल हो सकेगी।

भारतीय किसान

कुछ काल पहले हम कह सकते थे कि हमारे किसानों की आर्थिक दशा अत्यन्त खराब है। वे ऋण में ग्रस्त हैं या खेती क्यारी की आमदनी से उनका काम नहीं चलता। परन्तु पिछले दस वर्षों में इस दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। पिछले महायुद्ध के पश्चात् से हमारी खेती की उपज की चीजों की कीमत इतनी बढ़ गई है कि हमारे किसानों का भाग्य चमक उठा है और वह साहूकार के ऋण के नीचे दबे हुए न रहकर सम्पत्तिशाली बन गये हैं। लड़ाई के पश्चात् चीजों की कीमतें बढ़ गई हैं। यदि सन् १९४० में गेहूँ ढाई रुपये मन बिकता था, तो आज उसकी कीमत २० रुपये मन से अधिक है। जिस गन्ने को यू० पी० के किसान चार आने मन कीमत पर नहीं बेच सकते थे, आज उसी गन्ने को १½ और २ रुपये मन पर बेचा जाता है। किसी समय गुड़ की कीमत दो रुपये मन थी, आज वही गुड़ १२ रुपया मन बिकता है। कीमतों में इस भारी बढ़ोत्तरी के हो जाने से हमारे किसान भाइयों को सबसे अधिक लाभ हुआ है। इसके अतिरिक्त हमारे प्रान्तों की सरकारें जमींदारी उन्मूलन, ग्राम सुधार योजनाओं तथा ग्राम पञ्चायतों के संगठन के द्वारा उनकी अवस्था में और भी अधिक उन्नति करने का निरंतर प्रयत्न कर रही हैं। नये विधान के अन्तर्गत भी हमारे किसान भाइयों को ही वयस्क मताधिकार के द्वारा भारत का भाग्य विधाता बना दिया गया है। वह अपने मत का उचित उपयोग करके अब देश में जिस प्रकार की चाहें, सरकार का निर्माण कर सकते हैं तथा अपनी आर्थिक व सामाजिक उन्नति के लिए अपने प्रतिनिधियों को विशेष आदेश दे सकते हैं।

परन्तु, हमारे किसानों की आर्थिक अवस्था में यह परिवर्तन शायद स्थायी न रह सके। कारण, अधिक समय तक खेती की वस्तुओं की कीमतें बढ़ी हुई न रह सकेंगी। आज भी आने वाली मन्दी के युग के स्पष्ट चिह्न हमें दिखाई देते हैं। क्या उस समय हमारे किसानों की अवस्था फिर एक बार पहले जैसी हो जायगी? इस प्रश्न का उत्तर हमारे कृषकों की वर्तमान काल में बुद्धिमत्ता तथा दूरदर्शिता पर निर्भर है। यदि आजकल जब किसानों की आय अधिक है, उनके पास कुछ धन तथा सम्पत्ति भी इकट्ठा हो गई है, उन्होंने अपने रुपये का उचित उपयोग नहीं किया तथा उसे व्यर्थ के रीति-रिवाजों, सहभोज, उत्सवों व त्योहारों इत्यादि में लगाया तो भविष्य में उनकी आर्थिक अवस्था ठीक न रह सकेगी। आज हम देखते हैं कि हमारे गाँव के किसान रुपये का बुरी तरह उपयोग कर रहे हैं। हमारे प्रान्त की सरकार ने जो किसानों को भूमिधारी अधिकार प्रदान करने की योजना बनाई थी उससे भी उन्होंने पूर्ण रूप से लाभ नहीं उठाया। यदि समय रहते हमारे किसानों ने अपनी आय के उचित उपयोग पर ध्यान

नहीं दिया और वह इसी प्रकार अपने धन का अपव्यय करते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब मन्दी के काल में वे अनुभव करेंगे कि अपने रुपये को लाभकारी उद्योग धंधों में न लगाकर उन्होंने अपने पैरों स्वयं कुल्हाड़ी मारी है।

भूमिरहित मजदूर—किसानों के अतिरिक्त हमारे देश के गाँवों में जनता की एक और श्रेणी है जिसकी आर्थिक अवस्था आजकल भी अधिक अच्छी नहीं है और जिसे लड़ाई के कारण खेती की चीजों की कीमतों में बढ़ोत्तरी होने से कोई लाभ नहीं हुआ है। यह श्रेणी गाँव के भूमिरहित मजदूरों की श्रेणी कहलाती है। यह लोग बड़े-बड़े किसानों के यहाँ मजदूरी करके अपना पेट पालते हैं। इन्हें वर्ष में केवल तीन या चार महीने के लिए ही रोजगार मिलता है, शेष समय वह बेकार बैठकर ही अपने जीवन का निर्वाह करते हैं। इन मजदूरों की अवस्था सुधारने के लिए सरकार को चाहिये कि वह गाँवों में छोटे छोटे घरेलू उद्योग धंधे कायम करे। गाँव के किसान, स्त्री व बच्चे भी इन उद्योग धंधों में अपने बेकार समय का उपयोग कर सकते हैं और इस प्रकार अपनी आय बढ़ाकर अपने रहन-सहन के स्तर को ऊँचा कर सकते हैं। हमारी सरकार ने जापान से बहुत सी ऐसी छोटी छोटी मशीनें मँगाई हैं जो गाँव में लगाई जा सकती हैं और जिनके चलाने के लिए बहुत बड़े सरमाये अथवा टेक्निकल ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती। ग्रामीण जनता को शिक्षित बनाने की ओर भी सरकार को विशेष ध्यान देना चाहिये। शिक्षित किसान ही खेती के तरीकों में क्रान्ति कर हमारे देश की अन्न समस्या को सुलझा सकते हैं।

भारतीय उद्योग-धन्धे

एक समय था जब हमारा देश घरेलू उद्योग धन्धों के क्षेत्र में संसार का सबसे उन्नत देश था। परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य में यह सब नष्ट हो गये। विलायत की बनी हुई सस्ती चीजें हमारे देश में बिकने लगीं और हमारे अपने कारीगर बेकार हो गये। महात्मा गांधी ने अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ की स्थापना करके इस दिशा में कुछ परिवर्तन करने का उद्योग किया, परन्तु स्वराज्य प्राप्ति से पहले इस दिशा में अधिक प्रगति न हो सकी। जहाँ तहाँ कुछ गाँवों में छोटे छोटे उद्योग धंधे आरम्भ किये गये परन्तु आर्थिक कठिनाइयों, मशीनों के अभाव, बिक्री की कमी तथा सरकारी सहायता के न मिलने से इस दशा में अधिक सफलता न हो सकी।

घरेलू उद्योग धंधों की उन्नति हमारे देश में उस समय से अधिक हो सकता है जब भारत के अधिकतर गाँवों में सस्ती मशीनें तथा बिजली मिलने का प्रबन्ध हो जाय। हमारी सरकार इस समय अनेक नदियों व घाटियों के पानी की सहायता से बिजली बनाने की योजनाओं पर कार्य कर रही है। यदि यह योजनाएँ सब कार्यान्वित हो गई तो

फिर हमारे गाँवों में उसी प्रकार सस्ती बिजली मिल सकेगी जैसे वह जापान, डेनमार्क, हालैंड या यूरोप के बहुत से देशों में मिलती है, और फिर हमारे किसान घर-घर में छोटे छोटे उद्योग-धंधे आरम्भ कर सकेंगे। इन उद्योग-धंधों की उन्नति के लिए सरकार को निम्न और उपाय काम में लाना चाहिये :—

(१) किसानों की आर्थिक सहायता के लिए जो इस प्रकार के उद्योग-धंधे आरम्भ करना चाहें सस्ते ब्याज पर ऋण का प्रबन्ध।

(२) विदेशों से ऐसी मशीनों का आयात जो गाँवों में आसानी से लगाई जा सकें और वे पढ़े लिखे लोग भी उनका उपयोग कर सकें।

(३) इन कारखानों में बनी हुई चीजों की देश व विदेशों में बिक्री का उचित प्रबन्ध

(४) सरकार द्वारा ऐसी अनुसंधान संस्थाओं की स्थापना जो इन उद्योग धंधों की उन्नति के लिए निरन्तर प्रयत्न करती रहें।

बड़े उद्योग धन्धे

हमारे देश में बड़े-बड़े उद्योग धंधे पिछले ८० वर्षों में ही स्थापित हुए हैं। इस समय हमारे देश में लगभग १०,००० ऐसे बड़े-बड़े कारखाने हैं जिनमें २० से अधिक मजदूर काम करते हैं तथा जिनमें 'पावर' का प्रयोग होता है। इन उद्योग धंधों में लगभग ४२८ कपड़े की मिलें हैं जिन पर लड़ाई के पहले की कीमतों के हिसाब से ४० करोड़ से अधिक रुपया लगा हुआ है तथा जिनमें ४ लाख से अधिक मजदूर काम करते हैं; १०४ जूट मिलें हैं जिनमें ३ लाख से अधिक मजदूर काम करते हैं; ७ लोहे और इस्पात की मिलें हैं। इन कारखानों में सबसे बड़ा टाटानगर का कारखाना है। चीनी के कारखानों की संख्या हमारे देश में १३४ है, जिनमें सब मिला कर, लगभग १४ लाख टन चीनी पैदा की जाती है। इसके अतिरिक्त हमारे देश में लगभग १६ कागज की मिलें, कुछ रबड़, प्लास्टिक, सिल्क, वेजिटेबिल घी, चाय, ऊन, सीमेंट, दियासलाई, कैमिकल, तेजाब, रेडियो व दवाइयों के कारखाने हैं तथा अनेक छोटे-छोटे चावल, तेल, दाल, कोल्हू, ढलाई, रुई के कारखाने तथा इंजीनियरिंग वर्क शाप इत्यादि हैं।

पिछली लड़ाई के काल में हमारे देश में अनेक और कारखाने तथा उद्योग-धन्धे खोले गये। इनमें हवाई जहाज, समुद्री जहाज, मोटर, बाइसिकिल, तेजाब, बिजली का सामान, कैमिकल, दवाइयाँ, छोटी मशीनें, स्टेशनरी का सामान, बटन, ट्यूब, टायर, इत्यादि बनाये जाते थे। लड़ाई के पश्चात् इनमें से बहुत से छोटे छोटे कारखाने बन्द होने लगे हैं, कारण वह विदेशों से आने वाली सस्ती चीजों का मुकाबिला नहीं कर सकते और उन्हें सरकार की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती।

यदि उपरोक्त आँकड़ों की ओर ध्यान दिया जाय तो विदित होगा कि हमारे देश में

उद्योग-धंधों की संख्या बहुत कम है। भारत जैसे देश के लिए जिसकी जनसंख्या चीन को छोड़ कर संसार के और सभी देशों से अधिक है तथा जहाँ के प्राकृतिक साधन सबसे ज्यादा हैं, उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में हमारे देश का पीछे रहना कुछ युक्तियुक्त मालूम नहीं पड़ता। परन्तु फिर भी यदि हमारे देश का औद्योगीकरण कम हो पाया है तो इसके निम्न कारण हैं :—

(१) अगस्त, १९४७ से पहले हमारे देश की गुलामी, जिस काल में अँग्रेजों की सदा यह नीति रही है कि हमारा देश औद्योगिक क्षेत्र में अधिक उन्नति न करे और इंगलैंड तथा यूरोप के देशों को कच्चा माल ही भेजता रहे।

(२) देश में टैक्निकल शिक्षा संस्थाओं तथा अनुभवी होशियार कारीगरों की कमी।

(३) कारखानों को चलाने के लिए बिजली व दूसरी शक्ति के साधनों की भारी कमी।

(४) मशीन बनाने के कारखानों का अभाव तथा इस क्षेत्र में हमारी दूसरे देशों पर पूर्ण निर्भरता।

(५) बुनियादी कारखानों (Basic Industries) की कमी जिन पर किसी देश का औद्योगीकरण निर्भर होता है।

(६) मूल धन की कमी तथा उसका ऐसे व्यक्तियों के हाथ में जमाव जिनमें औद्योगिक उत्साह की भारी कमी है।

इन सब कमियों के होते हुए भी पिछले महायुद्ध के काल में तथा उसके कुछ समय पश्चात् तक हमारे देश में अनेक नये कारखाने खोले गये तथा सैकड़ों लिमिटेड कम्पनियाँ नये नये काम आरम्भ करने के लिए संगठित की गईं। परन्तु इसके पश्चात् हमारे देश में कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं जिनके कारण या तो कारखानों में रुपया लगाने वाली जनता का विश्वास कम हो गया या ऐसे बहुत से लोग पाकिस्तान बनने या उसके पश्चात् होने वाले उपद्रवों के कारण, बिल्कुल बरबाद हो गये। इसलिए पिछले वर्षों में कोई बड़ा कारखाना, बैंक, बीमा कम्पनी अथवा कोई और उद्योग-धंधा, जनता की ओर से कायम नहीं हो सका है। आज हमारे वर्तमान उद्योग-धन्धों की अवस्था भी अधिक अच्छी नहीं है। कारखानों तथा कम्पनियों के हिस्सों के दाम बराबर गिरते जा रहे हैं। मध्यम श्रेणी के लोगों को इस मन्दी के कारण भारी हानि का सामना करना पड़ा है। अनुमान लगाया गया है कि शेयर बाजार में मन्दी के कारण जनता को १२०००० करोड़ रुपये का घाटा हुआ है। बहुत से परिवारों की तो वर्षों की सम्पूर्ण बचत पर पानी फिर गया है और अब वह नये कारखानों में एक पैसा लगाने से भी डरते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इस दुरवस्था के निम्न कारण हैं :—

(१) पंजाब तथा सिंध के हिन्दुओं का आर्थिक विनाश,

(२) जमींदारों तथा राजाओं का उन्मूलन,
(३) हमारी राष्ट्रीय सरकार की अव्यावहारिक आर्थिक नीति,
(४) सरकार द्वारा राष्ट्रीयकरण की नीति की घोषणा,
(५) विदेशी व्यापार के क्षेत्र में सरकार की निश्चित नीति का अभाव,
(६) इन्कम टैक्स जाँच कमेटी की नियुक्ति और उसके द्वारा अनेक उद्योगपतियों के पिछले हिसाब किताबों की जाँच,
(७) बाज़ार में चोर बाज़ार रुपये की अधिकता और उसको देश के औद्योगीकरण में प्रयोग करने की नीति का अभाव,
(८) मज़दूरों द्वारा हड़ताल तथा वेतन में बढ़ोतरी का आन्दोलन,
(९) सरकारी खर्चे में भारी फैलाव तथा उसको पूरा करने के लिए नये-नये टैक्सों तथा करों की वसूली और जनता का असन्तोष,
(१०) चीज़ों की कीमतों में बढ़ोत्तरी और उसके कारण साधारण जनता द्वारा रुपया बचाने में असमर्थता।

अब कुछ काल से सरकार इन सभी बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न कर रही है। पिछले दिनों, वित्त विभाग द्वारा इस बात की घोषणा की गई थी कि चोर बाजार की कमाई पर जुर्माना न किया जायगा। इस घोषणा के फलस्वरूप लगभग १०० करोड़ रुपये की आय मूलधन में सम्मिलित कर ली गई, और अब इस धन की सहायता से नये उद्योग-धन्धे आरम्भ हो सकेंगे।

पञ्च वर्षीय योजना के अधीन सरकार ने १०१ करोड़ रुपये के व्यय से मशीन, पावर, आलकोहल, अलमूनियम, सिमेंट, खाद इत्यादि उद्योगों को प्रोत्साहन देने का कार्यक्रम बनाया है। इसके अतिरिक्त उसने उद्योगपतियों से प्रार्थना की है कि वह जनता की खपत की वस्तुएँ उत्पन्न करने के लिए अपनी ओर से कारखाने खोलें। विदेशी कम्पनियों को भी भारतवर्ष में रुपया लगाने के लिए प्रोत्साहन दिया जा रहा है। अभी हाल ही में बर्मा शैल कम्पनी तथा कालटैक्स कम्पनी ने निर्णय किया है कि वह दो बड़े तेल शोधक कारखाने (Oil Refineries) भारत में खोलेंगी। पुराने कारखानों की उत्पत्ति भी हमारे देश में निरन्तर बढ़ती जा रही है। उनमें नई मशीनों का प्रयोग होने लगा है। इसलिए आशा है कि बहुत शीघ्र ही हमारे देश के उद्योग धन्धों की अवस्था बहुत अच्छी हो जायगी।

भारतीय मजदूरों की समस्या

किसी देश के उद्योगीकरण में मजदूरों का भारी हाथ होता है। वैसे तो हमारे देश में मजदूरों की कोई कमी नहीं; ३६ करोड़ की जनसंख्या से हम जितने चाहें कारखानों

में काम करने के लिए मजदूरों की भर्ती कर सकते हैं। परन्तु हमारे कारखानों में काम करने वाले मजदूर, अशिक्षितता तथा निर्धनता के कारण, अपने काम में इतने कुशल नहीं होते जितने दूसरे देशों के कामगर। पढ़े-लिखे टेक्निकल शिक्षा प्राप्त मजदूरों की भी हमारे देश में भारी कमी है। यही कारण है कि बड़े-बड़े कारखानों को चलाने के लिए हमें भारी वेतन पर दूसरे देशों से कारीगर तथा इंजीनियर काम करने के लिए बुलाने पड़ते हैं। एक दूसरी विशेषता हमारे देश के मजदूरों में यह है कि वह बन कर कारखानों में काम नहीं करते। यहाँ कुछ पैसा कमा लिया कि सब गाँवों को लौटने की ही सोचते हैं। इससे हमारे देश में एक स्थायी पेशेवर मजदूरों की श्रेणी का निर्माण नहीं हो पाता।

कुछ काल पहले हमारे कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बहुत बुरी दशा थी। वह १४ और १६ घंटे तक प्रति दिन काम करते थे। स्त्रियों तथा बच्चों को बहुत कम वेतन पर, अत्यन्त गन्दे वातावरण में, काम करने के लिए नौकर रक्खा जाता था। उन्हें छुट्टियाँ नहीं दी जाती थीं। उनके आराम तथा सुविधा का किसी प्रकार का विचार नहीं रक्खा जाता था। उनके रहने के लिए स्वच्छ मकान नहीं दिये जाते थे और उन्हें नगर के सबसे गन्दे भाग में, एक-एक कोठरी में बीस-बीस आदमियों के साथ रह कर, जीवन व्यतीत करना पड़ता था।

परन्तु अङ्गरेजों के काल में ही सन् १८८१ के पश्चात् इस दशा में सुधार होने लगा और भारत सरकार ने अनेक ऐसे कानून बनाये जिनके द्वारा मजदूरों को तरह-तरह की सुविधाएँ प्राप्त होने लगीं। पहला कानून सन् १८८१ में पास किया गया जिसके द्वारा मजदूरों के काम के घंटे १४ नियत कर दिये गये। इसके पश्चात् सन् १८९१, १९१२, १९२२, १९२६, १९३४ तथा फिर १९४८ में और कानून पास किये गये। अंतिम कानून में मजदूरों के काम करने के घंटे सप्ताह में ४८ और एक दिन में अधिक से अधिक ९ निश्चित किये गये हैं। १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को कारखानों में काम पर लगाने की मनाही कर दी गई है। स्त्रियाँ भी कुछ विशेष सुविधाओं के अधीन कार्य कर सकती हैं। मजदूरों के बीमे, सालाना तरक्की तथा छुट्टियों का प्रबन्ध भी किया गया है।

दुर्भाग्यवश हमारे कारखानों में काम करने वाले मज़दूर राजनीतिक दलों की महत्त्वाकांक्षाओं के शिकार बन गये हैं। कांग्रेस, समाजवादी दल, कम्यूनिस्ट पार्टी, फारवर्ड ब्लाक—सभी मजदूरों की संस्थाओं पर अधिकार जमाना चाहते हैं। इसका कारण यही है कि मजदूरों की संख्या बड़े-बड़े नगरों में बहुत अधिक होती है और जिस राजनीतिक दल का भी उन पर प्रभाव सर्वोपरि हो जाता है, उसी दल को राजनीतिक क्षेत्र में प्रधानता मिलती है। आजकल अखिल भारतीय दृष्टि से मजदूरों की चार संस्थाएँ

है। इनके नाम हैं, आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस, इंडियन फिडरेशन आफ लेबर, इंडियन नैशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा हिंदू मजदूर पञ्चायत। इन संस्थाओं में से पहली संस्था पर कम्यूनिस्टों का अधिकार है, दूसरी पर श्री ऐम० ऐन० राय की पार्टी का, तीसरी पर कांग्रेस का तथा चौथी पर समाजवादी दल का। इनमें से कम्यूनिस्टों द्वारा अधिकारग्रस्त संस्थाएँ मजदूरों को सदा हड़ताल तथा तोड़ फोड़ की नीति का अवलम्बन करने के लिए भड़काती रहती हैं। इन संस्थाओं ने देश की आर्थिक स्थिति को और भी विस्तृत बना दिया है और उन्होंने राष्ट्र के औद्योगीकरण को भारी ठेस पहुँचाई है। मजदूरों को चाहिये कि वह अपने नेता अपने में से स्वयं चुनें और राजनीतिक दलों के प्रभाव से बचे रहें। तभी हमारे देश में एक वास्तविक ट्रेड यूनियन आन्दोलन की नींव पड़ सकती है।

मजदूरों की दशा में सुधार का कार्य विशेषकर मजदूर संस्थाओं के आन्दोलन के फलस्वरूप हुआ है। आज हमारे देश में ऐसी संस्थाओं की संख्या १००० से अधिक है। ट्रेड यूनियन ऐक्ट के मातहत ऐसी सब संस्थाओं को सरकार के यहाँ रजिस्ट्री करानी पड़ती है। सब मजदूर संस्थाओं के सदस्यों की संख्या १४ लाख है। वैसे कुल मिला कर हमारे कारखानों में २२ लाख मजदूर काम करते हैं। इस संख्या में केवल वही मजदूर शामिल हैं जो ऐसे कारखानों में काम करते हैं जिन पर फैक्टरीज ऐक्ट लागू होता है, अर्थात् वह कारखाने जिनमें 'पावर' का प्रयोग होता है तथा जिनमें १० मजदूरों से अधिक काम करते हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारी राष्ट्रीय सरकार ने मजदूरों की दशा सुधारने के लिए अनेक योजनाएँ बनाई हैं। मजदूरों के 'सामाजिक बीमे' तथा रहने के लिए सुन्दर हवादार मकान बनाने की योजनाओं पर इस समय देश के कुछ नगरों जैसे कानपुर तथा देहली में कार्य हो रहा है।

व्यापार और तिजारत

हमारे देश की जनसंख्या तथा उसका आकार देखते हुए, हमारे वैदेशिक तथा आन्तरिक व्यापार की मात्रा बहुत कम है। इसका मुख्य कारण हमारे देश की गरीबी है। हमारी अधिकतर जनता की इतनी आय नहीं है कि वह रोटी कपड़े के अतिरिक्त आराम तथा विलासिता की सामग्री पर अपनी गाढ़ी कमाई का कोई भाग व्यय कर सके। हमारे देश के वैदेशिक व्यापार का कुल मूल्य लगभग ६०० करोड़ रुपया है। अमरीका के कुल व्यापार का यह दसवाँ भाग भी नहीं। इस व्यापार में हमारे देश से बाहर जाने वाली वस्तुओं का मूल्य लगभग ३२० करोड़ रुपया तथा देश के अन्दर आने वाली वस्तुओं का मूल्य लगभग २८० करोड़ रुपया रहता है। भारत सदा से ही विदेशी व्यापार के क्षेत्र में दूसरे देशों का साहूकार रहा है, परन्तु युद्ध के पश्चात् हमारे देश की

भारतवर्ष में बेकारी की समस्या

बेकारी की समस्या हमारे देश में सदा से ही उग्र रूप धारण किये हुए है। पिछले महायुद्ध के काल में सैनिक भर्ती, युद्ध पर व्यय, नये-नये कारखानों तथा उद्योग धन्धों की स्थापना, सरकारी दफ्तरों में बढ़ोत्तरी तथा जगह-जगह सैनिक इमारतों, हवाई अड्डों, इत्यादि के बनने के कारण यह समस्या कुछ हल सी हो गई थी। गाँवों तथा नगरों में बेकारों की संख्या बहुत कम रह गई थी और अधिकतर लोग किसी न किसी लाभदायक काम में जुट गये थे। परन्तु युद्ध के पश्चात् यह समस्या फिर एक बार अपने विकाल रूप में देश के सम्मुख आ खड़ी हुई। सरकारी दफ्तरों में छटनी आरम्भ हो गई है। युद्ध के समय सरकारी ठेकों के कारण जो छोटे छोटे कारखाने खोले गये थे वे बन्द हो चुके हैं। दूसरे कारखानों में मन्दी के कारण व्यापार में अत्यन्त शिथिलता आ गई है। केवल गाँवों में भूमि की उपज की वस्तुओं के मूल्य में विशेष कमी न आने के कारण रोजगार की स्थिति पूर्वत. बनी हुई है। परन्तु वहाँ पर भी यह दशा अधिक समय तक स्थिर नहीं रह सकती, कारण हम देखते हैं कि आर्थिक संकट के बादल चारों ओर मँडरा रहे हैं। हमारी बेकारी की समस्या के मुख्य रूप से पाँच अंग हैं:—(१) गाँवों में किसानों तथा भूमिहीन मजदूरों की वर्ष में छै माह से अधिक काल के लिए बेकारी की समस्या, (२) छोटे-छोटे कारीगरों तथा घरेलू उद्योग-धन्धों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या; (३) शहरों में बड़े बड़े कारखानों में काम करने वाले मजदूरों की बेकारी की समस्या; (४) पढ़े लिखे नवयुवकों की बेकारी की समस्या और (५) नगरों में रहने वाले मध्यम श्रेणी के छोटे व्यापारी, दुकानदारों, जमींदारों, तथा साहूकारों की बेकारी की समस्या।

पिछले महायुद्ध से पहले हमारी बेकारी की समस्या के केवल यह पाँच पहलू थे परन्तु पिछले महायुद्ध ने हमारे देश के मध्यम श्रेणी के लोगों को भी बेकार कर दिया।

किसानों की बेकारी की समस्या

हमारे देश की बेकारी की प्रथम समस्या, जैसा इस अध्याय में पहले भी बताया जा चुका है, केवल उस समय हल हो सकती है जब हमारे गाँव में छोटे छोटे उद्योग धन्धे खोल दिये जायँ। परन्तु इन धन्धों की सफलता के लिए आवश्यक है कि सर्व प्रथम गाँवों में सस्ती बिजली का प्रबन्ध किया जाय और घरेलू उद्योग धन्धों में बनी हुई चीजों की बिक्री का समुचित प्रबन्ध हो।

कारीगरों की बेकारी की समस्या

छोटे. कारीगरों तथा कलाकारी जैसे, बढ़ई, जुलाहे, खिलौने, चित्र, लकड़ी का फैंसी सामान, काँच की चीजें, फर्नीचर तथा इसी प्रकार की कारीगरी की चीजें बनाने वाले लोगों की बेकारी की समस्या इतनी विकट नहीं है जितनी दूसरी श्रेणी के मजदूरों

के सम्मुख उपस्थित हुई है। युद्ध के काल में हमारे देश की सरकार को अनेक कन्ट्रोल, परमिट तथा राशन सम्बन्धी कानून बनाने पड़े। इनसे देश में व्यापारिक स्वतन्त्रता का नाश हो गया और माल के आने-जाने, क्रय विक्रय, आयात निर्यात पर तरह तरह की रोक लगा दी गई। इन सब कानूनों का यह परिणाम हुआ कि अनेक कपड़े, अनाज तथा दूसरी कन्ट्रोल की वस्तुओं के व्यापारी बेकार हो गये। इधर गाँवों में जमींदार उजड़ गये और शहरों में किराया सम्बन्धी कानून पास होने से जायदाद के मालिकों को किराये की आमदनी कम हो गई। लड़ाई के पश्चात् जनता को आशा थी कि वस्तुओं की कीमतें स्वतः ही गिर जायँगी और सरकार द्वारा कन्ट्रोल हटा लिये जायेंगे। परन्तु युद्ध के पश्चात् देश की आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई और दिन प्रति दिन काम में आने वाली वस्तुओं की कीमतों में कमी होने के स्थान पर उल्टे बढ़ोत्तरी हो गई। फल यह हुआ कि सरकार को कन्ट्रोल कायम रखने पड़े। इधर महगाई के कारण मध्यम श्रेणी के लोगों का खर्चा पहले से बहुत अधिक बढ़ गया और किसी प्रकार का व्यवसाय न होने के कारण उनकी आर्थिक स्थिति अत्यन्त चिंताजनक हो गई। आज यदि स्थिति यह है कि हमारे समाज में मध्यम श्रेणी के लोगों का प्राय: लोप सा होता जा रहा है। इस श्रेणी के लोग जो सरकारी व दूसरी नौकरियाँ करते हैं, उनकी दशा भी अच्छी नहीं है; कारण यह बढ़ती हुई महँगाई उनके रहन सहन के स्तर को निरंतर नीचे की ओर ढकेल रही है। आज इस श्रेणी के लोग जिन पर समाज की नींव कायम है—न अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा दे सकते हैं न एक स्वास्थ्यपूर्ण जीवन को व्यतीत करने के लिए घर में भोजन सामग्री ही जुटा सकते हैं न अपनी स्थिति के अनुसार शादी विवाह, उत्सव व त्यौहार पर दिल खोलकर रुपया ही खर्च कर सकते हैं। अनुमान लगाया गया है कि ६० प्रतिशत से अधिक ऐसे लोग आजकल ऋण में ग्रस्त हैं और उनकी दशा गाँव के किसानों तथा शहर में काम करने वाले मजदूरों से भी बदतर है। इस श्रेणी के लोगों की अवस्था में केवल उस समय सुधार हो सकता है जब मुद्रा स्थिति दूर हो, चीजों की कीमतें घटें, कन्ट्रोल हटा लिये जायँ तथा व्यापार के क्षेत्र में फिर एक बार स्वतन्त्रता का वातावरण निर्माण हो जाय।

भारत में गरीबी

इस अध्याय में हमने भारत की जिस आर्थिक स्थिति का विवरण दिया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि हमारे देश की अधिकतर जनता क्यों गरीब है तथा उसे दो समय भरपेट भोजन भी क्यों नहीं उपलब्ध होता। फिर भी संक्षेप में हम यहाँ इन सब कारणों को दोहरा देना उचित समझते हैं जिससे भारतवासी तथा हमारी राष्ट्रीय सरकार उन कारणों को दूर करने तथा हमारे देश में एक सच्चे आर्थिक लोकतन्त्र की स्थापना के लिए कार्य कर सकें। हमें यह कहने की आवश्यकता नहीं कि किसी भी देश

की जनता के लिए स्वतंत्रता का उस समय तक कोई मूल्य नहीं होता जब तक उस देश की भूख और प्यास से पीड़ित जनता की रोटी की समस्या का हल नहीं निकलता। हमारी गरीबी के सम्बन्ध में निम्न कारण हैं :—

(१) देश की ७५ प्रतिशत से अधिक जनता का कृषि पर निर्भर होना।

(२) कृषि का आधुनिक उपायों की अपेक्षा पुराने ढंग से किया जाना।

(३) देश में अधिक उद्योग धन्धों तथा बड़े-बड़े बुनियादी कारखानों की कमी।

(४) अनेक उद्योग धन्धों पर विदेशियों का प्रभुत्व।

(५) जनसंख्या में प्रति वर्ष ५० लाख से भी अधिक बढ़ोत्तरी का हो जाना।

(६) सरकार की आर्थिक नीति की अनिश्चितता।

(७) हमारे शासकों का व्यापार, उद्योग तथा उत्पत्ति के क्षेत्र में अनुभव हीन होना।

(८) जनता की अशिक्षितता

(९) देश में औद्योगिक शिक्षा तथा टेक्निकल संस्थाओं की कमी।

(१०) राष्ट्रीय आय का अनुचित विभाजन।

(११) जनता द्वारा अर्थशास्त्र के नियमों की अनभिज्ञता।

(१२) व्यर्थ के रीति रिवाज, शादी विवाह, सहभोज, इत्यादि पर जनता का अनुचित व्यय।

इन सब कारणों को दूर करने से ही हम अपने देश की आर्थिक समस्याओं को हल कर सकते हैं तथा भारत में एक सच्चे आर्थिक लोकतन्त्र को जन्म दे सकते हैं।

योग्यता प्रश्न

१. भारतीय किसानों की गरीबी के क्या कारण हैं? उनकी अवस्था कैसे सुधारी जा सकती है? (यू० पी० १९४०, ४३,५२)

२. भारत में बेकारी के क्या कारण हैं? इस दशा में कैसे सुधार किया जा सकता है? (यू० पी० १९४१)

३. पढ़े-लिखे नवयुवकों तथा मध्यम श्रेणी के लोगों में बेकारी के क्या कारण हैं? यह कैसे दूर किये जा सकते हैं? (यू० पी० १९३७)

४. भारत में ग्राम्य जीवन को अधिक सुखी और समृद्ध बनाने के लिए आप क्या करेंगे? (यू० पी० १९३७, ४१, ४२, ५१)

५. भारतवर्ष के गरीबी के क्या कारण हैं? यह कैसे दूर किये जा सकते हैं?

६. देश में खाद्य सामग्री की वर्तमान कमी के क्या कारण हैं? आप बताइये जिससे देश स्वयं इसी कमी को पूरा कर सके। (यू० पी० १९५३)

७. जमींदारी उन्मूलन और सहकारी खाद्य समितियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये। (यू० पी० १९५३)

अध्याय २३

भारत और संयुक्तराष्ट्र संघ

हमारा धर्म परायण देश सदा से ही सारे विश्व को अपने एक वृहद् परिवार का अङ्ग मानता चला आ रहा है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' यही हमारे धर्म शास्त्रों में प्रतिपादित सबसे महान् आदर्श है। समस्त मानव समाज को एक रूप समझना तथा पृथ्वी के सभी प्राणियों की सेवा-सुश्रूषा करना हमारे धर्म ग्रन्थों की दीक्षा का निचोड़ है। हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने भी अपने सम्पूर्ण जीवन में यही सिद्धान्त जनता के सम्मुख रक्खा। उन्होंने बताया कि संसार में सत्य, अहिंसा, भ्रातृभाव एवं न्याय के सिद्धान्तों का प्रचार करना सबसे महान् जन सेवा का कार्य है। वह उत्कृष्ट राष्ट्रीयता की भावना के घोर विरोधी थे। उनके जीवन का ध्येय था संसार में सत्य एवं अहिंसा के सिद्धान्तों पर चल कर विश्व शान्ति कायम करना तथा समस्त मानव समाज को अटूट प्रेम के बंधन में बाँध कर एक विश्व-सरकार निर्माण करना। यही कारण है कि सदा से ही हमारे देश ने उन सभी योजनाओं में सहयोग प्रदान किया है जो योजनाएँ विश्व एवं एक शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन बनाने के लिए समय समय पर बनाई गई हैं।

भारत का संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्य में योगदान

जिस समय सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात् संसार में राष्ट्रसङ्घ (लीग आफ नेशन्स) की स्थापना की गई तो परतन्त्रता की अवस्था में भी भारतवर्ष ने उस संस्था के कार्य में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसके पश्चात् जब अक्तूबर सन् १९४५ में एक दूसरे संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था की गई तो हमारा देश उस संस्था के जन्मदाताओं में सब से अग्रगण्य था। आज हमारा देश उन थोड़े से देशों में से एक है जो संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों में पूर्णतया विश्वास करते हैं तथा उसकी सफलता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। विश्व शान्ति के क्षेत्र में हमारे देश का योगदान किसी से कम नहीं है। हमारे देश ने संयुक्त राष्ट्र संघ के दो विरोधी दलों के बीच की खाई को पाटने का सदा प्रयत्न किया है। उसने कभी एक शक्ति के साथ मिल कर सत्य तथा न्याय के मार्ग का परित्याग नहीं किया। वह दोनों दलों से ऊपर उठ कर कार्य करता रहा है। उसकी सबसे बड़ी नैतिक शक्ति तटस्थता की नीति का अवलंबन करने में रही है। आज सब संसार के सभी महान् देश दो परस्पर विरोधी दलों में बँटे हुए हैं और संसार की शांति एक सूत के बारीक धागे के साथ लटक रही है तो भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है जिस

पर विश्व की त्रस्त एवं पीड़ित जनता की आँखें गड़ी हुई हैं और वह आशा कर रही है कि शायद गांधी और बुद्ध का वह महान् देश विश्व की शांति की रक्षा करने में सफल हो सके।

हमारे देश के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठकों में सबसे महत्त्वपूर्ण भाग लिया है। हमारे देश की सम्पूर्ण शक्ति सदा उन राष्ट्रों का साथ देती रही है जो साम्राज्य-वादी शक्तियों के कुचक्रों का शिकार रहे हैं। हमारे प्रतिनिधियों की विद्वत्ता, सूझ बूझ एवं काम करने की शक्ति की सभी ने सराहा है। वे अनेक बार जटिल प्रश्नों को हल करने वाली समितियों के सदस्य और अध्यक्ष रहे हैं। इस सम्बन्ध में आर्थिक और सामाजिक परिषद् के अध्यक्ष श्री रामस्वामी मुदालियर, कोरिया कमीशन के अध्यक्ष श्री के० पी० एस० मेनन, यूनेस्को की कार्यकारिणी के प्रधान डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन, प्राकृतिक विज्ञान शाखा के अध्यक्ष डा० भाभा, विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन की प्रधाना राज-कुमारी अमृत कौर तथा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सङ्घ के प्रधान श्री जगजीवन राम के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अनुसन्धान समिति में डा० बी० एन० राव तथा संरक्षित प्रदेशों की समिति में शिवराम के नाम की भी सभी ने सराहना की है। इनके अतिरिक्त भारत के प्रयत्नों के फलस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ के चार्टर में मानवी अधिकारों और मूल स्वतन्त्रता वाली धाराएँ जोड़ी गई हैं। हमारे प्रतिनिधियों ने फासिस्ट स्पेन को संयुक्त राष्ट्र सङ्घ का सदस्य बनने से बहुत समय तक रोका है। दक्षिण-पश्चिमी अफ्रीका हमारे प्रतिनिधियों की सजगता के कारण ही अफ्रीका द्वारा हड़प लिये जाने से बचा। संयुक्त राज्य, हिंदेशिया एवं इटली के पुराने उपनिवेशों को स्वतन्त्रता दिलाने में भी हमारे प्रतिनिधियों का भाग सबसे अधिक रहा है। हिंदेशिया के प्रश्न को लेकर हमारे देश ने ही सबसे पहले आन्दोलन किया था। पिछड़े हुए प्रदेशों के हितों का सबसे बड़ा प्रहरी हमारा देश ही रहा है। रंगी हुई जातियों के ऊपर किये जाने वाले अत्याचार के विरुद्ध भी हमारे देश ने ही सबसे पहले कदम उठाया है। अफ्रीका में रंगभेद की नीति के विरुद्ध जेहाद करने में भी हमारे ही प्रतिनिधि सबसे आगे रहे हैं। कोरिया के युद्ध में संयुक्त राष्ट्रीय सेनाएँ ३८ अक्षांश से आगे न बढ़ें, और चीन की जन-सरकार को मान्यता दी जाय, यह सुझाव भी हमारी ही सरकार ने प्रस्तुत किये और इनसे विश्व युद्ध का खतरा कम होने में भारी सहायता मिली है। कोरिया में युद्ध बन्द हो जाने का मुख्य श्रेय भी भारत को ही जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ के छोटे से जीवन में हमारे देश के प्रतिनिधियों ने समुचित भाग लिया है।

यहाँ संयुक्त राष्ट्र संघ की व्यवस्था के सम्बन्ध में संक्षिप्त विवरण देना अनुचित न

होगा। प्रश्न उठता है कि संयुक्त राष्ट्र सङ्घ क्या है, वह क्या करता है तथा उसके कार्य करने का क्या तरीका है ?

संयुक्त राष्ट्र संघ क्या है ?

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ वह संस्था है जो संसार के देशों में युद्ध की भावना का अन्त करने तथा विश्व में एक ऐसी अटूट शांति की स्थापना करने के लिए बनाई गई है जिसका आधार मानव अधिकारों की रक्षा, राष्ट्रों का आत्म-निर्णय का सिद्धान्त तथा संसार के देशों का आपस में आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक गठबंधन होगा।

इस संस्था का जन्म उस समय हुआ जब पिछले महायुद्ध के काल में साथी राष्ट्रों की सरकारों ने डम्बार्टन ओक्स के एक सम्मेलन में यह निश्चय किया कि संसार के शांतिप्रिय देशों के पारस्परिक सहयोग को स्थायी रूप देने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था की आवश्यकता है। इसके पश्चात् सैनफ्रांसिस्को में २५ अप्रैल से २६ जून १९४५ तक दुनियाँ के राष्ट्रों की एक सभा हुई। इस सभा में ५० राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने २६ जून १९४५ को संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के चार्टर पर हस्ताक्षर कर दिये और इसके पश्चात् २४ अक्तूबर सन् १९४५ को इस संस्था ने नियमित रूप से कार्य करना आरम्भ कर दिया।

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के उद्देश्य

संयुक्त राष्ट्र सङ्घ की संस्था को जन्म देने में उसके प्रवर्तकों ने सदा उन कठिनाइयों को अपने सम्मुख रक्खा जिनके कारण प्रथम राष्ट्र सङ्घ की संस्था असफल सिद्ध हुई थी। उन्होंने इस संस्था को एक स्थायी रूप दिया तथा इसे वास्तविक शक्ति प्रदान करने के लिए इसकी सुरक्षा परिषद् को अनेक अधिकार सौंपे। इस संस्था के जन्मदाताओं ने संसार के देशों से उन सामाजिक एवं आर्थिक मतभेदों को मिटाने का भी प्रयत्न किया जिनके कारण विश्व शांति को खतरा पहुँचता है। संक्षेप में हम संयुक्त राष्ट्र सङ्घ के सिद्धान्तों का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं—

१. सब राष्ट्र सदस्य सार्वभौम शक्ति-सम्पन्न और समान हैं।

२. सब राष्ट्र चार्टर के अनुसार अपने कर्तव्यों का सद्भावना से पालन करने के लिए वचनबद्ध हैं।

३. सब राष्ट्र अपने झगड़ों का शांतिमय तरीके से इस प्रकार फैसला करने के लिए वचनबद्ध हैं जिससे किसी प्रकार शांति, सुरक्षा और न्याय के भङ्ग होने का भय न हो।

४. अपने अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध में कोई राष्ट्र-सदस्य किसी प्रदेश या किसी देश की राजनीतिक स्वतन्त्रता के विरुद्ध न शक्ति का प्रयोग करेगा और न उसको धमकी देगा और न ऐसा आचरण करेगा जो संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विपरीत हो।

५. जब चार्टर के अनुसार संयुक्त-राष्ट्र कोई कार्रवाई करेगा, तो सब राष्ट्र सदस्य उसे सब प्रकार की सहायता देने के लिए वचनबद्ध हैं और वे किसी ऐसे देश को

सहायता नहीं देंगे जिसके विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र शान्ति और सुरक्षा के लिए कोई कार्यवाई कर रहा हो।

६. शान्ति और सुरक्षा बनाये रखने के लिए जहाँ तक आवश्यक होगा, यह संस्था व्यवस्था करेगी कि जो देश सदस्य नहीं हैं, वे भी चार्टर के सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करेंगे।

७. शान्ति रक्षा के लिए जब तक आवश्यक न होगा, संयुक्त राष्ट्र उन मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा जो किसी देश के आंतरिक कार्य-क्षेत्र में आते हैं।

सुरक्षा राष्ट्र संघ का संगठन

संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य वह सभी शान्तिप्रिय देश हो सकते हैं जो उसके सिद्धांतों में विश्वास रखते हैं तथा जो चार्टर में निर्धारित अपने कर्तव्यों को पूरा करने का वचन दें। आजकल इस संस्था के ६२ सदस्य हैं।

संयुक्त राष्ट्र संघ के ६ प्रमुख विभाग हैं:—

१. साधारण सभा (General Assembly)—इस सभा में सभी राष्ट्रों के प्रतिनिधि रहते हैं। हर एक राष्ट्र पाँच प्रतिनिधि तक भेज सकता है यद्यपि उन सब की एक ही राय मानी जाती है। इस सभा में चार्टर में बताये गये प्रत्येक विषय पर विचार हो सकता है। दूसरे सभी विभाग इस सभा के सम्मुख अपनी-अपनी रिपोर्ट भेजते हैं। यह सभा उनके कर्तव्य और अधिकारों के बारे में भी विचार करती है। नये सदस्यों के चुनाव तथा सचिवालय के प्रधान सचिव (सैक्रेटरी जनरल) के सम्बन्ध में यह सभा अपनी सिफारिश सुरक्षा परिषद् के सम्मुख रखती है। बजट का निश्चय भी यही सभा करती है। इसके निर्णय साधारणतया बहुमत से लिये जाते हैं।

२. सुरक्षा परिषद् (Security Council)—सुरक्षा परिषद् के कुल ११ सदस्य होते हैं, जिनमें से ५ सदस्य स्थायी हैं तथा ६ सदस्य साधारण सभा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। सदस्य राष्ट्रों में शान्ति और सुरक्षा की व्यवस्था करना इस परिषद् का मुख्य काम है। अपने कर्तव्य पालन में सुरक्षा परिषद् सदस्य राष्ट्रों की ओर से कार्य करती है, जिन्होंने इसके निर्णय को मानना और उनका पालन करना स्वीकार कर लिया है।

परिषद् के पाँच स्थायी सदस्य ये हैं:—चीन, फ्रांस, रूस, यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका। अस्थायी सदस्य दो वर्ष के लिए साधारण सभा द्वारा चुने जाते हैं।

सुरक्षा परिषद् के प्रत्येक सदस्य का एक मत होता है। कार्यक्रम सम्बन्धी निर्णयों का निर्णय ११ सदस्यों में से ७ सदस्यों के बहुमत से हो सकता है। मूल विषयों के सम्बन्ध में भी निर्णय के लिए ७ मतों की ही आवश्यकता होती है। लेकिन इनमें से पाँच

स्थायी सदस्यों की सहमति जरूरी है। यह सिद्धान्त महान् शक्ति (ग्रेट पावर्स) की एकता का सिद्धान्त कहा जाता है। इसे निर्णायक मत (वीटो) का अधिकार भी कहते हैं। जब परिषद् किसी विवाद में शान्तिपूर्वक समझौते की कोशिश करती है तो कोई सम्बन्धित देश इसमें वोट नहीं दे सकता।

शांति व्यवस्था के लिए लगातार सावधानी जरूरी है और इसलिए संयुक्तराष्ट्र संघ के विधान में कहा गया है कि सुरक्षा परिषद् एक स्थायी संस्था होगी और इसकी बैठक पखवाड़े में कम से कम एक बार अवश्य होगी। यदि परिषद् चाहे तो इसकी बैठकें मुख्य कार्यालय के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी हो सकती हैं।

सुरक्षा परिषद् किसी भी ऐसे विवाद की जाँच कर सकती है, जिससे दो या अधिक देशों के बीच आपसी संघर्ष बढ़ने की सम्भावना हो। ऐसे विवाद या स्थिति की सूचना परिषद् को इसके सदस्य, सदस्य राष्ट्र, साधारण सभा अथवा प्रधान सचिव (सेक्रेटरी जनरल) दे सकते हैं। कुछ हालतों में यह सूचना वह राष्ट्र भी दे सकते हैं, जो संयुक्त राष्ट्र के सदस्य नहीं हैं।

सुरक्षा परिषद् शान्तिमय तरीके से समझौते की सिफारिश कर सकती है और कुछ हालतों में वह समझौते की शर्तें भी निर्धारित कर सकती है।

जब शांति भंग होने की आशङ्का हो अथवा शांति भंग हो गई हो अथवा कोई आक्रमण हुआ हो, तो सुरक्षा परिषद्, सुरक्षा और शांति की पुनः स्थापना के लिए जरूरी कार्रवाई कर सकती है। वह आक्रमणकारी राज्य के विरुद्ध यातायात, आर्थिक और कूटनीति सम्बन्ध विच्छेद करके कार्यवाही कर सकती है और यदि आवश्यकता हो, तो वायु, जल तथा स्थल सेनाओं का प्रयोग भी कर सकती है।

सुरक्षा परिषद् की माँग पर और विशेष समझौतों के अनुसार संयुक्तराष्ट्र के सब सदस्य शांति तथा सुरक्षा कायम करने के लिए सैन्य बल देने के लिए वचनबद्ध हैं।

३. आर्थिक और सामाजिक परिषद्—इस परिषद् का उद्देश्य संसार में आर्थिक साधनों की प्रचुरता स्थापित करना एवं राष्ट्रों को न्यायपरायण बनाना है। यह संयुक्त राष्ट्रों की आर्थिक उन्नति के लिए कार्य करती है। इसके नीचे अनेक कमीशन काम करते हैं, जैसे खाद्य समिति, स्वास्थ्य समिति इत्यादि।

४. संरक्षण परिषद्—जो देश अभी स्वाधीन नहीं हुए हैं और राष्ट्रसंघ की देख-भाल में शासित होते हैं, यह संस्था उनकी देख भाल करती है।

५. अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय—अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय संयुक्तराष्ट्र का प्रधान न्यायालय है। इसका कार्य स्थान हालैण्ड स्थित हेग नगर में है। इस न्यायालय के १५ न्यायाधीश होते हैं जो सुरक्षा परिषद् और साधारण सभा द्वारा पृथक् पृथक् रूप से निर्वाचित किये जाते हैं। भारत की ओर से श्री बी० एम० राव इस न्यायालय के सदस्य हैं।

हो रहा है। इन सभी बातों से आज कितने ही विचारक कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ अपने उद्देश्य की पूर्ति में असफल सिद्ध हुआ है।

परंतु संयुक्त राष्ट्र संघ के कार्य की आलोचना करने वाले लोग चित्र का केवल एक पहलू ही देखते हैं। वह इस संस्था के उन कार्यों की ओर दृष्टिपात नहीं करते जो कार्य उसने अपने कुछ ही वर्षों के जीवन में कर दिखाये हैं। आलोचक भूल जाते हैं कि संयुक्तराष्ट्र संघ के कारण ही शीत युद्ध उष्ण युद्ध में परिणत होने से बचा है। इसी संस्था के कारण मध्य पूर्व के देशों में इजराइल राज्य की स्थापना पर अधिक रक्तपात नहीं हुआ। इसी संस्था के प्रतिनिधियों के प्रशंसनीय कार्य से हिंदेशिया के स्वतंत्र राष्ट्र का शांतिमय समझौते के साथ जन्म हुआ। इसी संस्था के प्रयत्न से, काश्मीर के प्रश्न पर भारत और पाकिस्तान के बीच 'युद्ध रोको' प्रस्ताव पास हुआ। इसी संस्था ने कारण दक्षिणी अफ्रीका की वर्णभेद नीति की सर्वत्र निंदा की गई। इटली के उपनिवेशों को इसी संस्था के कारण सुरक्षा परिषद् के सुपुर्द किया गया। बर्लिन के प्रश्न पर भी इसी संस्था के प्रयत्नों के फलस्वरूप भीषण युद्ध होने से बाल बाल बचा, इसी संस्था के प्रधान सचिव श्री ट्रिग्वे ली द्वारा संसार में स्थायी शांति स्थापित करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। इसी संस्था के द्वारा कोरिया युद्ध बन्दी की घोषणा की गई और अब आशा है कि अंतर्राष्ट्रीय बचाव बहुत कम हो जायगा।

और इन सब बातों के अतिरिक्त वह कार्य जो संयुक्त राष्ट्र संघ की सहायक संस्थाओं ने पिछले चार या पाँच वर्षों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक व वैज्ञानिक क्षेत्रों में किया है, अद्वितीय है। आज संयुक्त राष्ट्र संघ की अनेक संस्थाएँ जैसे W.H.O, U.N.A.C, I.L.O., I.T.O, I.C.O, International Bank, U.N.E.S.C.O. इत्यादि संसार की पीड़ित व त्रस्त जनता का हर प्रकार की सहायता करने के कार्य में लगी हुई हैं। कोई संस्था संसार के रोगियों की सहायता करने में लगी हुई है तो कोई संसार के गरीब व अनाथ बच्चों की सेवा के कार्य में। कोई संस्था शरणार्थियों की देख भाल करती है, कोई संक्रामक रोगों का फैलने से रोकती है, कोई संस्था तपेदिक से बचाव के लिए बी० सी० जी० वैक्सीन बाँटती है, तो कोई लगने से बचाव के लिए लोहे के फेफड़े। कोई संस्था संसार के पिछड़े हुए देशों की सहायता के लिए टकनिकल सहायता का प्रबन्ध करती है, तो कोई उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करती है। कोई संस्था संसार के व्यापार को बढ़ाने के लिए कार्य करती है, तो कोई विभिन्न देशों को अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने में सहायता देती है। कोई संसार के मजदूरों के अधिकारों की रक्षा करती है, तो कोई समस्त मानव समाज के अधिकारों की घोषणा करती है। कोई संस्था समाचार पत्रों की स्वतंत्रता कायम रखने के लिए नियम बनाती है तो कोई विभिन्न देशों में वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार के लिए कानून बनाती है। इसी प्रकार और

भी अनेक अगणित क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्र संघ की विभिन्न सहायक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं।

यह सच है संयुक्त राष्ट्र संघ की सफलता का अन्तिम निश्चय उसके सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक कार्य की दृष्टि से नहीं किया जायगा। उसका निश्चय इस बात से होगा कि वह संस्था राजनीतिक क्षेत्र में संसार की शांति बनाये रखने में कहाँ तक सफल सिद्ध होती है। आज राष्ट्रों की गतिविधि देखकर यह आशा बहुत कम है कि संयुक्त राष्ट्र संघ संसार में एक तीसरा प्रलयकारी युद्ध छिड़ने से बचाव कर सकेगी। परन्तु यह निश्चित है कि यदि कोई शक्ति इस दशा में कार्य कर सकती है तथा इस युद्ध के भय को अनिश्चित समय के लिए स्थगित कर सकती है, तो वह शक्ति केवल संयुक्त राष्ट्र संघ की शक्ति है। आज यह संस्था संसार के देशों को इस बात का अवसर प्रदान करती है कि वह अपने विवाद व समस्याएँ संसार के प्रतिनिधियों के सम्मुख रक्खें तथा लोक मत को अपने पक्ष में जीतने का प्रयत्न करें। यही एक अवसर युद्ध के भय को स्थगित करने में शरणगृह का काम देता है। संयुक्त राष्ट्र संघ वह रङ्गमञ्च है जहाँ विश्व की शक्तियाँ अपना दृष्टिकोण संसार के सम्मुख रखती हैं। अपने विचारों को दूसरों पर प्रकट करने का अवसर प्राप्त करना—यही संसार की शांति कायम रखने के लिए सबसे शक्तिशाली उपाय है।

संयुक्त राष्ट्र संघ का भविष्य

संयुक्त राष्ट्र संघ के भविष्य के सम्बन्ध में इसलिए हमें अत्यन्त निराशात्मक दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिये। यदि हम संसार से विश्वशांति के पक्ष में एक जीवित और जाग्रत लोकमत का निर्माण करने में सफल हो सकें, तो कोई कारण नहीं कि संसार में स्थायी शांति स्थापित न हो सके।

आज आवश्यकता इस बात की है कि संसार के प्रत्येक देश के संयुक्त राष्ट्र संघ के उद्देश्यों का प्रचार करने के लिए स्थान-स्थान पर संस्थाएँ खोली जायँ, जनता को युद्ध के भयङ्कर परिणामों से अवगत कराया जाय तथा उग्र राष्ट्रीयता की भावना को स्थान-स्थान पर संसार की जनता में अन्तर्राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण का प्रचार किया जाय।

भारतवर्ष इस दशा में अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य कर रहा है। आज हमारे प्रधान मन्त्री अपनी समस्त शक्ति के साथ इस संस्था की सफलता के लिए कार्य कर रहे हैं। हमारे देश में अनेक स्थानों पर यू० एन० ओ० एसोसियेशन्स खोल दिये गये हैं। शेष स्थानों पर भी ऐसी संस्थाओं का एक जाल सा बिछाने का प्रयत्न किया जा रहा है। समस्त देश की यू० एन० ओ० संस्थाओं के कार्य की देख भाल के लिए एक अखिल भारतीय संस्था बना दी गई है। यदि दूसरे देशों में भी इसी प्रकार का कार्य

हो सका तो यह दिन दूर नहीं जब हमारी आने वाली संततियाँ युद्ध के भय से सदा के लिए छुटकारा पा सकेंगी।

योग्यता प्रश्न

१. राष्ट्र संघ क्या है? उसके विभिन्न अंगों का संगठन समझाइये।

२. भारतवर्ष ने राष्ट्र संघ के कार्य में क्या योग दिया है?

३. संयुक्त राष्ट्र संघ ही संसार की दुःखी तथा युद्ध से भयभीत जनता की एक मात्र आशा है। इस कथन की सत्यता की परीक्षा कीजिये।

४. 'राष्ट्र संघ लीग आफ नेशन्स के पथ पर जा रहा है,' क्या यह कथन सत्य है?

५. राष्ट्र संघ के राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक कार्यक्रम का विवेचन कीजिये।

परिशिष्ट १

अंग्रेजी में प्रयोग होने वाले कुछ संविधान सम्बन्धी शब्दों का हिन्दी अनुवाद

Accused	अभियुक्त
Act (n.)	अधिनियम, कानून
Acting (e. g., Chairman)	कार्यकारी
Ad Hoc	तदर्थ
Adjourn	स्थगन, स्थगित करना
Administration	प्रशासन, प्रबन्ध
Adult suffrage	वयस्क मताधिकार
Advise	मन्त्रणा देना
Agreement	करार
Alien	अन्य देशीय, विदेशी
Allocation	बँटन
Allotment	बाँट
Amendment	संशोधन
Annul	बातिल
Annulment	रद्द करना
Appeal	अपील
Appointment	नियुक्ति
Arbitration	मध्यस्थ-निर्णय
Arbitrator	मध्यस्थ
Article	अनुच्छेद
Assembly	सभा
Assent	अनुमति
Association	संघ
Attach	कुर्क
Audit	लेखा परीक्षा

Auditor General	महालेखा परीक्षक
Autonomous	स्वायत्त
Bankruptcv	दिवाला
Bi-cameral	दो घरा, द्विसदनात्मक
Boundary	सीमा
Bye election	उप निर्वाचन, उप चुनाव
Casting Vote	निर्णायक मत
Census	जन गणना
Certificate	प्रमाण पत्र
Chairman	सभापति
Chief Justice	मुख्य न्यायाधिपति
Chief Minister	मुख्य मन्त्री
Citizenship	नागरिकता
Civil	असैनिक
Commonwealth	राष्ट्र मण्डल
Co operative	सहयोगात्मक राष्ट्र मण्डल
Commerce	वाणिज्य
Committee, Select	प्रवर समिति
Concurrent List	समवर्ती सूची
Constituency	निर्वाचन क्षेत्र
Confidence, want of	विश्वास का अभाव
Constituent Assembly.	संविधान सभा
Constitution	संविधान
Contingency Fund	आकस्मिकता निधि
Conviction	दोष सिद्धि
Co operative Society	सहकारी संस्था
Council of Minis'ers	मन्त्रि परिषद्
Council of States	राज्य
Court, Civil	व्यवहार-न्यायालय
Court, Criminal	दंड न्यायालय
Court, District	जिला न्यायालय
Court, High	उच्च न्यायालय

Court, Martial	सेना न्यायालय
Court, Revenue	राजस्व न्यायालय
Court, Supreme	उच्चतम न्यायालय
Declaration	घोषणा
Deputy Chairman	उप सभापति
Deputy Speaker	उपाध्यक्ष
Discretion	स्वविवेक
District Board	जिला मण्डली
Domicile	अधिवास
Duty, custom	सीमा शुल्क
Duty, death	मरण शुल्क
Duty, estate	सम्पत्ति शुल्क
Duty, excise	उत्पादन शुल्क
Duty, import	आयात शुल्क
Duty, export	निर्यात शुल्क
Efficiency of adm.	प्रशासन कार्यक्षमता
Election	निर्वाचन, चुनाव
Election direct	प्रत्यक्ष निर्वाचन
Election, general	साधारण निर्वाचन, आम चुनाव
Election, indirect	परोक्ष निर्वाचन, अप्रत्यक्ष चुनाव
Electoral, roll	निर्वाचक नामावली
Eligible	पात्र होना
Escheat	राजगामी
Exempt	मुक्त
Ex-officio	पदेन
Expenditure	व्यय
Federal, Court	फेडरल न्यायालय
Gazette	सूचना-पत्र
Government	(१) सरकार, (२) शासन
Government of State	राज्य सरकार
Government of India	भारत सरकार
Governor	राज्यपाल

House of People	लोक सभा
Impeachment	महाभियोग, सार्वजनिक दोषारोपण
Judiciary	न्याय पालिका
Labour	श्रम
Labour Union	श्रमिक संघ
Land Revenue	भू राजस्व
Law	विधि, कानून
Legislative Assembly	विधान सभा
Legislative Council	विधान परिषद्
Legislature	विधान मण्डल
Legalism	कानूनीपन
Lieutenant Governor	उपराज्यपाल
List	सूची
List, concurrent	समवर्ती सूची
List, state	राज्य सूची
List, Union	संघ सूची
Local Government	स्थानीय शासन
Local Self Government	स्थानीय स्वशासन
Lower House	प्रथम सदन, निम्न भवन
Major	वयस्क
Majority	बहुमत
Minor	अवयस्क
Minority	अल्प संख्यक वर्ग
Motion for consideration	विचारार्थ प्रस्ताव
Municipal area	नगर क्षेत्र
Municipal Committee	नगर समिति
Municipal Corporation	नगर निगम
Municipality	नगरपालिका
Naturalisation	देशीयकरण
Parliament	संसद्
President	राष्ट्रपति
Prison	कारावास

Proclamation	घोषणा
Quorum	गणपूर्ति
Reading, first	प्रथम पठन
Reading, second	द्वितीय पठन
Reading, third	तृतीय पठन
Resignation	पद त्याग
Rigidity	जकड़बन्दी
Rule	नियम
Single Transferable Vote	एकल संक्रमणीय मत
Tax, Income	आय कर
Tax, Terminal	सीमा कर
Tax, Export	निर्यात कर
Vice-President	उपराष्ट्रपति

परिशिष्ट २

भारत की जनसंख्या तथा क्षेत्रफल (१९५१ की जनगणना के आधार पर)

भारत का क्षेत्रफल—१२,२१,०६४ वर्गमील

जनसंख्या—३६,१८,२०,०००

भाग अ राज्य

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या
आसाम	५४,०६४	९,१२९,४४२
बिहार	७०,३६८	४०,२१८,९१६
बम्बई	११५,५७०	३५,९४३,५५९
मध्य प्रदेश	१३०,३२३	२१,२२७,८१८
मद्रास	१२७,७६८	५६,९५५,३१२
उड़ीसा	५९,८६९	१४,६४४,२९३
पंजाब	३७,४२८	१२,६३८,६११
उत्तर प्रदेश	११२,५२३	६३,२१५,११८
पश्चिमी बंगाल	२९,४७६	२४,७८६,६८३
कुल योग अ भाग	७२७,४०९	२७८,८९५,८५२

भाग बी राज्य

राज्य	क्षेत्रफल (वर्गमील में)	जनसंख्या
हैदराबाद	८२,३१३	१८,६५२,९६४
मध्य भारत	४६,७१०	७,९४१,६४२
मैसूर	४९,४५८	९,०७१,६७८
पैप्सू	१०,०९९	३,४६८,६३१
राजस्थान	१२८,४२४	१५,२९७,९७९
सौराष्ट्र	२१,०६२	४,१३६,००५
ट्रावनकोर-कोचीन	९,१५५	९,२६५,१५७
कुल योग बी भाग	१२७,२११	६७,८३४,०५६

	भाग सी राज्य	
अजमेर	२,४२५	६९२,५०६
भोपाल	६,९२१	८३८,१०७
बिलासपुर	४५३	१२७,५६६
कुर्ग	१,५९३	२२९,२५५
दिल्ली	५७४	१,७४३ ९९२
हिमाचल प्रदेश	१०,६००	९८९,४३७
कच्छ	८,४६१	५६७,८२५
मनीपुर	८,६२०	५८९,०५८
त्रिपुरा	४,०४९	६४९,९३०
विन्ध्य प्रदेश	२४,६००	३,५७७,४३१
कुल जोड़ सी राज्य	६८,२९६	९,९२५,१०७
	भाग डी राज्य	
अंडेमान निकोबार	३,१४३	३०,९६३
सिक्किम	२,७४५	१३५,६४६
कुल जोड़ डी राज्य	५,८८८	१६६,६०९